मराठों का इतिहास

जेम्स कनिंघम ग्राण्ट डफ

अनुवादक-टिप्पणीकार

लक्ष्मीकान्त मालवीय

देवोत्थान ११ कार्तिक शु. २०२१

महामना प्रकाशन मन्दिर

इलाहाबाद

मराठों का इतिहास

(१००० ई० से १७५५ ई० तक)

जेम्स कनिंघम ग्राण्ट डफ
भूतपूर्व राजनीतिक रेजीडेंट, सातारा

महामना प्रकाशन मन्दिर
७०५ महामना मालवीय नगर
इलाहाबाद

देवोत्थान एकादशी
कार्तिक शुक्ल, २०२१

अनुवादक, टिप्पणीकार

लक्ष्मीकान्त मालवीय

बी. ए., एल्-एल्. बी.

मूल्य रु० १२·००

भूमिका

प्रसिद्ध इतिहास लेखक जेम्स कनिंघम ग्राण्ट डफ का 'मराठों का इतिहास' मराठी, फारसी, अंग्रेजी और पुर्तगाली भाषा में प्राप्त पुस्तकों, राजकीय प्रलेखों, राजनीतिक पत्र-व्यवहारों, युद्ध-विवरणों संधि-पत्रों तथा अन्य सामग्रियों के गहन और विवेकपूर्ण अध्ययन, चयन और विश्लेषण पर आधारित है। उस समय के उथल-पुथल के काल में ठेठ महाराष्ट्र में सैनिक और असैनिक अधिकारी के रूप में उसने अनेक युद्धों और राजकार्यवाहियों में सक्रिय भाग लिया था। राज्य के पदाधिकारी के रूप में उसने वहाँ के अभिलेखों, पत्र-व्यवहारों और कागजों का तथा गोआ स्थित पुर्तगाली सरकार और बम्बई और सूरत स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभिलेखों का तथा अन्य अनेक स्रोतों से प्राप्त प्रलेखों, विलेखों और अभिलेखों का अध्ययन किया। सत्तरह वर्षों तक महाराष्ट्र में रह कर उसने राजा, पेशवा, सरदारों, अधिकारियों, विद्वानों, कृषकों और सैनिकों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर महाराष्ट्र के जन-जीवन का, जनता का, उसकी विशेषताओं और निर्बलताओं का सूक्ष्म अध्ययन किया। इस ग्रन्थ में उसने जनजीवन का, घटनाओं का और घटनाओं के प्रणेताओं का विशद चित्रण एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया और खुल कर उनकी आलोचना की। यद्यपि उसके मन में भारतीय जातियों और वर्णों की हीनता की ओर एशियाई राष्ट्रों की अपेक्षा यूरोपीय राष्ट्रों की श्रेष्ठता की भावना समाई हुई थी, फिर भी उसने अँग्रेजों के अत्याचार, कपट, बेईमानी और ईर्ष्या को आँख से ओझल नहीं किया। उसके विवरण, विवेचन और आलोचन प्रायः निर्भीक और संतुलित हैं। उस समय की जिन त्रुटियों, भूलों और भ्रष्टाचारों की ओर उसने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया, राष्ट्रीय जीवन के शाप रूप में वे बहुत कुछ आज भी हमारे सामने हैं। हमें सतर्क और सावधान होने की आवश्यकता है।

ग्राण्ट डफ के समय के पश्चात् पाण्डिचेरी के राज्यपाल मार्टिन की डायरी तथा फ्रेंच भाषा के दो-एक ग्रन्थ, पुर्तगाली भाषा का 'पुर्तगाली और मराठे' ग्रंथ जिसमें पुर्तगाली भाषा में प्राप्त सारी सामग्री संकलित है, फारसी में लिखित शाही दरबार की कार्यवाहियों का दैनिक विवरण (अखबारात-इ-दरबार-इ-मुअल्ला), जयपुर दरबार के दफ्तरखाने में प्राप्त डिंगल भाषा में लिखे हुए मुगल दरबार के प्रतिदिन के विवरण के पुलिन्दे, मराठी रियासत, प्रायः एक लाख मुद्रित पृष्ठों के

मराठी कागजों आदि के आधार पर लिखित पुस्तकें प्रकाश में आई हैं। समय बदलता है, नई २ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और नये दृष्टिकोण सामने आते हैं। अतः इन दोनों दृष्टियों से प्रस्तुत हिन्दी संस्करण में प्रचुर पादटिप्पणियाँ जोड़ी गई हैं। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम्. ए., डी. फिल्, डी. लिट्., रीडर, हिन्दी विभाग, यूनीवर्सिटी, इलाहाबाद तथा श्री बी. के. त्रिवेदी, डिप्टी लाइब्रेरिअन, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की मूल्यवान् सहायता के बिना न तो यह पुस्तक अनूदित की जाती और न इसका यह वर्तमान रूप ही होता। श्री महेशचन्द्र व्यास, यूनीवर्सिटी लाइब्रेरी इलाहाबाद, श्री हरिमोहन मालवीय एम. ए. और श्री काशीनाथ मालवीय से बल और श्री गिरिधर शुक्ल से आशीर्वाद प्राप्त हुए। लेखनकार्य करने, अनुक्रमणिका तैयार करने और प्रूफ पढ़ने में श्री मंगलाप्रसाद द्विवेदी ने शीघ्रता की। सब का मैं आभार मानता हूँ।

देवोत्थान ११ कार्तिक शु० २०२१ — लक्ष्मीकान्त मालवीय

विषय सूची

अध्याय ११

१६८६ ई०—१७०७ ई० तक

अध्याय १२

१७०७ ई०—१७२० ई० तक

मराठों का इतिहास

प्रारम्भिक चर्चा

महाराष्ट्र देश का भूगोल, लक्षण, जलवायु, जनता, धर्म, शिक्षा, प्रारम्भिक इतिहास और संस्थाएँ

प्रारम्भिक चर्चा—हिन्दू भूगोल वेत्ताओं के अनुसार दक्खिन[1] या नर्मदा और महानदी नदियों के दक्षिण का देश अनेकानेक भागों में विभाजित है

---

[1] (दक्खिन या दक्कन भारत प्रायद्वीप की वह ऐतिहासिक भूमि है जो उत्तर में सातमल, चान्दोर, अजन्त या इन्ध्याद्रि श्रेणी को महेन्द्रगिरि से मिलाने वाले एवं महानदी और गोदावरी के काठी में पड़ने वाले पर्वत और पठार के विस्तार से लेकर दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा तक; और पश्चिम में अरब सागर से पूरब में बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई है। स्थूल रूप से यह क्षेत्र १३° ५९', और २०° ३३', उत्तरी अक्षांश और ७२° ५४', और ८४° २६', पूर्वी देशान्तर के बीच में है। इसका कुल क्षेत्र लगभग २,००,००० वर्गमील और इसकी जनसंख्या लगभग ४ करोड़ है।

प्राचीन समय से यह शब्द विभिन्न अर्थों में प्रचलित रहा है। विस्तृत अर्थ में इस शब्द में दक्षिणी समुद्र और विंध्यपर्वत श्रेणियों के बीच का समस्त भूभाग सम्मिलित है, 'दक्षिणस्य समुद्रस्य तथा विंध्यस्य चांतरे।' भरत नाट्यशास्त्र और पुराणों के भुवनकोश के अनुसार भी यही अभिधार्थ है। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार दक्खिन नर्मदा से सेतु तक फैला हुआ है, 'सेतुनर्मदामध्यम्'''दक्षिणापथम्।'

प्रतीत होता है रामायण और महाभारत के अनुसार सुदूर दक्षिण दक्षिणापथ में सम्मिलित नहीं था। रामायण में द्राविड़ को दक्षिणापथ से पृथक माना है। 'द्राविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः' (अयोध्याकाण्ड, १०, ३७)। महाभारत के अनुसार दक्षिणापथ विदर्भ और कोशल के दक्षिण में है। 'एष पन्था विदर्भाणामसौ गच्छति कोशलान्। अतः परञ्च देशोऽयं दक्षिणे दक्षिणापथः।' (वनपर्व, ६१, २२)।

किन्तु इनमें से (१) द्राविड़[1] (२) कार्णाटक[2] (३) आन्ध्र[3] या तेलगाना

दक्षिणापथ शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में आया है। इसका संक्षिप्त रूप दक्षिण है जिसका अपभ्रंश दक्खिना, दक्खिन और दक्कन है जो विकृत होकर आधुनिक समय में डक्कन् हुआ। दक्षिण का अर्थ है दाहिना हाथ या दक्खिन दिशा। अनेक भारतीय ग्रन्थों और उत्कीर्ण लेखों के अतिरिक्त इसका विस्तृत वर्णन प्रथम शती ई० के एक यूनानी नाविक की लिखी हुई पुस्तक पेरिप्लस आव द इरीथ्रिअन सी' में भी है।—डॉ० याज़दानी द्वारा सम्पादित 'अर्ली हिस्ट्री आव द डक्कन' के भाग १ के लेखक डॉ० हेमचन्द्र राय चौधुरी लिखित 'ज्योग्रेफी आव द डक्कन', पृष्ठ ३-४; भंडारकर 'अर्ली हिस्ट्री आव द डक्कन', पृष्ठ १-२।)

[1] (द्राविड़ भारतीय प्रायद्वीप के चरम दक्षिणी भाग का प्राचीन नाम है। इसका विस्तार अन्तरीप कन्याकुमारी से कृष्णा नदी तक है। ऐतिहासिक काल में इसका अधिकतम विस्तार उत्तर में गोदावरी के दक्षिण तक हुआ। यहाँ तमिल भाषा बोली जाती है। कुमारिल भट्ट (७०० ई०) ने दक्षिणी भारत की भाषा को आंध्र-द्राविड़-भाषा (तेलुगु तमिल-भाषा) कहा है।—स्मिथ : आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया, पृष्ठ १३। जिस तरह आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म संस्कृत से माना जाता है उसी तरह की समानता के आधार पर दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम् तथा कन्नड़ भाषाओं को द्राविड़ गोष्ठी-जनित माना जा सकता है। 'लीलातिलकम्' नामक ग्रन्थ में 'तमिल' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है : 'केरलानाम् द्रमिल शब्द वाच्यत्वाद् अपभ्रंशेन तद् भाषा तमिलित्युच्यते। चोल-केरलपाण्ड्येषु द्रामिड शब्दस्य वा प्रसिद्धा प्रवृत्तिः।' अर्थात् चोल, केरल और पाण्ड्य भाषाओं को अपभ्रंश रूप में तमिल कहा जाता है।—रत्नमयीदेवी दीक्षित : केरली साहित्य दर्शन, पृष्ठ १५, ३२)

[2] (प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार कार्णाट या कार्णाटक वह प्रदेश है जो आजकल मैसूर कहलाता है। वात्स्यायन के टीकाकार यशोधरा के अनुसार कार्णाटक के उत्तर में महाराष्ट्र, और दक्षिण में द्राविड़ है। यह पश्चिम में अरब सागर से पूर्व में ७८° देशान्तर तक फैला हुआ है। कावेरी इसकी दक्षिणी सीमा है। इस प्रदेश की भाषा कन्नड़ है।—एस० श्रीकान्त शास्त्री : सोर्सेज आव कार्णाटक हिस्ट्री, भाग १, पृष्ठ १-२०। ग्रान्ट डफ की पुस्तक के प्रथम संस्करण (१८२६) में जो मानचित्र दिया हुआ है उसमें कार्णाटक प्रायद्वीप का वह पश्चिमी भाग दिखाया गया है जो उत्तर में धारवार से दक्षिण में श्रीरंगपट्टम तक फैला हुआ है।)

[3] (यहाँ आंध्र (सातवाहन) वंश ने लगभग २३० ई० पू० से २२६ ई०

(४) गोंडवाना[1] और (५) महाराष्ट्र[2] ये ५ मुख्य भाग हैं। अच्छी जानकारी रखने वाले समस्त हिन्दू इन भागों से परिचित हैं और इनकी चर्चा करते हैं। किन्तु वे उनके विस्तार के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से असहमत हैं। अन्य स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में कर्नल विल्क्स ने इन भागों की सीमाओं को निर्धारित करने के लिए एक सर्वोत्तम व्यावहारिक नियम अपनाया है। प्रत्येक विशिष्ट भाषा जितने भूभाग में इस समय बोली जाती है उतने भूभाग को अलग-अलग रेखांकित करके उन्होंने उनकी सीमाएँ निर्धारित की हैं।

द्राविड़ कहलाने वाला भाग का विस्तार अन्तरीप कन्याकुमारी से मद्रास के

तक राज्य किया था। उसके अभिधान पर इस क्षेत्र का नाम आंध्र पड़ा। इस देश के लोग तेलुगु बोलते थे इसलिए बाद को यह क्षेत्र तेलंगण (तेलंगाना) भी कहा जाने लगा। 'आंध्र' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में प्राप्त है। प्राचीन काल में इसका प्रचलित नाम 'अंध्र' था। इसके उत्तर में उत्कल, दक्षिण में तमिलनाड, पश्चिम में महाराष्ट्र और कार्णाटक, तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। तेलुगु और आंध्र दोनों शब्दों का प्रयोग देश, जाति और भाषा तीनों अर्थों में होता है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस भाषा को बोलने वालों की संख्या चार करोड़ थी। विभाजित भारत में राज-भाषा हिन्दी का प्रथम स्थान है और इसका द्वितीय। यह भाषा अपने सहज माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है—हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' : तेलुगु और उसका साहित्य, पृष्ठ ९-१८)।

[1] [ऐतिहासिक काल के गोंडवाना में मध्य प्रदेश राज्य का उत्तरी भाग, सातपुड़ा पठार, नागपुर मैदान का एक भाग और दक्षिण और पश्चिम ओर की नर्मदा घाटी सम्मिलित थी।] इस पर्वतीय प्रदेश में असभ्य गोंड जाति के लोग रहते हैं। वे हिन्दू नहीं है इससे यह मालूम होता है कि उन पर कभी विजय नहीं प्राप्त की गई।

[2] एलफिंस्टन के अनुसार महाराष्ट्र सातपुड़ा और उस रेखा के बीच में पड़ेगा जो समुद्रतट पर स्थित गोआ से, बीदर होती हुई, वर्धा नदी पर स्थित चन्दा तक खींची जाय। वर्धा नदी इसकी पूर्वी और समुद्र इसकी पश्चिमी सीमा है।

किन्तु इनमें से (१) द्राविड़[1] (२) कार्णाटक[2] (३) आन्ध्र[3] या तेलगाना

दक्षिणापथ शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में आया है। इसका संक्षिप्त रूप दक्षिणा
है जिसका अपभ्रंश दक्खिना, दक्खिन और दक्कन है जो विकृत होकर आधुनिक
समय में डक्कन हुआ। दक्षिणा का अर्थ है दाहिना हाथ या दक्खिन दिशा। अनेक
भारतीय ग्रन्थों और उत्कीर्ण लेखों के अतिरिक्त इसका विस्तृत वर्णन प्रथम शती
ई० के एक यूनानी नाविक की लिखी हुई पुस्तक पेरिप्लस आव द इरीथ्रिअन सी'
में भी है। — डॉ० याज़दानी द्वारा सम्पादित 'अर्ली हिस्ट्री आव द डक्कन' के भाग १
के लेखक डॉ० हेमचन्द्र राय चौधुरी लिखित 'ज्योग्रेफी आव द डक्कन', पृष्ठ ३-४;
भंडारकर 'अर्ली हिस्ट्री आव द डक्कन', पृष्ठ १-२।)

[1] (द्राविड़ भारतीय प्रायद्वीप के चरम दक्षिणी भाग का प्राचीन नाम है।
इसका विस्तार अन्तरीप कन्याकुमारी से कृष्णा नदी तक है। ऐतिहासिक काल में
इसका अधिकतम विस्तार उत्तर में गोदावरी के दक्षिण तक हुआ। यहाँ तमिल
भाषा बोली जाती है। कुमारिल भट्ट (७०० ई०) ने दक्षिणी भारत की भाषा को
आंध्र-द्राविड़-भाषा (तेलुगु तमिल-भाषा) कहा है। — स्मिथ : आक्सफोर्ड हिस्ट्री
आव इण्डिया, पृष्ठ १२। जिस तरह आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म संस्कृत से
माना जाता है उसी तरह की समानता के आधार पर दक्षिण की तमिल, तेलुगु,
मलयालम् तथा कन्नड़ भाषाओं को द्राविड़ गोत्र-जनित माना जा सकता है।
'लीलातिलकम्' नामक ग्रन्थ में 'तमिल' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है :
'केरलानाम् द्रमिल शब्द वाच्यत्वाद् अपभ्रंशेन तद् भाषा तमिलित्युच्यते। चोल-
केरलपाण्ड्येषु द्रमिड़ शब्दस्य वा प्रसिद्धा प्रवृत्तिः।' अर्थात् चोल, केरल और पाण्ड्य
भाषाओं को अपभ्रंश रूप में तमिल कहा जाता है। — रत्नमयीदेवी दीक्षित :
केरली साहित्य दर्शन, पृष्ठ १५, २२)

[2] (प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार कार्णाट या कार्णाटक वह प्रदेश है
जो आजकल मैसूर कहलाता है। वात्स्यायन के टीकाकार यशोधरा के अनुसार
कार्णाटक के उत्तर में महाराष्ट्र, और दक्षिण में द्राविड़ है। यह पश्चिम में अरब
सागर से पूर्व में ७८° देशान्तर तक फैला हुआ है। कावेरी इसकी दक्षिणी सीमा है।
इस प्रदेश की भाषा कन्नड़ है। — एस० श्रीकान्त शास्त्री : सोर्सेज आव कार्णाटक
हिस्ट्री, भाग १, पृष्ठ १-२०। ग्रान्ट डफ की पुस्तक के प्रथम संस्करण (१८२६)
में जो मानचित्र दिया हुआ है उसमें कार्णाटक प्रायद्वीप का वह पश्चिमी
भाग दिखाया गया है जो उत्तर में धारवार से दक्षिण में श्रीरंगपट्टम तक फैला
हुआ है।)

[3] (यहाँ आंध्र (सातवाहन) वंश ने लगभग २३० ई० पू० से २६६ ई०

(४) गोंडवाना[1] और (५) महाराष्ट्र[2] ये ५ मुख्य भाग हैं। अच्छी जानकारी रखने वाले समस्त हिन्दू इन भागों से परिचित हैं और इनकी चर्चा करते हैं। किन्तु वे उनके विस्तार के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से असहमत हैं। अन्य स्पष्ट साक्ष्य के अभाव में कर्नल विल्क्स ने इन भागों की सीमाओं को निर्धारित करने के लिए एक सर्वोत्तम व्यावहारिक नियम अपनाया है। प्रत्येक विशिष्ट भाषा जितने भूभाग में इस समय बोली जाती है उतने भूभाग को अलग-अलग रेखांकित करके उन्होंने उनकी सीमाएँ निर्धारित की हैं।

द्राविड़ कहलाने वाला भाग का विस्तार अन्तरीप कन्याकुमारी से मद्रास के

तक राज्य किया था। उसके अभिधान पर इस क्षेत्र का नाम आंध्र पड़ा। इस देश के लोग तेलुगु बोलते थे इसलिए बाद को यह क्षेत्र तेलंगण (तेलंगाना) भी कहा जाने लगा। 'आंध्र' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में प्राप्त है। प्राचीन काल में इसका प्रचलित नाम 'अंध्र' था। इसके उत्तर में उत्कल, दक्षिण में तमिलनाड, पश्चिम में महाराष्ट्र और कार्णाटक, तथा पूर्व में बँगाल की खाड़ी है। तेलुगु और आंध्र दोनों शब्दों का प्रयोग देश, जाति और भाषा तीनों अर्थों में होता है। १९५१ की जनगणना के अनुसार इस भाषा को बोलने वालों की संख्या चार करोड़ थी। विभाजित भारत में राज-भाषा हिन्दी का प्रथम स्थान है और इसका द्वितीय। यह भाषा अपने सहज माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है—हनुमच्छास्त्री 'अयाचित': तेलुगु और उसका साहित्य, पृष्ठ ९-१८)।

[1] [ऐतिहासिक काल के गोंडवाना में मध्य प्रदेश राज्य का उत्तरी भाग, सातपुड़ा पठार, नागपुर मैदान का एक भाग और दक्षिण और पश्चिम ओर की नर्मदा घाटी सम्मिलित थी।] इस पर्वतीय प्रदेश में असभ्य गोंड जाति के लोग रहते हैं। वे हिन्दू नहीं है इससे यह मालूम होता है कि उन पर कभी विजय नहीं प्राप्त की गई।

[2] एलफिंस्टन के अनुसार महाराष्ट्र सातपुड़ा और उस रेखा के बीच में पड़ेगा जो समुद्रतट पर स्थित गोआ से, बीदर होती हुई, वर्धा नदी पर स्थित चन्दा तक खींची जाय। वर्धा नदी इसकी पूर्वी और समुद्र इसकी पश्चिमी सीमा है।

उत्तर तक है। इस भूभाग की मातृभाषा तमिल[1] है। प्राचीन कार्णाटक उस विस्तृत पठार का एक भाग है जो मलाबार और अब चोलमण्डल कहे जाने वाले समुद्रतट के बीच में पड़ता है। दोनों ओर के घाट या पर्वत-शृङ्खलाएँ इसकी पूर्वी और पश्चिमी सीमाएँ हैं। तेलंगाना और महाराष्ट्र के बीच में, उत्तर में मंजीरा नदी तक यह एक कोण के रूप में फैला हुआ है। इस बिन्दु से यह तेलंगाना की पश्चिमी सीमा पर और महाराष्ट्र की दक्षिणी-पूर्वी सीमा पर है। तेलंगाना का विस्तार दक्षिण में पुलीकट के पास से या द्राविड़ के उत्तरी छोर से, आरम्भ होकर उड़ीसा में चिकाकोल (विशाखापटनम्) तक है। गोंडवाना सहित उड़ीसा, महानदी और तेलंगाना के बीच के भूभाग में है। पाँचवें खण्ड का, जो तेलंगाना और गोंडवाना की पश्चिमी सीमा है अधिक यथार्थ वर्णन करना आवश्यक है।

महाराष्ट्र देश का भूगोल—महाराष्ट्र उन लोगों की जन्मभूमि है जिनके इतिहास को यहाँ अंकित करने का विचार है। दक्षिण भारत के इस बड़े भूभाग की विभिन्न सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं। ज्योतिषशास्त्र की एक पुस्तक तत्त्व के अनुसार महाराष्ट्र का विस्तार चान्दोर पर्वत श्रेणियों तक है वहाँ कोलवन, बागलान और खानदेश इसकी उत्तरी सीमा हैं। उसके आगे का भूभाग मोटे तौर पर बिन्ध्याद्रि[2] कहलाता है।

चान्दोर और इरोर मंजीरा जो कृष्णा पर बसा हुआ है के बीच का भाग निश्चय ही अत्यन्त निश्चित रूप से मराठा देश है। इस भूभाग की भाषा में सब से कम परिवर्तन है। पूर्व निर्धारित नियम का अधिक विस्तृत रूप से अनुगमन करने पर महाराष्ट्र वह भूभाग है जिसके उत्तर में सातपुड़ा[3] पर्वत श्रेणियाँ हैं और जो

---

[1] मलाबार तट के तीन भाग हैं, मलाबार, तुलवा और गोआराष्ट्र। स्पष्ट रूप से ये द्राविड़ और कार्णाटक में सम्मिलित नहीं हैं, किन्तु इनकी भाषाओं में साम्य होने के कारण मलाबार (केरल) द्राविड़ से, और तुलवा और गोआराष्ट्र कार्णाटक से संलग्न माने जाते हैं। [दक्षिण कोंकण का प्राचीन नाम गोआराष्ट्र था। गोआ का नाम इसी पर पड़ा है। तुलवा (कनारा) पश्चिमी तट पर है। यहाँ तुलु भाषा बोली जाती है। ऐतिहासिक काल में तमिल भूमि में वे प्रदेश भी सम्मिलित थे जहाँ इस समय कन्नड़, मलयालम् और तुलु बोली जाती हैं।]

[2] [विंध्याद्रि—विंध्य + आद्रि (पर्वत)।]

[3] मेजर टॉड ने मुझे सूचित किया है कि विन्ध्य पर्वत श्रेणियों के निकट दक्षिण की ओर जो पर्वत श्रेणी है वह वास्तविक सातपुड़ा है किन्तु मराठे सम्पूर्ण श्रेणी को सातपुड़ा कहते हैं। [नर्मदा के दक्षिण की सम्पूर्ण श्रेणी अब सातपुड़ा के

पश्चिम में नान्दोद से आरम्भ होकर इन पर्वत श्रेणियों के किनारे-किनारे नागपुर के पूरब वेनगंगा तक फैला हुआ है। वर्धा नदी से इसका संगम होने तक, इसकी पूर्वी सीमा है। यह भूभाग इन दोनों नदियों के संगम से आरम्भ होकर, वर्धा नदी के पूर्वी तट से मनिक दुर्ग तक और वहाँ से पश्चिम की ओर महोर तक रेखांकित किया जा सकता है। महोर से गोआ तक एक लहरदार रेखा खींची जा सकती है। समुद्र इसकी पश्चिमी सीमा है।

भाषा—इस सम्पूर्ण बृहत् भूभाग में मराठा भाषा बोली जाती है। अवश्यमेव इस विस्तृत भूभाग में अनेक बोलियाँ भी, जिनमें सीमाओं के समीप दूसरी बोलियों का भी मिश्रण है, बोली जाती हैं। सूरत, भड़ोच और राजपीपला के इर्द-गिर्द के छोटे भाग में गुजराती बोली जाती है। किन्तु इस भूभाग को, दमण से नान्दोद जनपद के मध्य, सातपुड़ा पर्वत श्रेणी की पश्चिमी नोक तक एक काल्पनिक रेखा खींच कर अलग किया जा सकता है। यह पूरा भूभाग एक लाख दो हजार वर्ग मील तक फैला हुआ है। इसकी वर्तमान जनसंख्या, उनसठ व्यक्ति प्रति वर्ग मील के औसत से, लगभग साठ लाख है।[1]

अब भी महाराष्ट्र की एक पृथक भाषा होने, महाराष्ट्र ब्राह्मणों का एक विशेष वर्ग होने तथा महाराष्ट्र देश के निवासियों का मराठा कहलाने से प्रतीत होता है कि यह अत्यन्त सुदूर अतीत काल में किसी एक राजा के अधीन था।[2] किन्तु इसकी

नाम से अभिहित की जाती है जो अमरकंटक (२२° ४१′ उत्तर और ८१° ४८′ पूर्व) से आरम्भ होकर नर्मदा के दक्षिण में लगभग पश्चिमी समुद्रतट तक जाती है। सातपुड़ा की लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक ६०० मील है।]

[1] (यह आकलन १८२४ के आस पास का है। अब अढ़ाई करोड़ से अधिक व्यक्ति मराठी भाषा बोलते हैं। मराठी भाषा साहित्यिक प्राकृत महाराष्ट्री से उत्पन्न हुई है जो किसी समय उत्तर की ओर मालवा और राजस्थान की सीमाओं तक, और दक्षिण में कृष्णा और तुंगभद्रा के तटों तक जनसाधारण की बोली और साहित्य की भाषा थी।)

[2] आधुनिक अनुसंधानों से यह प्रमाणित हुआ है कि पश्चिमी भारत पर अशोक (ईसा पूर्व २७३-३२) का राज्य था। उसके बाद सातवाहन (७३ ई० पूर्व-२१८ ई०), पूर्व चालुक्य (५५० ई०-७५३ ई०), राष्ट्रकूट (७५० ई०-९७५ ई०), उत्तर चालुक्य (९७५ ई०-११८९ ई०), यादव (११८७ ई०-१२९४) आदि वंशों के राजाओं ने यहाँ राज्य किया।

पुष्टि में कोई सीधा प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पुराणों को छोड़ कर इस देश का कोई प्राचीन इतिहास भी प्राप्त नहीं है। हो सकता है कि ये पुराण ऐतिहासिक तथ्यों पर लिखे गए हों। किन्तु इनमें काल्पनिक कथाओं का इतना मिश्रण है कि अनुसंधान द्वारा भी तथ्य का पता लगाना कठिन है।[1]

लक्षण—कोंकण महाराष्ट्र का वह भाग है जो पश्चिमी घाट[2] (सह्याद्रि पर्वत श्रेणी) और समुद्र के बीच में है। इसका विस्तार समुद्रतट पर सदाशिवगढ़ से ताप्ती तक है। यद्यपि सह्याद्रि पर्वतों की श्रृङ्खला के बहुत ही नीचे पश्चिमी समुद्र-तट के समानान्तर यह फैला हुआ है, तथापि यह भूप्रदेश समतल नहीं है। इसके विपरीत, यह अधिकांश भागों में विशिष्ट रूप से ऊबड़-खाबड़ और कटा हुआ है। इसमें कहीं-कहीं विशाल पर्वत और घने जंगल, अनेक नदियाँ और अगणित क्षुद्र सरिताएँ हैं। ये नदियाँ चट्टानयुक्त और निर्मल हैं। किन्तु समुद्र-तट के समतल भूमि पर आने

---

[1] एक पुराण के अनुसार जब परशुराम क्षत्रियों और अत्याचारी राजाओं का उन्मूलन कर चुके ब्राह्मणों ने उनका अपने बीच में रहना उचित न समझा। अतः परशुराम ने दक्खिन में पश्चिमी समुद्रतट पर पहुँच कर समुद्र से रहने के लिए जगह माँगी। समुद्र के अस्वीकार करने पर परशुराम ने सह्याद्रि से एक बाण छोड़ा जिससे भयभीत होकर समुद्र उतनी दूर पीछे हट गया जितनी दूर बाण गिरा था। यह विस्तृत प्रदेश अब कोंकण मलाबार नाम से विख्यात है। इस भूभाग में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और हिन्दू भूगोल-वेत्ता इसे इन सात भागों में विभाजित करते हैं: १. केरल; २. तुलव; ३. गोआराष्ट्र; ४. कोंकण या कम्पन; ५. करार; ६. वरार और ७. बरबर। ऐसा अनुमान है कि इनका विस्तार पनिअनी नदी से क्रमशः डिल्ली, दर्या, भादरगढ़, शिवदासगढ़ या अन्तरीप रामस, देवगढ़ बानकोट, बसई और ताप्ती नदी तक है। प्रथम तीन द्राविड़ और कार्णाटक से संलग्न किए जाते हैं और अब अन्तिम चार को बिना विवेक के वहाँ के निवासी निचले कोंकण या घाटों के नीचे के कोंकण (थल-कोंकण) में सम्मिलित करते हैं। इस ग्रन्थ में मात्र कोंकण शब्द उस प्रदेश के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका विस्तार समुद्र से उस रेखा तक है जहाँ पर सह्याद्रि श्रेणी निचले प्रदेश में प्रवेश करती है। कोंकण-घाट-माथा सह्याद्रि की चोटी या पठार के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

[2] घाट का शाब्दिक अर्थ है दरार। किन्तु सामान्य अर्थ में इसका अर्थ है पहाड़ियों के किसी श्रेणी पर का रास्ता। कभी कभी यह शब्द पहाड़ियों के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। सह्याद्रि घाट के नाम से अभिहित किया जाता है।

पर ये समुद्र की लहरों के कारण बहुत ही गहरी और कीचड़ युक्त हो गई हैं। यहाँ के मार्ग सामान्यतया पथरीली पगडंडियाँ हैं और सह्याद्रि पर्वतों के पास आते-आते ये मार्ग और भी अधिक दुर्गम हो जाते हैं। इन पर्वतों पर चढ़ने के लिए केवल तंग रास्ते और सकरी पगडंडियाँ हैं। कहीं-कहीं इनमें इतनी ढाल है कि घोड़े की लगाम पकड़ कर ले जाने में एक घोड़ा भी कठिनता से अपना पैर जमाये रख सकता है। इन घाटों की चोटियों पर, विशेष कर पूना के दक्षिण ओर की चोटियों पर पहुँचने पर चारों ओर बड़ा ही मनोरम दृश्य सामने आता है। तीन या चार हजार फुट ऊँचे पहाड़ों के अनुक्रम हैं जो वृक्षों से आच्छादित रहते हैं। किन्तु कहीं-कहीं पर विशाल, काली, अनुर्वर चट्टानें इतनी ठोस हैं कि अत्यन्त टिकाऊ लताएँ भी उनके छिद्रों में जड़ नहीं जमा पातीं। पूना के दक्षिण ओर के घाटों पर सदा बहार हरियाली रहती है। किन्तु वर्षा ऋतु में, विशेषकर इसके अन्तिम दिनों में जब इन पहाड़ों के ढालों से धारायें बहती हैं, हरियाली की अत्यन्त प्रचुरता के कारण इनका सौंदर्य बहुत बढ़ जाता है और छितरे हुए मेघ समूहों से होकर आती हुई सूर्य-रश्मियाँ जिन पहाड़ियों पर पड़ती हैं, वहाँ एक हजार क्षणस्थायी रङ्ग दृष्टिगोचर होते हैं। दक्षिण-पश्चिम मान-सून के आरम्भ और अंत में वज्रनिर्घोषयुक्त आँधियाँ और झंझावात बारम्बार आते हैं। इस प्रदेश में ये भीषण प्राकृतिक घटनाएँ दसगुना भयंकर और उदात्त होती हैं।

सामान्यतया कोंकण ऊबड़-खाबड़ है किन्तु इसके कुछ भाग अत्यन्त उपजाऊ हैं। समुद्र से सह्याद्रि पर्वत की चोटी तक इसकी चौड़ाई पचीस से पचास मील तक है। इसका पठारी भाग, जो अनेक स्थानों पर बहुत ही विस्तृत है, कोंकण-घाट-माथा कहलाता है और यह थल-कोंकण से पृथक है जो पश्चिम घाट के नीचे पड़ता है। कोंकण के सामने का पर्वत भाग सब से ऊँचा है और इसकी चोटी पठार से साधारण-तया एक हजार से दो हजार फुट तक ऊँची है। कोंकण-घाट-माथा लगभग २० या २५ मील चौड़ा है। इसमें पहाड़ियों की छोटी-छोटी शाखाओं के बीच की घाटियाँ तथा ऊपरी या पूर्वी ओर का सम्पूर्ण पहाड़ी प्रदेश सम्मिलित है। संक्षेप में, जिस बिंदु पर पर्वत की ये शाखायें पूरब की ओर मैदान में समाप्त होती हैं उस बिन्दु से कोंकण के सामने के पहाड़ की चोटी तक के प्रदेश को मराठे कोंकण-घाट-माथा मानते हैं।

कोंकण-घाट-माथा जुन्नर से कोल्हापुर तक, खोराओं, मूराओं और मावलों में बँटा है। यहाँ के निवासी पटारी भागों एवं घाटियों, दोनों को इन्हीं नामों से पुकारते हैं। यह पूरा प्रदेश घना बसा हुआ है और इन घाटियों में अच्छी खेतीबारी होती है। यहाँ के निवासी सीधे-सादे, शान्त आचरण और दृढ़ शरीर के और कष्टसहिष्णु होते

हैं। शिवाजी के विख्यात मावलों के रूप में,[1] जैसा कि हम आगे देखेंगे, ये सक्रिय और साहसिक उद्योग में लगाए गए। जुन्नर के उत्तर की घाटियाँ अच्छी तरह जोती-बोई नहीं जातीं और यहाँ के अधिकांश निवासी भील[2] और कोल[3] हैं। ये लुटेरी जाति के हैं और अपनी स्वच्छन्द स्थिति में शिकार और लूट से निर्वाह करते हैं। मावल और खोरा, वास्तव में घाट-माथा का सम्पूर्ण प्रदेश, बहुत ही भयंकर और विनाशकारी राजव्याघ्र तथा अन्य जँगली जानवरों से भरा है।

---

[1] (पूना जिले के पश्चिम भाग में, सह्याद्रि के ऊपर ९० मील लम्बी और १२ से लेकर २४ मील तक चौड़ी भूमि का एक प्रदेश है। उसका नाम 'मावल' अर्थात सूर्यास्त का देश या पश्चिम है। यह प्रान्त बहुत ऊँचा-नीचा है। वह खड़े ढालू और ऊँचे टीलों से भरा है। उसके नीचे टेढ़ी-मेढ़ी और गहरी तराई फैली हुई है। इस नीचे की समतल भूमि पर छोटे-बड़े अनेक पहाड़ एक दूसरे पर सिर उठाये खड़े हैं। उनके ऊँचे-ऊँचे स्थानों पर कसौटी पत्थर की अनेक बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। यह प्रदेश जगह-जगह पर पहाड़ों और जँगलों से घिरा है। वृक्षों के नीचे घनी झाड़ियाँ, लताएँ और पेड़-पौधे हैं, जो चलने वालों का रास्ता रोकते हैं।

मावल के मराठों के शरीर में कुछ पहाड़ी जाति का रक्त मिला हुआ है। ये देखने में दुबले-पतले और काले परन्तु भीतर से बड़े गठीले और फुर्तीले होते हैं। इस देश की हवा सूखी और हलकी है, और दक्षिण के अन्य स्थानों की अपेक्षा यह स्थान कम गरम है। मावल की जल-वायु शरीर के बल को बढ़ाती है। इस पर्वतमय देश को उत्तर (बागलान) में 'डांग', बीच में अर्थात् ठेठ महाराष्ट्र (नासिक, पूना और सातारा जनपदों) में 'मावल', और दक्षिण अर्थात् कार्णाटक में 'मल्लाड़' कहते हैं।—सरकार : शिवाजी, पृ० १८)

[2] अनादि काल से पहाड़ी आदिवासी भील आबू और असीरगढ़ के बीच के पहाड़ी प्रदेश, गुजरात के कुछ भागों एवं दक्खिन के उत्तरी भागों में बसे हुए हैं। ये नाटे, काले, चौड़ी नाक वाले, और भद्दे किन्तु क्रियाशील और गठित शरीर के होते हैं और व्याघ्रदेव और भूतों की पूजा करते हैं।

[3] कोली नाम की अनेक आदिवासी जातियाँ हैं जिनकी अलग-अलग विशेषताएँ हैं। कोंकण और दक्खिन की मराठा बोलने वाली कोली जातियों की चार सगोत्र-विवाही श्रेणियाँ हैं। उनमें से महादेव-कोली जिनका केन्द्र पूना जनपद में जुन्नार था अपनी दुर्धर्षता और कलह-प्रियता के लिए कुख्यात थे। सम्भवतः ग्रान्ट डफ ने इन्हीं कोलियों की चर्चा की है। (मावल प्रदेश के उत्तर की ओर कोली नामक एक पुरानी असभ्य डाकुओं की जाति रहती थी।—सरकार)

कोंकण-घाट-माथा

सह्याद्रि की पर्वत श्रेणियों की तथा इनकी शाखाओं की चोटियाँ प्रायः विशाल, स्थूलाकार ज्वालामुखी चट्टानों से बनी हुई हैं। थोड़े ही कौशल से ये किले के रूप में परिणत हो सकती हैं। वहाँ तक पहुँचने की अत्यन्त कठिनाई होने के अतिरिक्त वे प्रायः स्वयं ही अजेय मालूम होती हैं। उनमें से बहुतों में अत्यन्त मीठे जल-स्रोत हैं और मई से अक्टूबर तक की नियमित वर्षा ऋतु में सभी में तालाब और जलाशय भरे जा सकते हैं। इन चार महीनों में घाट-माथा में सैनिक कार्रवाई करना प्रायः असम्भव सा है। ढालदार, ऊबड़-खाबड़ चट्टानी पहाड़ियों पर तथा गहरे चक्करदार घाटियों पर जो पहाड़ों की तरह स्वयं भी ऊँचे वृक्षों से ढकी रहती हैं या दुर्भेद्य गुल्मों से भरी होती हैं, प्रायः निरन्तर वर्षा होती रहती है। वर्षा होने पर यहाँ की अधिकांश छोटी नदियों में बाढ़ आ जाती है और ये अगम्य हो जाती हैं। यहाँ के बनों में एक प्रकार की शीतयुक्त नमी होती है जो उन व्यक्तियों के लिए जो इसके अभ्यस्त नहीं हैं, अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। संक्षेप में, सैनिक दृष्टि से सम्भवतः संसार में इसकी बराबरी का कोई दूसरा दृढ़ देश नहीं है।

घाट-माथा के बाद खुला मैदान या देश है जो सामान्यतया पूर्व की ओर अधिकाधिक समतल है। सह्याद्रि पर्वतों की साधारण शाखाओं के बहुत आगे, पश्चिम और पूर्व की ओर दौड़ती हुई पहाड़ियों की चार बड़ी श्रेणियाँ हैं। (१) महाराष्ट्र की उत्तरी सीमा या सातपुड़ा के सिलसिले में राहुड़ा से लेकर बरार के मध्य तक चान्दोर श्रेणी है, (२) जुन्नर से भीर तक अहमदनगर पहाड़ियाँ हैं। (३) पूना के दक्षिण ओर पहाड़ियाँ हैं और (४) सातारा के उत्तर में महादेव पर्वत हैं।[1]

जलवायु—महाराष्ट्र पहाड़ी देश है। इसकी घाटियाँ सुसिंचित हैं और इसकी जलवायु सम्भवतः भारत भर में सर्वाधिक स्वास्थ्यकर है किन्तु खेती-बाड़ी, मिट्टी और उपज में यह भारत के अन्य उपजाऊ प्रदेशों की समता नहीं कर सकता।

नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी, भीमा और कृष्णा यहाँ की मुख्य नदियाँ हैं। इन नदियों के किनारे कुछ दूर तक की मिट्टी साधारणतया उत्कृष्ट है और यहाँ के उपज की समृद्धि और प्रचुरता की बराबरी नहीं की जा सकती। गोदावरी (मराठे इसे गंगा कहते हैं), भीमा और इसकी सहायक नदियाँ, नीरा और मान के तट घोड़ों[2]

---

[1] चान्दोर के किले की ऊँचाई ३९९४ फीट है। महादेव पर्वत श्रेणी की सर्वोच्च शिखर कलसू बाई समुद्रतल से ५२४७ फीट ऊँची है।

[2] गंग-थडी, भीम-थडी, नीर-थडी और मानदेश के टट्टू नाटे, दृढ़, और थोड़ा भोजन पाने पर भी परिश्रमशील होते हैं। थडी का अर्थ है किसी नदी के समीप की उपत्यका।

की नस्ल के लिए विख्यात हैं। विशेषकर नीरा और मान के तटों के घोड़े छोटे होने पर भी दक्षिण के घोड़ों में सर्वोत्तम और सर्वाधिक पुष्ट होते हैं।

जनता—इस प्रदेश की अधिकांश जनसंख्या हिन्दुओं की है जो शास्त्रों के अनुसार चार वर्णों में विभाजित हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये चारों वर्ण नाम मात्र के लिए परिरक्षित किन्तु भ्रष्ट, लुप्त और बहुत ही अधिक उप-विभाजित है। ब्राह्मण[1] पुरोहिती करते हैं। इनका जीवन भगवान की पूजा और ध्यान में तथा आचरण और उपदेश द्वारा व्यावहारिक शिक्षा देने में लगा रहना चाहिए जिससे कि मनुष्य देवताओं का अनुग्रह प्राप्त कर पुनर्जन्म होने पर और अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त करें। उनको सांसारिक बातों में हाथ न डालना चाहिए। किन्तु वे बहुत दिनों से सब हिन्दू राज्यों में मुख्य नागरिक और सैनिक अधिकारी होते आए हैं। वे ब्राह्मण जो कठोरता से अपने धर्म के सिद्धान्तों का अनुगमन करते हैं और धर्मशास्त्रों के ध्यान में अपना जीवन लगाते हैं, बड़ी श्रद्धा से देखे जाते हैं। अन्यथा मराठा प्रदेश में ब्राह्मण पात्र के प्रति श्रद्धा नहीं है।

मराठा ब्राह्मण दो भागों में विभाजित हैं : कोंकणस्थ[2] (घाट के नीचे के

---

[1] भारत में ब्राह्मणों की दो सामान्य शाखाएँ, पंचगौड़ और पंचद्राविड़ हैं। इन दोनों ही की पाँच-पाँच उप-शाखाएँ हैं। पंचगौड़ नर्मदा के उत्तर, आर्यावर्त में बसते हैं और पंचद्राविड़ गुर्जर (गुजरात) में, तथा नर्मदा, और विन्ध्य और सातपुड़ा पर्वतों के दक्षिण में निवास करते हैं। इनके नाम ये हैं : १. महाराष्ट्र, २. आंध्र या तेलङ्ग, ३. द्राविड़ ४. कार्णाट, और ५. गुर्जर (गुजरात)। 'कार्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्जरा राष्ट्रवासिनः। आन्ध्राश्च द्राविड़ाः पञ्च विन्ध्यदक्षिण-वासिनः।' (स्कन्द पुराण)

[2] सह्याद्रि खण्ड नामक एक संस्कृत पुस्तक के अनुसार जब विष्णु के अवतार परशुराम ने समुद्र को कोंकण या परशुराम क्षेत्र छोड़ने को विवश किया तो उनको वहाँ विभिन्न वर्ण के चौदह शव मिले जिनको उन्होंने पुनर्जीवित कर अपने नए प्रदेश में बसाया। इन चौदह परिवारों से कोंकणी ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई जिनके इस समय साठ कुल-नाम हैं। देशस्थ ब्राह्मण अपने नाम में कुल-नाम जोड़ने की अपेक्षा अपने पिता का नाम या अपने निवास स्थान का नाम जोड़ना पसंद करते हैं। कोंकणस्थ ब्राह्मण सह्याद्रि खण्ड की सब प्रतियों को सावधानीपूर्वक नष्ट कर देते हैं।

बाला जी विश्वनाथ के पेशवा होने के पूर्व कोंकणस्थ ब्राह्मण कारकुन या

प्रदेश में रहने वाले) और देशस्थ (जो ऊपर के प्रदेश में रहते हैं) । इनके अतिरिक्त मराठा प्रदेश में ब्राह्मणों के आठ वर्ग[1] हैं । उनके कुछ रीति-रिवाज एक दूसरे से पृथक हैं । जो लोग उनको देखने के अभ्यस्त हैं उन्हें उनके लक्षण और रूप दोनों ही में प्रत्यक्ष भिन्नता दिखाई देती है ।

हिन्दुओं के चार मूल वर्णों में एक वर्ण क्षत्रिय है । शुद्ध क्षत्रिय लोप माने जाते हैं । किन्तु राजपूत[2] सबसे कम भ्रष्ट हैं । तीसरा वर्ण वैश्य[3] है । अन्तिम वर्ण

कारभारी का काम नहीं करते थे बल्कि हरकारा और गुप्तचर का । ये ब्राह्मण चितपावन अर्थात् 'पुनर्जीवित किए गए शव' कहे जाते हैं । किन्तु कोंकणस्थों के अनुसार चितपावन शब्द का मूल रूप चितपोहले था । जिसका अर्थ है 'हृदय को विदीर्ण करना' । इस शब्द को उन्होंने परशुराम की प्रार्थना में प्रयोग किया था क्योंकि परशुराम ने उनके आवेदनों की सुनवाई नहीं की थी । यह पद अनुचित तथा कर्त्तव्यभ्रष्टता का परिचायक समझा जाने पर चितपावन (पवित्र चित्त) में परिवर्त्तित किया गया जिसका वे अर्थ लगाते हैं 'पापमुक्त' ।

सब ब्राह्मणों में जिनको मैं जानता हूँ कोंकणस्थ सर्वाधिक विचक्षण और मनस्वी हैं ।

[1] कोटि के अनुसार उनके नाम ये हैं : १. करहाद, २. यजुर्वेदी या माध्यांदिन, ३. कण्व, ४. देवरूखे, ५. कोर्वत या क्रामवन्त, ६. शेनवी या गौड़ सारस्वत, ७. तीरगुल (पतित हैं और अब पान की खेती करते हैं), और ८. सव्वशे (जो निम्नजाति की स्त्रियों से विवाह करने के कारण पतित हो गये हैं) । पूर्ण विवरण के लिए विल्सन कृत इण्डियन कास्ट, जिल्द २, पृ० २१ देखिए ।

[2] राजपुत्र क्षत्रिय राजाओं की दूसरे जातियों की स्त्रियों से सन्तान हैं । ऐसा कहा जाता है कि कलियुग के लगभग दो हजारवें वर्ष में इनकी उत्पत्ति हुई । विन्सन्ट स्मिथ के अनुसार राजपूत किसी एक मूलवंश के नहीं हैं बल्कि युद्धप्रिय जनजाति, गोत्र (कुल) और अन्य वर्णों के समूह हैं जिनमें पाँचवीं और छठी शतियों में भारत में आए हुए विदेशी और अनेक देशी-जनजातियाँ सम्मिलित हैं । - आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव इण्डिया, पृष्ठ १७२—३

[3] कहा जाता है कि वास्तविक वैश्य लोप हैं । उनका स्थान बनियों ने लिया है । बनियों की कोई भी उपशाखाएँ वास्तविक वैश्य नहीं हैं । तेलंगाना के कोमती सब से कम भ्रष्ट हैं । अन्य बनियों के अतिरिक्त मराठा देश में लिङ्गायत, गूजर और जैन हैं । लिङ्गायत अपने को बनिया कहते हैं किन्तु जैनियों की तरह यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है इनके तीन वर्ग हैं । लिङ्ग धारण करने के कारण उनका नाम लिङ्गायत

शूद्र है जो मुख्य रूप से कृषक है और कुनबी[1] कहा जाता है।

इन चार वर्णों के अतिरिक्त, विशाल हिन्दू समुदाय में इन चार वर्णों की वर्णशंकर सन्तानें तथा उनकी आपस की वर्णशंकर सन्तानें हैं। इन वर्णशंकरों के अपने ही समुदाय, श्रेणियाँ, व्यवसाय और विशेष धंधे हैं। इनकी संख्या अगणित है। सब शिल्पी और कारीगर इसी अवैध वंश के हैं। महाराष्ट्र में इनकी गिनती शंकरजाति[2] में की जाती है।

धर्म—सभी वर्णों और जातियों में भक्त होते हैं जो संसार को त्याग कर एक धार्मिक रूप ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ भक्त अधिक लाभ के लिए त्याग करते हैं और कुछ भक्त आदर्श आचरण के होते हैं और सांसारिक वस्तुओं से विमुख होकर अपने अहम् और कीर्ति को अपने वश में कर लेते हैं। ऐसा मनुष्य साधु कहलाता है, वह चाहे किसी भी जाति, लिंग, धर्म, या विचारधारा का हो। उन साधु या सन्तों में जो महाराष्ट्र में विख्यात रहे हैं,[3] कबीर एक मुसलमान, तुकाराम एक

पड़ा। वे ब्राह्मण द्वारा पकाया हुआ भोजन नहीं करते और पुनर्जन्म नहीं मानते। गूजर किसी जाति विशेष का नाम नहीं है। उनके देश के नाम पर उनका गूजर (गुर्जर-) नाम पड़ा। जैन महाराष्ट्र में कम किन्तु कृष्णा के दक्षिण में अधिक हैं। अधिक विवरण के लिए बर्थ कृत रेलीजन्स आव इण्डिया, पृष्ठ २०८ देखिए।

[1] (समस्त दक्खिनी कुनबी कृषक हैं। वे गठीले शरीर के, स्थिर, परिश्रमी, दृढ़, सहिष्णु, शान्त, मृदु स्वभाव के, नियम पालन करने वाले, असाधारण रूप से अपराधों से दूर रहने वाले, और देवताओं के प्रति अति श्रद्धावान होते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी घूँघट करने वाली, मराठा स्त्रियों से अधिक दृढ़ और परिश्रमी होती हैं। मराठे और कुनबी शिवाजी की सेना की रीढ़ थे।—बम्बई गज़ेटियर से उद्धृत—सरकार : शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृष्ठ १२)

[2] शंकर जाति के समस्त वर्ग हिन्दू नियमों का पालन करते हैं और हर एक वर्ग का एक नैतिक और धार्मिक शासन होता है जिसके अध्यक्ष या मुखिया मुकद्दम, चौधरी आदि नाम से अभिहित किए जाते हैं।

[3] (जिस तरह सोलहवीं शती के यूरोप में सुधारवादी धार्मिक आन्दोलन चला था उसी प्रकार पन्द्रहवीं और सोलहवीं शतियों के भारत में और विशेष रूप से दक्खिन में धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक पुनरुद्धार और सुधार हुए थे। इस धार्मिक पुनरुद्धार में ब्राह्मण-कट्टरपन नहीं था। जन्म पर आधारित वर्ण-भेद तथा कर्मकाण्डी नियमों और अनुष्ठानों के प्रति असहमत होते हुए भी इस आन्दोलन में कट्टरपन नहीं था। यह आन्दोलन नैतिक था। उपार्जित पुण्यों और सत्कर्मों

बनिया, कान्हू पात्र एक नर्तकी और चोखा मेला एक महार या धेड़ (अछूत) था। ब्राह्मण भक्त तीन प्रकार के होते हैं, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, और संन्यासी। यद्यपि बनियों में भी अनेक भक्त हैं किन्तु दूसरी जातियों की अपेक्षा इनमें इसकी ओर कम झुकाव होता है। किन्तु राजपूत तथा शूद्रों की सब जातियाँ, गोसाईं[1] या वैरागी हो सकती हैं। जब ब्राह्मण गोसाईं या वैरागी हो जाता है तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाता। फिर भी शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु सुविख्यात महापुरुष एवं ब्रह्मचारी रामदास स्वामी के अनुयायी और शिष्य गोसाईं कहे जाते हैं। कथा कहने वाले ब्राह्मण भी हरदास गोसाईं कहे जाते हैं। किन्तु ऐसे मामलों में केवल नाम मात्र का भेद है।

गोसाईं शैव होते हैं और वैरागी वैष्णव। मराठा प्रदेश में वैरागियों की अपेक्षा गोसाइयों की संख्या कहीं अधिक है। उनके वस्त्र नारङ्गी रङ्ग के होते हैं। यह रङ्ग महादेव का प्रतीक है। अधिकांश गोसाईं अपने आश्रम के नियमों का पालन नहीं करते। इसलिए सब हिन्दू उनकी निन्दा करते हैं। वे व्यापार करते हैं, सेना में भर्ती होते हैं, उनमें से कुछ विवाह करते हैं और बहुतों के पास रखैलें हैं। जो गोसाईं कपड़े नहीं पहनते, वे शैव समझे जाते हैं। किन्तु वे गोसाईं सब से पवित्र समझे जाते हैं जो दाढ़ी नहीं बनवाते, बाल या नाखून नहीं कटवाते या जिन्होंने अपने शिरों या अंगों को किसी विशेष स्थिति में रखने की प्रतिज्ञा की है। इनमें से कुछ वैरागी

की तुलना में प्रेम और शुद्ध हृदय पर इसका अधिक विश्वास था। इस धार्मिक पुनरुद्धार में कोई विशेष वर्णों का नहीं, बल्कि समस्त जनता का, जन समूह का हाथ था। इसके प्रवर्तक वे सन्त और सिद्धपुरुष, कवि और ज्ञानी थे जो ब्राह्मणों की अपेक्षा, अधिकांश में और विशेष रूप से, समाज के निम्न श्रेणी से आए थे जैसे, दर्जी, बढ़ई, कुम्हार, माली, दुकानदार, नाई और यहाँ तक कि महार (भंगी)। महाराष्ट्र की जनता अब भी तुकाराम (१५६८ ई०) रामदास (१६०८ ई०), वामन पण्डित (१६३६ ई०) और एकनाथ (१५२८ ई०) के नामों से प्रभावित है। (रानाडे : राइज़ आव द मराठा पावर, पृष्ठ १०)

'यह जागृति पूरे जनसमूह में थी। जनता भाषा, जाति, धर्म एवं साहित्य द्वारा एकता के सूत्र में दृढ़ता से बँधी हुई थी तथा सामान्य, स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन द्वारा और भी अधिक ठोस एकता स्थापित करने में प्रयत्नशील थी' (रानाडे : राइज़ आव द मराठा पावर, पृष्ठ ६)

[1] (गोसाईं शब्द गोस्वामी (इन्द्रियों का स्वामी; गृहस्थ शैव साधुओं का एक सम्प्रदाय) का अपभ्रंश है। वल्लभ-कुल, निंबार्क-सम्प्रदाय और मध्व-सम्प्रदाय के भी आचार्यों की पदवी गोस्वामी है।)

शूद्र है जो मुख्य रूप से कृषक है और कुनबी[1] कहा जाता है।

इन चार वर्णों के अतिरिक्त, विशाल हिन्दू समुदाय में इन चार वर्णों की वर्णशंकर सन्तानें तथा उनकी आपस की वर्णशंकर सन्तानें हैं। इन वर्णशंकरों के अपने ही समुदाय, श्रेणियाँ, व्यवसाय और विशेष धंधे हैं। इनकी संख्या अगणित है। सब शिल्पी और कारीगर इसी अवैध वंश के हैं। महाराष्ट्र में इनकी गिनती शंकरजाति[2] में की जाती है।

धर्म—सभी वर्णों और जातियों में भक्त होते हैं जो संसार को त्याग कर एक धार्मिक रूप ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ भक्त अधिक लाभ के लिए त्याग करते हैं और कुछ भक्त आदर्श आचरण के होते हैं और सांसारिक वस्तुओं से विमुख होकर अपने अहम् और कीर्ति को अपने वश में कर लेते हैं। ऐसा मनुष्य साधु कहलाता है, वह चाहे किसी भी जाति, लिंग, धर्म, या विचारधारा का हो। उन साधु या सन्तों में जो महाराष्ट्र में विख्यात रहे हैं,[3] कबीर एक मुसलमान, तुकाराम एक

पड़ा। वे ब्राह्मण द्वारा पकाया हुआ भोजन नहीं करते और पुनर्जन्म नहीं मानते। गूजर किसी जाति विशेष का नाम नहीं है। उनके देश के नाम पर उनका गूजर- (गुर्जर-) नाम पड़ा। जैन महाराष्ट्र में कम किन्तु कृष्णा के दक्षिण में अधिक हैं। अधिक विवरण के लिए बर्थ कृत रेलीजन्स आव इण्डिया, पृष्ठ २०८ देखिए।

[1] (समस्त दक्खिनी कुनबी कृषक हैं। वे गठीले शरीर के, स्थिर, परिश्रमी, दृढ़, सहिष्णु, शान्त, मृदु स्वभाव के, नियम पालन करने वाले, असाधारण रूप से अपराधों से दूर रहने वाले, और देवताओं के प्रति अति श्रद्धावान होते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी घूँघट करने वाली, मराठा स्त्रियों से अधिक दृढ़ और परिश्रमी होती हैं। मराठे और कुनबी शिवाजी की सेना की रीढ़ थे।—बम्बई गज़ेटियर से उद्धृत—सरकार : शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृष्ठ १२)

[2] शंकर जाति के समस्त वर्ग हिन्दू नियमों का पालन करते हैं और हर एक वर्ग का एक नैतिक और धार्मिक शासन होता है जिसके अध्यक्ष या मुखिया मुकद्दम, चौधरी आदि नाम से अभिहित किए जाते हैं।

[3] (जिस तरह सोलहवीं शती के यूरोप में सुधारवादी धार्मिक आन्दोलन चला था उसी प्रकार पन्द्रहवीं और सोलहवीं शतियों के भारत में और विशेष रूप से दक्खिन में धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक पुनरुद्धार और सुधार हुए थे। इस धार्मिक पुनरुद्धार में ब्राह्मण-कट्टरपन नहीं था। जन्म पर आधारित वर्ण-भेद तथा कर्मकाण्डी नियमों और अनुष्ठानों के प्रति असहमत होते हुए भी इस आन्दोलन में कट्टरपन नहीं था। यह आन्दोलन नैतिक था। उपार्जित पुण्यों और सत्कर्मों

बनिया, कान्हू पात्र एक नर्तकी और चोखा मेला एक महार या धेड़ (अछूत) था। ब्राह्मण भक्त तीन प्रकार के होते हैं, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, और संन्यासी। यद्यपि बनियों में भी अनेक भक्त हैं किन्तु दूसरी जातियों की अपेक्षा इनमें इसकी ओर कम झुकाव होता है। किन्तु राजपूत तथा शूद्रों की सब जातियाँ, गोसाईं [1] या वैरागी हो सकती हैं। जब ब्राह्मण गोसाईं या वैरागी हो जाता है तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाता। फिर भी शिवाजी के आध्यात्मिक गुरु सुविख्यात महापुरुष एवं ब्रह्मचारी रामदास स्वामी के अनुयायी और शिष्य गोसाईं कहे जाते हैं। कथा कहने वाले ब्राह्मण भी हरदास गोसाईं कहे जाते हैं। किन्तु ऐसे मामलों में केवल नाम मात्र का भेद है।

गोसाईं शैव होते हैं और वैरागी वैष्णव। मराठा प्रदेश में वैरागियों की अपेक्षा गोसाइयों की संख्या कहीं अधिक है। उनके वस्त्र नारङ्गी रङ्ग के होते हैं। यह रङ्ग महादेव का प्रतीक है। अधिकांश गोसाईं अपने आश्रम के नियमों का पालन नहीं करते। इसलिए सब हिन्दू उनकी निन्दा करते हैं। वे व्यापार करते हैं, सेना में भर्ती होते हैं, उनमें से कुछ विवाह करते हैं और बहुतों के पास रखैलें हैं। जो गोसाईं कपड़े नहीं पहनते, वे शैव समझे जाते हैं। किन्तु वे गोसाईं सब से पवित्र समझे जाते हैं जो दाढ़ी नहीं बनवाते, बाल या नाखून नहीं कटवाते या जिन्होंने अपने शिरों या अंगों को किसी विशेष स्थिति में रखने की प्रतिज्ञा की है। इनमें से कुछ वैरागी

की तुलना में प्रेम और शुद्ध हृदय पर इसका अधिक विश्वास था। इस धार्मिक पुनरुद्धार में कोई विशेष वर्गों का नहीं, बल्कि समस्त जनता का, जन समूह का हाथ था। इसके प्रवर्तक वे सन्त और सिद्धपुरुष, कवि और ज्ञानी थे जो ब्राह्मणों की अपेक्षा, अधिकांश में और विशेष रूप से, समाज के निम्न श्रेणी से आए थे जैसे, दर्जी, बढ़ई, कुम्हार, माली, दुकानदार, नाई और यहाँ तक कि महार (भंगी)। महाराष्ट्र की जनता अब भी तुकाराम (१५६८ ई०) रामदास (१६०८ ई०), वामन पण्डित (१६३६ ई०) और एकनाथ (१५२८ ई०) के नामों से प्रभावित है। (रानाडे : राइज़ आव द मराठा पावर, पृष्ठ १०)

'यह जागृति पूरे जनसमूह में थी। जनता भाषा, जाति, धर्म एवं साहित्य द्वारा एकता के सूत्र में दृढ़ता से बँधी हुई थी तथा सामान्य, स्वतन्त्र राजनीतिक जीवन द्वारा और भी अधिक ठोस एकता स्थापित करने में प्रयत्नशील थी' (रानाडे : राइज़ आव द मराठा पावर, पृष्ठ ६)

[1] (गोसाईं शब्द गोस्वामी (इन्द्रियों का स्वामी; गृहस्थ शैव साधुओं का एक सम्प्रदाय) का अपभ्रंश है। वल्लभ-कुल, निबार्क-सम्प्रदाय और मध्व-सम्प्रदाय के भी आचार्यों की पदवी गोस्वामी है।)

अत्यन्त गर्मी, ठंडक और स्वेच्छापूर्वक पीड़ा द्वारा तपस्यायें करते हैं जो बहुधा मानव शरीर के सहनशक्ति के बाहर की मानी जा सकती हैं।

ऐसे मनुष्य जो स्वेच्छापूर्वक तीव्र गर्मी और सर्दी सहन कर सकते हैं, सशस्त्र होने पर अत्यन्त भयानक होते हैं। कभी-कभी गोसाइयों की शाखाओं में आपस में मरणान्तक धार्मिक युद्ध हुए हैं। निर्बल और अव्यवस्थित शासन में गोसाइयों और वैरागियों दोनों ने निर्दोष जनता के शरीर और सम्पत्ति पर भयानक अत्याचार किए हैं किन्तु वैरागियों की अपेक्षा गोसाईं अधिक कुख्यात हैं। भीख माँगने के बहाने वे सशस्त्र दलों में चलते और कर उगाहते थे और बहुधा लूटमार, हत्याएँ और घोर अमानुषिक अत्याचार करते थे।

साधारणतया महाराष्ट्र में रहने वाले सभी निवासी मराठे कहलाते हैं किन्तु मराठा-ब्राह्मण अपने को अन्य मराठों से पृथक समझता है। सैनिक परिवार मराठे[1] कहलाते हैं यद्यपि कुनबी या कृषक वर्ग को भी यह नाम दिया जाता है।

मराठा प्रदेश में स्त्रियों का सत्कार है। वे अपने पतियों की साथिनी हैं, न कि दासी। वे निम्न स्थिति में नहीं हैं जैसा कि यात्रियों ने भारत के अन्य भागों के स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है या जैसा कि शास्त्रों के नियमों के अनुसार उनकी स्थिति होनी चाहिए। सरदारों और सैनिकों के घराने की स्त्रियाँ अच्छे घराने के मुसलमानों की स्त्रियों की तरह पर्दे में रहती हैं। यह अपमानजनक समझा जाता है कि दूसरे लोग विशेषकर जो अहिन्दू हैं उनको देखें। सम्भवतः यह प्रथा मुसलमानों व मुगलों की देखा-देखी अपनाई गई हो किन्तु वे कहते हैं कि यह राजपूतों की प्रथा है जिनके वे वंशज हैं। अपने पतियों के मरने पर मराठी-पत्नियाँ बहुधा सती हो जाती हैं किन्तु असहाय बच्चों के होने पर या किसी महत्त्वपूर्ण पारिवारिक काम-काज के कारण जिनमें कि उनकी देख-रेख आवश्यक है वे विरले ही जलने दी जाती हैं। ऐसी परिस्थिति में जब वे जीवित रहना स्वीकार कर लेती हैं तो उनका पर्दा अधिकांश मात्रा में कम हो जाता है, क्योंकि कामकाज निपटाने के लिए, किसी सभा में या युद्ध में भी उनको विवश होकर पुरुषों के समक्ष आना पड़ता है।

सब हिन्दू पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं उनके हास्यास्पद काल्पनिक पौराणिक विषमताओं का पक्ष ग्रहण करने या समाधान करने का यहाँ प्रयास नहीं किया जा रहा है और न यह समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि यहाँ के लोगों और भारत के अन्य भागों के लोगों के बीच विचार-भेद क्यों है। मराठों

---

[1] (महाराष्ट्र में 'मराठा' शब्द का अर्थ एक विशेष जाति है, समग्र महाराष्ट्र-वासी नहीं)—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ ७)

का विश्वास है कि ब्रह्म सारे विश्व में व्याप्त है और हर मानव की आत्मा उसी का एक अंश है। शुद्धात्मा पुनः ब्रह्म में लीन हो जाती है। यह सत्कार्य का अन्तिम फल है। अपने-अपने दुष्कर्म के अनुसार प्राणी पुनर्मिलन की अवस्था से अनुपाततः दूर की स्थिति में जन्म लेते हैं। ब्राह्मण के शरीर की आत्मा इस ब्रह्म स्थिति के अत्यन्त समीप होती है यदि वह अपने धर्म का विधि-पूर्वक पालन करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी आत्मा नरक भोगेगी जब तक कि उसका पाप क्षीण न हो जायगा। इसके पश्चात् वह कोई दूसरा शरीर धारण करेगी। सब मानव की आत्माओं को अन्तिम परख के लिए ब्राह्मण शरीर धारण करना पड़ता है। साधु के रूप में पूर्ण सात्विकता प्राप्त कर लेने पर मनुष्य तुरन्त ही शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करता है।

मराठों का विश्वास है कि ब्रह्म स्वयं कर्ता नहीं है। ब्रह्म से प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति हुई है। सावित्री, लक्ष्मी और पार्वती क्रमशः उनकी पत्नियाँ हैं। ब्रह्मा ने संसार की रचना की है। उसने मनुष्यों की सृष्टि की है और स्वयं भी अवतार लिया है। वह देव तथा दैत्यों का पिता है। इन्द्र देवों का ईश है और बलि दैत्यों का। विष्णु और शिव तथा उनकी पत्नियों ने भी अवतार ग्रहण किए हैं और अपने जन्म लेने के उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु अनेक-अनेक रूप धारण किए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के अतिरिक्त तैंतीस करोड़ देव हैं।

भारतवर्ष में ब्रह्मा[1] का केवल एक मन्दिर अजमेर के समीप पुष्कर में है। विष्णु, महादेव और उनकी पत्नियाँ अपने विभिन्न-विभिन्न अवतारों के नामों से बहुसंख्यक मन्दिरों में पूजे जाते हैं। वहाँ उनकी मूर्त्तियाँ होती हैं। इन तीनों के असंख्य अवतार हुए हैं किन्तु महादेव के ग्यारह और विष्णु के दस अवतार मुख्य हैं। महादेव के अवतार विशेष रूप से दैत्यों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता करने के लिए हुए थे। विष्णु के अवतार बहुत ही विख्यात हैं। विष्णु ने राक्षसों और अत्याचारी राजाओं के विनाश तथा संसार की रक्षा के लिए भिन्न २ अवसरों पर अलग-अलग रूप ग्रहण किया जिनकी कथाएँ पुराणों, रामायण, महाभारत और भागवत में वर्णित हैं। बाद में इन्हीं कथाओं का मराठों ने भी अनुकरण किया और इन्हीं के आधार पर महाराष्ट्र में कथाएँ होती हैं जिनमें देवताओं के कृत्यों और तपस्याओं आदि आदि के वर्णन किए जाते हैं तथा सामयिक घटनाएँ भी सम्मिलित कर ली जाती हैं और उनके द्वारा उपदेश किया जाता है। महाराष्ट्र में सभी जाति और श्रेणी के लोगों में ये कथाएँ जनप्रिय हैं।

---

[1] **[इस समय भारतवर्ष में ब्रह्मा के कम से कम चार या पाँच मन्दिर हैं]**

किसी भी धर्म में इतने सम्प्रदाय नहीं हैं जितने हिन्दू धर्म में हैं। इस धर्म में शैव और वैष्णव दो बड़े दल हैं। महाराष्ट्र में बहुत दिनों तक शैव मत का बोल-बाला था।

बहुत से लोगों के अलग-अलग आराध्य देव होते हैं और प्रत्येक कुल में एक कुलस्वामी होता है। किसी भी कार्य को आरम्भ करने में महादेव के पूर्व गणपति की पूजा होती है तथा मरण समय राम का नाम लिया जाता है। आराध्य और कुल-स्वामी सभी साधारण कृत्यों के अवसर पर स्वास्थ्य, सुख या मनोकामना की पूर्ति के लिए पूजे जाते हैं। ब्राह्मणों में जो शिक्षक का कार्य करते हैं वे उपाध्याय या गुरु कहलाते हैं। उपाध्याय किसी परिवार का वंशागत शिक्षक होता है और गुरु किसी व्यक्ति का। बहुत से लोग विशेषकर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति किसी नामी व्यक्ति को अपना गुरु बनाते हैं। वह उनके और ईश्वर के बीच में मध्यस्थ का काम करता है और महापुरुष कहा जाता है। यह एक मार्के की बात है कि मराठों का महापुरुष कभी-कभी मुसलमान होता है।

भारत के सब निवासी यहाँ तक कि परम बुद्धिमान भी अत्यन्त अन्धविश्वासी हैं और ज्योतिष, शकुन, चमत्कार और भविष्यवाणियों में बहुत विश्वास रखते हैं। जादू, टोना और अलौकिक बातों में जनता का पूर्ण विश्वास है।

शिक्षा—मराठों में साधारण लिखना, पढ़ना और हिसाब के अतिरिक्त शिक्षा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित है जो संस्कृत का अध्ययन करते हैं जिसमें उनके धार्मिक ग्रन्थ लिखे हुए हैं। चार वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराण मुख्य धार्मिक ग्रन्थ हैं जिन पर असंख्य विवृत्तियाँ और टीकाएँ हैं। केवल थोड़े से ही मराठा ब्राह्मण संस्कृत जानते हैं। वर्तमान समय में उनकी हिन्दू शास्त्रों तक में भी अच्छी गति नहीं है।

हिन्दुओं के ज्ञान और सत्गुणों की बहुत ही अविवेकपूर्ण प्रशंसा हुई है किन्तु इन प्रशंसाओं की कलई खोलने में इससे अधिक विवेकहीनता दिखाई गई है। दोनों ही दशाएँ अन्यायपूर्ण हैं, और उन लोगों के लिए जो भारत में जन-सेवक के रूप में प्रवेश करते हैं निश्चय ही यह अधिक अच्छा होगा कि वे अननुकूल पक्ष की ओर ध्यान न दें। यदि हमारे देश के नवयुवक पूर्वाग्रह से पक्षपातरहित होकर भारत में जाँय और वहाँ की भाषा सीखें और वहाँ के मूलनिवासियों से सम्पर्क बढ़ावें, तो दीर्घकाल के सम्पर्क के बाद, उनके पास अनेक मधुर स्मृतियाँ और सदय भावनाएँ होंगी। उन्हें बहुधा भ्रष्टता, नीचता और हर प्रकार के पतित भावों से जुगुप्सा हो सकती है जिनका उन्हें निरीक्षण से तथा संसार के सभी भागों के मानव के व्यापक सम्पर्क से बारम्बार पता लगेगा। किन्तु वे शीघ्र ही देखेंगे कि इनमें से अधिकांश दोनों

का मूल अत्याचारी और भ्रष्ट शासन तथा अनैतिक प्रभाव डालने वाले विवेकहीन अन्धविश्वास हैं और वास्तव में यहाँ के निवासियों में अनेक सद्गुण और अतिशय नैतिकता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो प्रिय है उसका अधिकांश भारत निवासियों में देखा जा सकता है।

अब हम महाराष्ट्र निवासियों के सम्बन्ध की उन घटनाओं का विवरण देते हैं जो अब तक प्रकाश में आए हैं।

प्रारम्भिक इतिहास—जिस तरह प्रत्येक देश का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में है उसी तरह से महाराष्ट्र का भी, किन्तु मुसलमान-विजय के पहले दो या तीन बड़ी क्रान्तियों के चिह्न पाए जाते हैं। दन्त कथा के अनुसार वडशी महाराष्ट्र के आदि निवासी हैं। वे निम्न जाति के तथा देश के अशास्त्रीय गायकों में सबसे अच्छे गायक हैं। इसकी पुष्टि पुराणों से होती है जिनमें लिखा है कि कावेरी और गोदावरी के बीच का भाग दंडकारण्य कहलाता था। जब रावण के हाथ में सार्वभौमिक शक्ति थी तो उसने इस प्रदेश को बजन्त्रियों या गायकों को प्रदान किया था। तागर उस प्रदेश का मुख्य नगर था जिसकी सार्वभौमिकता का सर्वप्रथम प्रामाणिक विवरण उपलब्ध है। ईसा के ढाई सौ वर्ष पूर्व मिश्र देश के व्यापारी इस नगर में आते जाते थे। 'पेरिप्लस आव द इरीथ्रिअन सी' नामक पुस्तक के ग्रन्थकार ने जिसने इस पुस्तक को दूसरी शताब्दी के मध्य के लगभग लिखा था एक महत्त्वपूर्ण गंतव्य स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है। यूनानियों को भी यह स्थान अच्छी तरह विदित था। यह उनके व्यापारिक सामान के संभरण के लिये भांडार था। विद्वान हिन्दू इसके नाम से परिचित हैं किन्तु इसकी ठीक स्थिति का पता नहीं लगा है। सम्भवतः यह गोदावरी के तट पर भीर नामक आधुनिक नगर के उत्तर पूर्व से कुछ ही दूर पर स्थित था। यह एक राजपूत राजकुमार के शासन में था जिसका अधिकार बहुत दूर तक फैला हुआ था और जिसके अधीन कई राजा थे क्योंकि ऐसा उल्लेख है कि वह तागर के सरदारों का सरदार था। सम्भव है तागर के राजाओं की शक्ति का उद्भव उत्तर की ओर से की गई विजय से हुआ हो। प्रतीत होता है कि शालिवाहन[1] नामक एक निम्न जाति के व्यक्ति के नेतृत्व में देश में एक क्रान्ति

---

[1] [**ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र के वंशजों ने (ब्राह्मण शाखा) गोदावरी और कृष्णा के बीच के प्रदेश में बसने पर आर्येतर स्त्रियों से विवाह किया और इनकी सन्तान अन्ध्र कहलाई। महाराष्ट्र में आने पर अन्ध्र सातवाहन (शालिवाहन) नाम से प्रसिद्ध हुए। शालिवाहन एक राजनीतिक उपाधि है जिसका अर्थ है शालि (सिंह) है वाहन जिसका—(राजबली पाण्डे : प्राचीन**

किसी भी धर्म में इतने सम्प्रदाय नहीं हैं जितने हिन्दू धर्म में हैं। इस धर्म में शैव और वैष्णव दो बड़े दल हैं। महाराष्ट्र में बहुत दिनों तक शैव मत का बोल-बाला था।

बहुत से लोगों के अलग-अलग आराध्य देव होते हैं और प्रत्येक कुल में एक कुलस्वामी होता है। किसी भी कार्य को आरम्भ करने में महादेव के पूर्व गणपति की पूजा होती है तथा मरण समय राम का नाम लिया जाता है। आराध्य और कुल-स्वामी सभी साधारण कृत्यों के अवसर पर स्वास्थ्य, सुख या मनोकामना की पूर्ति के लिए पूजे जाते हैं। ब्राह्मणों में जो शिक्षक का कार्य करते हैं वे उपाध्याय या गुरु कहलाते हैं। उपाध्याय किसी परिवार का वंशागत शिक्षक होता है और गुरु किसी व्यक्ति का। बहुत से लोग विशेषकर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति किसी नामी व्यक्ति को अपना गुरु बनाते हैं। वह उनके और ईश्वर के बीच में मध्यस्थ का काम करता है और महापुरुष कहा जाता है। यह एक मार्के की बात है कि मराठों का महापुरुष कभी-कभी मुसलमान होता है।

भारत के सब निवासी यहाँ तक कि परम बुद्धिमान भी अत्यन्त अन्धविश्वासी हैं और ज्योतिष, शकुन, चमत्कार और भविष्यवाणियों में बहुत विश्वास रखते हैं। जादू, टोना और अलौकिक बातों में जनता का पूर्ण विश्वास है।

शिक्षा—मराठों में साधारण लिखना, पढ़ना और हिसाब के अतिरिक्त शिक्षा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित है जो संस्कृत का अध्ययन करते हैं जिसमें उनके धार्मिक ग्रन्थ लिखे हुए हैं। चार वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराण मुख्य धार्मिक ग्रन्थ हैं जिन पर असंख्य विवृत्तियाँ और टीकाएँ हैं। केवल थोड़े से ही मराठा ब्राह्मण संस्कृत जानते हैं। वर्तमान समय में उनकी हिन्दू शास्त्रों तक में भी अच्छी गति नहीं है।

हिन्दुओं के ज्ञान और सत्गुणों की बहुत ही अविवेकपूर्ण प्रशंसा हुई है किन्तु इन प्रशंसाओं की कलई खोलने में इससे अधिक विवेकहीनता दिखाई गई है। दोनों ही दशाएँ अन्यायपूर्ण हैं, और उन लोगों के लिए जो भारत में जन-सेवक के रूप में प्रवेश करते हैं निश्चय ही यह अधिक अच्छा होगा कि वे अननुकूल पक्ष की ओर ध्यान न दें। यदि हमारे देश के नवयुवक पूर्वाग्रह से पक्षपातरहित होकर भारत में जाँय और वहाँ की भाषा सीखें और वहाँ के मूलनिवासियों से सम्पर्क बढ़ावें, तो दीर्घकाल के सम्पर्क के बाद, उनके पास अनेक मधुर स्मृतियाँ और सदय भावनाएँ होंगी। उन्हें बहुधा भ्रष्टता, नीचता और हर प्रकार के पतित भावों से जुगुप्सा हो सकती है जिनका उन्हें निरीक्षण से तथा संसार के सभी भागों के मानव के व्यापक सम्पर्क से बारम्बार पता लगेगा। किन्तु वे शीघ्र ही देखेंगे कि इनमें से अधिकांश दोषों

का मूल अत्याचारी और भ्रष्ट शासन तथा अनैतिक प्रभाव डालने वाले विवेकहीन अन्धविश्वास हैं और वास्तव में यहाँ के निवासियों में अनेक सद्गुण और अतिशय नैतिकता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो प्रिय है उसका अधिकांश भारत निवासियों में देखा जा सकता है।

अब हम महाराष्ट्र निवासियों के सम्बन्ध की उन घटनाओं का विवरण देते हैं जो अब तक प्रकाश में आए हैं।

प्रारम्भिक इतिहास—जिस तरह प्रत्येक देश का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकार में है उसी तरह से महाराष्ट्र का भी, किन्तु मुसलमान-विजय के पहले दो या तीन बड़ी क्रान्तियों के चिह्न पाए जाते हैं। दन्त कथा के अनुसार वडशी महाराष्ट्र के आदि निवासी हैं। वे निम्न जाति के तथा देश के अशास्त्रीय गायकों में सबसे अच्छे गायक हैं। इसकी पुष्टि पुराणों से होती है जिनमें लिखा है कि कावेरी और गोदावरी के बीच का भाग दंडकारण्य कहलाता था। जब रावण के हाथ में सार्वभौमिक शक्ति थी तो उसने इस प्रदेश को बजन्त्रियों या गायकों को प्रदान किया था। तागर उस प्रदेश का मुख्य नगर था जिसकी सार्वभौमिकता का सर्वप्रथम प्रामाणिक विवरण उपलब्ध है। ईसा के ढाई सौ वर्ष पूर्व मिश्र देश के व्यापारी इस नगर में आते जाते थे। 'पेरिप्लस आव द इरीथ्रिअन सी' नामक पुस्तक के ग्रन्थकार ने जिसने इस पुस्तक को दूसरी शताब्दी के मध्य के लगभग लिखा था एक महत्त्वपूर्ण गंतव्य स्थान के रूप में इसका उल्लेख किया है। यूनानियों को भी यह स्थान अच्छी तरह विदित था। यह उनके व्यापारिक सामान के संभरण के लिये भांडार था। विद्वान हिन्दू इसके नाम से परिचित हैं किन्तु इसकी ठीक स्थिति का पता नहीं लगा है। सम्भवतः यह गोदावरी के तट पर भीर नामक आधुनिक नगर के उत्तर पूर्व से कुछ ही दूर पर स्थित था। यह एक राजपूत राजकुमार के शासन में था जिसका अधिकार बहुत दूर तक फैला हुआ था और जिसके अधीन कई राजा थे क्योंकि ऐसा उल्लेख है कि वह तागर के सरदारों का सरदार था। सम्भव है तागर के राजाओं की शक्ति का उद्भव उत्तर की ओर से की गई विजय से हुआ हो। प्रतीत होता है कि शालिवाहन[1] नामक एक निम्न जाति के व्यक्ति के नेतृत्व में देश में एक क्रान्ति

[1] [ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार विश्वामित्र के वंशजों ने (ब्राह्मण शाखा) गोदावरी और कृष्णा के बीच के प्रदेश में बसने पर आर्येतर स्त्रियों से विवाह किया और इनकी सन्तान अन्ध्र कहलाई। महाराष्ट्र में आने पर अन्ध्र सातवाहन (शालिवाहन) नाम से प्रसिद्ध हुए। शालिवाहन एक राजनीतिक उपाधि है जिसका अर्थ है शालि (सिंह) है वाहन जिसका—(राजबली पाण्डे : प्राचीन

हुई थी। उसके राज्यारोहण से शक सम्वत् चला जो ७७-७८ ईसवी से आरम्भ होता है। ऐसा अनुमान है कि शालिवाहन ने प्रतिष्ठान को अपने शासन की राजधानी बनाई। पेरीप्लस नामक पुस्तक में पैठन नाम से इसका उल्लेख है। मंगी पैठन नामक वर्तमान नगर जो गोदावरी-तट पर बसा है यही है। इस देश में प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर इस राजकुमार के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

शालिवाहन ने एक राजा के राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसकी राजधानी असीर थी। वह सूर्यवंश के सिसोदिया राजपूत घराने का वंशज था। उसके पूर्वज ने कोशल देश, आधुनिक अवध, से आकर नर्मदा के दक्षिण ओर एक राज्य की स्थापना की थी जो शालिवाहन द्वारा विजय किए जाने के पूर्व १६८० वर्ष तक वर्तमान रहा। शालिवाहन ने इस परिवार के सब व्यक्तियों को मार डाला। केवल एक महिला अपने गोद के एक बच्चे को लेकर भाग सकी। वह सातपुड़ा पर्वतों में शरण लेकर अपना निर्वाह करती रही। बाद को यही बालक चित्तौड़ के राणा के वंश का संस्थापक हुआ। चित्तौड़ के राणाओं से उदयपुर के राणाओं की उत्पत्ति हुई जो सर्वमान्य रूप से भारत का सबसे पुराना वंश माना जाता है। दन्तकथा के अनुसार यह दावा किया जाता है कि मराठा राष्ट्र के संस्थापक के पूर्वज जैसा कि अब तक हम लोगों को मालूम है इसी वंश के थे। इस दन्तकथा के अनुसार शालिवाहन और मालवा के राजा विक्रमाजीत से बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्त में उन्होंने एक सन्धि की जिसके अनुसार नर्मदा विक्रमाजीत और शालिवाहन के राज्य की सीमा हुई। उनके अपने २ देशों में काल-गणना उनके अपने २ राज्यारोहण के समय से होना निश्चित हुआ। विक्रमाजीत की काल-गणना शालिवाहन की काल-गणना से

भारत, पृ० १८३)। डॉ० भंडारकर सातवाहन कुल का प्रादुर्भाव ७२-७३ ई० पू०, और मत्स्य पुराण के आधार पर कुछ विद्वान ई० पू० तृतीय शताब्दी के प्रथम चरण में मानते हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख के अनुसार शालिवाहन २५६ ई० पू० मौर्य साम्राज्य का करद था। उस समय पश्चिमी देशों से भारत का व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था। भड़ौच, सोपारा, कल्याण तथा मलाबार के पत्तनों (बन्दरगाहों) द्वारा विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान विदेशों से होता था। दक्षिण में आन्तरिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र पैठन (प्रतिष्ठान) तथा तागर थे। सातवाहन राजाओं के समय में प्राकृत की विशेष उन्नति हुई। उनका राज्य दक्षिण में कई शताब्दियों तक फलता-फूलता रहा। इस वंश के राजाओं के संरक्षण में धर्म, साहित्य, संस्कृति, वाणिज्य-व्यापार आदि की पूर्ण-रूपेण वृद्धि हुई। नासिक, कार्ला, भाजा और कन्हेरी की चमत्कारी गुफाएँ इन्हीं की देन हैं।

५७ वर्ष पूर्व आरम्भ होती है और अब भी नर्मदा के उत्तर में प्रचलित है। शालिवाहन की काल-गणना दक्षिण में चलती है। मराठा हस्तलेखों में इन काल-गणनाओं को विक्रमाजीत और शालिवाहन के बीच हुई सन्धि का प्रमाण मानते हैं किन्तु यह कुछ असंगत सा है क्योंकि इन दोनों कालों में १३३ वर्षों का अन्तर है। ये काल स्वयं ही इस प्रमाण को काट देते हैं। यदि हम इस बात को न माने कि सार्वभौमिकता का पूर्व अधिकार विक्रमाजीत को है और यह काल-गणना उसके किसी पूर्वज के समय से की जाती है।

सम्भवतः महाराष्ट्र में अन्य अनेक क्रान्तियाँ हुई थीं। किन्तु यह नहीं मालूम है कि किस कारण और किस समय राजधानी पैठन से हटाकर देवगढ़, आधुनिक दौलताबाद ले जाई गई। कुछ हस्तलेख यादव रामदेव राव तक के राजाओं का एक क्रम अनुगमन करते हैं। तेरहवीं शती के अन्त में जब मुसलमान इस प्रदेश में आए उस समय यादव रामदेव राव राज्य कर रहा था। उस समय और इसके पूर्व जहाँ तक प्रामाणिक लेख प्राप्त हैं मराठा प्रदेश अनेक छोटे २ राज्यों में, जो स्वतन्त्र से थे, विभाजित था।

फिरिश्ता ने लिखा है कि जब दूसरी बार मलिक कफूर ने दक्षिण में अभियान किया तो गुजरात के सूबेदार अल्प खाँ ने उसकी सहायता की। उसका सामना किरण नामक एक राजा से हुआ। उसके विवरण में गोंडवाना एवं बागलान के राजाओं के नाम आते हैं। बम्बई के समीप थाना में एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण एक भूमि-दानपत्र प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि सालीसट द्वीप में या उसके समीप १०१८ में एक राजा राज्य करता था जिसने अपने को तागर के राजाओं का वंशज कहा है। इसी प्रकार का एक ताम्रपत्र सातारा में पाया गया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि ११९२ में पन्हाला में एक राजा था, जिसके पास काफी प्रदेश था।[1] इस देश की

---

[1] कहा जाता है कि उसने निम्नलिखित पन्द्रह किले बनवाए : १. पवनगढ़, २. पन्हाला, ३. भूधरगढ़, ४. बोवा, ५. केलना (विशालगढ़), ६. समनगढ़, ७. रंगना, ८. वसंतगढ़, ९. सातारा, १०. चंदन, ११. वंदन, १२. नन्दीगीर, १३. केंजिजा, १४. पाण्डुगढ़ और १५. विराटगढ़। सम्भवतः भूधरगढ़ को छोड़ कर, ये अब भी इसी नाम से विख्यात हैं। [यह राजा कोल्हापुर के शिलाहार वंश का अन्तिम राजा भोज द्वितीय (११७८-९३) था जिसने सातारा जनपद में बृहदाकार वासोत नामक किला बनवाया था (डफ कृत क्रॉनॉलॉजी आव इण्डिया पृ० ३०४)]

दन्तकथाओं के अनुसार उसका राज्य सातारा के उत्तर में महादेव श्रेणी के पर्वतों से लेकर कोल्हापुर के दक्षिण में हिरण्यकाशी नदी तक फैला था और इसमें सदाशिवगढ़ तक का पूरा दक्षिणी कोंकण सम्मिलित था।

यह राजा भी अपने को तागर राजाओं का वंशज मानता था। परम्परा के अनुसार उसके देश को सिंघन नामक एक राजपूत राजा ने जीत लिया था। पन्हाला के राजा के देश को विजय करते समय जिस स्थान पर उसने डेरा डाला था वह स्थान अब भी सातारा के दक्षिण में पूसासौली के पड़ोस में महपूर्णा के समीप निर्देशित किया जाता है। अपना राज्य दृढ़ता से स्थापित करने के पूर्व ही राजा सिंघन की मृत्यु हुई। जिससे पन्हाला के राजा भोज का प्रदेश मराठा पालेगारों[1] के हाथ में पड़ा। कोंकण-घाट-माथा का पूना के पड़ोस से वर्ना तक का भाग, सिर्के नामक परिवार के स्वामित्व में था। उनके वंशजों ने राजा की उपाधि धारण की और अब तक मराठा सामन्तों में सब से ऊँचे माने जाते हैं। सम्भव है कि दक्षिण के इतिहास पर और अनुसन्धान होने पर और भी राजाओं का पता चले और यूरोपीय विद्वानों में प्रचलित इस मत की पुष्टि हो कि मुसलमान विजय के दीर्घ पूर्ववर्ती काल में भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था।

संस्थाएँ—ऐसे अनुसन्धान का सब से बड़ा लाभ यह होगा कि सम्भव है कि देश की अनेक प्रचलित संस्थाओं की उत्पत्ति की तथा राजस्व-प्रबंध की विभिन्न प्रणालियों का पता चले। इन मुद्दों की कुछ आंशिक व्याख्या यहाँ देना आवश्यक है क्योंकि इस देश के विभिन्न कालों की दशा समझने के लिए तथा यह जानने के लिए कि किस ढंग से आधुनिक मराठों ने शनैः शनैः एवं चतुरतापूर्वक भ्रष्ट और अकर्मण्य मुसलमानों पर अतिसर्पण करने का बहाना पाया, उनकी पूर्व जानकारी करना अनिवार्य है।

महाराष्ट्र में और वास्तव में हिन्दुओं के समस्त देश में, वर्ण-विभाजन की विचित्र प्रणाली के बाद उनके राजतन्त्र की अत्यन्त आकर्षक विशेषता यह है कि सारा देश गाँवों में विभाजित है और हर एक गाँव एक पृथक समुदाय है।

दक्षिण में हिन्दू ग्राम गाँव कहलाता है और जिस गाँव में बाजार नहीं लगती

---

[1] पालेगार का अर्थ है वह व्यक्ति जो स्वतंत्र बन बैठा है, राजस्व चुकता नहीं करता और जिस किसी से वह जबरदस्ती देय उगाह सकता है उगाहता है। पालेगार मराठी एवं कन्नड शब्द है जिसका अर्थ है, 'किसी बस्ती या पड़ाव का सामन्ती-धारक।'

उसको मौजा और जहाँ बाजार लगती है उसको कसबा कहते हैं। प्रत्येक गाँव लघु-रूप में एक छोटा राज्य है। देहात में सारी भूमि किसी न किसी गाँव में सम्मिलित रहती है। इसमें अगम्य पहाड़ी या पूर्णतया निर्जन स्थान शामिल नहीं किए जाते। इसके क्षेत्रों की सीमाएँ निर्धारित होती हैं और सावधानी पूर्वक अतिसर्पण की रोक-थाम की जाती है। कृष्य-भूमि खेतों में बाँटी जाती है। हर एक खेत का एक नाम होता है जो इसके स्वामी या अधिभोक्ता के नाम के साथ पञ्जीबद्ध किया जाता है। इसके निवासी मुख्यतया खेतिहर होते हैं जो या तो मीरासदार[1] या ऊपरी[2] कहे जाते हैं। इन नामों से यह भेद मालूम हो जाता है कि वे भूमि के किस प्रकार के पट्टेदार हैं। ऊपरी, मात्र काश्तकार होता है उसका अस्तित्व स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु मीरासदार वंशागत अधिभोक्ता होता है जिसको शासन हटा नहीं सकता, जब तक कि वह अपने खेत का निर्धारित कर चुकता करता है। अपने गाँव में विभिन्न विशेषाधिकारों और विशिष्टताओं के अतिरिक्त जिसका अधिक महत्त्व नहीं है मीरासदार को यह महत्त्वपूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधिभोक्ता अधिकार को स्वेच्छानुसार विक्रय या हस्तांतरित कर सकता है। इस अधिकार के विक्रययोग्य होने के कारण इसका कर-निर्धारण दर कम है। अतः ब्रिटिश भारत के विभिन्न भागों में उसके भूमि का स्वामी होने के सम्बन्ध में बहुत विवाद उठ खड़ा हुआ है। महाराष्ट्र प्रदेश में यह मत प्रचलित है कि आरम्भ में सब क्षेत्र इसी प्रकार के थे।

कृषकों और नियमित संस्थान के अतिरिक्त हर एक गाँवों में उसके आकार के अनुरूप दूसरे वर्ण एवं धंधा करने वाले रहते हैं। सम्पूर्ण संस्थान में पाटिल, कुलकर्णी

---

[1] ['मीरासदार' का अर्थ है (मीरास) वंशागत सम्पत्ति का (दार) रखने वाला। इसकी उत्पत्ति अर्बी शब्द 'मीरास, मीरासी, मीरासदार' से है। ये शब्द 'वारिस' (उत्तराधिकार) से बने हैं। मराठा प्रदेश में 'मीरासदार' थलकरी पट्टेदार का पर्यायवाची शब्द है। मीरासदार पर अतिरिक्त और मनमानी कर लग सकता था और वह पड़ोस के मीरासदारों की बाकीदारी के लिए उत्तर-दायी था। साथ ही भूमि पर उसका ग्रहणाधिकार इस शर्त पर था कि वह सब प्राप्य बकाया की तथा बाकीदारी की अवधि में किए गए सब खर्चों की प्रतिपूर्ति करे।]

[2] ऊपरी का अर्थ है अन्यजन और यहाँ पर इसका अर्थ है, मात्र किराएदार जो वंशागत अधिभोक्ता नहीं है।

हुई थी। उसके राज्यारोहण से शक सम्वत् चला जो ७७-७८ ईसवी से आरम्भ होता है। ऐसा अनुमान है कि शालिवाहन ने प्रतिष्ठान को अपने शासन की राजधानी बनाई। पेरीप्लस नामक पुस्तक में पैठन नाम से इसका उल्लेख है। मंगी पैठन नामक वर्तमान नगर जो गोदावरी-तट पर बसा है यही है। इस देश में प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर इस राजकुमार के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

शालिवाहन ने एक राजा के राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसकी राजधानी असीर थी। वह सूर्यवंश के सिसोदिया राजपूत घराने का वंशज था। उसके पूर्वज ने कोशल देश, आधुनिक अवध, से आकर नर्मदा के दक्षिण ओर एक राज्य की स्थापना की थी जो शालिवाहन द्वारा विजय किए जाने के पूर्व १६८० वर्ष तक वर्तमान रहा। शालिवाहन ने इस परिवार के सब व्यक्तियों को मार डाला। केवल एक महिला अपने गोद के एक बच्चे को लेकर भाग सकी। वह सातपुड़ा पर्वतों में शरण लेकर अपना निर्वाह करती रही। बाद को यही बालक चित्तौड़ के राणा के वंश का संस्थापक हुआ। चित्तौड़ के राणाओं से उदयपुर के राणाओं की उत्पत्ति हुई जो सर्वमान्य रूप से भारत का सबसे पुराना वंश माना जाता है। दन्तकथा के अनुसार यह दावा किया जाता है कि मराठा राष्ट्र के संस्थापक के पूर्वज जैसा कि अब तक हम लोगों को मालूम है इसी वंश के थे। इस दन्तकथा के अनुसार शालिवाहन और मालवा के राजा विक्रमाजीत से बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्त में उन्होंने एक सन्धि की जिसके अनुसार नर्मदा विक्रमाजीत और शालिवाहन के राज्य की सीमा हुई। उनके अपने २ देशों में काल-गणना उनके अपने २ राज्यारोहण के समय से होना निश्चित हुआ। विक्रमाजीत की काल-गणना शालिवाहन की काल-गणना से

भारत, पृ० १८३)। डॉ० भंडारकर सातवाहन कुल का प्रादुर्भाव ७२-७३ ई० पू०, और मत्स्य पुराण के आधार पर कुछ विद्वान ई० पू० तृतीय शताब्दी के प्रथम चरण में मानते हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख के अनुसार शालिवाहन २५६ ई० पू० मौर्य साम्राज्य का करद था। उस समय पश्चिमी देशों से भारत का व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था। भड़ौच, सोपारा, कल्याण तथा मलाबार के पत्तनों (बन्दरगाहों) द्वारा विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान विदेशों से होता था। दक्षिण में आन्तरिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र पैठन (प्रतिष्ठान) तथा तागर थे। सातवाहन राजाओं के समय में प्राकृत की विशेष उन्नति हुई। उनका राज्य दक्षिण में कई शताब्दियों तक फलता-फूलता रहा। इस वंश के राजाओं के संरक्षण में धर्म, साहित्य, संस्कृति, वाणिज्य-व्यापार आदि की पूर्ण-रूपेण वृद्धि हुई। नासिक, कार्ला, भाजा और कन्हेरी की चमत्कारी गुफाएँ इन्हीं की देन हैं।

५७ वर्ष पूर्व आरम्भ होती है और अब भी नर्मदा के उत्तर में प्रचलित है। शालिवाहन की काल-गणना दक्षिण में चलती है। मराठा हस्तलेखों में इन काल-गणनाओं को विक्रमाजीत और शालिवाहन के बीच हुई सन्धि का प्रमाण मानते हैं किन्तु यह कुछ असंगत सा है क्योंकि इन दोनों कालों में १३३ वर्षों का अन्तर है। ये काल स्वयं ही इस प्रमाण को काट देते हैं। यदि हम इस बात को न माने कि सार्वभौमिकता का पूर्व अधिकार विक्रमाजीत को है और यह काल-गणना उसके किसी पूर्वज के समय से की जाती है।

सम्भवतः महाराष्ट्र में अन्य अनेक क्रान्तियाँ हुई थीं। किन्तु यह नहीं मालूम है कि किस कारण और किस समय राजधानी पैटन से हटाकर देवगढ़, आधुनिक दौलताबाद ले जाई गई। कुछ हस्तलेख यादव रामदेव राव तक के राजाओं का एक क्रम अनुगमन करते हैं। तेरहवीं शती के अन्त में जब मुसलमान इस प्रदेश में आए उस समय यादव रामदेव राव राज्य कर रहा था। उस समय और इसके पूर्व जहाँ तक प्रामाणिक लेख प्राप्त हैं मराठा प्रदेश अनेक छोटे २ राज्यों में, जो स्वतन्त्र से थे, विभाजित था।

फिरिश्ता ने लिखा है कि जब दूसरी बार मलिक कफूर ने दक्षिण में अभियान किया तो गुजरात के सूबेदार अल्प खाँ ने उसकी सहायता की। उसका सामना किरण नामक एक राजा से हुआ। उसके विवरण में गोंडवाना एवं बागलान के राजाओं के नाम आते हैं। बम्बई के समीप थाना में एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण एक भूमि-दानपत्र प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि सालीसट द्वीप में या उसके समीप १०१८ में एक राजा राज्य करता था जिसने अपने को तागर के राजाओं का वंशज कहा है। इसी प्रकार का एक ताम्रपत्र सातारा में पाया गया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि ११९२ में पन्हाला में एक राजा था, जिसके पास काफी प्रदेश था।[1] इस देश की

---

[1] कहा जाता है कि उसने निम्नलिखित पन्द्रह किले बनवाए : १. पवनगढ़, २. पन्हाला, ३. भूधरगढ़, ४. बोत्रा, ५. केल्ना (विशालगढ़), ६. समनगढ़, ७. रंगना, ८. वसंतगढ़, ९. सातारा, १०. चंदन, ११. वंदन, १२. नन्दगिरि, १३. केलिजा, १४. पाण्डुगढ़ और १५. विराटगढ़। सम्भवतः भूधरगढ़ को छोड़ कर, ये अब भी इसी नाम से विख्यात हैं। [यह राजा कोल्हापुर के शिलाहार वंश का अन्तिम राजा भोज द्वितीय (११७८-९३) था जिसने सातारा जनपद में बृहदाकार वासोत नामक किला बनवाया था (डफ कृत क्रॉनॉलॉजी आव इण्डिया, पृ० ३०४)]

हुई थी। उसके राज्यारोहण से शक सम्वत् चला जो ७७-७८ ईसवी से आरम्भ होता है। ऐसा अनुमान है कि शालिवाहन ने प्रतिष्ठान को अपने शासन की राजधानी बनाई। पेरीप्लस नामक पुस्तक में पैठन नाम से इसका उल्लेख है। मंगी पैठन नामक वर्तमान नगर जो गोदावरी-तट पर बसा है यही है। इस देश में प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर इस राजकुमार के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

शालिवाहन ने एक राजा के राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसकी राजधानी असीर थी। वह सूर्यवंश के सिसोदिया राजपूत घराने का वंशज था। उसके पूर्वज ने कोशल देश, आधुनिक अवध, से आकर नर्मदा के दक्षिण ओर एक राज्य की स्थापना की थी जो शालिवाहन द्वारा विजय किए जाने के पूर्व १६८० वर्ष तक वर्तमान रहा। शालिवाहन ने इस परिवार के सब व्यक्तियों को मार डाला। केवल एक महिला अपने गोद के एक बच्चे को लेकर भाग सकी। वह सातपुड़ा पर्वतों में शरण लेकर अपना निर्वाह करती रही। बाद को यही बालक चित्तौड़ के राणा के वंश का संस्थापक हुआ। चित्तौड़ के राणाओं से उदयपुर के राणाओं की उत्पत्ति हुई जो सर्वमान्य रूप से भारत का सबसे पुराना वंश माना जाता है। दन्तकथा के अनुसार यह दावा किया जाता है कि मराठा राष्ट्र के संस्थापक के पूर्वज जैसा कि अब तक हम लोगों को मालूम है इसी वंश के थे। इस दन्तकथा के अनुसार शालिवाहन और मालवा के राजा विक्रमाजीत से बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्त में उन्होंने एक सन्धि की जिसके अनुसार नर्मदा विक्रमाजीत और शालिवाहन के राज्य की सीमा हुई। उनके अपने २ देशों में काल-गणना उनके अपने २ राज्यारोहण के समय से होना निश्चित हुआ। विक्रमाजीत की काल-गणना शालिवाहन की काल-गणना से

भारत, पृ० १८३)। डॉ० भंडारकर सातवाहन कुल का प्रादुर्भाव ७२-७३ ई० पू०, और मत्स्य पुराण के आधार पर कुछ विद्वान ई० पू० तृतीय शताब्दी के प्रथम चरण में मानते हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख के अनुसार शालिवाहन २५६ ई० पू० मौर्य साम्राज्य का करद था। उस समय पश्चिमी देशों से भारत का व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था। भड़ौंच, सोपारा, कल्याण तथा मलाबार के पत्तनों (बन्दरगाहों) द्वारा विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का आदान-प्रदान विदेशों से होता था। दक्षिण में आन्तरिक व्यापार के प्रमुख केन्द्र पैठन (प्रतिष्ठान) तथा तागर थे। सातवाहन राजाओं के समय में प्राकृत की विशेष उन्नति हुई। उनका राज्य दक्षिण में कई शताब्दियों तक फलता-फूलता रहा। इस वंश के राजाओं के संरक्षण में धर्म, साहित्य, संस्कृति, वाणिज्य-व्यापार आदि की पूर्ण-रूपेण वृद्धि हुई। नासिक, कार्ला, भाजा और कन्हेरी की चमत्कारी गुफाएँ इन्हीं की देन हैं।

५७ वर्ष पूर्व आरम्भ होती है और अब भी नर्मदा के उत्तर में प्रचलित है। शालिवाहन की काल-गणना दक्षिण में चलती है। मराठा हस्तलेखों में इन काल-गणनाओं को विक्रमाजीत और शालिवाहन के बीच हुई सन्धि का प्रमाण मानते हैं किन्तु यह कुछ असंगत सा है क्योंकि इन दोनों कालों में १३३ वर्षों का अन्तर है। ये काल स्वयं ही इस प्रमाण को काट देते हैं। यदि हम इस बात को न माने कि सार्वभौमिकता का पूर्व अधिकार विक्रमाजीत को है और यह काल-गणना उसके किसी पूर्वज के समय से की जाती है।

सम्भवतः महाराष्ट्र में अन्य अनेक क्रान्तियाँ हुई थीं। किन्तु यह नहीं मालूम है कि किस कारण और किस समय राजधानी पैठन से हटाकर देवगढ़, आधुनिक दौलताबाद ले जाई गई। कुछ हस्तलेख यादव रामदेव राव तक के राजाओं का एक क्रम अनुगमन करते हैं। तेरहवीं शती के अन्त में जब मुसलमान इस प्रदेश में आए उस समय यादव रामदेव राव राज्य कर रहा था। उस समय और इसके पूर्व जहाँ तक प्रामाणिक लेख प्राप्त हैं मराठा प्रदेश अनेक छोटे २ राज्यों में, जो स्वतन्त्र से थे, विभाजित था।

फिरिश्ता ने लिखा है कि जब दूसरी बार मलिक कफ़ूर ने दक्षिण में अभियान किया तो गुजरात के सूबेदार अल्प खाँ ने उसकी सहायता की। उसका सामना किरण नामक एक राजा से हुआ। उसके विवरण में गोंडवाना एवं बागलान के राजाओं के नाम आते हैं। बम्बई के समीप थाना में एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण एक भूमि-दानपत्र प्राप्त हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि सालीसट द्वीप में या उसके समीप १०१८ में एक राजा राज्य करता था जिसने अपने को तागर के राजाओं का वंशज कहा है। इसी प्रकार का एक ताम्रपत्र सातारा में पाया गया है जिससे यह प्रमाणित होता है कि ११९२ में पन्हाला में एक राजा था, जिसके पास काफी प्रदेश था।[1] इस देश की

---

[1] कहा जाता है कि उसने निम्नलिखित पन्द्रह किले बनवाए : १. पवनगढ़, २. पन्हाला, ३. भूधरगढ़, ४. बोन्रा, ५. केलना (विशालगढ़), ६. समनगढ़, ७. रंगना, ८. वसंतगढ़, ९. सातारा, १०. चंदन, ११. वंदन, १२. नन्दागार, १३. केलिंजा, १४. पाण्डुगढ़ और १५. विराटगढ़। सम्भवतः भूधरगढ़ को छोड़ कर, ये अब भी इसी नाम से विख्यात हैं। [यह राजा कोल्हापुर के शिलाहार वंश का अन्तिम राजा भोज द्वितीय (११७८-९३) था जिसने सातारा जनपद में बृहदाकार वासोत नामक किला बनवाया था (डफ कृत क्रॉनॉलॉजी आव इण्डिया, पृ० ३०४)]

दन्तकथाओं के अनुसार उसका रज्य सातारा के उत्तर में महादेव श्रेणी के पर्वतों से लेकर कोल्हापुर के दक्षिण में हिरण्यकाशी नदी तक फैला था और इसमें सदाशिवगढ़ तक का पूरा दक्षिणी कोंकण सम्मिलित था।

यह राजा भी अपने को तागर राजाओं का वंशज मानता था। परम्परा के अनुसार उसके देश को सिंघन नामक एक राजपूत राजा ने जीत लिया था। पन्हाला के राजा के देश को विजय करते समय जिस स्थान पर उसने डेरा डाला था वह स्थान अब भी सातारा के दक्षिण में पूसासौलो के पड़ोस में महपूर्णा के समीप निर्देशित किया जाता है। अपना राज्य दृढ़ता से स्थापित करने के पूर्व ही राजा सिंघन की मृत्यु हुई। जिससे पन्हाला के राजा भोज का प्रदेश मराठा पालेगारों[1] के हाथ में पड़ा। कोंकण-घाट-माथा का पूना के पड़ोस से वर्ना तक का भाग, सिर्के नामक परिवार के स्वामित्व में था। उनके वंशजों ने राजा की उपाधि धारण की और अब तक मराठा सामन्तों में सब से ऊँचे माने जाते हैं। सम्भव है कि दक्षिण के इतिहास पर और अनुसन्धान होने पर और भी राजाओं का पता चले और यूरोपीय विद्वानों में प्रचलित इस मत को पुष्टि हो कि मुसलमान विजय के दीर्घ पूर्ववर्ती काल में भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था।

संस्थाएँ—ऐसे अनुसंधान का सब से बड़ा लाभ यह होगा कि सम्भव है कि देश की अनेक प्रचलित संस्थाओं की उत्पत्ति की तथा राजस्व-प्रबंध की विभिन्न प्रणालियों का पता चले। इन मुद्दों की कुछ आंशिक व्याख्या यहाँ देना आवश्यक है क्योंकि इस देश के विभिन्न कालों की दशा समझने के लिए तथा यह जानने के लिए कि किस ढंग से आधुनिक मराठों ने शनैः शनैः एवं चतुरतापूर्वक भ्रष्ट और अकर्मण्य मुसलमानों पर अतिसर्पण करने का बहाना पाया, उनकी पूर्व जानकारी करना अनिवार्य है।

महाराष्ट्र में और वास्तव में हिन्दुओं के समस्त देश में, वर्ण-विभाजन की विचित्र प्रणाली के बाद उनके राजतन्त्र की अत्यन्त आकर्षक विशेषता यह है कि सारा देश गाँवों में विभाजित है और हर एक गाँव एक पृथक समुदाय है।

दक्षिण में हिन्दू ग्राम गाँव कहलाता है और जिस गाँव में बाजार नहीं लगती

---

[1] पालेगार का अर्थ है वह व्यक्ति जो स्वतंत्र बन बैठा है, राजस्व चुकता नहीं करता और जिस किसी से वह जबरदस्ती देय उगाह सकता है उगाहता है पालेगार मराठी एवं कन्नड शब्द है जिसका अर्थ है, 'किसी बस्ती या पड़ाव का सामन्ती-धारक।'

उसको मौजा और जहाँ बाजार लगती है उसको कसबा कहते हैं। प्रत्येक गाँव लघु-रूप में एक छोटा राज्य है। देहात में सारी भूमि किसी न किसी गाँव में सम्मिलित रहती है। इ समें अगम्य पहाड़ी या पूर्णतया निर्जन स्थान शामिल नहीं किए जाते। इसके क्षेत्रों की सीमाएँ निर्धारित होती हैं और सावधानी पूर्वक अतिसर्पण की रोक-थाम की जाती है। कृष्य-भूमि खेतों में बाँटी जाती है। हर एक खेत का एक नाम होता है जो इसके स्वामी या अधिभोक्ता के नाम के साथ पञ्जीबद्ध किया जाता है। इसके निवासी मुख्यतया खेतिहर होते हैं जो या तो मीरासदार[1] या ऊपरी[2] कहे जाते हैं। इन नामों से यह भेद मालूम हो जाता है कि वे भूमि के किस प्रकार के पट्टेदार हैं। ऊपरी, मात्र काश्तकार होता है उसका अस्तित्व स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु मीरासदार वंशागत अधिभोक्ता होता है जिसको शासन हटा नहीं सकता, जब तक कि वह अपने खेत का निर्धारित कर चुकता करता है। अपने गाँव में विभिन्न विशेषाधिकारों और विशिष्टताओं के अतिरिक्त जिसका अधिक महत्त्व नहीं है मीरासदार को यह महत्त्वपूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधिभोक्ता अधिकार को स्वेच्छानुसार विक्रय या हस्तांतरित कर सकता है। इस अधिकार के विक्रययोग्य होने के कारण इसका कर-निर्धारण दर कम है। अतः ब्रिटिश भारत के विभिन्न भागों में उसके भूमि का स्वामी होने के सम्बन्ध में बहुत विवाद उठ खड़ा हुआ है। महाराष्ट्र प्रदेश में यह मत प्रचलित है कि आरम्भ में सब क्षेत्र इसी प्रकार के थे।

कृषकों और नियमित संस्थान के अतिरिक्त हर एक गाँवों में उसके आकार के अनुरूप दूसरे वर्ण एवं धंधा करने वाले रहते हैं। सम्पूर्ण संस्थान में पाटिल, कुलकर्णी

---

[1] ['मीरासदार' का अर्थ है (मीरास) वंशागत सम्पत्ति का (दार) रखने वाला। इसकी उत्पत्ति अर्बी शब्द 'मीरास, मीरासी, मीरासदार' से है। ये शब्द 'वारिस' (उत्तराधिकार) से बने हैं। मराठा प्रदेश में 'मीरासदार' थलकरी पट्टेदार का पर्यायवाची शब्द है। मीरासदार पर अतिरिक्त और मनमानी कर लग सकता था और वह पड़ोस के मीरासदारों की बाकीदारी के लिए उत्तर-दायी था। साथ ही भूमि पर उसका ग्रहणाधिकार इस शर्त पर था कि वह सब प्राप्य बकाया की तथा बाकीदारी की अवधि में किए गए सब खर्चों की प्रतिपूर्ति करे।]

[2] ऊपरी का अर्थ है अन्यजन और यहाँ पर इसका अर्थ है, मात्र किराएदार जो वंशागत अधिभोक्ता नहीं है।

दन्तकथाओं के अनुसार उसका राज्य सातारा के उत्तर में महादेव श्रेणी के पर्वतों से लेकर कोल्हापुर के दक्षिण में हिरण्यकाशी नदी तक फैला था और इसमें सदाशिवगढ़ तक का पूरा दक्षिणी कोंकण सम्मिलित था।

यह राजा भी अपने को तागर राजाओं का वंशज मानता था। परम्परा के अनुसार उसके देश को सिंघन नामक एक राजपूत राजा ने जीत लिया था। पन्हाला के राजा के देश को विजय करते समय जिस स्थान पर उसने डेरा डाला था वह स्थान अब भी सातारा के दक्षिण में पूसासौली के पड़ोस में महपूर्णा के समीप निर्देशित किया जाता है। अपना राज्य दृढ़ता से स्थापित करने के पूर्व ही राजा सिंघन की मृत्यु हुई। जिससे पन्हाला के राजा भोज का प्रदेश मराठा पालेगारों[1] के हाथ में पड़ा। कोंकण-घाट-माथा का पूना के पड़ोस से वर्ना तक का भाग, सिर्के नामक परिवार के स्वामित्व में था। उनके वंशजों ने राजा की उपाधि धारण की और अब तक मराठा सामन्तों में सब से ऊँचे माने जाते हैं। सम्भव है कि दक्षिण के इतिहास पर और अनुसन्धान होने पर और भी राजाओं का पता चले और यूरोपीय विद्वानों में प्रचलित इस मत की पुष्टि हो कि मुसलमान विजय के दीर्घ पूर्ववर्ती काल में भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था।

संस्थाएं—ऐसे अनुसंधान का सब से बड़ा लाभ यह होगा कि सम्भव है कि देश की अनेक प्रचलित संस्थाओं की उत्पत्ति की तथा राजस्व-प्रबंध की विभिन्न प्रणालियों का पता चले। इन मुद्दों की कुछ आंशिक व्याख्या यहाँ देना आवश्यक है क्योंकि इस देश के विभिन्न कालों की दशा समझने के लिए तथा यह जानने के लिए कि किस ढंग से आधुनिक मराठों ने शनैः शनैः एवं चतुरतापूर्वक भ्रष्ट और अकर्मण्य मुसलमानों पर अतिसर्पण करने का बहाना पाया, उनकी पूर्व जानकारी करना अनिवार्य है।

महाराष्ट्र में और वास्तव में हिन्दुओं के समस्त देश में, वर्ण-विभाजन की विचित्र प्रणाली के बाद उनके राजतन्त्र की अत्यन्त आकर्षक विशेषता यह है कि सारा देश गाँवों में विभाजित है और हर एक गाँव एक पृथक समुदाय है।

दक्षिण में हिन्दू ग्राम गाँव कहलाता है और जिस गाँव में बाजार नहीं लगती

[1] पालेगार का अर्थ है वह व्यक्ति जो स्वतंत्र बन बैठा है, राजस्व चुकता नहीं करता और जिस किसी से वह जबरदस्ती देय उगाह सकता है उगाहता है। पालेगार मराठी एवं कन्नड शब्द है जिसका अर्थ है, 'किसी बस्ती या पड़ाव का सामन्ती-धारक।'

उसको मौंजा और जहाँ बाजार लगती है उसको कसबा कहते हैं। प्रत्येक गाँव लघु-रूप में एक छोटा राज्य है। देहात में सारी भूमि किसी न किसी गाँव में सम्मिलित रहती है। इ समें अगम्य पहाड़ी या पूर्णतया निर्जन स्थान शामिल नहीं किए जाते। इसके क्षेत्रों की सीमाएँ निर्धारित होती हैं और सावधानी पूर्वक अतिसर्पण की रोक-थाम की जाती है। कृष्य-भूमि खेतों में बाँटी जाती है। हर एक खेत का एक नाम होता है जो इसके स्वामी या अधिभोक्ता के नाम के साथ पञ्जीबद्ध किया जाता है। इसके निवासी मुख्यतया खेतिहर होते हैं जो या तो मीरासदार[1] या ऊपरी[2] कहे जाते हैं। इन नामों से यह भेद मालूम हो जाता है कि वे भूमि के किस प्रकार के पट्टेदार हैं। ऊपरी, मात्र काश्तकार होता है उसका अस्तित्व स्वामी की इच्छा पर निर्भर करता है किन्तु मीरासदार वंशागत अधिभोक्ता होता है जिसको शासन हटा नहीं सकता, जब तक कि वह अपने खेत का निर्धारित कर चुकता करता है। अपने गाँव में विभिन्न विशेषाधिकारों और विशिष्टताओं के अतिरिक्त जिसका अधिक महत्त्व नहीं है मीरासदार को यह महत्त्वपूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधिभोक्ता अधिकार को स्वेच्छानुसार विक्रय या हस्तांतरित कर सकता है। इस अधिकार के विक्रययोग्य होने के कारण इसका कर-निर्धारण दर कम है। अतः ब्रिटिश भारत के विभिन्न भागों में उसके भूमि का स्वामी होने के सम्बन्ध में बहुत विवाद उठ खड़ा हुआ है। महाराष्ट्र प्रदेश में यह मत प्रचलित है कि आरम्भ में सब क्षेत्र इसी प्रकार के थे।

कृषकों और नियमित संस्थान के अतिरिक्त हर एक गाँवों में उसके आकार के अनुरूप दूसरे वर्ण एवं धंधा करने वाले रहते हैं। सम्पूर्ण संस्थान में पाटिल, कुलकर्णी

---

[1] ['मीरासदार' का अर्थ है (मीरास) वंशागत सम्पत्ति का (दार) रखने वाला। इसकी उत्पत्ति अर्बी शब्द 'मीरास, मीरासी, मीरासदार' से है। ये शब्द 'वारिस' (उत्तराधिकार) से बने हैं। मराठा प्रदेश में 'मीरासदार' थलकरी पट्टेदार का पर्यायवाची शब्द है। मीरासदार पर अतिरिक्त और मनमानी कर लग सकता था और वह पड़ोस के मीरासदारों की बाकीदारी के लिए उत्तर-दायी था। साथ ही भूमि पर उसका ग्रहणाधिकार इस शर्त पर था कि वह सब प्राप्य बकाया की तथा बाकीदारी की अवधि में किए गए सब खर्चों की प्रतिपूर्ति करे।]

[2] ऊपरी का अर्थ है अन्यजन और यहाँ पर इसका अर्थ है, मात्र किराएदार जो वंशागत अधिभोक्ता नहीं है।

और चौगुला तथा चौबीस और व्यक्ति जो बारह बलूते और बारह अलूते[1] कहलाते हैं, सम्मिलित हैं। ये चौबीस व्यक्ति, विभिन्न धंधों और व्यवसायों के होते हैं, जिनकी

---

[1] जो व्यक्ति गाँव समुदाय की सेवा करने के बदले में अनाज के रूप में सालाना भत्ता अर्थात् बलूत पाते थे वे बलूते कहलाते थे। मोटे तौर से गाँव की भूमि में उत्पन्न अनाज का दस प्रतिशत उनको मिलता था। मूल बारह ग्राम-सेवकों की तीन श्रेणियाँ थीं जो अपनी श्रेणी के अनुसार बलूत पाते थे। प्रथम श्रेणी में बढ़ई, चमार, लुहार और महार (स्काउट, पथप्रदर्शक, गाँव रक्षक का कार्य करते थे। यह सक्रिय, उपयोगी और बुद्धिमान जाति है) थे; दूसरी श्रेणी में धोबी, कुम्हार, नाई और और माँग (चमड़े के कोड़े, डोरियाँ आदि कृषकों के काम आने वाली वस्तुएँ बनाते थे। चोरी, डकैती और हत्या करना इनके धंधे हैं। ये महर की तरह बुद्धिमान नहीं होते)। तीसरी में कहार, ज्योतिषी, गुराव (ये शूद्र हैं और गाँव के मन्दिर की मूर्ति को नहलाते, सजाते और सेवा करते हैं और भोज के अवसर पर दोने और पत्तल देते हैं) और सुनार। डफ के सूची में कहार और सुनार के स्थान पर भाट और मुल्लाणा के नाम हैं। मुल्लाणा मस्जिद, कब्रिस्तान, मुसलमानों के विवाह, इनाम या माफी भूमि की देख रेख करता है और बलि दिए जाने के लिए पशु को मारता है। कुछ गाँवों में कुलकर्णी तीसरे श्रेणी का हक लेता था। कृषक अपनी उपज का ५० प्रतिशत सरकार को देता था और २५ प्रतिशत औसत में बलूतों और हकदारों को देता था और शेष २५ प्रतिशत में अपना निजी निर्वाह और कृषि सम्बन्धी खर्चों को निबटाता था। यह शुल्क उपज का निश्चित प्रतिशत नहीं होता था और भिन्न २ स्थानों में इसका दर भिन्न २ था। अधिकांश में यह शुल्क अलग २ कृषक की उपज पर तथा उसके प्रति की गई सेवाओं की मात्रा और विस्तार पर निर्भर करता था। यह तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता कि किसान बारह बलूतों के अतिरिक्त बारह अलूतों का भी निर्वाह कर सकता था। (जे० बी० बी० आर० ए० एस०, जिल्द २२, पृष्ठ ५७)। विल्सन (ग्लॉस्सरी आव इंडियन टर्म्स) के अनुसार अलूते, बलूते का केवल एक आनुप्रासिक रूप है। इनमें नियमित ग्राम परिजन (बलूते) नहीं आते। इनमें वृद्ध, असहाय बलूते या उनकी विधवाएँ, मँगता साधु, और गाँव के असहाय और अकर्मण्य व्यक्तियों की गणना की जाती है। डफ के अनुसार गाँव के बारह अलूते ये हैं: सुनार, जंगम (लिङ्गायत सम्प्रदाय के गुरु), दर्जी, कोली (कहार), तुरल या यस्कर या महर (पथ प्रदर्शक, भारवाहक यात्रियों की सेवा करने वाला। हर समय पाटिल की आज्ञा में रहता है। बलूते के सूची के महार की उपलब्धियों से अलूते के सूची के महार की उपलब्धियाँ कम

कारीगरों, और सार्वजनिक सेवकों के रूप में आवश्यकता होती है या जिनकी धार्मिक कृत्यों और साधारण मनोरञ्जन के लिए माँग होती है। विरले गाँव इस दृष्टि से पूर्ण हैं। कोंकण के अधिकांश भाग में बहुत काल से खोट या ग्राम-राजस्व के प्राचीन ठीकेदार वंशागत हो गए हैं और मुख्य ग्राम-दण्डाधिकारी के पद और नाम का अतिक्रमण कर लिया है। किन्तु उत्तरी प्रदेश में हरएक गाँव में एक पाटिल और एक कुलकर्णी होते हैं और प्रत्येक बड़े गाँवों में भाट और ज्योतिषी तथा बढ़ई, लुहार, नाई और पहरेदार होते हैं। छोटे गाँवों में अत्यन्त उपयोगी कारीगरों में से केवल दो एक होते हैं।

पाटिल मुख्य प्रबन्धक अधिकारी है, उसका आसन्न सहायक चौगुला है। साधारणतया ये दोनों शूद्र जाति के होते हैं।[1] पाटिल के बाद दूसरा मुख्य अधिकारी

होती हैं), माली, दौरी गोसाईं (वाद्य संगीतकार), घादशी (बाँसुरी बजाने वाले), रामोसी (चौकीदार), तेली, तम्बोली और गन्धाला (नगाड़ा बजाने वाले)। ये पूरे बारह विरले ही किसी गाँव में पाए जाते हैं। कहीं २ जंत्री (गायक), कलावन्तिन (वेश्या या नर्त्तकी), वैद्य, गोताखोर, गारपगारी (मन्त्र-शक्ति रखने वाला और भाग्य बताने वाला) होते हैं। विल्सन ने अपनी पुस्तक में बलूत पर एक लम्बा लेख लिखा है जिसमें उसने कनारा, गुजरात, और दक्खिन के बलूतों की सूचियाँ दी हैं। उसके अनुसार 'बलूत' 'उपज का वह भाग है जो ग्राम परिजनों को उनके निर्वाह तथा उनके शुल्क, परिलब्धि तथा अन्य अधिकारों के लिए दिया जाता है।'

[1] मराठा पाटिल अपने को राजपूत-वंशज कहते हैं और अपने को शूद्र नहीं मानते। ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि कुछ पाटिलों ने अपने अधिकार कसार उपकुल से खरीदा है। हिन्दुओं के उत्तराधिकार-विधि के अनुसार तथा पाटिलों को अपने 'वतन' के किसी भाग को बेचने का अधिकार होने के कारण पाटिलकी बहुधा कई भागों तथा उपभागों में बाँटी जाती है। पाटिलकी का एक भी भाग रखने वाले पाटिल के कुल के सब आदमी पाटिल कहे जाते हैं। इसी प्रकार कुलकर्णी परिवार के लोग अपने को कुलकर्णी कहते हैं। पाटिल जिसके पास मुख्य प्रबन्ध-अधिकार होता है मुकद्दम कहलाता है। (ऐसा प्रतीत होता है कि वह जमाबन्दी के लिए जिम्मेदार था और उसके न चुकता होने पर उसे कैद भी हो सकती थी। लूट करने वाले लूट के समय उसे ही माँगा हुआ धन देने के लिए जिम्मेदार ठहराते और पूरा धन न मिलने पर उसे बन्धन में रखते थे।)

कुलकर्णी है जो लेखक या पञ्जीयक का कार्य करता है और आजकल वह साधारणतया एक ब्राह्मण होता है।

गाँव के मामलों का प्रबन्ध करने में गाँव संस्थान के शेष व्यक्ति भी पाटिल की सहायता करते हैं। उनमें से हर एक को गाँव समुदाय के नियमानुसार भूमि, अनाज या द्रव्य के विभाजित भाग मिलते हैं। पाटिल खेती की देखरेख, आरक्षी का नियंत्रण और बहुधा गाँव का मनोरञ्जन और रक्षा करता है। जब पड़ोसियों के मैत्रीपूर्ण हस्तक्षेप से विवाद नहीं निबटते तो मामला पाटिल के सामने आता है। वह उनको सलाह देता है, डाटता-डपटता है और बहुधा दलों को समझौता करने के लिए राजी करता है। किन्तु यदि यह आवश्यक प्रतीत होता है तो पाटिल उस मामलों के कुछ अच्छे जानकारों को एकत्रित करता है और विधिपूर्वक मामला उनके सामने फैसले के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यह पंचायत कहलाती है जिसमें साधारणतया पाँच सदस्य होते हैं। गाँव के नागरिक प्रशासन की यह साधारण रूपरेखा है। इस प्रदेश की स्वीकृत चलन के अनुसार, पाटिल को अर्थ-दंड, कैद या शारीरिक दंड देने का अधिकार नहीं है, फिर भी ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं कि मराठा शासन के अधीन पाटिल ने आपराधिक मामलों में बहुत शक्ति का प्रयोग किया है। इस रूप के अपराध होने पर, पाटिल का यह कर्त्तव्य है कि इस मामले की सूचना अपने प्रवर को दे या अपराधी को पकड़ कर उच्चाधिकारी के पास भेज दे।

यद्यपि पाटिल[1] शब्द मुसलमान भाषा का शब्द नहीं है किन्तु मराठा ब्राह्मणों की यह कल्पना है कि मुसलमानों ने इस शब्द को प्रचलित किया। इसका प्राचीन हिन्दू नाम गौर था और प्रबन्धकर्त्ता पाटिल या मुकद्दम का नाम ग्रामाधिकारी था। कुलकर्णी को ग्रामलेखक कहते थे। पाटिल और कुलकर्णी का एक मुख्य काम राजस्व का प्रबन्ध और उगाही की देखरेख करना है। वार्षिक सरकारी हिसाब-किताब रखना कुलकर्णी का काम है। पहले समस्त भूमि का लेखा बनाया जाता है तब उसमें से सार्वजनिक भूमि, सड़कें, और आबादी तथा बंजर भूमि कम कर दी जाती हैं। उसके बाद कृषियोग्य भूमि दिखाई जाती है और हर एक प्रकार के अन्य संक्रामणों का उल्लेख होता है। शेष भूमि पर सरकारी कर निर्धारण किया जाता है। यह कर-निर्धारण उपज के संदर्भ में करना चाहिए। शास्त्रों के नियमों के अनुसार रैयत या

---

[1] प्रतीत होता है कि पाटिल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द पट्टा और मराठी शब्द पाट से हुई है जिसका अर्थ है 'रजिस्टर, पञ्जी।' [रासमाला पुस्तक में पटकील शब्द गाँव के मुखिया के अर्थ में आया है। उत्तर कोंकण में सिलाहार के समय में (८१०-१२६०) पट्टाकील थे। गौर कन्नड शब्द है]

कृषक उपज का छठवाँ भाग राजा को दे। सुदूर अतीत की यह प्रथा बहुत काल से प्रचलित नहीं है। अनुवर्ती शासकों ने अपनी-अपनी बुद्धि और सद्नीति या आवश्यकता और लुटेरी-प्रवृत्ति के अनुसार राजस्व के विभिन्न दरो और उगाही के विभिन्न ढंगों को अपनाया।

मराठा प्रदेश के प्रत्येक गाँव में राजस्व का सब से बड़ा स्रोत भूमि कर है। इसके अतिरिक्त उगाहियों के दो और शीर्ष हैं। एक को अतिरिक्त राजस्व और दूसरे को आयात-कर कह सकते हैं। प्रथम शीर्ष के अन्तर्गत सब कर आते हैं और जब इसमें और कर भी जोड़ दिए जाते हैं तो इसके सम्पूर्ण योग को जमाबन्दी कहते हैं। अतिरिक्त राजस्व में कई प्रकार के छोटे-छोटे मद सम्मिलित होते हैं किन्तु ये न तो भारी होते हैं और न महत्त्वपूर्ण। आयात-करों की प्रकृति बहुत ही पेचीदा है। जैसा पहले लिखा जा चुका है गाँव या तो मौजा होता है या कसबा। विना कोई अधीन गाँवों के एक बहुत बड़ा गाँव कसबा हो सकता है। किन्तु सामान्यतया पाँच से पच्चीस गाँव तक एक कसबे के अधीन होते हैं और इसी आधार पर उन पेचीदे अन्तर्देशीय महसूलों का नियन्त्रण होता है जो यहाँ के देशी शासनों में प्रचलित हैं और जो सम्भवतः प्राचीन हिन्दू संस्थाओं पर आधारित हैं।[1]

---

[1] प्रत्येक कसबे में सीमा-शुल्क के उगाही के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट स्थानीय प्रथाएँ हैं। इंगलैण्ड में आयात और निर्यात का सम्बन्ध राज्य से है। किन्तु भारतवर्ष में आयात और निर्यात कर का सम्बन्ध कसबा या इसके क्षेत्र में पड़ने वाले गाँवों से है। कसबा के निवासियों के लिए, कसबा के अन्तर्गत गाँवों के निवासियों के लिए, और दूर से आने वाले या पड़ोस के कसबे की सीमा से आने वाले व्यक्तियों के लिए विशिष्ट २ दरें हैं। नगरों या बड़े कसबों में जहाँ अनेक बाजारें होती हैं, हर एक पृथक् भाग जहाँ इस प्रकार की बाजार लगती है पेठ कहलाता है और लगभग इसी ढंग से नियंत्रित किया जाता है। पारवहन शुल्क दो प्रकार के हैं: एक शुल्क कसबा की सीमा के अन्दर एकत्रित किया जाता है और दूसरा शुल्क उस सीमा से बाहर जाने वाले सामान्य पारवहन पर है। विस्तीर्ण पारवहन का चुकता नकद रुपये में होता है और सामान्यतया शासन, कम से कम मुसलमान, इसे आरक्षित रखता था। किन्तु कसबा की सीमा के अन्दर एकत्रित करने का अधिकार एक पेचीदे ढंग से विभाजित किया जाता है और इस शुल्क के बंटवारे में शासन के अधिकांश स्थायी अभिकर्त्ताओं का कुछ अधिकार होता है जिसको वे वस्तुरूप में एकत्रित करते हैं। बहुत से व्यक्ति इन शुल्कों पर निवृत्ति वेतन पाते हैं—कुछ वस्तुओं पर एक थोड़ा सा हिस्सा उगाहने का अधिकार या किसी विशेष स्थान पर

वस्तु रूप में विभिन्न भत्तों के अतिरिक्त पाटिलों, कुलकर्णियों और चौगुलों के पास गाँव की १/२५ भूमि माफ़ी में है। इस देश के अधिक बुद्धिमान निवासियों की धारणा है कि प्राचीन काल में ये अधिकारी उच्च सरकारी अभिकर्ताओं की देख-रेख में, वस्तु रूप में कर निर्धारण करते थे। पाटिल और राजा के बीच में कौन-कौन से अभिकर्ता रहे होंगे यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता। किन्तु आज कल एक जिले में जिसमें कई गाँव होते हैं सदा दो वंशागत अधिकारी रहते हैं। उनमें से एक देशमुख, देसाई, या जमींदार कहलाता है, और दूसरा देशपाण्डे, देशलेखक, और कानूनगो कहलाता है। अब बहुधा ये दोनों ही अधिकारी जमींदार की उपाधि धारण करते हैं। किन्तु मराठा देश में देशमुख और देशपाण्डे अभिधान अधिक व्यापक रूप से प्रचलित हैं। मुसलमान शासन में इनके जनपदों में इनके कर्तव्य लगभग वैसे ही थे जैसे पाटिल और कुलकर्णी के उनके गाँवों में। कुछ एक विकल्पों के अतिरिक्त, देशमुख और पाटिल मराठे हैं, और देशपाण्डे और कुलकर्णी ब्राह्मण। यद्यपि सामान्यतया देशमुख और देशपाण्ड्यों की सेवायें नहीं ली जातीं, तथापि उनके वेतन का भुगतान उनके जिले के विभिन्न भागों में भूमि का एक टुकड़ा देकर किया जा रहा है। जो कृष्यभूमि का लगभग १/२० वाँ भाग और सरकारी राजस्व का १/२० वाँ भाग या वास्तविक रूप में उगाहे हुए राजस्व के अनुकूल परिकलित और उनके द्वारा अलग-अलग एकत्रित किए हुए का ५ प्रतिशत है। उनके भत्तों की जो अत्यन्त अस्थिर हैं एक व्यापक रूपरेखा मात्र देने के निमित्त यह यहाँ लिखा जा रहा है। हिस्सों तथा आहरण के अनेक अधिकार उनके पास हैं, जिनकी गिनती गिनाना अनावश्यक है। भूमि में, वस्तु में, और नकदी में देशमुख के भत्तों से लगभग आधे भत्ते देशपाण्डे के हैं।

देशमुखों[1] और देशपाण्डयों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक अटकलबाजियाँ

अपने सामान को प्रदर्शित करने वाले हर एक व्यक्ति से कुछ वसूल करने के अधिकार (के रूप में वे निवृत्ति वेतन भोगते हैं)। समस्त सम्पत्ति के सामान्य विभाजन के अनुसार ये अधिकार वंशागत चलते हैं। जहाँ तक प्रामाणिक अभिलेख मिलता है महाराष्ट्र में शासन के लिए व्यापार सदा एक गौण वस्तु रहा है।

[1] मुसलमान जो अन्य व्युत्पत्ति-विज्ञान जानने वालों की ही तरह बहुधा बहुत पटु होते और शुद्धाशुद्ध की उपेक्षा करते हैं इस अभिधान को अपनी निजी भाषा के शब्दों से व्युत्पन्न करते हैं : दस अर्थात् दसवीं और मुख अर्थात् मुट्ठी; अतः वे कहते हैं देशमुख का अर्थ है दसवीं अंजुलि भर। इस अर्थ से उन वंशागत अधिकारियों के कल्पित मूल-भत्ता से सामंजस्य होता है। देश का अर्थ है,

हैं। सम्भवतः वे हिन्दू राज्यों की व्यापक संस्था थीं। उतनी ही प्राचीन, जितनी की ग्राम-संस्थान या वर्ण-विभाजन। सम्भवतः देशाधिकारी और देशलेखक एक अवधि भर के लिए जनपद में मुख्य प्रबन्धक रहे हों। जिस तरह से ग्रामाधिकारी और ग्रामलेखक गाँव में थे। प्राचीन काल में देशाधिकारी[1] थे, यह इस बात से

स्थान, क्षेत्र; और मुख का, मुँह; और मुखिया का अर्थ है प्रधान। मराठे कहते हैं कि इसकी व्युत्पत्ति मुखिया (प्रधान) से नहीं हुई है बल्कि देश और मुख (मुँह या जनपद का वक्ता) से। अनेक अंग्रेजों ने मुसलमान व्युत्पत्ति को ग्रहण किया है।

[रानडे 'राइज़ आव द मराठा पावर' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि वंशागत देशमुख और देशपाण्डे के रूप में उच्चतर राजस्व-प्रबन्ध की व्यवस्था जिस निमित्त से आरम्भ में प्रचलित की गई थी, वह निमित्त आज भी मौजूद है। देश के दूसरे भागों में देशमुखों और देशपाण्डेयों का विकाश बंगाल के जमींदारों और अवध के ताल्लुकदारों के रूप में हुआ है। प्रथम वे राज्य के प्रति प्रत्यक्ष उत्तरदायी हुए और अन्त में भूस्वत्वधारी हो गए।

देशमुख शब्द की उत्पत्ति देश 'मुल्क' या 'जनपद' और मुख 'मुख्य' या 'नेता' से है। देशमुख जनपद का जिसमें कई गाँव होते थे, मुख्य आरक्षी और राजस्व अधिकारी था। इसी तरह देशपाण्डे शब्द देश और पाण्डे शब्दों से मिल कर बना है······देशपाण्डे जनपद का वंशागत राजस्व लेखाकार था और वह तेलंगाना के कुछ भागों में देशमुख से स्वतन्त्र काम करता, उन्हीं कर्तव्यों को निभाता, और उन्हीं विशेषाधिकारों को भोगता था। (विल्सन : ग्लॉस्सरी आव इण्डियन टर्म्स)।

कानूनगो का अर्थ है 'विधि का व्याख्याता'। भूमि-पट्टों से सम्बन्धित समस्त प्रथाओं और चलनों पर वह एक विशेष प्रमाण के रूप में एक अधिकारी होता था। यह पद वंशागत था और अब भी उत्तर प्रदेश में सुधरे हुए रूप में वर्त्तमान है। अकबर के कानूनगो तीन श्रेणियों में वर्गीकृत थे और उनको प्रतिमास क्रमशः २०, ३० और ५० रुपये के तुल्य के भत्ते दिए जाते थे। स्मिथ : अकबर, पृष्ठ ३७०]

[1] सम्भवतः अन्य हिन्दू संस्थाओं की तरह देशाधिकार वंशागत थे। किन्तु कुछ परिस्थितियाँ इस कल्पना के पक्ष में और कुछ विपक्ष में हैं। एक तो, यह प्रश्न हमारे विषय से सम्बन्धित है। दूसरे, भारतीय जनता के अधिकारों से सम्बन्धित

प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। जो कुछ मैं यहाँ लिख रहा हूँ आगे चल कर सम्भव है इससे अधिक सन्तोषपूर्ण बातों का पता चले।

अधिकार एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है नौकरी में प्रथम या मुख्य। इसी अर्थ में यह शब्द राज्य के मुख्य मन्त्री एवं उसके अथवा राजकुमार द्वारा नियुक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ यह भी है : प्रभुता, स्वामित्व,- विशेषाधिकार या उत्तराधिकार, किन्तु वृत्ति के अर्थ में इसका प्रयोग होते मैंने कभी नहीं देखा। महाराष्ट्र में वृत्ति शब्द के अर्थ में अब वतन शब्द का प्रयोग होता है। अधिकारी का अर्थ है स्वामी, दायाद, हकदार या विशेष इख्तियार रखने वाला। कभी २ यह शब्द शासन के उस अभिकर्ता के नाम के लिए भी प्रयुक्त होता है जो राजस्व के मामले की देख रेख करता है। यह नाम स्वयं ही इस कल्पना की पुष्टि करता है कि देशाधिकार स्थायी वंशागत अधिकारी थे। और ग्रामाधिकारी की तरह देशाधिकारी भी समय भर के लिए सम्बन्धित व्यक्तियों में मुख्य निरीक्षक था।

देशाधिकार, देशमुख से पृथक और उत्कृष्ट हैं, इसके निम्नलिखित कारण हैं : आजकल मराठे अपने पत्रों और सरकारी कागजों में सामान्यतया सम्बोधन के सब मुसलमान रूपों को प्रयुक्त करते हैं, यदि वे प्राचीन हिन्दू शब्दों और प्रपत्रों को सुविधापूर्वक प्रयुक्त नहीं कर सकते। किसी गाँव की, सम्पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से, भूमि को इनाम में देने या कर-विमुक्त करने के अवसर पर चार पृथक सनद या दानपत्र तैयार किए जाते हैं : १. अनुदान-ग्राही के नाम जिसमें सदैव अनुदान उसको और उसके उत्तराधिकारियों को सदा के लिए प्रदान किया जाता है। २. गाँव के मुकद्दम या प्रबन्धकर्ता पाटिल के नाम। ३. देशमुख और देशपाण्डे के नाम। ४. देशाधिकारी के नाम। प्रथम तीन सनदों में पक्षों को सादे रूप में सम्बोधित किया जाता है। किन्तु चौथे में यह सम्बोधन होता है, 'राजे श्री देशाधिकारी वा लेखक, वर्तमान भावी।' मुसलमान पट्टों में 'वर्तमान भावी' शब्दों के बदले में 'हाल वो इस्तिक्बाल' शब्द होते हैं। मराठे विरले ही संस्कृत शब्दों के स्थान पर इन शब्दों को इस्तेमाल करते हैं। जो लोग देशमुखों के अधिकारों की प्राचीनता का पक्ष ग्रहण करते हैं कहते हैं कि यह सम्बोधन केवल वर्तमान अभिकर्ताओं को ही लागू है जो शासन के लिए संग्राहक का काम करते हैं और उस स्थान को ग्रहण किए हुए हैं जिस पर मुख्य या प्रबन्धकर्ता देशमुख रहा करते थे। किन्तु दूसरे लोग इसको इस बात के उदाहरण स्वरूप सामने रखते है कि पाटिल और शासक के बीच में कोई स्थायी वंशागत अधिकारी नहीं था और वे इस मत की पुष्टि कुछ सत्याभास कल्पनाओं द्वारा करते हैं। इन अन्तिम लोगों की राय में देशमुख और

देशपाण्डे, जिस रूप में ये इस समय पाए जाते हैं, मुसलमानों की संस्था थे। जिनको उन्होंने, मराठा नायकों और पालेगारों को सम्राट् के विरुद्ध अपने झण्डे के नीचे लाने के लिए, एक प्रलोभन के रूप में अपनाया जब उन्होंने दक्खिन में प्रथम बार विद्रोह किया। उन्होंने ऐसे सब अधिकारियों और सब देशाधिकारियों को उनके मूल वासस्थान् के जनपद में कुछ अधिकारों और प्रतिरक्षाओं का वचन दिया। इसीलिए अर्बी शब्द वतन, जिसका अर्थ है अपना मूलस्थान या देश, का व्यापक चलन हुआ। इस मत की पुष्टि में एक अनोखा विवरण है : दक्खिन के सुल्तानों के सब से प्राचीन फर्मानों में, जिनके आमुख में बहुधा अनुदान-ग्राही की याचिका सन्निविष्ट है, देशमुख के वतन के सब अधिकार इस बात पर आधारित हैं कि बीदर (महाराष्ट्र में बहमनी वंश के सब सुलतान इसी नाम से नामोद्दिष्ट किए जाते हैं) सुल्तानों के प्रति की हुई सेवाओं के बदले में पिछले फर्मान प्रदान किए गए थे; या यदि याचिकाएँ उन सुल्तानों को सम्बोधित हैं तो आवेदन उन दावों के परिणाम स्वरूप किया गया है जिस पर प्रार्थी समझता है कि उसका इस पर उतना ही अधिकार है जितना उन दूसरे व्यक्तियों का जिनको वतन सुलतान के इस प्रतिज्ञा के अभिमतानुसार प्रदान की गई है कि यदि वह अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करने में या, याचिका के शब्दों में, राज्यारोहण करने में सफल होगा। कई नमूनों की परीक्षा करने के बाद मेरी यह कल्पना हो रही है कि वे फर्मान जाली थे जो एक गलत किन्तु प्रचलित मुसलमान मत पर आधारित थे और उनका उद्देश्य बीजापुर के सुल्तानों को, यह कहना अधिक ठीक होगा, उस राज्य के अभिकर्ताओं को धोखा देने का था। उन पदों को ग्रहण किए हुए लोगों के हाथ में इन फर्मानों का परिरक्षण यह प्रमाणित करता है कि वे अपने उद्देश्य सिद्ध करने में सफल हुए थे। राजस्व से सम्बन्धित दूसरे मामलों के कुछ महान अनुसंधानकर्ताओं ने देशमुखों के जितने प्राचीन होने की परिकल्पना की है निश्चय ही उससे कहीं अधिक ये प्राचीन थे। उदाहरण के लिए हम ग्रांट को ले सकते हैं जिसने अपने 'पोलिटिकल एनलिसिस' (राजनीतिक विश्लेषण) में मूल संस्था की तिथि १५८२ ई० में अकबर के शासन-काल में नियत की है।

देशमुखों और देसाइयों की प्राचीनता की पुष्टि में एक कल्पना लंका के 'दिसावा' की प्राचीनता है। मैं कल्पनारूप में इसे नहीं प्रस्तुत करता हूँ कि उनकी उत्पत्ति उस द्वीप में हुई; किन्तु कोई भी महाराष्ट्र ब्राह्मण यह बता सकता है कि रावण के भाई विभीषण को रोग विमुक्त करने वाले प्रसिद्ध चिकित्सक हिमाध

प्रमाणित होता है कि विज्ञानेश्वर[1] ने यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि ग्रामाधिकारी की आज्ञा से एकत्रित पंचायत से अपील (पुनर्न्याय प्रार्थना) देशाधिकारी को होगी। किन्तु अभी तक ऐसा प्रमाण नहीं मिला है कि देशाधिकारी स्थायी और वंशागत अधिकारी थे और उनको भूमि और उन्मुक्तियाँ प्राप्त थीं जैसे कि देशमुखों को दक्षिण के मुसलमान शासकों के अधीन थीं।

इस आधार पर देशमुख की संस्था बहमनी वंश के उदय के पहले भले ही न रही हो, किन्तु महाराष्ट्र में यह कम से कम इसके समसामयिक है। मुसलमानों के राज्य का उत्तराधिकारी एक हिन्दू राज्य हुआ। अतः देशमुखों को यह प्रयत्न करने का आश्वासन कभी नहीं था कि वे अपने ही राष्ट्र को उल्लू बनाते और ऐसे अधिकारों का दावा करते, जैसे ब्रिटिश शासन ने स्थायी मालगुजारी व्यवस्था के अधीन इसी श्रेणी के व्यक्तियों को बंगाल में जल्दबाजी में प्रदान किए। भारत में किसी समय में भी प्रचलित अन्य सभा आयोजनाओं और व्यवस्थाओं से भेद करने के लिए यह यथार्थ ही जमींदारी व्यवस्था कहलाती है।

इन अधिकारियों की उत्पत्ति कुछ भी रही हो, किन्तु जितने समय पीछे की हमें कोई प्रामाणिक रेखा मिल सकी है, महाराष्ट्र के प्रत्येक विजयी शक्ति के हाथों में इनके अधिकारों की पुष्टि या रुकावट एक दृढ़ राजनीतिक हथियार रहा है। चाहे वह शक्ति आन्तरिक विद्रोह या विदेशी विजय से उत्पन्न हुई हो और चाहे देशाधिकारी, हिन्दू संस्था के मात्र अभिकर्ता या वंशागत अधिकारी रहे हों, इसमें सन्देह नहीं है कि मुसलमान विजय के पूर्व उन्होंने अनेक मामलों में कुछ न कुछ शक्ति प्राप्त कर ली थी। परिस्थिति के अनुसार शनैः शनैः स्वतन्त्रता की ओर बढ़ते हुए उन्होंने यह शक्ति प्राप्त की थी जैसा कि नायक[2], पालेगार और राजा अभिधानों से प्रकट है।

आशा है कि इन संस्थानों और संस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन पाठकों को उपयोगी प्रमाणित होगा। उनका ध्यान अब एक छोटी सी परिभाषा की ओर आकर्षित

(हेमाद्रि ?) पंत लंका के राक्षसों से मोड़ी लिपि तथा अपने देशवासियों के लिए उपयोगी अन्य अनेक सुझाव लाए।

[1] [आचार्य विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी है जिसका हिन्दुओं में बहुत मान है।]

[2] नायक का अर्थ है स्वामी, ले जाने वाला, राह दिखाने वाला। जो मराठा सरदार मुसलमानों की सेवा में थे वे नायक कहलाते थे।

किया जाता है, जिसका कुछ महत्त्व है। प्राचीन हिन्दू शासनकाल में भूमि में या जनपद और ग्राम संस्थानों में वंशागत अधिकार की सम्पूर्ण सम्पत्ति या अंश वृत्ति[1] कहलाता था और अब यह समस्त महाराष्ट्र में वतन[2] के नाम से विख्यात है। जिसके पास यह अधिकार होता है वह वतनदार कहलाता है। यह बहुत ही सम्मान्य अधिकार माना जाता है।

इन प्रारम्भिक चर्चाओं के पश्चात् हम उस काल का वर्णन करेंगे जब मुसलमानों ने दक्षिण में प्रथम प्रवेश किया। उस समय से मराठा बिल्कुल भुला दिए गए और उनकी ओर इतना कम ध्यान दिया गया कि १७ वीं शताब्दी में जब वे अपने देश के पहाड़ियों या मैदानों से निकले तो वे दूसरे राष्ट्रों को एक नए और पूर्णतया अज्ञात जाति के प्रतीत हुए। मुसलमान राजवंशों के अधीन मराठों की दशा के सम्बन्ध में कुछ सूचना देने का प्रयास करना तथा भारत की विजय में हमारे पूर्ववर्तियों[3] के उदय, उत्कर्ष, क्षय और पतन का, पूर्व की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से, रेखांकन करना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। आगे चलकर यह बात स्पष्ट होगी कि मराठों की शक्ति सुदूर-विख्यात, साहसी योद्धा, शिवाजी भोसले के नेतृत्व के पहले से ही शनैः शनैः पुष्ट हो रही थी।

---

[1] 'वृत्ति' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है जीविका।

[2] 'वतन' एक अर्बी शब्द है। इसका अर्थ है मूल वासस्थान, अपना मूल देश, स्वदेश। [उस समय के निरन्तर होने वाले राज्य परिवर्तन और क्रान्ति के युग में भूमि एक स्थायी वस्तु थी जिस पर प्रतिष्ठा, शक्ति और जीवन के आनन्द निर्भर करते थे। अतः इसका इतना महत्त्व था।—यदुनाथ सरकार : शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स, पृष्ठ ३७७-८]

[3] [ग्रान्ट डफ़ का यह विचार बिलकुल ठीक है कि अंग्रेजों ने भारत का राज्य मराठों के हाथ से पाया, न कि मुगलों के हाथ से।]

अध्याय १

(१००० ई० से १४७८ ई० तक)

भारत में मुसलमान-विजय के पहले अनेक लुटेरे आक्रमण हो चुके थे। पहले वे दशवीं शती के अंतिम भाग में प्रख्यात अटक से हो कर गुजरे।[१] उसके तीन सौ वर्ष बाद आठ हजार अश्वारोहियों को लेकर अलाउद्दीन खिलजी ने नर्मदा पार किया और खानदेश होते हुए वह अकस्मात् देवगढ़ के सामने आ धमका। वहाँ के मराठा शासक रामदेव राव यादव ने नगर रक्षार्थ किंचित् चेष्टा करने के बाद किले में शरण ली और अलाउद्दीन से सन्धि की। अपने देश से आक्रमणकारियों के वापस चले जाने की शर्त पर, राजा छुड़ाई की एक बड़ी रकम देने को तैयार हुआ। शर्तें निश्चित की गई। मुसलमान प्रतिज्ञा पालन करने को ही थे कि राजा का लड़का एक सेना एकत्रित कर देवगढ़ की ओर बढ़ा। वर्तमान सन्धि की अवहेलना कर और अपने पिता के निश्चित आदेशों के विपरीत उसने अलाउद्दीन के पास एक अपमान जनक संदेश भेजा जिसके फलस्वरूप तुरन्त युद्ध आरम्भ हुआ। आरम्भ में परिणाम संदिग्ध था, किन्तु अन्त में हिन्दुओं की पूर्ण पराजय हुई।

इस घटना के बाद अपने लड़के के विश्वासघात के कारण राजा को बहुत बड़ी रकम देनी पड़ी। प्रकुपित विजेताओं की माँगें अत्याधिक थीं। राज्यकोष के साथ साथ इलिचपुर और इसके अधीन भूभाग पाने पर वे पूर्व अनुबंध का पालन करने को तैयार हुए।

इस तरह से प्राप्त धन और यश ने दिल्ली के राजसिंहासन को हड़पने में अला-उद्दीन की सहायता की। उसके शासनकाल में दक्षिण भारत में उसके विश्वासपात्र मलिक कफूर के अधीन तीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ भेजी गईं जिन्होंने तेलंगाना को पद-

---

[१] (अरब निवासियों ने सिन्ध को ७१२ ई० में विजय किया और गजनी के अमीर सबुक्तिगीन का भारत पर प्रथम आक्रमण ९८६-७ ई० में हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने देवगढ़ (देवगिरि) पर १२९४ ई० में चढ़ाई की।)

दलित कर तथा महाराष्ट्र के अधिकांश भाग को विजित कर नर्मदा से अन्तरीप कन्याकुमारी तक के पूरे देश को लूटा।[1]

अलाउद्दीन के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में उसके राज्य के विभिन्न भागों में हुई अव्यस्था; तथा दिल्ली दरबार में व्याप्त आन्तरिक षड्यंत्र और हलचल जो अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद कुछ वर्षों तक रही; दक्षिण भारत के निवासियों को हिन्दू सार्वभौमिकता की पुनः स्थापना करने का और देवगढ़ किले को छोड़कर प्रत्येक भूभाग को फिर से अपने अधीन करने का अवसर प्रदान किया। देवगढ़ का किला बहुत समय तक अपनी प्रतिरक्षा करता रहा। अन्त में सम्राट् मुबारक[2] एक बड़ी सेना लेकर देवगढ़ की सहायता को आया। उसके आने पर हरपालदेव और दूसरे राजा जो घेरा डालने में सहायक थे शीघ्रता से पीछे हटे। हरपाल देव का पीछा किया गया और पकड़े जाने पर सम्राट् की आज्ञा से निर्दयतापूर्वक जीवित ही उसकी खाल खींची गई।

१३२३ ई०—सम्राट् तुगलक के राजकाल में उसके लड़के जूना ने दक्षिण भारत के एक दूसरे विद्रोह का दमन किया और १३२३ ई० में तेलंगाना के केन्द्र में अपनी सेना ले जाकर उसकी राजधानी को लूटा।

---

[1] चन्द्रगुप्त मौर्य से देवगिरि के रामदेव तथा वरंगल के प्रतापरुद्र तक का साढ़े सोलह शताब्दियों का निर्माण-कार्य इस पच्चीस वर्ष से कम ही समय में नष्ट हुआ। 'यह एक ऐसी असामान्य घटना है जिसकी तुलना विश्व के इतिहास में नहीं पाई जाती।' शासन की भ्रष्टता एवं धार्मिक विवादग्रस्तता रामचन्द्र यादव के आकस्मिक पतन के कारण थे। उसका ध्यान बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध प्रतिरक्षा की तैयारियों की ओर से हट गया था। अव्यवस्था और उपेक्षा के अतिरिक्त सम्भवतः मानभाव सम्प्रदाय के अनुयायियों से मुस्लिम विजेता को यादव-शासन की दुर्बलता की गुप्त सूचना मिली। (सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास, भाग १, पृष्ठ २०-२१)। इसी तरह मलिक कफूर ने कृष्णा के उस पार होयसल राज्य को पददलित कर विनष्ट किया और 'बिना एक भी वाण चलाए मलिक कफूर और ख्वाजा हाजी ने देवगिरि से होयसलों की राजधानी द्वारसमुद्र (आधुनिक हलेबीद) तक के प्रदेश को बिना अधिक प्रयास के पदाक्रांत कर राजा को बन्दी बनाया।' (शेरवानी बहमनी : किंग्डम पृष्ठ ६-७)।

[2] [सुलतान कुतबउद्दीन मुबारक अलाउद्दीन का तृतीय पुत्र था। उसने १३१८ में दक्खिन पर चढ़ाई की।]

तेलंगाना की विजय और वरंगल[1] पर अधिकार होने पर वहाँ के अनेक प्रमुख निवासियों ने अपना घरबार छोड़ा। उनमें से दो ने इस प्रदेश के विजित होने के लगभग १२ वर्ष बाद तुङ्गभद्रा नदी के तट पर विजयनगर नामक शहर की स्थापना की जो नर्मदा के दक्षिण के अत्यन्त शक्तिशाली राज्य का केन्द्र हुआ।[2]

१२२५ ई०—युद्ध के सफलतापूर्वक अन्त होने पर, विजयोल्लास में जूना दिल्ली लौटा और १३२५ में अपने पिता का उत्तराधिकारी होकर मुहम्मद तुगलक शाह के नाम से सिंहासन पर बैठा।

यह शासक अपने समय का अत्यन्त सर्वगुणोपेत विद्वान था। किन्तु शासक के रूप में वह निर्दयी, दुःसाहसी और परिकल्पी था। उसके सिंहासन पर बैठने के दो वर्ष पश्चात् एक बहुत बड़ी सेना लेकर मुगल दिल्ली के फाटक तक आए। किन्तु एक बहुत बड़ी रकम पाकर वापस चले गए। मुहम्मद की दृष्टि में कार्णाटक की लूट और द्वारसमुद्र[3] का विध्वंस इसकी क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं था। सार्वजनिक विश्वास और साख खोकर उसने अनेक अविवेकपूर्ण उपायों द्वारा राजकोष को भरने की कोशिश

---

[1] गोदावरी और कृष्णा के बीच के समुद्र-तटीय प्रदेश तेलंगाना की राजधानी थी। यहाँ सैकड़ों वर्षों से काकतीय राजवंश शासन कर रहा था।

[2] विजय नगर राज्य (१३३६-१५६५)—मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दू-विद्रोह की भावना का नेतृत्व करने वाले शृंगेरीमठ के अध्यक्ष शंकराचार्य माधव विद्यारण्य ने दो वीरों हरिहर और बुक्क को जो मुहम्मद तुगलक द्वारा मुसलमान बनाए गए थे और विद्रोही हिन्दू शासकों का दमन करने के लिए दक्खिन में भेजे गए थे पुनः हिन्दू समाज में सम्मिलित कर उनको आन्दोलन की बागडोर सौंप दी। 'इस प्रकार राष्ट्र के हित में राजनीति और धर्म की अग्नि-परीक्षा हुई'...'सुल्तान की योजनाएँ पूर्णतया विफल हुईं।' पूज्य गुरु माधवाचार्य और हरिहर राय और बुक्क राय की सलाह से तुङ्गभद्रा नदी के तट पर एक नए हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई और इन दोनों भ्राताओं का १८ अप्रैल १३३६ को राज्याभिषेक हुआ। यह साम्राज्य २०० वर्ष से अधिक समय तक दक्षिण में मुसलमान विजय की धारा को रोके रहा। मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध इस हिन्दू-विद्रोह के तथा बाद को औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी के विद्रोह के कारण सांस्कृतिक अधिक और राजनीतिक कम थे। हिन्दुओं ने राजनीतिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा अपने धर्म की सुरक्षा को सदा ही अधिक महत्त्व दिया है।

[3] द्वारसमुद्र (आधुनिक हलेबीद) होयसल राज्य की राजधानी थी।

की। उसने चीन पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई और इस प्रयत्न में एक सेना विनष्ट हुई। नाम मात्र मूल्य का एक ताँबे का सिक्का चाँदी के सिक्के के तुल्यांक का प्रचारित किया। किन्तु इन संकेतों के चुकता करने की कोई सुरक्षा नहीं की। उसने दिल्ली की समूची जनसंख्या को देवगढ़ जिसका उसने बाद को दौलताबाद नाम रखा, ले जाने की विनाशकारी निर्दय योजना को कार्यान्वित किया। स्थानान्तरण बलपूर्वक कराया गया। शासनाज्ञा के कारण दिल्ली सूनी, और जनता उद्विग्न हुई। साम्राज्य पूर्णतया हिल गया।

राज्य के विभिन्न भागों में उपद्रव हुए। एक विद्रोह को पूर्णतया दमन करने के पूर्व ही राज्य के दूसरे भागों में विद्रोह होने की सूचना आ जाती। अफगान आक्रमण और बाद को कुछ उत्तरीय जनजातियों के विद्रोहों के कारण सम्राट् की सेना को नई राजधानी से दूर रहना पड़ा। वरंगल के सत्ताच्युत राजा ने कार्णाटक के कुछ सैनिकों की सहायता से मुसलमानी आक्रमणकारियों के विरुद्ध एक सफल युद्ध छेड़ा।

दक्षिण भारत को पूर्णतया वशीभूत करने के उद्देश्य से सम्राट् एक बड़ी सेना खड़ी कर ही रहा था कि एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ जिससे नर्मदा के दक्षिण में स्वतंत्र मुसलमान वंशों की नींव पड़ी। यह राजविद्रोह गुजरात के उन शासनविरोधी सामंतों के भाग आने से आरम्भ हुआ जिन्होंने एक विद्रोह में भाग लिया था और जिसका सम्राट् ने कुछ समय पूर्व दमन किया था। दण्ड के भय से उन्होंने दौलताबाद के सूबेदार कुतलुग खाँ के पास शरण ली। कुतलुग खाँ ने इस आशा से उन लोगों को शरण दी कि समय या परिस्थिति बदलने पर शायद सम्राट् उनके अनुचित आचरण की उपेक्षा कर दें। उनको शरण देने के कारण मुहम्मद सूबेदार से असंतुष्ट हुआ और उसको पदच्युत कर दिया। भागे हुए सामंतों को एकत्रित करने, क्षमा प्रदान करने और सम्राट् के समक्ष लाने की आज्ञा हुई।

१३४४ ई०—क्षमा का दृढ़ आश्वासन पाने पर इन सामंतों ने गुजरात की ओर प्रस्थान किया जहाँ सम्राट् पड़ाव डाले हुए था। किन्तु उस प्रदेश की सीमा पर पहुँचने पर कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिससे उनको विश्वासघात किए जाने का संदेह हुआ और वे अपने रक्षक-सैनिकों पर टूट पड़े और प्रभारी अधिकारी को मार डाला। विद्रोह का झण्डा फहराते हुए उन्होंने दौलताबाद को प्रस्थान किया।

सम्राट् के अत्याचार से क्षुब्ध कई हिन्दू सरदारों ने उनका साथ दिया और दौलताबाद पहुँचते २ उनकी संख्या इतनी विशाल हो गई कि दौलताबाद की दुर्ग-रक्षकसेना विद्रोहियों से मिल गई और अपने किलेदार को बन्दी कर किले को विद्रोहियों को सौंप दिया।

अब एक प्रधान चुनना आवश्यक हो गया क्योंकि अब तक उनके बीच व्यक्तिगत विशिष्ट योग्यता का कोई व्यक्ति न था। इस अंतराल में उनकी दृष्टि इस्माइल की ओर गई जो एक हजार घुड़सवारों का सेनापति था। इस चुनाव में इस आशा से भी संभवतः वे प्रभावित हुए कि इस्माइल का भ्राता मलिक मूत्र जो मालवा में सम्राट् की सेना का सेनापति था उनके दल में मिल जायगा। इस नए राजा ने अपना नाम नासिरउद्दीन रखा।

इस विकट विद्रोह की सूचना पाकर सम्राट् मुहम्मद ने एक बड़ी सेना लेकर गुजरात से प्रस्थान किया। दौलताबाद के समीप पहुँचने पर उसने देखा कि विद्रोही सेनाएँ उससे युद्ध करने के लिए प्रस्तुत खड़ी हैं। एक घनघोर किन्तु अनिश्चयात्मक युद्ध हुआ जिसमें सम्राट् की सेना अन्त तक डटी रही।

इस प्रथम युद्ध में विद्रोहियों ने सफलता न पाकर यह निश्चय किया कि नासिरउद्दीन दौलताबाद के किले की प्रतिरक्षा करे और दूसरे सरदार विभिन्न जिलों को लौट जाकर अस्थिर युद्ध जारी रखें।

विद्रोही सरदारों में जफर खाँ ने जो अपनी वीरता और आचरण के लिए प्रसिद्ध था एक बहुत ही साधारण कुल में उत्पन्न होकर सेनापति के उच्च पद को प्राप्त करने एवं एक राजवंश के संस्थापक होने का सौभाग्य प्राप्त किया।

विद्रोहियों की योजना की सूचना पाकर सम्राट् ने तुरन्त ही दौलताबाद पर घेरा डाला और जफर खाँ का पीछा करने के लिए इमादुलमुल्क तब्रीजी के नेतृत्व में फौज की एक टुकड़ी भेजी। दुर्ग की सेना अत्यन्त संकट में थी। जब सम्राट् को दिल्ली में विद्रोह होने की सूचना मिली, तो दौलताबाद के घेरों को अपने अधिकारियों पर छोड़कर सम्राट् को वहाँ जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। सम्राट् के प्रस्थान करने से दक्खिन के निवासियों को प्रोत्साहन मिला। दौलताबाद पर घेरा डाली हुई सेना को परेशान करने के लिए वे सब दिशाओं से आकर एकत्रित हुए। इससे भयभीत हो कर अधिकारियों ने जल्दी २ घेर उठा लिया और दक्खिन के अश्वारोहियों से निरन्तर पीछा और परेशाएन कि जाते हुए वे नर्मदा तट को वापस चले गए।

अपने दल के भाग्योदय की सूचना पाकर जफरखाँ बीस सहस्त्र घुड़सवारों को लेकर इमादुलमुल्क तब्रीजी जफरखाँ का पीछा न कर अपनी बड़ी सेना के साथ बीदर में ठहरा। इससे जफरखाँ को एक बड़ा राजनीतिक लाभ हुआ जिसका उसने विवेकपूर्वक और अधिक लाभ उठाया। केवल इतना ही दिखला कर कि वह एक ऐसी सेना का नेतृत्व कर रहा है जो सम्राट् की सेना का मुकाबला करने में सक्षम है, उसने तेलंगाना के राजा से पन्द्रह सहस्त्र घुड़सवारों और दौलताबाद से पाँच सहस्त्र सिपाहियों

की सहायता पाने में सफल होकर सम्राट् की सेना पर धावा बोला। एक घनघोर और दुर्धर्ष युद्ध के पश्चात् जिसमें इमादुल्मुल्क मारा गया, जफरखाँ विजयी हुआ। इस भूभाग पर आधिपत्य करने के लिए सेना को टुकड़ियाँ तुरन्त भेजी गईं और मुख्य सेना विजयोल्लास करती हुई दौलताबाद की ओर बढ़ी। जफरखाँ का स्वागत करने के लिए नासिर उद्दीन किले के बाहर आया और अपने विजयी सेनापति का अधिक प्रभाव और उत्कर्ष देख कर, विवेक से सामंतों को एकत्रित कर राज्यपद छोड़ने की अनुज्ञा पाने के लिए प्रार्थना की और राज्य शासन चलाने के लिए उसकी सिफारिश की। यह प्रस्ताव तुरन्त ही श्लाघापूर्वक स्वीकृत और कार्यान्वित हुआ।

बह्मनी वंश—१३४ ई०—कहा जाता है कि जफरखाँ पहले कंगो (गांगू)[1] नामक एक दिल्ली निवासी ब्राह्मण का दास था जिसने उसके गुणों को देख कर उसे केवल स्वतंत्र ही नहीं किया बल्कि उसकी सहायता की और भविष्य में उसके भाग्योदय की भविष्यवाणी की। सम्राट् होने पर जफर खाँ अपने संरक्षक को नहीं भूला और उसे अपने राज्यकोष का संरक्षक बनाया और पठान राजवंश को बह्मनी उपाधि दी। जफर खाँ ने १३४७ में सुल्तान अलाउद्दीन हसन कंगो बह्मनी पदवी ग्रहण कर राज्यारोहण किया।

पहले लिखा जा चुका है कि दक्खिन के मूलनिवासी राजकुमारों ने इस क्रान्ति को लाने में सहायता की। युद्ध संचालन की अनेक परिस्थितियों को, विशेषकर विद्रोहियों की अस्थिर योजना को देखते हुए जिसमें किसी भी देश के मूलनिवासी जनता की सहायता की सदा ही आवश्यकता होती है, हम दृढ़ अनुमान लगा सकते हैं कि इस क्रान्ति की सफलता में वहाँ के निवासियों का उससे अधिक हाथ था जितना मुसलमान इतिहासकार जानते या मानने को तैयार थे। नए सुल्तान के विवेक के अनेक लिखे हुए प्रमाण उपलब्ध हैं। किन्तु उसके बुद्धि का सब से उत्कृष्ट उदाहरण उसके मेल-मिलाप के उपायों में मिलता है जिसका अनुगमन कर उसने मुसलमानों के अधीनस्थ सारे इलाकों का आधिपत्य प्राप्त कर, अपनी नई प्रजा

---

[1] फिरिश्ता का कथन परम्परागत मालूम होता है। इस आलोचन का यहाँ कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु यह उल्लेख किया जा सकता है कि बोलचाल की मराठी में ब्राह्मण कानूनगो अनिवार्य रूप से कनगो पुकारे जाते हैं। फारसी में भी यह अपभ्रंश शब्द पाया जाता है। (आधुनिक अनुसन्धान ने यह प्रमाणित किया है कि हसन फारस के राजा बह्मन शाह का एक वंशज था, ब्राह्मण-उत्पत्ति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।—डॉ० ईश्वरी प्रसाद : हिस्ट्री आव मिडियेवल इण्डिया, पृ० ३७८-९)

से अपनी स्वार्थ-सिद्धि की, और वरंगल के राजा की मित्रता और सहारा पाने में सफल हुआ जो इसके पूर्व मुसलमानों का एक दुर्धर्ष बैरी था।

दिल्ली के सम्राट् मुहम्मद तुगलक शाह की मृत्यु से नया सम्राट् उस ओर के समस्त संकटों से आश्वस्त हुआ और शीघ्र ही अपनी दुर्दान्त और लड़ाकू जनता को जिन पर वह राज्य करता था, कार्णाटक की विजय करने में लगाया। विजयनगर के राजाओं से हुई आगामी प्रतिद्वन्द्विता के कारण उसके उत्तराधिकारियों के राज्य की आन्तरिक क्षय से काफी अधिक समय तक रक्षा हुई, इसकी अपेक्षा कि वे जल्दी-जल्दी राज्यविस्तार करते या अपनी राजविद्रोहपूर्ण सेनाओं को तुष्टपूर्ण विश्राम भोगने के लिए छोड़ देते।[1]

---

[1] मुहम्मद कासिम हिन्दू शाह फिरिश्ता का जन्म लगभग १५७० में हुआ था। उसने तारीखी फिरिश्ता नामक इतिहास-ग्रन्थ अपने से पूर्व लिखी पुस्तकों, परम्परा और व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर लिखा। 'सामान्यतया भारतीय इतिहास पुस्तकों में यह सब से अच्छा इतिहास-ग्रन्थ माना जाता है।' (स्मिथ)। रशब्रूक विलियम्स के अनुसार फिरिश्ता का वर्णन 'स्वस्थ, परिशुद्ध और सन्तुलित है।'

फिरिश्ता के अनुसार बह्मनी वंश के शासकों के नाम नीचे लिखे जाते हैं :

१. सुल्तान अलाउद्दीन (१३४७-१३५७)
२. " मुहम्मद शाह बह्मनी (१३५८-१३७३)
३. " मुजाहिद शाह बह्मनी (१३७३-१३७७)
४. " दाउद शाह बह्मनी (लगभग १ महीना शासन किया) (१३७८)
५. " मुहम्मद शाह बह्मनी (द्वितीय) (१३७८-१३९६)
६. " घियासउद्दीन शाह बह्मनी (१ महीना २० दिन) (१३९७)
७. " शमसीउद्दीन शाह बह्मनी (६ महीने)
८. " फिरोज (रोजी अफजून) शाह बह्मनी (१४२२ में मृत्यु)
९. " अहमद शाह वली बह्मनी (१४२२-१४३४)
१०. " अलाउद्दीन (द्वितीय) शाह बह्मनी (१४३५-१४५७)
११. " हुमायूँ शाह बह्मनी (१४५७-१४६०)। वह जालिम कहलाता था। वह क्रोध और निर्दयता का शिकार हुआ।
१२. सुल्तान निज़ाम शाह बह्मनी (१४६१-१४६२)
१३. " मुहम्मद शाह बह्मनी (१४६३-१४८२)

बह्मनी वंश[1] ने डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया। मुसलमान इतिहासों से एवं प्राचीन मराठा परिवारों के वंशजों के कब्जे में जो बखर हैं उनसे इस समय के मराठों की दशा के बारे में हमको बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि प्रतीत होता है कि मुसलमान विजय के समय यह प्रदेश कुछ-कुछ स्वतन्त्र छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। यह सम्भव है कि अधिकांश पालेगार जिनका राज्य दुर्गम स्थानों में था १३४७ में इस नये राज्य के शासक के पक्ष में हो जाने या समर्पण करने को प्रलोभित किए गए हों। सुलतान अलाउद्दीन के राज्यारोहण का समय १३४७ दिया जाता है।[2]

---

१४. " महमूद शाह बह्मनी (१४८२-१५१८)
१५. " अहमद शाह बह्मनी (१५१८-१५२०)
१६. " अलाउद्दीन (तृतीय) (१५२०-१५२२)
१७. " वलीउल्ला शाह (१५२२)
१८. " कलीमउल्ला बह्मनी (१५२४), बह्मनी वंश का अन्तिम शासक।

बह्मनी वंश के सुलतानों के शुद्ध नामों तथा काल-क्रम के सम्बन्ध में डॉ० ईश्वरी प्रसाद कृत मध्यकालीन भारत, अध्याय १४ में दी हुई सूची से सहायता ली गई है।

[2] इस समय मराठा प्रदेश में ईसाई संवत के अतिरिक्त चार संवत चलते हैं। १. शालिवाहन; २. सूरसन (अर्बी संवत); ३. फसली संवत; ४. राज्याभिषेक (शिवाजी के राज्यारोहण तिथि से)।

हिन्दुओं के अनुसार दिन और रात में साठ (६०) घटिकाएँ (१ घटिका २४ मिनट की) होती हैं जिनकी गणना सूर्योदय से होती है। मृग (कृषक वर्ष) सदा वैशाख के अन्त या ज्येष्ठ के आरम्भ से शुरू होता है। यह चन्द्र वर्ष है। सूर्य वर्ष से इसका समञ्जन करने के लिए इसमें हर चौथे वर्ष में एक अधिक मास जोड़ दिया जाता है और १८० वर्ष में एक क्षय मास कम कर दिया जाता है।

सूरसन संवत मृग में १३४४-४५ ई० में आरम्भ हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद तुगलक शाह ने इसे चलाया। अकबर ने फसली संवत नर्मदा के उत्तर में आरम्भ किया और उसके पौत्र शाहजहाँ ने १६३७-३८ ई० में इसे दक्खिन में प्रचलित किया। सूरसन और फसली दोनों संवत सूर वर्ष हैं। सूर और चन्द्र वर्षों में समंजन न करने के कारण इनमें हर १०० वर्ष पर तीन वर्ष से अधिक का अन्तर पड़ जाता है। ये दोनों संवत मृग कहलाते हैं क्योंकि ये उस समय से आरम्भ होते हैं जब कृषक अपने खेतों को बोना शुरू करते हैं।

१३६६ ई०—परिस्थितिवश नए सुल्तान को वहाँ के निवासियों से मेल-मिलाप करने को वाध्य होना पड़ा। उसने वहाँ के प्रमुख आदमियों को वंशक्रमागत भूमि एवं अभयदान प्रदान किया और देशमुखों एवं देशपाण्डेयों के रूप में उनको उनकी भूमियों पर पुष्टि की। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ सरदारों[1] को छोटे सैन्य-पद दिए गए और घुड़सवारों की छोटी टुकड़ियों के खर्चे के लिए कुछ भूमि जागीरें में दी गई। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी भूमि सदा किसी प्रदेश के सूबेदार के अधीनस्थ किसी बड़े मुसलमान जागीरदार के अधिकार क्षेत्र में होती थी। इस प्रकार के साधनों द्वारा सुल्तान ने वहाँ के निवासियों से अपनी स्वार्थ सिद्धि की। कोंकण-घाट-माथा प्रदेश को छोड़ कर, पुरन्दर पर्वत श्रेणियों से लेकर हिरण्यकासी नदी तक के लगभग समस्त महाराष्ट्र पर उसका आधिपत्य हुआ। दक्खिन में मुसलमान शासन के स्थापन के सौ वर्ष से अधिक समय तक कोंकण-घाट-माथा और दाबुल से लेकर अन्तरीप रामस तक का समुद्र-तटीय भूभाग मुसलमानों द्वारा पूर्णतया विजित नहीं हुआ। मुसलमान शासकों के विरुद्ध वहाँ के मूलनिवासियों द्वारा मात्र दो एक विद्रोह हुए। पहला विद्रोह सुल्तान महमूद शाह के राज्यकाल में १३६६ के लगभग या कार्णाटक पर उसकी पहली चढ़ाई से लौटने के बाद हुआ। इस विद्रोह का नेतृत्व उसके ही अधिकारी बहराम खाँ मजेनदेरानी ने किया। सुल्तान की मृत्यु के समाचार से तथा कार्णाटक समरयात्रा पर गई हुई सेनाओं की दौलताबाद से अनुपस्थिति से विद्रोह उठ खड़े हुए। पुराने राजाओं का वंशज या सम्भवतः सम्बन्धी जाधव[2] नाम के एक मराठा सरदार ने बहराम खाँ को विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया था। जाधव नायकों का सरदार कहलाता है और इस प्रदेश में इस समय भी जाधव देशमुख हैं। इस विद्रोह में वागलान के राजा सम्मिलित हुए। वरार के दूसरे सरदारों ने भी मराठा नीति के अनुसार सैनिक टुकड़ियाँ भेजीं। वहराम खाँ ने इन सब सहायताओं का पूरा-पूरा लाभ उठाया और इस प्रदेश का अधिक भाग जो मलिक कफूर के समय

---

[1] हर नायक पोळ और कामराजे घाटगे २०० से ३०० घोड़े के मनसबदार थे। और मनसबदारों के नाम मालूम नहीं हैं—मराठी हस्तलेख।

[2] स्काट के अनुवाद में इसका नाम जयदेव है। किन्तु फिरिश्ता के कुछ प्रतियों में गोविन्ददेव है। फिरिश्ता के अनुसार नायकों का सरदार देवगढ़ के राजा का वंशज था। सब हिन्दू हस्तलेखों के अनुसार रामदेव राव जाधव देवगढ़ का राजा था। यह असंभाव्य नहीं है कि इस सरदार का नाम गोविन्द राव जाधव रहा हो।

से, प्रतीत होता है, महाराष्ट्र कहलाता था उसके हाथ में आ गया। महमूद शाह ने बहराम खाँ को इस कार्य से अपना हाथ खींच लेने के लिए कहा। महमूद शाह उसका व्यक्तिगत रूप से आदर करता था। अतः उसने अत्यन्त उदार शर्तें उसको प्रदान की जिनको उसने महाराष्ट्र प्रभाव में होने के कारण ठुकरा दीं। विद्रोहियों ने पैठन[1] की ओर प्रस्थान किया। जहाँ उनको अभावग्रस्त साहसिक आदमियों की एक बड़ी भीड़ उपलब्ध हुई। मालूम होता है कि ऐसे बहुसंख्यक लोग दक्खिन सदा ही रहे हैं।

एक अनुभवी अधिकारी मसनूद अली खाँ मुहम्मद के नेतृत्व में सुल्तान की अधिकांश सेना मोर्चे पर भेजी गई। जल्दी में लड़ाई करना पसन्द न कर वह पैठन से कुछ मील दूर शिवगाँव में ठहरा। उस जगह पर बहराम खाँ ने उस पर अकस्मात् आक्रमण करने का प्रयत्न किया। किन्तु मसनूद अली खाँ के सावधान होने के कारण वह विवेकहीनतावश अपनी पंक्ति को लौट गया। इससे उसके शत्रु को उसकी कमजोरी मालूम हो गई और उसकी अपनी ही सेना को यह सोचने का अवसर मिला कि उसका नेता आमने-सामने की मुठभेड़ की सफलता में संशयात्मक है। इसका परिणाम, जैसा कि होना था, घातक हुआ। मसनूद अली खाँ ने उस पर आक्रमण करने की तुरन्त ही तैयारी की, और सुल्तान के पास जो सेना के पृष्ठ भाग में पहाड़ियों में शिकार खेल रहा था, यह सूचना भेजी कि वह विद्रोहियों से मुठभेड़ करने जा रहा है। तुरन्त ही सुल्तान ने अपने घोड़े को दौड़ाया और युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले वहाँ पर पहुँचा। उसके उपस्थित होने की सूचना से विद्रोह शान्त हो गया। बागलान का राजा तुरन्त ही भाग खड़ा हुआ और दूसरों ने भी उसका अनुगमन कियां।

बहराम खाँ और जाधव ने पहले दौलताबाद में, और बाद को अपने पीछा करने वाले शत्रुओं से दूर, गुजरात में शरण पाने की कोशिश की। बह्मनी वंश के पतनाभिमुख होने के पूर्व कुछ महाराष्ट्र सैन्यदल ने अवसर प्राप्त कर अपनी राज-भक्ति को तिलाँजलि दी। महाराष्ट्र में यह एकमात्र महत्त्वपूर्ण विद्रोह था।

१३५६ ई०—१४२९ ई०—महाराष्ट्र में १३६६ से दुर्गादेवी नाम का एक विशिष्ट भयानक अकाल आरम्भ हुआ। हिन्दू आख्यायिकाओं के अनुसार यह १२ वर्ष पर्यन्त रहा। बारह वर्ष बाद अनुकालिक वर्षा हुई। किन्तु समूचा प्रदेश एकदम

---

[1] गोदावरी के तट पर स्थित पैठन या प्रतिष्ठान इ० पू० ७३ से ई० २१८ तक आंध्र या सातवाहन वंश की राजधानी थी। विद्या, संस्कृति और व्यापार के लिए इसकी दूर तक ख्याति थी। सरदेसाई : पृष्ठ १०

जनशून्य हो चुका था। तीस वर्ष से अधिक समय तक गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच के प्रदेश से अत्यन्त अल्प राजस्व की प्राप्ति हुई। मुसलमानों द्वारा पूर्व विजित पहाड़ी दुर्ग और दुर्गम स्थान पालेगारों और लुटेरों के हाथों में चले गए थे। लौट कर आए हुए किसान अपने गाँवों से खदेड़ दिए गए। लुटेरों का विनाश, जनता की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए सुल्तान अहमदशाह वली बहमनी ने १४२९ में वहाँ मलिक-उल-तुजार के नेतृत्व में एक सेना भेजी। उसका साथ दादू नरसू काले नामक एक अनुभवी ब्राह्मण ने तथा वहाँ के उन वंशागत देशमुखों ने दिया जो वहाँ मिल सके। सर्वप्रथम उन्होंने खटाओ देश के कुछ रमोसियों और महादेव पर्वत श्रेणियों पर अड्डा बनाए एक दल के विरुद्ध कार्यवाही की। वहाँ से यह सेना वइ की ओर बढ़ कर कई किलों पर कब्जा करने के बाद कोंकण में प्रवेश किया। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मलिक-उल-तुजार ने इस अवसर पर पर्वत-शृङ्खलाओं पर स्थित दोनों ओर के गढ़ों पर बिना अधिकार किए घाट-पर्वत श्रेणियों को पार किया। बीदर वापस लौटने पर उसने वहाँ के निवासियों को फिर से बसाने और भूमि का पुनर्विभाजन करने का कार्य राज-सभा के एक तुर्की कंचुकी और दादू नरसू को सौंपा। गाँवों की पूर्व सीमाओं का पता न था। नई सीमाएँ निर्धारित करने में उनकी सीमाएँ बहुत बढ़ गई यहाँ तक कि दो या तीन गाँवों का एक गाँव हो गया। जो जमीन जोतना चाहते थे उन सबों को भूमि दी गई। पहले साल कोई कर नहीं लगा। दूसरे वर्ष प्रति बीघा एक तोबड़ा अनाज लिया गया। इस अभियान से घाट-माथा के लुटेरों द्वारा उगाहे जाते हुए कष्टकर अंशदान से जनता को नाम मात्र का अस्थायी छुटकारा मिला और यह मालूम होने में देर नहीं लगी कि जब तक समस्त पर्वत-दुर्ग वश में नहीं किए जाते गाँवों की कोई प्रभावपूर्ण सुरक्षा नहीं की जा सकती।

१४२९ ई०—दिलावर खाँ के नेतृत्व में १४३६ में एक दूसरा अभियान भेजा गया जो व्यर्थ ही रहा। सुलतान अलाउद्दीन (द्वितीय) बहमनी के शासन तथा मीआ मनुल्ला दक्खिनी के प्रशासन काल में मलिक-उल-तुजार के नेतृत्व में एक तीसरा दल भेजा गया। मीआ मनुल्ला दक्खिनी ने सह्याद्रि श्रेणी के गढ़ों को तथा दभोल के दक्षिण ओर के कोंकण के अविजित भागों को जीतने की एक योजना बनाई। दक्खिनी सेना की एक उत्कृष्ट और चुनी हुई टुकड़ी लेकर मलिक-उल-तुजार आगे बढ़ा और विजय एवं अनुशासन की एक व्यवस्थित योजना बना कर कार्य आरम्भ किया। चाकन को प्रधान कार्यालय बना कर उसने जुन्नर नगर के पास के एक किले को अपने अधिकार में लिया और वहाँ से समय-समय पर सैन्य टुकड़ियों को कोंकण में भेज कर अनेक राजाओं को अधीन किया। अन्त में स्वयं ही कोंकण

जाकर एक किले पर घेरा डाला। वहाँ का राजा अपने पूरे कुटुम्ब के साथ समर्पण करने को विवश हुआ।

इस राजा का कुल-नाम सिर्के था। निश्चय ही यह वही पालेगार घराने का था जिसने तेरहवीं शती के आरम्भ में राजा सिंघन द्वारा पन्हाला के राजा के विजित किए जाने के बाद कृष्णा नदी के उद्गम् स्थान के आस-पास के स्थानों पर अधिकार कर लिया था। मलिक-उल-तुजार ने राजा पर अपने धर्म को त्याग देने और कुरान के मत को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला। सच्ची मराठा नीति के अनुसार घातक बदला लेने के इरादे से प्रकुपित और कुशाग्र बुद्धियुक्त राजा ने यह विनय की कि कोंढाना प्रदेश के सिंहगढ़ किले के राजा और उसके बीच में एक कुल-परम्परागत प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वंद्विता चली आ रही है और वह उसका सगा सम्बन्धी है और यदि कोंढ़ाना का राजा अपना धर्म परिवर्तन किए बिना सत्तारूढ़ बना रहे और वह मुसलमान धर्म स्वीकार कर ले तो उसकी प्रजा उसको घृणा से देखेगी और उसका प्रतिद्वंद्वी उसके विरुद्ध विद्रोह उत्तेजित कर उस पर विजयी होगा। अतः उसने यह प्रस्ताव रखा कि कोंढाना पर अधिकार प्राप्त किया जाकर यह उसको या उसके किसी सम्बन्धी को प्रदान किया जाय जिससे कि वे इस्लाम धर्म स्वीकार करें और सुल्तान को वार्षिक कर दें और उन सभी राजाओं को जो भविष्य में राजभक्त न रह सके नियन्त्रित रखें।

१४५३ ई०—यह प्रस्ताव बिना समझे-बूझे स्वीकार किया गया। सेना भेजी गई और विश्वासघात करने के लिए रात्रि में बनाए गए एक ऐसे घात स्थान पर ले जाई गई जहाँ मराठों ने लगभग सात हजार मुसलमानों को उनके सेनानायकों के साथ सोते ही में निर्दयतापूर्वक काट डाला। सुल्तान की शेष सेना पीछे हटी और सिर्के वंश का उस पर पुनः अधिकार हुआ। आगे के लगभग सोलह वर्षों तक मीआमनुल्ला दक्खिनी की योजना को फिर से कार्यान्वित करने का कोई और प्रयास नहीं किया गया।

१४६९ ई०—विजयनगर के राजाओं के हाथ में गोआ किस समय आया यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु १४६९ में मुहम्मद शाह के राजकाल में ख्वाजा जहाँ गावाँ ने एक आक्रमण कर गोआ पर अधिकार एवं महाराष्ट्र के दक्षिण-पश्चिम कोण के समस्त दुर्जेय प्रदेश का पूर्णतया दमन किया।

इस तरह से विजित प्रदेश बह्मनी वंश के राजाओं के अधिकार में बहुत ही थोड़े समय तक रहे। अलाउद्दीन द्वारा निर्मित और स्थापित भवन का और अधिक निर्माण उसके उत्तराधिकारी करते गए। शीघ्र ही अनावश्यक रूप से ऊँची एवं नींव कम चौड़ी होने के कारण यह अपने भार को सम्हाल न सकी। उड़ीसा के राजा के

पराजय और मुहम्मदशाह के विजय से उपलब्ध पूरब की ओर के विस्तृत प्रदेश से एक ऐसी संकट-स्थिति पैदा हुई जिसका एक मात्र अन्त सुधार या क्रान्ति था।

१५२६ ई०—इस वंश का अन्त १५२६ में हुआ। किन्तु इसके बहुत पहले ही दक्षिण में पाँच पृथक मुसलमान राज्य थे : आदिलशाही (बीजापुर); २. कुतुबशाही (गोलकुण्डा); ३. इमादशाही (बरार); ४. निजामशाही (अहमदनगर) और ५. बरीदशाही (अहमदाबाद बीदर)। प्रथम मुसलमान राज्य के टुकड़े होने पर पाँच स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आए जिनमें से केवल तीन ही बचे थे जब मराठे पराधीनता से छुटकारा पाने और भारत की घटनाओं के प्रमुख अभिनेता के रूप में सामने आने लगे।

सत्तरहवीं शती के आरंभ तक की इन मुसलमान राज्यों में हुई घटनाओं का विवरण पहले ही से उपलब्ध है। किन्तु स्पष्टता के लिए बह्मनी वंश के पतन का तात्कालिक कारण और उपर्युक्त राज्यों की उत्पत्ति और उत्थान का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है क्योंकि ये हमारे विषय से सम्बन्धित हैं।

प्रथम सुल्तान की मृत्यु के समय १३५७ में दक्खिन में लगभग पूरे महाराष्ट्र पर मुसलमानों का आधिपत्य छाया हुआ था। तेलंगाना का एक छोटा भाग और कार्णाटक के रायचुर और मुदकल भी उनके अधिकार में थे। सिंहासन पर बैठने के बाद मुहम्मदशाह बह्मनी ने सर्वप्रथम अपने प्रदेश को तरफ[1] (प्रांत) नाम के ४ हिस्सों में बाँटा और हर एक तरफ पर तरफदार नाम का एक राज्यपाल रखा।

१४७८ ई०—विजयनगर और तेलंगाना के राजाओं, कोंकण के पालेगारों, उड़ीसा के राजा एवं दूसरों के प्रदेशों को जीतकर १३० वर्ष की अवधि में इस राज्य ने अपना बहुत अधिक विस्तार किया। विजयनगर को छोड़ कर सभी शासनों का प्रायः पूर्ण उन्मूलन हुआ। चारों मूल भाग दोषयुक्त होने के साथ जिनका कभी सुधार नहीं हुआ इतना विस्तार पा गए थे कि यहाँ के तरफदारों (राज्यपालों) को नियंत्रण और देखरेख में रखना कठिन हो गया। ऐसी परिस्थिति में कोई उपाय सफल नहीं होता। मुहम्मदशाह के योग्य मंत्री ख्वाजा जहाँ गावाँ ने १४७८ के लगभग शासनाधिकार को बाँटने और प्रत्येक प्रदेश के कार्यों की उचित जानकारी रखने का प्रयास किया। राज्य के नीचे लिखे हुए पूर्व उपभाग तथा नए प्रस्तावित उपभाग का मिलान करने से उसकी योजना स्पष्ट रूप से सामने आती है। हर एक तरफ (प्रदेश) में नियुक्त तरफदार का नाम भी दिया जाता है। पाठकों का ध्यान इस विवरण की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया जाता है :

---

[1] तरफ का अर्थ है ओर। सूबा का भी यही अर्थ है।

बहमनी वंश

पुराने प्रदेश	नए प्रदेश दो शासन के रूप में	शासक का नाम
१. कुलबर्गा	१. बीजापुर। इसके साथ भीमा नदी तक के अनेक जिले जिसमें रायचुर और मुदकल थे सम्मिलित थे।	ख्वाजा जहाँ गावाँ
	२. हसनाबाद[1] जिसमें कुलबर्गा, सागर, नलदुर्ग और शोलापुर सम्मिलित थे।	हब्शी नपुंसक दस्तूर दीनार
२. दौलताबाद	१. दौलताबाद।	युसूफ आदिल खाँ सवी
	२. जुन्नर। इसके साथ कोंकण तथा गोआ और बेलगाँव तक के दक्षिण के जिले सम्मिलित थे।	फखरुल्मुल्क
३. तेलंगाना	१. राजमन्दी। मसुलीपटम, पिलकोन्डा, औवरी तथा अन्य स्थान।	निजामुल्मुल्क बहरी
	२ वरंगल	अजीम खाँ
४. बरार	१. गाविल	फथुल्ला इमादुल्मुल्क
	२. महूर	हबशी खोदावन्द खाँ

उपर्युक्त आठों तरफों (प्रदेशों) के शासन की जानकारी रखने के निमित्त आठों तरफों के अनेक स्थानों का राजस्व सुल्तान के निजी खर्च के लिए आरक्षित किया गया और राजस्व के उगाही का प्रबन्ध करने के लिए विशेष कर संग्राहक नियुक्त किए गए।

[1] कुलबर्गा का एक नाम है।

यदि इन साधनों का स्थिर रूप से कुछ समय तक अधीक्षण किया गया होता तो राज्य के प्रधान का उचित उत्कर्ष बहुत समय तक बना रहता। किन्तु शत्रुओं की ईर्ष्या के कारण उसका प्रभाव समाप्त हुआ और एक षड्यन्त्र के कारण उसका जीवन संकट में पड़ा। उन्होंने उस पर झूठा अभियोग लगाया और मुहम्मद शाह की आज्ञा से उसका उद्दंडता तथा अन्यायपूर्वक वध किया गया।

वे दोष जिनको वह उखाड़ फेंकना चाहता था, इस घटना के बाद और अधिक पनपे। ख्वाजा जहाँ के शत्रु सरदार जो भूतपूर्व मन्त्री के मित्रों का नाश कर अपनी निजी शक्ति को बढ़ाना चाहते थे, सुल्तान के साथ बने रहे। कहा जाता है कि निजामुल्मुल्क बहरी ने ख्वाजा जहाँ के नाश की योजना बनाई थी। निजामुल्मुल्क की उत्पत्ति और जीवन यात्रा ध्यान देने योग्य है। वह पथरी शहर[1] के एक ब्राह्मण कुलकर्णी का लड़का था जो अकाल पड़ने के कारण अपने निवास स्थान से अपने पिता के साथ कार्णाटक चला आया और वहाँ अहमदशाह वली बह्मनी के एक अभियान के समय मुसलमान सिपाहियों द्वारा कैद कर लिया जाकर एक दास के रूप में सुलतान के समक्ष लाया गया। उसने उसे मुसलमान बनाया और उसका नाम मलिक हसन रखा। मुहम्मदशाह के शासन काल में उसको हजारी ५। १००० घुड़सवारों के सेनापति का पद प्रदान किया गया। धीरे-धीरे और ऊँचे पदों को प्राप्त करता हुआ वह अन्त में ख्वाजा जहाँ की अनुशंसा से तेलंगाना के शासन पद पर नियुक्त किया गया। उसको निज़ामुल्मुलक की उपाधि एवं जागीर में तेलंगाना का कुछ भाग दिया गया। किन्तु निजामुल्मुल्क ने अपने लड़के मलिक अहमद को अपना नायब नियुक्त कराया और वह स्वयं सुल्तान के साथ बना रहा और अन्त में षडयन्त्र रच कर अपना कल्याण करने वाले का सिर काटने का घृणित कार्य किया। इस तरह देश ने अपने एक सम्मानार्ह सेवक को खो दिया। यद्यपि उसकी उच्चाभिलाषा अस्थायी रूप से पूरी हुई, किन्तु उसका स्वयं का अन्त बड़ा खराब रहा। एक दुष्ट ने जिसको उसने गरीबी से निकाल कर उच्च स्थान पर सुशोभित किया था, विश्वासघातपूर्वक उसकी हत्या कर दी।

ख्वाजा जहाँ के मृत्यु के बाद मुख्य तरफदारों ने मुहम्मदशाह की प्रभुता के प्रति कोई आदर न दिखाया और प्रत्यक्ष में उसकी अधीनता मानते हुए धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो गए।

---

[1] यह स्थान औरंगाबाद से ७६ मील दक्षिण-पूरब में पथरी जनपद में है। फिरिश्ता; मराठी हस्तलेख; लक्ष्मण नारायण कृत हकीकते-इ-हिन्दुस्तान।

इस तरह दक्खिन में वे राज्य बने जिनको अपने अधीन करने में तैमूर के वंशजों को काफी लम्बे समय तक लड़ना पड़ा जिससे मुसलमान कमजोर हो गए और धीरे-धीरे वह दुर्दमनीय लुटेरी भावना उत्तेजित हुई जो युगों से दबी पड़ी रहने पर भी महाराष्ट्र के हिन्दू निवासियों में जन्मजात थी। इस तरह उनके विजेतओं की कलह ने उन छिपे हुए अंगारों को उत्तेजित किया जो सह्याद्रि पर्वत श्रेणियों के जंगलों की अत्यन्त सूखी घास की तरह सुलग कर, फैलती हुई लपटों में फूट पड़े और दूर-दूर के लोग उस दावानल को देख कर आश्चर्य करने लगे।

अध्याय २

(१४७८ ई० से १६३७ ई० तक)

१४७८ ई०—ख्वाजा जहाँ गावाँ के प्रशासन में तरफों (सूबों) के विभाजन के फलस्वरूप यूसुफ आदिल खाँ सवी की, जैसा पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है दौलताबाद में नियुक्ति हुई। किन्तु अपने संरक्षक और घनिष्ठ मित्र ख्वाजा जहाँ गावाँ की मृत्यु के बाद आदिल खाँ बीजापुर स्थानान्तरित किया गया। वहाँ परिस्थितिवश उसकी शक्ति में वृद्धि हुई और १४८६ में वह स्वतन्त्र हुआ। इस तरह बीजापुर राजघराने का जो आदिल शाही वंश के नाम से विख्यात है आरम्भ हुआ।[1]

अहमदनगर का प्रथम राजकुमार एवं निजाम शाही या बहरी वंश[2] का संस्थापक मलिक अहमद था। वह निजामुल्मुल्क बहरी का पुत्र था जो इस बात के लिए बदनाम था कि ख्वाजा जहाँ गावाँ की हत्या कराने में उसका मुख्य हाथ था।

ख्वाजा जहाँ गावाँ के मरने पर निजामुल्मुल्क ने मन्त्रिपद सम्हाला और मुहम्मद शाह की इच्छानुसार उसके पुत्र सुलतान महमूद का मुख्य मन्त्री भी नियुक्त हुआ। पहले की विस्तृत जागीर के अतिरिक्त उसको भीर तथा अन्य जनपद दिए गए। मलिक अहमद जो नवप्राप्त प्रदेश, राजमन्द्री और ओरी, में अब तक अपने पिता का नायब (स्थानापन्न) था वहाँ से बुलाया गया और उत्तर की ओर नियुक्त

---

[1] मुगलों ने उनको शाह (राजा) की उपाधि कभी नहीं स्वीकार की। इसीलिए समस्त मुगल लेखों में बीजापुर के सम्राटों का आदिल खाँ के नाम से उल्लेख है।

[2] शाही 'बाज' चिड़ियाघर का प्रभार उसके पास होने के कारण निजामुल्मुल्क का नाम बहरी पड़ा। रानाडे के अनुसार यह शब्द भैरव का अपभ्रंश है जो पात्रि के कुलकर्णी परिवार का कुल-नाम है। अहमदनगर के सुलतानों ने अपनी उत्पत्ति की स्मृति में पात्रि गाँव ब्राह्मण कुलकर्णियों को इनाम (कर-मुक्त वंशानुगत अधिकार) में दिया।

हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि उसको उस प्रदेश का प्रभार दिया गया जो १४७८ के प्रबन्ध के अनुसार दौलताबाद और जुन्नर के जनपदों में सम्मिलित था।

अपने पिता निजामुल्मुल्क की हत्या हो जाने पर मलिक अहमद ने विद्रोह किया और स्वतन्त्र हो गया। उसको दबाने के लिए किए गए महमूदशाह के सारे प्रयत्न व्यर्थ रहे।

१५१२ ई०—कुत्बुल्मुल्क १४९५ में तेलंगाना का तरफदार (राज्यपाल) नियुक्त किया गया। १५१२ में उसने अपने को गोलकुण्डा का अधीश्वर घोषित कर एवं कुत्बशाह की उपाधि धारण कर राजसिंहासन पर बैठा।

बरार राज्य का संस्थापक उस प्रान्त का राज्यपाल फतह उल्ला इमादुलमुल्क[1] था। इमादशाही वंश का १५७४ में अन्त हुआ जब मुर्तिजा निजाम शाह प्रथम ने बरार को विजय कर अहमदनगर के राज्य में मिलाया।

बरीदशाही वंश इमादशाही वंश से भी कम समय तक टिका। इसकी सार्वभौमिकता का संस्थापक[2] अमीर बरीद था। बादशाह के शरीर पर उसका नियन्त्रण उसके प्रभाव का कारण था। उसके हाथ में केवल बीदर, कुलबर्गा और आस पास के कुछ जिले थे जिसके अधिकांश भाग को बाद में बीजापुर ने अपने राज्य में मिलाया।

बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुन्डा ये तीन राज्य हैं जिनका हमारे इतिहास से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।[3]

इसके आगे का वर्णन करने के पहले यह उचित है कि दक्खिन शब्द का प्रचलित अर्थ बताया जाय, क्योंकि प्राचीन हिन्दुओं के अर्थ के अनुसार भारतीय प्रायद्वीप के पाँचों विशाल भागों का समूचा प्रदेश इस शब्द में सम्मिलित है।‡

---

[1] फतहउल्ला पहले कार्णाटक का एक हिन्दू था जो बाद को मुसलमान हो गया। विद्रोह करने के समय १४८४ में वह गाविलगढ़ का राज्यपाल था।

[2] अमीर बरीद ने औपचारिक रूप से १५२६ में अपने को एक स्वतन्त्र राजा घोषित किया।

‡ डॉ० हेमचन्द्र राय चौधुरी ने वाल्मीकि रामायण में लिखी हुई दक्षिणापथ की सीमा को दक्खिन की सीमा माना है। रामायण के अनुसार, द्राविड़ दक्षिणापथ में सम्मिलित नहीं है।—डॉ० याजदानी : अर्ली हिस्ट्री आव द डक्कन, पृ० ३-४।

[3] प्रत्येक वंश के राजकुमारों की सूची और उनका शासन काल १६वीं शती के अन्त तक का, नीचे लिखे अनुसार है। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के काल इन कालों से कहीं २ भिन्न हैं।

बीजापुर आदिलशाही	अहमदनगर निजामशाही या बहरी वंश	गोलकुन्डा या कुतुबशाही
(१) सुलतान यूसुफ आदिलशाह १४८९ में स्वतन्त्र हुआ। उसकी मृत्यु १५१० में हुई।	(१) मलिक अहमद १४८७ के लगभग स्वतन्त्र हुआ और अहमद निजामुलमुल्क बहरी की उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु १५०८ में हुई।	(१) सुलतान कुतबउलमुल्क १५१२ में स्वतन्त्र हुआ। १५५१ में उसकी हत्या हुई।
(२) सुलतान इस्माइलशाह अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उसकी १५५४ में मृत्यु हुई।	(२) सुलतान बुर्हान निजाम शाह पिता की गद्दी पर बैठा और १५५३ में उसकीमृत्यु हुई।	(२) सुलतान जमशेद अपनी पिता की गद्दी पर बैठा। उसके ७ महीने के अल्प शासन के बाद उसका भाई गद्दी पर बैठा।
(३) सुलतान मल्लू आदिल शाह अपने पिता की गद्दी पर बैठा किन्तु १५५५ में राजच्युत किया गया।	(३) सुलतान हुसेन निजामशाह पिता की गद्दी पर बैठा। मृत्यु १५६५ में हुई।	(३) सुलतान इब्राहिम कुतब शाह की मृत्यु १५८१ में हुई।
(४) सुलतान इब्राहिम आदिल शाह ने अपने भाई के बाद राज्यारोहण किया उसकी मृत्यु १५५७ में हुई।	(४) सुलतान मुर्तिजा निजाम शाह अपने पिता की गद्दी पर बैठा। किन्तु १५८७ में अपने पुत्र एवं उत्तराधिकारी द्वारा मारा गया।	(४) सुलतान मुहम्मद कुली कुतबशाह अपने पिता की गद्दी पर बैठा। उसका भाई उसका उत्तराधिकारी हुआ।
(५) सुलतान अली आदिलशाह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ।	(५) सुलतान मीरन हुसेन निजामशाह की दो महीने राज्य करने के बाद	(५) सुलतान अब्दुल्ला कुतब शाह।

यूरोप निवासी इस शब्द का मुसलमानों द्वारा दिए गए अर्थ में प्रयोग करते हैं। आधुनिक दक्खिन में तेलंगाना का अधिक भाग, गोंडवाना का कुछ भाग और महाराष्ट्र का एक बहुत बड़ा हिस्सा जो घाट की पश्चिमी पर्वत श्रेणी के ऊपर है और नर्मदा से कृष्णा तक फैला हुआ है सम्मिलित है।

अब हम संक्षेप में १६वीं शती की घटनाओं का और उस समय की देश की स्थिति का तथा उसके निवासियों का वर्णन करेंगे।

१४८५ ई०—१४८५ में दौलताबाद और जुन्नर के शासन की बागडोर सम्हालने पर मलिक अहमद को मालूम हुआ कि पर्वत दुर्गों के मराठा सैनिकों ने विद्रोह कर दिया है। अतः घेरा डाल कर कोंढाना (सिंहगढ़) और लोहगढ़ समेत पूना के सारे किलों पर और डंडा राजपुरी तक कोंकण के कई किलों पर उसको अधिकार करना पड़ा। ये किले अहमदनगर प्रदेश के दक्षिणी छोर के समीप थे।

महमूदशाह के अवयस्कता का बहाना ले कर मराठों ने किलों को सौंपने से इन्कार किया। संभवतः बीदर के दरबार के कुछ दलों के उसकाने पर उन्होंने समर्पण करने में आनाकानी की।

१४९८—१६ वीं शती के आरंभ में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। उसने आनेवाली घटनाओं में कुछ भाग लिया। विख्यात वास्को-द-गामा के नेतृत्व में पुर्तगाल निवासी मई १४९८ में केरल या मलाबार के कालीकट नगर में आए। फ्रैंसिस्को द-अलमेदा के पुत्र लोरेंजो और मिश्र देश के सोलदन के जहाजी बेड़े के

१५८० में मार डाला गया। (६) सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ।	१५८७ में हत्या की गई। (६) मीरनहुसेन का भाई सुल्तान इस्माइल निजाम शाह सिंहासन पर बैठाया गया किन्तु उसके पिता ने उसको राजच्युत किया। (७) सुल्तान बुर्हान निजामशाह द्वितीय। उसकी मृत्यु १५९४ में हुई।	

बीच चौल[1] स्थान पर १५०७ में एक मुठभेड़ हुई जिसमें पुर्तगाल निवासियों ने महाराष्ट्र के समुद्रतट पर सर्वप्रथम तोप गोलों का उपयोग किया। उस समय चौल अहमदनगर के अधिकार में था। ऐसा प्रतीत होता है कि केवल मलिक निजामुलमुल्क बहरी का ही एकमात्र ऐसा प्रदेश था जहाँ पुर्तगाल निवासी दस्युओं ने लूट और विनाश का ताण्डव नहीं किया। अहमदनगर के राजा से उन्होंने बहुत वर्षों तक मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाए रखा।

१५०८ ई०—पुर्तगालियों के जहाजी बेड़े ने ३० दिसम्बर १५०८ में दभोल नदी में प्रवेश किया और वाइसराय फ्रांसिस्को-द-अलमेंदा ने जो स्वयं ही नेतृत्व कर रहा था अपने आदमियों को वहाँ उतार कर नगर को अपने अधिकार में किया, लूटा और जलाया। महाराष्ट्र के जिस प्रदेश पर पुर्तगालियों ने सर्वप्रथम कब्जा किया वह वह महत्त्वपूर्ण द्वीप है जिस पर गोआ नगर बसा हुआ है और जो उस समय बीजापुर के अधिकार में था।

१५१० ई०—गोआ पर आक्रमण करने का सुझाव अलफोंजों-द-अलबुकर्क को तुलवा (कनाडा) निवासी हिन्दू दस्यु तिमुजी ने दिया। उसने गोआ पर सहसा आक्रमण कर २७ फरवरी १५१०[2] को अपने अधिकार में किया किन्तु वे कुछ मास पश्चात् स्वयं यूसुफ आदिल शाह द्वारा खदेड़ दिए गए।[3] अनुकूल ऋतु आने पर इस पर फिर आक्रमण हुआ और २५ नवम्बर १५१०[4] को अलबुकर्क ने अन्ततः इसको अपने अधिकार में लिया। तब से अब तक यह पुर्तगलियों के हाथ में है।[5]

१५२९ ई०—यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि १५२९ के लगभग बुर्हान निजाम शाह ने एक ब्राह्मण को जिसका नाम, फिरिश्ता के अनुसार, कुअरसेन था पेशवा या मुख्यमन्त्री का पद प्रदान किया। उस समय से निजामशाही राज्य में हिन्दुओं का प्रभाव बहुत अधिक हो गया। इब्राहिम आदिल शाह ने १५५५ में बीजापुर के सिंहासन पर बैठने पर सैनिक तथा कारभारी आदमियों के रूप में महाराष्ट्र के मूल निवासियों के प्रति बहुत अभिरुचि दिखलाई। फारसी के बदले मराठी में हिसाब-किताब रखना चालू किया, यद्यपि महत्त्वपूर्ण विलेख दोनों ही भाषा में लिखे जाते रहे।[6] इस विनियम से मराठा ब्राह्मणों की शक्ति और महत्त्व में वृद्धि होने लगी। इब्राहिम आदिलशाह ने विदेशी सैनिकों की अधिकांश टुकड़ियों को भी तोड़ दिया और विदेशी अभिजात वर्ग को पदच्युत कर दिया। उसने ३०,००० दक्खिनी

---

[1] द फरिया। [2] द फरिया। [3] फिरिश्ता। [4] द फरिया। [5] अब यह स्वतन्त्र भारत का एक भाग है। [6] पुराने विलेख।

घुड़सवारों की सेना खड़ी की और सिलाहदारों[1] की जगह जो अपने ही खर्चे पर घोड़े रखते हैं बारगीरों[2] को जिनको राज्य अथवा व्यक्तियों द्वारा घोड़े दिए जाते हैं फौज में भर्ती किया।

१५३२ ई०—पुर्तगालियों ने १५३२ में समुद्र तट पर धावा बोला और चिखली तारापुर से वसई तक के सारे नगरों को जला दिया, नए बने हुए कुछ प्राचीरों को नष्ट किया, और थाना और बम्बई से दाय वसूल किया। दो वर्ष बाद उन्होंने दामन पर अधिकार कर लिया और गुजरात के सुलतान बहादुर को जो उस समय सम्राट हुमायूँ द्वारा खदेड़ा जा रहा था, पुर्तगालियों को वसई चिरस्थायी रूप से देने को, ड्यू में एक किला बनाने की आज्ञा प्रदान करने को, और लाल समुद्र के देशों से होने वाले व्यापार पर कर वसूल करने का अधिकार प्रदान करने को बाध्य किया। इसके बदले में पुर्तगालियों ने उसे मुगलों के विरुद्ध सहायता देने का वादा किया।[3]

१५४८ ई०—कुछ वर्षों तक पुर्तगालियों ने गुजरात, तथा अन्य प्रदेशों पर अपना आक्रमण जारी रखा, किन्तु १५४८ में उन्होंने बीजापुर राज्य के समुद्र तट पर अत्यन्त विनाशकारी लीला की। उन्होंने तलवार और आग के सहारे गोआ के पड़ोस से लेकर बानकोट तक के सारे नगरों का विध्वस किया।[4] पुर्तगालियों को इब्राहिम आदिल शाह को राज्यच्युत करने और उसके भाई अब्दुल्ला को जो उस समय पुर्तगालियों की संरक्षिता में गोआ में रह रहा था, सिंहासन पर बैठाने के षड्यंत्र में भाग लेने के लिए निमंत्रण दिया गया. किन्तु यह योजना कार्यान्वित नहीं की गई।[5]

१५६४ ई०—तालिकोटा[6] का निर्णयात्मक युद्ध, जिसका मराठा हस्तलेखों में रक्षितगण्डी के नाम से उल्लेख हुआ है और जिस से विजयपुर राज्य का उच्छेद हुआ, दक्षिण के संयुक्त मुसलमान शक्तियों द्वारा १५६४ में कार्णाटक की हिन्दू सेना के विरुद्ध लड़ा गया था। कनाडा का राज्य मैत्रीबद्ध सुल्तानों की आपसी ईर्ष्या के कारण पूर्णतया विनाश होने से बच गया। रामराजा के भाई की

---

[1] सिलाहदार निजी घोड़ा और निजी सामान रखता था। सिलाहदार का अर्थ है शस्त्रधारी। [2] बारगीर को सरकारी घोड़ा और सरकारी सामान दिया जाता था। यह सरकारी टुकड़ी (पागा) का सैनिक था। 'बारगी' का अर्थ है अश्व, घोड़ा; और 'बारगीर' का अर्थ है अश्वपाल, साईस; अश्व, घोड़ा मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' कृत उर्दू-हिन्दी शब्दकोश। [3] द फरिया। [4] द फरिया। [5] फिरिश्ता। [6] यह युद्ध आधुनिक तालिकोटा के लगभग ३० मील दक्खिन भयपुर या भोगपुर गाँव में हुआ था।

सार्वभौमिकता बहुत अंशों तक रहने दी गई। किन्तु राज्य फिर कभी नहीं पनपा। देशमुखों या जमींदारों ने इसकी कमजोरी का फायदा उठाकर यहाँ अपनी स्वतंत्रता स्थापित की।[1]

१५७१ ई०—बीजापुर और अहमदनगर के राजाओं ने पुर्तगालियों पर १५७१ में एक संयुक्त आक्रमण किया किन्तु वे बहुत ही अपमानजनक रूप से पराजित हुए।[2] चौल की प्रतिरक्षा में, जिसको मुर्तिजा निजाम शाह घेरे हुए थे और जिसकी लुइ फेरारा द अंद्रादा रक्षा कर रहे थे, पुर्तगालियों को विशेष श्रेय मिला। जैसा कि आमतौर पर होता है जब देशी सेना हार जाती है, मुसलमानों ने अपनी असफलता का दोष विश्वासघात के माथे मढ़ा।[3]

फिरिश्ता के अनुसार निजामशाह के अधिकारी वर्ग विशेषतया शराब के उपहारों द्वारा भ्रष्ट किए गए थे। ये दोनों ही राजा इसी वर्ष अगस्त महीने में आक्रमण करने से अपने को रोके रहे जब अली आदिल शाह की सेनाएँ कार्णाटक के कुछ राजाओं के विरुद्ध लड़ रही थीं जिनको उसने सफलता पूर्वक हराया।

१५७३ ई०—पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत भूमि, उत्तरीय कोंकण जो गुजरात के अधिकार में था और खानदेश का एक भाग जहाँ बुर्हानपुर के सुल्तान ने एक स्वतंत्र राज्य कायम कर रखा था—इन प्रदेशों को छोड़ कर शेष महाराष्ट्र १५७३ में बीजापुर और अहमदनगर के राजाओं के अधीन था। विजयनगर की शक्ति सदा के लिए क्षीण हो गई थी और बरार और बीदर पर पड़ोस के अधिक शक्तिशाली राज्यों ने कब्ज़ा कर लिया था।

उस समय दक्खिन तीन बड़े मुसलमान राज्यों में विभाजित था यह संक्षेप में और स्थूलरूप में वर्णन किया जाता है।

बीजापुर का विस्तार नीरा नदी से तुंगभद्रा तक था। अडोनी जनपद और सम्भवतः तुङ्गभद्रा के दक्षिण का नन्दयाल[4] जनपद भी इसमें सम्मिलित थे। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, कुछ अंशों को छोड़ कर इसकी पश्चिमी सीमा बानकोट से अंतरीप रामस तक थी। पूरब में इसकी सीमा में रायचूर, इतगीर, मलखेड और बीदर जनपद थे जो इसे गोलकुन्डा से अलग करते थे। अकलकोट, नलदुर्ग और कल्याण

---

[1] फिरिश्ता; विल्क्स। [2] द फरिया; सीजर फ्रेड्रिक। [3] द फरिया।

[4] नन्दयाल मुगल सूबा बीजापुर में सम्मिलित था किन्तु कोई निश्चित साक्ष्य नहीं है कि यह कब बीजापुर को प्रदान किया गया या कब इस पर कब्जा हुआ। इसीलिए मैंने और इसी कारण से कर्नल विल्क्स ने भी 'सम्भवतः' शब्द लिखा है। अदोनी पर १५६७ में कब्जा हुआ।

इसके सीमावर्ती क्षेत्र थे। और शोलापुर की तरह इन पर कभी अहमदनगर और कभी बीजापुर की सेनाओं के आक्रमण होते रहते थे।

अहमदनगर राज्य बरार के अधिक हिस्से पर फैला हुआ था और इसमें पूरा २ वह भाग भी सम्मिलित था जो बाद को औरंगाबाद सूबा में शामिल किया गया। गलना तथा खानदेश के कुछ अन्य जनपद, कोंकण का कल्याणी जनपद, या बान्कोट के बसाई तक का भूभाग भी इसके आधिपत्य में था।

गोलकुण्डा राज्य पूरब में बीजापुर और अहमदनगर प्रदेश से समुद्रतट तक फैला हुआ था किन्तु राजमन्द्री के समीप के कुछ प्रदेश पर, जो उड़ीसा के राजा से छीना गया था, उस राजा के एक वंशज का शासन था। उसने कर देना बंद कर दिया। अतः वहाँ उचित अधिकार स्थापित करने तथा कार्णाटक के नव-प्राप्त जनपदों की व्यवस्था करने के लिए इब्राहिम कुतुबशाह भेजा गया। इस समय अहमदनगर और बीजापुर के सुल्तान पुर्तगालियों के विरुद्ध कार्यवाही करने में तथा बरार और कार्णाटक के प्रदेशों पर अपना-अपना अधिकार बढ़ाने में लगे थे।

इन राज्यों ने देश को सरकारों में विभाजित किया। आगे चल कर मुगलों ने इस प्रबन्ध को और सुव्यवस्थित किया। सरकार का उपभाग परगना, कुर्यात, सम्मत, महाल, और तालुका, या हिन्दू अभिधान प्रान्त और देश कहलाता था। खोरा, मोरा और मावल, जैसा पहले लिखा जा चुका है कोंकण-घाट-माथा में सम्मिलित थे और साधारणतया हिन्दुओं के प्रबन्ध में होने के कारण अपना पुराना अभिधान ही ग्रहण किए रहे।

इन सब मुसलमान राज्यों में राजस्व वसूली छोटे-छोटे भागों की या कुछ प्रदेशों में पूरे गाँव की सामान्य रूप से ठीके पर दी गई थी। जहाँ इस प्रकार के ठीके नहीं दिए गए थे पुरानी हिन्दू पद्धति चलती रही।[1] राजस्व वसूल करने के लिए आमिल नियुक्त किए गए थे जो पुलिस का नियन्त्रण तथा व्यवहारवादों का निर्णय करते थे। वंशागत पद और भूमि सम्पत्ति के विवादों का निर्णय पंचायतों के हाथ में था।[2] सम्भव है कभी-कभी धन सम्बन्धी वादों का निर्णय स्वयं आमिल

---

[1] देशपाण्डेयों के कब्जे में मिले अनेक कागजों, वहाँ के बुद्धिमान निवासियों के बीच में की गई स्थानीय पूँछ-ताछ, पूरे देश की अनेक परिस्थितियाँ एवं जो कुछ देशपाण्डे कहते हैं उसके पुष्टि में लिखित अलेखों के आधार पर यह लिखा गया है।

[2] वंशागत सम्पत्ति के दावों का निर्णय पंचायत के हाथ में था जैसा कि प्रत्येक जनपद के पुराने कागजों से प्रमाणित है। बीजापुर राज्य में वंशागत सम्पत्ति

करते थे। आमिलदारों के ऊपर, बीजापुर राज्य में मोकासादार नाम का एक पदाधिकारी होता था जो राज्य के काफी बड़े भाग के कार्यों की देखरेख करता था और शेष सब आमिलदार उसके अधीन थे। अनुमान है कि राजस्व पर उसको कुछ प्रतिशत मिलता था, कितना मिलता था यह नहीं मालूम। ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि २० वर्षों से अधिक समय तक मोकासादार अपने-अपने पदों पर बने रहे और उनके बाद उन पदों को उनके पुत्रों ने ग्रहण किया।[1] किन्तु ऐसा होना पूर्णतया सुल्तान की स्वेच्छा पर निर्भर करता था। कुछ मोकासादार एक ही साल में हटा दिए जाते थे, और ऐसा नहीं था कि कोई मुसलमान ही मोकासादार हो। कभी, हमेशा नहीं, मोकासादार के ऊपर सूबा[2] नाम का एक पदाधिकारी रखा जाता था। वह न तो जनपदों में लगातार रहता था और न राजस्व प्रबन्ध में भाग लेता था, फिर भी महत्त्वपूर्ण औपचारिक लेख तथा विलेख उसके नाम पर लिखे जाते थे।

इन राजवंशों के प्रारम्भिक काल में मराठों की दशा लगभग वैसी ही रही जैसी कि बह्मनी राजाओं के समय में थी। प्रतीत होता है कि साधारणतया गढ़ों में मराठा सैनिक रखे जाते थे।[3] कभी वे सीधे शासन से वेतन पाते थे और कभी वे जागीरदारों और जनपद के देशमुखों के आश्रय में होते थे। थोड़े से अत्यन्त शक्तिशाली स्थानों पर सदा राजा की देखरेख रहती थी जो किलेदारों की नियुक्ति करता था। इस विषय पर आगे चल कर हम विस्तार से लिखेंगे। कभी-कभी मराठा सरदार

के दावे से सम्बन्धित पंचायत में जिसमें एक पक्ष सरकार थी, लगभग पन्द्रह आदमी होते थे। कुछ पुराने कागजों से प्रतीत होता है कि पंचायत के दो-तिहाई सदस्य मुसलमान और एक-तिहाई हिन्दू होते थे।

[1] खटाव, कराड आदि के मोकासादार मुकर्रब खाँ का पुत्र एवं पौत्र इसके उत्तराधिकारी हुए। (उसके कामकाज की देखरेख करने वाले देशपाण्डे के परिवार में सुरक्षित पुराने लिखित प्रलेख)।

[2] राज्यपाल शासकीय तौर पर नाजिम या सूबा कहलाता था, किन्तु जनता में उसका नाम सूबादार प्रचलित था। शर्मा: मुगल इम्पायर इन इंडिया, भाग १।

[3] फिरिश्ता के विभिन्न भागों से यह तथ्य एकत्रित किया जा सकता है। कुछ देशमुखों के पास पुराने कागज है जिनसे प्रतीत होता है कि राजा के किलों की देखभाल उनको बहुधा सौंपी जाती थी।

मंसबदार[1] बनाए जाते थे उनका पद उनके अधीन घुड़सवारों की संख्या पर निर्भर

[1] मनसब का अर्थ है स्थान या पद। शाही सेवा के पदाधिकारी मनसबदार कहलाते थे। सबसे निम्न पद दस का और सबसे ऊँचा पद दस हजार का था। मनसबदारों को सैनिकों की उतनी पूरी संख्या नहीं रखना पड़ता था जितना उनके पद या मनसब से सूचित होता है। अपने पद के अनुपात के अनुसार उन्हें कुछ निश्चित सैनिक रखना आवश्यक था। उस समय शाही सेवा सैनिक और असैनिक सेवाओं में नहीं विभाजित थी और किसी भी मनसबदार से किसी भी समय इन दोनों में से कोई भी सेवा ली जा सकती थी। किन्तु यह आवश्यक नहीं था कि हर एक मनसबदार किसी न किसी नियमित पद या काम पर लगाया ही जाय। मनसब शाही अधिकारियों की प्रतिष्ठा और वेतन को निश्चित करने का एक सुविधाजनक ढंग था। करद सरदारों को भी जो अर्ध-स्वतन्त्र राज्यों के शासक थे और मनसबदार बनाए जाते थे, स्थायी सेना अपने अधीन रखना और निश्चित समयों पर उसे हाजिरी या निरीक्षण के लिए लाना होता था। मनसबदारों को नकद ऊँचे वेतन दिए जाते थे और कभी-कभी उनको इतनी भूमि अर्पण की जाती थी जिनका राजस्व उनके निश्चित वेतन के अनुरूप हो। उनका अर्पण प्रान्त-प्रान्त बदला भी जाता था। मनसबदारों को अर्पण की हुई भूमि के राजस्व की उगाही राजस्व विभाग के सरकारी अधिकारी करते थे, न कि मनसबदार के अभिकर्त्ता। मनसबदार स्वयं ही अपने सैनिकों की भर्ती करते थे जो प्रायः उन्हीं के जाति के होते थे। वे स्वयं ही अपने घोड़े और सामान खरीदते थे। किन्तु कभी-कभी उनको इनकी प्राप्ति सरकार से भी होती थी। हर एक मनसबदार को एक निश्चित दर से वेतन दी जाती थी जिससे वह अपने संस्थापन का व्यय वहन और अपने सैनिकों का वेतन चुकता करता था। ये सब व्यय काटने पर भी उसका वेतन बहुत ही अच्छा था जैसा कि मोरलैण्ड द्वारा दी हुई निम्नलिखित तालिका से प्रकट होता है :

पद	मासिक वेतन रुपयों में			उपयुक्त सैन्य पर खर्च
	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी	
५,०००	३०,०००	२९,०००	२८,०००	१०,६००
३,०००	१७,०००	१६,८००	१६,७००	६,७००
१,०००	८,२००	८,१००	८,०००	३,०००

करता था इसके लिए उनको सैनिक जागीरें दी जाती थीं। जागीरों के आकार को देखते हुए उनकी सैन्य संख्या का अनुपात बहुत कम था। फल्टन देश जिसके लिए मराठा पेशवाओं के समय में ३५० घोड़े रखना पड़ता था, बीजापुर शासन के अन्तिम काल में केवल ५० घोड़े प्रदान करता था। मराठा सरदार अल्प समय की पूर्व सूचना पर घोड़े मँगा सकते थे। वे मनमानी ढंग से नौकरी पर रखे या निकाले जाते थे : अपव्ययी राज्यसभा और अदूरदर्शी शासन को बहुत ही असुविधा होती थी। बहुत से मराठों को उपाधियाँ दी जाती थीं, किन्तु दक्खिन के राजवंश प्रायः प्राचीन हिन्दू अभिधान की उपाधियाँ प्रदान करते थे। राजा, नायक और राव उपाधियाँ अत्यन्त सामान्य थीं। मुसलमान विजेताओं द्वारा प्रदान किए जाने पर भी मराठे इन उपाधियों से अत्यन्त परितुष्ट होते थे। विशेषतया इस कारण से कि इन उपाधियों के साथ सदा उनको अपने नए पद को बनाए रखने के साधन प्राप्त होते थे।

फिरिश्ता ने आदिल शाही राजाओं के इतिहास में मराठों का बर्गी या बर्गे[1] नाम से यदा कदा उल्लेख किया है। यूरोप के निवासी मराठों के इस नाम से परिचित नहीं हैं। मुसलमान कार्णाटक के नायकों को बहुधा बर्गी कहते थे। बहुत से

५००	२,५००	२,३००	२,१००	१,१७०
५०	२५०	२४०	२३०	१८५
१०	१००	८२½	७५	४४

मनसबदारों के सैनिकों की निष्ठा सम्राट् की अपेक्षा उनके प्रति अधिक थी और उन्हीं से उनका व्यक्तिगत संबंध था। विभिन्न मनसबदारों के इकाईयों की क्षमता, शस्त्र, साज-सज्जा और अनुशासन एक समान नहीं थे। — डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : ए शार्ट हिस्ट्री आव अकबर दि ग्रेट, पृष्ठ ९२-१०२।

जिस मनसबदार की टुकड़ी उसके मनसब के बराबर होती थी, वह अपने पद के प्रथम श्रेणी में रखा जाता था, यदि उसकी टुकड़ी अपने मनसब की आधी या आधी से ज्यादा होती थी तो वह द्वितीय श्रेणी में रखा जाता था। जिन मनसबदारों की टुकड़ियाँ आधे से भी कम होती थीं, वे तृतीय श्रेणी में रखे जाते थे। उनको अपने मनसब के अनुपात के अनुसार हाथी, घोड़े और ऊँट रखना होता था— एस० आर० शर्मा : मुगल इम्पायर इन इण्डिया, भाग १, पृष्ठ ३१५-३१७।

[1] बर्गी या बर्गे 'बारगीर' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है अश्वारोही। 'बारगी' का मूल अर्थ है अश्व, और 'बारगीर' का अश्वपाल, साईस; अश्व, घोड़ा। —मुहम्मद मुस्तफा खाँ : उर्दू-हिन्दी शब्दकोश।

कार्णाटक के निवासी जो अपनी भाषा मराठी बोल भी नहीं सकते अपने को मराठा कहते हैं। मराठा मसबदारों के सब सैनिक बर्गी कहलाते थे और भारतवर्ष के अनेक भागों में वे अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। यह शब्द उसी तरह प्रयोग होता था जिस तरह से आगे चल कर 'बारह भाई'[1] पद तुच्छ अर्थ में प्रयोग होने लगा और सम्भवतः यह नाम बीजापुर की सेना के उन विदेशी घुड़सवारों की ओर से मराठा सैनिकों को दिया गया जिनकी टुकड़ियाँ सेना में दक्षिण निवासियों को स्थान देने के लिए तोड़ी गईं। सड़कों को बन्द करने और सामग्री को बीच में रोक लेने, भागते हुए शत्रुओं के पिछाड़ी में लगे रहने और प्रदेशों को लूटने और विध्वंस करने में वे सदा ही विशेष काम के पाए गए।

१५७८ ई०—फिरिश्ता के अनुसार १५७८ में बारगीर सरदारों ने अपनी कार्णाटक की जागीरों में बहुत अत्याचार किया। उनका दमन करने के लिए एक काफी बड़ी सेना भेजी गई। किन्तु एक साल तक लगातार डिंब युद्ध करने के बाद उनके विरुद्ध भेजे हुए अधिकारियों ने बर्गी घुड़सवारों पर कोई भी प्रभाव डाल सकना असम्भव बतलाया। तब सुल्तान अली आदिल शाह ने—इन बारगीर नेताओं को अपने फंदे में लाकर हत्या करने की एक ऐसी विश्वासघातपूर्ण योजना बनाई जिसके लिए दक्षिण सदा से कुख्यात रहा है। इस घृणित उद्देश्य की पूर्ति का साधन बासू जी पंत नाम का एक ब्राह्मण था जिसने अधिकांश नेताओं को विश्वासघात कर पकड़वा दिया।

बाद को सुल्तान के उत्तराधिकारी की सेना में ये बारगीर सम्मिलित हुए और इब्राहिम आदिल शाह के शासन में निजामशाह की सेना के विरुद्ध अपने सामान्य लड़ाई के तरीके को अपनाते हुए वस्तुतः लड़ते पाए गए।

बीजापुर और अहमदनगर का राज्य विस्तार लगभग पूरे महाराष्ट्र पर था। अतः अनायास ही मराठों की संख्या उनकी सेना में बहुत अधिक थी किन्तु कुछ मराठे गोलकुण्डा सेना में भी भरती थे। एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने में न तो उनकी राष्ट्रीय भावना और न भाषा और धर्म की एकता ही बाधक हुई। न केवल इन राज्यों के मराठा एक दूसरे से लड़ने के लिए व्यूह में खड़े हुए, बल्कि कभी-कभी अपने ही कुटुम्बियों ने आपस में एक दूसरे के प्रति अत्यन्त तीव्र शत्रुता प्रदर्शित

---

[1] जब अनेक आदमियों के हाथों में किसी चीज का विघट्टन होता है या अव्यवस्थित अवस्था उत्पन्न होती है तो मराठे 'बारह भाई' शब्दों का प्रयोग करते हैं। हैदराबाद और श्रीरंगपटं के दरबार नाना फड़नवीस के अधीन पेशवा-शासन के प्रति इन शब्दों का प्रयोग करते थे—रानाडे: राइज़ आव द मराठा पावर, पृ० १२।

की। व्यक्तिगत वाद या कौटुम्बिक कलह के कारण वे अत्यन्त विद्वेष में भर कर लड़ते थे। कुटुम्बों में, विपरीतों की यह विरोध भावना, बह्मनी वंश के राजाओं[1] ने उत्तेजित की थी। उनके वाद के वंशो ने भी, मराठों को परस्पर लड़ाते रखने में, इस विरोध-भावना का उपयोग किया।

वीजापुर राज्य के प्रमुख मराठा सरदार ये हैं: १. चन्द्रराव मोरे, २. रम्व नायक निंबालकर, ३. जूझार राव घाटगे, ४. राव मनी, ५. घोरपड़े, ६. डफले, ७. बरी आदि का देशमुख, सावन्त बहादुर।

अहमदनगर राज्य के अधीन मराठा सरदार रावजाधव और राजा भोसले के अतिरिक्त अन्य अनेक कम प्रसिद्ध व्यक्ति थे।

वीजापुर राज्य का एक सरदार मोरे था यह पहले कार्णाटक में एक नायक था किन्तु यूसुफ आदिल शाह के शासन में नीरा और वर्ना नदियों के बीच के प्रदेश को विजय करने के लिए बारह हजार हिन्दू घुड़सवारों की एक सेना का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। मोरे ने इस प्रयास में सफलता प्राप्त की। उसने राजा शिर्के के वंशजों को पदच्युतकर उनके सहायकों द्वारा की जाती हुई लूटों का दमन किया। उन सहायकों में गूजर, मामुल्कर मोहिते, और महदीक कुटुम्ब प्रमुख थे। इस सेवा के बदले में मोरे को चन्द्रराव की सम्मान्य उपाधि दी गई। और उसका पुत्र यशवन्त राव जिसने बुर्हान निजाम शाह की सैन्य टुकड़ियों के विरुद्ध परेण्डा के समीप एक युद्ध में ख्याति प्राप्त की थी और शत्रुओं से उनका एक हरा झण्डा छीन लिया था, अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में जाव्ली का राजा प्रमाणित किया गया और उसको उसके द्वारा जीते हुए झण्डे का उपयोग करने की अनुज्ञा दी गई। उसके वंशज सात पीढ़ियों तक इस प्रदेश के राजा बने रहे और उनके नम्र और कल्याणकारी शासन में उस अप्रिय प्रदेश की बस्ती अत्यन्त घनी हो गई। मोरे के वंशजों ने चन्द्रराव की उपाधि धारण की। मुसलमानों के प्रवन्ध में इस प्रदेश में उपद्रव सदा होते रहते थे और यहाँ की उपज भी बहुत थोड़ी थी। यहाँ का राजा निरन्तर अधीनता स्वीकार करता रहा। अतः सरकार यहाँ से नाम मात्र का कर वसूल करती थी।

वीजापुर शासन का एक अन्य प्रमुख सरदार फल्टन का नायक था जिसकी उपाधि राव नायक निम्बालकर या फल्टन राव थी। इस कुटुम्ब का मूल नाम पवार था। निम्बालिक ग्राम में जिसका नाम इस समय निमलक है रहने के कारण इनके पूर्वज निम्बालकर कहलाने लगे। फल्टन देश पर इनको देशमुखी अधिकार किस तरह

---

[1] **मराठा परिवारों के वंशागत वाद संबंधी कागज; घाटगे बखर; आदि।**

प्राप्त हुआ यह अज्ञात है। महाराष्ट्र का यह एक अत्यन्त प्राचीन कुटुम्ब है। मूल सनदों को देखने से मालूम होता है कि सत्रहवीं शती के मध्य के पूर्व ही बीजापुर के सुलतान ने निम्बालकर को फाल्टन का सर-देशमुख बनाया। कहा जाता है कि फाल्टन का देशमुख पालेगार (एक तुच्छ शासक) बन गया और वहाँ के राजस्व को बारंबार रोक रखा। किन्तु किस काल में ऐसा हुआ वह अज्ञात है। वंगोजी नायक ने जो जगपाल नाम से विख्यात है सत्रहवीं शती के पूर्व भाग में उच्छृङ्खल और लुटेरे होने की कुख्याति प्राप्त की। कीर्तिमान शिवाजी की दादी जगपाल की बहिन थी। निम्बालकर ने अपनी प्राचीन नायक[1] की उपाधि के बदले में राजा की उपाधि कभी नहीं धारण की।

मलाव्दी का देशमुख जूझार राव सशक्त घाटगे कुटुम्ब का सरदार था। वे खटाव देश के निवासी थे। महादेव पर्वत की शृङ्खलाएँ उनके देश को निम्बालकरों के देश से अलग करती हैं। घाटगे कुटुम्ब मान परगना के देशमुख और सरदेशमुख थे और उनके सरदार को बह्मनी वंश के अधीन मंसब का पद प्राप्त हुआ था। इब्राहिम आदिलशाह ने १६२६ में नागोजी घाटगे को बिना किसी शर्त के सरदेशमुख[2] का अधिकार और जूझारराव की उपाधि दी। आदिल शाही सुलतानों के किसी भी विलेखों में सरदेशमुख को कितना राजस्व मिलना चाहिए यह नहीं लिखा है। इस कुटुम्ब के महान पूर्वज कामराजे घाटगे को बह्मनी वंश के अधीन एक छोटा मंसब प्राप्त हुआ था। घाटगे कुटुम्ब उस समय से अब तक कौटुम्बिक कलह के लिए कुख्यात रहे हैं। बीजापुर राज्य ने उनको इनाम और जागीर भूमि दी थी। सेवा के लिए वे एक टुकड़ी घुड़सवारों की रखते थे। उनकी जागीर मोकासादार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थी।

माने कुटुम्ब का सरदार महसवाड[3] का देशमुख था जो घाटगे कुटुम्ब के निवासस्थान के पड़ोस में था। ये माने बीजापुर शासन के नामी सिलाहदार थे और शिर्के वंश की ही तरह अपने प्रतिहिंसात्मक स्वभाव के लिए कुख्यात थे।

---

[1] नायकवरी आजकल के 'जी' की तरह एक आदर्श सूचक उपाधि थी। बीजापुर शासन के अधीन किलों के प्रभारी मराठा अधिकारी फारसी हस्तलेखों और विलेखों में बहुधा नायकवरी कहे गए हैं। आजकल ग्राम संस्थान का एक प्रकार का वंशागत भूमि-मापक अधिकारी नायकवरी कहलाता है।

[2] औरंगजेब के समय की सनदों से प्रतीत होता है कि उसने पुराने सरदेशमुखों को दो प्रतिशत की अनुज्ञा की थी।

[3] महसवाड मान तालुका में सातारा के ५१ मील पूरब में है।

घोरपड़े पहले भोसले कहलाते थे। उनके वंश की एक आख्यायिका के अनुसार उनके एक पूर्वज का यह उपनाम इसलिए पड़ा कि वह बहमनी वंश के समय एक गोध के शरीर में एक डोरी बाँधकर कोंकण के एक तथाकथित अजेय किले की दीवार पर सर्वप्रथम चढ़ा था। वे बीजापुर शासन में देशमुख थे और दो अलग २ कुटुम्बों में बँटे हुए थे—एक काप्सी के जो वर्ना नदी के निकट था और दूसरे मुधौल के।[1] प्रतीत होता है घोरपड़े वंश ने बहुत आरम्भ में ही ख्याति प्राप्त करली थी। बीजापुर के राजाओं ने काप्सी कुटुम्ब के एक व्यक्ति को अमीर-उल-उमरा[2] की उपाधि दी थी।

डफले बीजापुर के समीप जथ परगना के देशमुख थे ये वस्तुतः चौहान थे। डफलापुर ग्राम के वंशानुगत पाटिल होने के नाते उनका उपनाम डफले पड़ा। बीजापुर के राजाओं ने उन्हें मंसब पद तो दिया किन्तु कोई उपाधि नहीं दी।

सावंत गोआ के समीप के वरी स्थान के वंशानुगत देशमुख थे। पुर्तगालियों के विरुद्ध कुछ युद्धों में बीजापुर के राजाओं ने उन्हें 'बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी। भोसले उनकी मूल उपाधि थी। उनका प्रधान बहुधा, आज भी, भोसले[3] कहलाता है। उनके प्रदेश को यह गौरव प्राप्त है कि उनके कुटुम्ब का प्राचीन अभिधान हमारे आधुनिक मान चित्रों में सुरक्षित है।[4] ये पदसैनिकों के सेनापति के रूप में ख्यात थे। इस प्रदेश के निवासियों के लिए यह सेवा सबसे अधिक उपयुक्त है। अहमदनगर राज्य का एक मुख्य मराठा सरदार जाधव राव सिंदखेड का देशमुख था। ऐसा माना जाता था कि सम्भवतः वह देवगढ़ के राजा का वंशज था। जाधवों की तरह सशक्त कोई दूसरा मराठा वंश नहीं था। १६ वीं शती के अंत में लखजी जाधवराव दस हजारी था। निजामशाही शासन के अधीन उसके पास एक जागीर थी।

---

[1] बीजापुर शासन में काप्सीकर का नवकस घोरपड़े और मुधौलकर का साथकस घोरपडे नाम था। सर्वप्रथम घोरपड़े जिसने शिवाजी का साथ दिया वह नवकस परिवार का था। कस के कई अर्थ 'शक्ति' या 'योद्धा' या 'अमापित भूमि का एक टुकड़ा, एक जागीर' लगाए जाते हैं, किन्तु इसका अर्थ अब भी अस्पष्ट है।

[2] अमीर-उल-उमरा का अर्थ सर्वश्रेष्ठ अभिजन है। उमरा अमीर का बहुवचन है।

[3] भोसले शब्द की उत्पत्ति सातारा जनपद के भोस गाँव से मानी जाती है जो तालगाँव से नौ मील दक्षिण-पूर्व में है।

[4] उनके प्रदेश का प्राचीन नाम कुडल देश है जो सावन्तवाड़ी से बारह मील उत्तर-पश्चिम है।

एक दूसरा आदरणीय मराठा वंश भोसले था। इस वंश का उदय सर्वप्रथम अहमदनगर शासन में हुआ। प्रस्तुत इतिहास से इस वंश का विशेष संबंध है। कहा जाता है कि वे अनेक पटेलपदों पर सुशोभित थे और उनका मुख्य निवास स्थान दौलताबाद के समीप वेरुल[1] गाँव में था। बबजी भोसले के दो पुत्र थे ज्येष्ठ का नाम मालो जी और कनिष्ठ का नाम विट्ठोजी था। मालोजी का प्रथम विवाह फाल्टन के देशमुख, वंगोजो या जगपाल राव नायक निम्बालकर की बहिन दीपाबाई से हुआ था। पच्चीस वर्ष की अवस्था में १५७७ में वह लखजी जाधव राव की अभिशंसा से अपने अश्वारोहियों की एक छोटी टुकड़ी के साथ मुर्तिजा निजाम शाह की सेवा में भरती हुआ। अनेक वर्षों तक उस के कोई संतान न हुई। हिन्दुओं में यह बहुत ही दुर्भाग्य समझा जाता है। वह भगवान महादेव का दृढ़ भक्त था और तुलजापुर[2] की भगवती देवी भवानी उसके कुल की स्वामिनी थी किन्तु संतानोत्पत्ति के लिए की गई दोनों दैवदेवियों की प्रार्थना व्यर्थ ही रही। इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए अहमदनगर में रहने वाला एक मुसलमान सन्त या पीर शाह शरीफ[3] ईश्वराराधना करने के लिए रखा गया। थोड़े ही दिनों बाद मालोजी की स्त्री को एक पुत्र हुआ। पीर के इस अनुमानित आशीर्वाद की कृतज्ञता में शिशु का नाम उस पीर के नाम पर मराठा आदर सूचक पद 'जी' के साथ शाह रखा गया और दूसरे साल इसी तरह एक दूसरे पुत्र का नाम शरीफ जी रखा गया। शाहजी १५९४ में पैदा हुआ था। मालो जी भोसले एक उद्योगी क्रियाशील सिलाहदार था और उसने अपने को सौंपे हुए विभिन्न कर्त्तव्यों को इतनी सुचारुता से निभाया था कि उसकी ख्याति होने लगी। उसने अपनी छोटी टुकड़ी के घोड़े की सख्या भी बढ़ा ली। उसका संरक्षक जाधवराव सदा ही उसका बहुत सम्मान करता था। उसका ज्येष्ठ पुत्र शाहजी बहुत

---

[1] वेरुल गाँव के समीप होने से वहाँ की गुफाओं का नाम इलोरा पड़ा।

[2] तुलजापुर देवी जी का मन्दिर बालाघाट की आधार-रेखा को एक तंग-घाटी में है। देवी जी ने इसी स्थान पर महिषासुर दैत्य का वध किया था। दशहरा त्योहार के पूर्णमासी के दिन यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण वार्षिक यात्रा या मेला लगता है। तुलजापुर में कोई यात्री बिछौने पर नहीं सोता।

[3] शिवदिग्विजय और शेडगावकर बखरों के आधार पर किंकेड ने लिखा है कि मालोजी और उसकी पत्नी ने शाह शरीफ के क़ब्र पर प्रार्थना की जिसकी मृत्यु बहुत पहले हो चुकी थी। किन्तु कृष्णा जी अनन्त कृत सभासद बखर की भूमिका में संकर ने लिखा है, 'अन्त में अहमदनगर का शाह शरीफ नामक मुसलमान सन्त एक उत्तराधिकारी के पैदा होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने के लिए रखा गया।'

ही आकर्षक था। १५९९ के होली त्योहार के उत्सव के अवसर पर शाहजी जब वह ५ वर्ष का था अपने पिता के साथ जाधवराव के घर गया। साधारणतया सब वर्णों के हिन्दू इस त्योहार के पाँचवें दिन किसी प्रमुख व्यक्ति के निवास-स्थान पर इकट्ठा होते है। और जिन लोगों की घनिष्टता होती है वे बहुधा इस जमघट के स्थान पर अपने बच्चों को भी ले जाते है। जाधवराव ने इस अवसर पर शाहजी को देखा और सद्भावनावश लड़के को अपने पास बुलाकर अपनी तीन-चार वर्ष की सुपुत्री जीजी के बगल में बैठा दिया। इन दोनों बच्चों को आपस में खेलते देख कर खुशी के मारे, बिना विचारे अपनी पुत्री से कहा, 'क्या तू इस लड़के से विवाह करेगी और, इसी लय में, उपस्थित जनों की ओर घूम कर कहा कि ये बहुत सुन्दर जोड़े हैं। सामान्य आमोद में बच्चे एक दूसरे पर लाल गुलाल फेंकने लगे। यह देख कर उपस्थित जन खूब हँसे। आनन्द भंग करते हुए मालोजी भोसले खड़े होकर कहने लगे कि मित्रों, ध्यान दीजिए, जाधव ने आज मुझसे एक विवाह संबंध पक्का किया है। यह सुन कर उपस्थित जनों में से कुछ लोगों ने इसकी पुष्टि की किन्तु जाधव चकित होकर मौन रहा।

जाधव राव ने, यह प्रदर्शित करते हुए कि जो कुछ कल हुआ था वह केवल परिहास मात्र था, दूसरे दिन माल्लो जी को एक भोज्य निमन्त्रण दिया किन्तु उसने, जाधव द्वारा औपचारिक रूप से शाह जी के दामाद बनाए जाने के पूर्व निमन्त्रण में जाना अंगीकार नहीं किया। किन्तु जाधव राव ने उसकी माँग को साफ शब्दों में अस्वीकार किया और उसकी तेजस्वी-गौरवपूर्ण पत्नी परिहास में भी, माल्लोजी भोसले ऐसे व्यक्ति के पुत्र से अपनी कन्या का योग बैठाए जाने पर बहुत ही रुष्ट हुई। प्रतीत होता है कि मालोजी एक चतुर और लगन का मनुष्य था और अपनी कार्यसिद्धि के लिए धर्माधर्म का अधिक विचार नहीं करता था। अपने गाँव को लौट जाने के पश्चात् उसने यह छद्म किया कि उसको देवी भवानी के दर्शन से एक बृहद् कोष की प्राप्ति हुई है। जो भी हो उससे और उसके बड़े भाई विट्ठोजी को किसी गुप्त ढंग से सत्रहवीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में निजाम शाही शासन के उस अव्यवस्थित समय में सम्भवतः डाका से, धन की उपलब्धि हुई। उन्होंने अपने विश्वासपात्र चमारगण्डी[1] के एक साहूकार शेषनायक पूडे के पास अपनी नकदी जमा कर दी। किन्तु, मराठा आख्यायिका के अनुसार इस कोष की प्राप्ति देवी जी के उस वरदान की सिद्धिमात्र

---

[1] गोविन्द नामक एक भक्त चमार के नाम पर इसका नाम चमारगोण्डा पड़ा। इसका आधुनिक नाम श्रीगोण्डा है और यह अहमदनगर से ३२ मील दक्षिण में है।

के लिए था जो उन्होंने प्रथमदर्शन के समय मालोजी को प्रदान किया था। वरदान यह था कि तुम्हारे वंश का एक व्यक्ति राजा होगा और वह शम्भु (महादेव जी) के गुणों और विशिष्टताओं से युक्त होगा, वह महाराष्ट्र में न्यायकी पुनर्स्थापना एवं रक्षा करेगा देवताओं के मन्दिरों को अपवित्र करने वालों और ब्राह्मणों को पीड़ा देने वालों का विनाश करेगा। उसका शासन एक नया युग होगा और उसके वंशज २७ पीढ़ियों तक राज्य करेंगे।

मालोजी ने अपने धन का उपयोग घोड़ों की खरीद, तालाब और कूप निर्माण, मंदिरों को वृत्तिदान आदि जनप्रिय कार्यों में किया, किन्तु जाधव राव के कुटुम्ब से अपना संबंध करने की अपनी प्रिय योजना के ध्यान से विमुख नहीं हुआ। मालोजी की पत्नी दीपा बाई का भाई, फल्टन के जगपाल नायक निम्बालकर ने अपने भांजे के प्रस्तावित विवाह के सम्पन्न कराने के लिए प्राणपण से चेष्टा की। अहमदनगर सदृश पतनोन्मुख राज्यसभा में धन द्वारा सब कुछ करा लेना सम्भव था; जाधव राव की आपत्ति केवल मालोजी के पद के सम्बन्ध तक ही सीमित थी। अतः यह कठिनाई भी, उसको राजा मालोजी राजा भोसले की उपाधि एवं पंचहजारी घोड़ों का अधिकार देकर दूर कर दी गई। शिवनेर[1] और चाकन के किले उनके अधीन जनपदों के साथ उसके निरीक्षण में, और पूना और सोपा के परगने उसको जागीर में दिए गए। इस प्रकार प्रत्येक कठिनाई हट जाने के बाद, अपने सम्राट् की बात को न पूरा करने के लिए जाधव राव के पास अब कोई बहाना न रह गया। बड़े धूम-धाम से, और सुल्तान की उपस्थिति में शाहजी और जीजी बाई का विवाह सम्पन्न हुआ।[2]

अहमदनगर, बीजापुर, और गोलकुण्डा के राज्यों को अभिभूत करने के उद्देश्य से किए गए मुगल आक्रमणों का मराठों के उत्कर्ष में बहुत बड़ा हाथ था। उत्तरी भारत की उन क्रान्तियों से, जिसके फलस्वरूप तैमूर के वंशज राजसिंहासन पर बैठे, बह्मनी वंश के राजकुमारों को अपनी शक्तिको दृढ़ता से स्थापित करने का अवसर मिला। यदि मुगल सम्राट् दक्षिणमें संयुक्त राज्यों के रहते हुए दक्षिण की विजय का प्रयास करते, तो सम्भवतः भारत में दो प्रतिद्वन्द्वी मुसलमान साम्राज्यों को

---

[1] जुन्नर के गढ़ शिवनेर में शिवाजी का जन्म हुआ था जो पूना से ५६ मील उत्तर, मैदान से एक हजार फीट ऊँचाई पर है और नाना और मालसेज घाटों को जाने वाले मार्ग का नियन्त्रण करता है। यह मार्ग पहले दक्खिन और कोंकण के बीच का मुख्य संचार-पथ था।

[2] पूर्वोक्त वर्णन उन हस्तलेखों, प्राचीन विलेखों और अभिलेखों के आधार पर है जो इन प्राचीन मराठा परिवारों के वंशजों के पास हैं।

जितने समय तक वे रहें उससे अधिक समय तक बनाए रखने में सहायक होते। जिस समय उच्चाभिलाषी महान अकबर ने दक्खिन के राजाओं के उन्मूलन करने का प्रयास किया, उस समय वे न केवल एक दूसरे के प्रति युद्ध में रत थे, बल्कि आन्तरिक कलह के कारण उनके निजी प्रयास भी निष्क्रिय थे। अहमदनगर का राज्य दो दलों की कलह के कारण विशेष रूप से अव्यवस्था का शिकार था। एक दल का नेतृत्व एक हिन्दू[1] के हाथ में था, और दूसरे दल का नेतृत्व हबशी सामंतों[2] के हाथ में था। सर्वप्रथम हिन्दू दल ने मुगलों को हस्तक्षेप करने के लिए निमंत्रण दिया, किन्तु बाद को उनको इसका पछतावा हुआ। अपने मरने के समय, १६०५ में सम्राट् अकबर के अधिकार में न केवल खानदेश था जिसको उसने उन स्वतंत्र मुसलमान राजाओं से छीना था जो इस पर बहुत दिनों से राज्य कर रहे थे, बल्कि निजाम शाह के कुछ प्रदेशों पर भी उसका अधिकार था जिसमें बरार का बहुत बड़ा भाग, और अहमदनगर का किला तथा उसके निकट के कुछ जनपद भी सम्मिलित थे। बहादुर निजामशाह की जिसको उन्होंने ग्वालियर में आजन्म कारावास में डाला, अल्प वयस्कता में अहमदनगर मुगलों के अधिकार में आया किन्तु निजामशाही राज्य, यद्यपि इसकी राजधानी मुगलों के हाथ में चली गई थी और इसका वैध राजकुमार आजन्म बन्दी बना कर ग्वालियर के कारावास में डाल दिया गया था, अब भी पूर्णतया दमन नहीं किया जा सका था। इसका मुख्य नियन्त्रण हबशी दल के हाथ में आया जिसका नेतृत्व एक असाधारण प्रतिभा का व्यक्ति मलिक अम्बर कर रहा था। इस दल ने एक नए राजा को, मुर्तिजा निजामशाह द्वितीय की उपाधि देकर, सिंहासन पर बैठाया, दौलताबाद के अजेय चट्टान पर बहरी झण्डा फहराया और शीघ्र ही मुगलों की अपेक्षा एक सशक्त और सम्मानीय राज्य स्थापित किया।

मलिक अम्बर के प्रारम्भिक जीवन के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं, उनमें से सबसे अधिक सामंजस्यपूर्ण किंवदंति यह है कि वह अपने युवा काल में मुर्तिजा निजामशाह प्रथम का उत्कट राजभक्त[3] मंत्री चंगेज खाँ[4] का निजी अनुगामी था। और संभवतः उसने अपने योग्य संरक्षक से ज्ञान प्राप्त किया था जिसके बल पर उसने

---

[1] किसी मराठी हस्तलेख में इसका उल्लेख नहीं है और मुझे इसका कोई सन्तोषजनक विवरण भी प्राप्त नहीं हुआ। फिरिश्ता ने इसका नाम मीनराजू लिखा है।

[2] ये सामन्त निजामशाही राजाओं की हबशी पत्नियों के वंशज थे।

[3] यह जानते हुए भी कि उसका कृतघ्न सम्राट् उसे विष-पान करा रहा है, इसने विषपान किया (फिरिश्ता)। [4] मराठी हस्तलेख।

थोड़े ही समय में, देश में व्यवस्था स्थापित की, और राजस्व में वृद्धि की। वह दक्खिन के आसन्न संकटयुक्त सीमा का, बीस वर्ष से अधिक समय तक, विदेशी आक्रमण से रक्षा करता रहा। जहाँगीर का राज्यारोहण और उसके पुत्र सुल्तान खुसरू के विद्रोह के कारण मुगल आक्रमण से मलिक अम्बर को साँस लेने का कुछ समय मिला। इस अवकाश का उपयोग उसने कर की व्यवस्था करने, अहमदनगर प्रदेश के उन भागों पर, जिन पर सम्राट् की सेना का अधिकार नहीं था, अपना शासनाधिकार स्थापित करने और अपनी संरक्षिता का सम्मान देश और विदेश में बढ़ाने का उपयोग किया। बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तान अभाग्यवश अपने अपने अपने राज्यों के स्थायित्व के लिए, मलिक अम्बर का उत्कर्ष होना अच्छा नहीं समझते थे। इब्राहिम आदिलशाह उससे व्यक्तिगत शत्रुता रखता था और इस भयसे कि उनके राजसभाओं में भी इस उदाहरण का शीघ्र ही अनुसरण न किया जाय, ये दोनों शासक मलिक अम्बर द्वारा शक्ति का हड़पा जाना अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे।

१६१० ई०—मलिक अम्बर ने, दौलताबाद के समीप खिरकी[1] नगर बसा कर वहीं अपनी राजधानी बनाई और अनेक भव्य राजप्रासादों का निर्माण किया। उसने मुगल सेनाओं को बारंबार हराया, और कुछ समय के लिए अहमदनगर दुर्ग को तथा बरार के जनपदों को हस्तगत किया। प्रायः निरंतर युद्ध में संलग्न रहने पर भी, इस महान व्यक्ति ने शांति समय के कलाओं को प्रोत्साहन देने और वित्त संबंधी उन प्रबंधों को आगे बढ़ाने का समय निकाला जिससे उसके देश के एक २ गाँव में उसका नाम, सेनापति की ख्याति से कहीं अधिक, शासक के रूप में श्रद्धान्वित हुआ। उसने मालगुजारी की ठीकेदारी बंद करदी, और मुसलमान निरीक्षण में ब्राह्मण अभिकर्त्ताओं को प्रबंध करने के लिए नियुक्त किया। गाँव की पतितोन्मुख संस्थाओं का पुनरुद्धार किया और खेतों की मालगुजारी आंकने के लिए उस तरीके को अपनाया जिसके अनुसार कई ऋतुओं की वास्तविक उपज का साधारण अनुपात वस्तुरूप में निकाल कर खेती के अनुसार उसका वार्षिक भुगतान द्रव्य के रूप में बदल दिया जाता था।[2] इन उपायों से उसके जनपद

---

[1] मुसलमान लेखक गरका नाम से बहुधा इसका उल्लेख करते हैं। बाद को खिरको का नाम औरंगाबाद रखा गया।

[2] यहाँ मलिक अम्बर के विख्यात राजस्व प्रणाली का विवरण मुख्यरूप से मराठी हस्तलेखों के आधार पर दिया गया है। इन हस्तलेखों के अनुसार उसका

१६१४ ई० शीघ्र ही पनपे और आबाद हुए। उसका खर्च लम्बा होने पर भी उसके पास द्रव्य की प्रचुरता थी।

१६२५, १६२१ ई०—मलिक अम्बर की सम्पन्नावस्था सदा एक सी नहीं थी। यदा-कदा उसको घोर उलट-फेर का सामना करना पड़ा। १६२१ के लगभग उसकी सेवा में रहे हुए कुछ प्रमुख मराठे उसका साथ छोड़ कर मुगलों की ओर जा मिले। निजामशाही शासन के प्रमुख मराठा सरदार सिन्दिखेर के देशमुख, लखजी जाधव राव ने उसका साथ छोड़ दिया। इस मराठा सरदार की शक्ति और महत्त्व का प्रमाण इसी बात से मिलता है कि मुगलों ने उसका स्वागत कर उसे चौबीस हजारी मंसब और पन्द्रह हजारी घुड़सवारी और उसके साथ के सभी सम्बन्धियों को ऊँचे २ पद प्रदान किए।

१६२६ ई०—राजकुमार शाहजहाँ के विद्रोह ने सम्राट् की सेनाओं का ध्यान फिर दूसरी ओर फेरा। मलिक अम्बर ने अपनी मृत्यु के पहले जो १६२६ के आरम्भ में हुई, दक्षिण में फिर एक बार विजय लाभ की। बीजापुर के इब्राहिम आदिलशाह ने भी एक वर्ष बाद उसका अनुगमन किया। उन प्रदेशों में जहाँ वे शासन करते थे उनकी श्रद्धायुक्त स्मृतियाँ आख्यायिकाओं के रूप में आज भी सुरक्षित हैं।

बीजापुर के खण्डहरों के अवशेषों में सब से अधिक उत्कृष्ट और शोभायुक्त भवन, मलिक अम्बर की कब्र, अपने भूतपूर्व राजाओं और सामन्तों के ऐश्वर्य के साक्ष्य स्वरूप अब भी वर्तमान है।

मलिक अम्बर के युद्धों में उसके मराठा सेवकों की उत्कृष्टता बारम्बार सामने आई। अपने पिता मालोजी के जागीर के उत्तराधिकारी शाहजी भोसले ने अहमद-नगर प्रदेश की उत्तरी सीमा के निकट १६२० में मुगलों के विरुद्ध एक बड़े युद्ध में विशेषरूप से ख्याति प्राप्त की। इस युद्ध में मलिक अम्बर की हार हुई जिसका किंचिन्मात्र भी दोष मराठों के माथे न लगा। इस युद्ध के वर्णन में लखजी जाधव राव और शाहजी के नाम आते हैं। इस अवसर पर फल्टन के नायकों[१] में से एक खेत रहा।

कर-निर्धारण राज्यभूमि की उपज का ⅖ था। परम्परा के अनुसार उसका मुद्रा विनिमय लगभग एक तिहाई था।

[१] वर्तमान जनराव नायक निम्बालकर का अनुमान है कि यह उसका पूर्वज जगपाल था जो लगभग इसी समय मारा गया था। बीजापुर शासन से फल्टन के नायकों को जागीर मिली थी। किन्तु यह इस बात का सन्तोषजनक साक्ष्य नहीं है कि इब्राहिम आदिलशाह ने मलिक अम्बर की सहायता की थी या मुगलों के विरुद्ध

मुसलमान इतिहास[1] में महाराष्ट्र को सर्वप्रथम विजय करने के समय से इस अवधि तक मराठों का नाम विरल है। उनका राष्ट्र और उनके नेता अनाम ही रहे किन्तु अब हम उनके महत्त्व को तेजी से बढ़ते हुए देखते हैं। अतः शिवाजी के उत्कर्ष के निकटपूर्व की घटनाओं का कुछ अधिक पूर्ण विवरण देना आवश्यक है।

१६२६ ई०—इब्राहिम आदिलशाह जिसकी मृत्यु का अभी हमने उल्लेख किया है, बीजापुर के सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में इस नाम का यह दूसरा राजा था। उसने अपने पुत्र मुहम्मद आदिलशाह के लिए जो अपनी आयु के १५वें या १६वें वर्ष में सिंहासन पर बैठा, एक बड़ा कोष, फलता-फूलता राज्य, और एक बड़ी सेना छोड़ कर मरा। कहा जाता है कि उसकी सेना में किले और नगर की रक्षा में नियुक्त टुकड़ियों को मिला कर अस्सी हजार घुड़सवार तथा दो लाख से अधिक वेतन भोगी पदाति थे। इसमें अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

मलिक अम्बर फतह खाँ और चंगेज खाँ नामक दो पुत्रों को छोड़ कर मरा। उसका ज्येष्ठ पुत्र फतह खाँ उसके मरने के बाद निजामशाही राज्य का प्रतिनिधि हुआ। नए प्रतिनिधि ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रखा किन्तु अपने पिता के गुणों का पूर्णतः अभाव होने से वह पराजित हुआ होता, यदि मुगल सेनापति खान जहाँ लोदी अत्यन्त अनुकूल शर्तों पर युद्ध विराम न करता।

१६२९ ई०—१६३० ई०—सुल्तान मुर्तिजा निजाम शाह द्वितीय, पूर्ण वयस्क होने पर जैसा कि स्वाभाविक है, प्रतिनिधि की शक्ति को कम करने का

एक व्यापक संघ बना था। परिवार के आख्यानों के अनुसार जगपाल आखेट या युद्ध के अवसर पर सदा सर्वत्र उपस्थित रहता था। सम्भव है कि उसने अपने शासन की आज्ञा के बिना इस युद्ध में भाग लिया हो।

[1] सत्रहवीं शती के आरम्भ के लगभग फिरिश्ता का इतिहास समाप्त होता है जो हमारा सर्वोत्तम आधार रहा है। अगले चालीस वर्षों तक, अहमदनगर राज्य के अन्तिम छिन्न-भिन्न होने तक दक्खिन के इतिहास का हमारा सर्वाधिक संगत और प्रामाणिक आधार खाफी खाँ का ग्रन्थ है। खाफी खाँ ग्रन्थकार का कल्पित नाम है। उसका वास्तविक नाम मुहम्मद हाशिम खाँ था। उसका पिता ख्वाजा मीर भी इतिहास लेखक था। मुहम्मद हाशिम खाँ औरंगजेब की सेवा में राजनीतिक और सैनिक पदों पर काम करता था। उसके इतिहास का बहुधा उल्लेख होता है। इसके लम्बे २ उद्धरण सियारुल मुताखिरीन तथा अन्य ग्रन्थों में दिए हुए हैं। यह इतिहास औरंगजेब की मृत्यु के दस वर्ष पश्चात् लिखा गया था।

इच्छुक था। फतह खाँ के उग्र और अनियमित व्यवहार से इसकी पूर्ति सरल हो गई, अन्यथा यह काम यह राजकुमार कभी भी नहीं कर सकता था क्योंकि वह असहिष्णु, चपल और अपनी वर्तमान सङ्कटपूर्ण स्थिति का सामना करने में पूर्णतः अयोग्य था।

तकर्रिब खाँ नामक एक राजकीय पदाधिकारी की सहायता से वह फतह खाँ को बन्दी बनाने में सफल हुआ। ऐसा होने पर मराठा सरदार लखजी जाधव राव ने उसकी सेवा में लौट आने के लिए तुरन्त ही प्रस्ताव किया। किन्तु मुर्तिजा निजाम शाह ने पद छोड़ कर भाग जाने के उसके अपराध को सांघातिक दोष माना और कपटपूर्वक उसके प्रस्तावों को सुना और प्रलोभन देकर दौलताबाद के किले में एक सम्मेलन में उसको बुलाया और उसको तथा उसके कई सम्बन्धियों को विश्वासघात-पूर्वक मार डाला। उसकी विधवा ने जिसके सम्बन्ध में हम पहले लिख चुके हैं, इस घटना को सुन कर अपने पति के सैनिकों को साथ लेकर भागी और अपने बहनोई जगदेव राव जाधव के साथ शाही पड़ाव को गई। उसकी मध्यस्थता से जगदेव राव की अपने जागीर में पुष्टि की गई और उसको पञ्चहजारी घुड़सवारों का पद प्राप्त हुआ। इसके बाद से हमेशा सिंदखेर के जाधव निष्ठापूर्वक मुगलों के राजभक्त बने रहे।

१६२८ ई०—सम्राट् जहाँगीर की मृत्यु १६२७ में हुई और दूसरे वर्ष उसका पुत्र शाहजहाँ गद्दी पर बैठा।

नया सम्राट् खान जहाँ लोदी से जो उस समय दक्खिन में मुगल प्रदेशों का राज्यपाल था व्यक्तिगत शत्रुता रखता था। उसने उसे वहाँ से हटा कर एवं मालवा को स्थानान्तरित कर दरबार में उपस्थित होने को बुलाया। वहाँ उसका बहुत सम्मान किया गया। किन्तु बाद को उसको विश्वासघात का सन्देह हुआ। उसने दक्खिन भाग कर, बागलान की सीमा पर निजाम शाह के प्रदेश में शरण ली। उसका पीछा करने के लिए तुरन्त ही एक टुकड़ी भेजी गई, किन्तु उस प्रदेश के जमींदारों या देशमुखों ने मुगल सेना को पराजित कर उसकी रक्षा की, और लालच और धमकी दिए जाने पर भी उसको समर्पण करना अस्वीकार किया। शाहजहाँ खान जहाँ लोदी से इतना अधिक ईर्ष्यालु था कि वह अपने सिंहासन के स्थायित्व के लिए उसका समर्पण अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण समझता था। उन सब लोगों को विनाश की धमकी देते हुए जिन्होंने उसका पक्ष ग्रहण किया या आश्रय दिया था उसने प्रस्थान किया। दक्खिन के अस्थिर युद्ध का उसको पर्याप्त अनुभव था। अतः उसने अपनी सेना को तीन भागों में बाँट कर, अजीम खाँ, इरादत खाँ और साइस्ता खाँ के अलग २ सेनापतित्व में सेना भेजी। अजीम खाँ के दल का पश्चिमी रास्ते से प्रवेश हुआ।

वह अत्यन्त क्रियाशील अधिकारी था। उसने खान जहाँ लोदी को दक्षिण की ओर भागने के लिए विवश किया।

शाहजी भोसले ने जो लोदी के सहायकों में से था, उसके भागने पर, संभवतः अपनी जागीर के छिन जाने के भय से, अपनी सास लखजी जाधव राव की विधवा के पद-चिह्नों का अनुगमन कर, अजीम खाँ के द्वारा मुगल सम्राट् को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। और इस शर्त पर कि वह सुरक्षापूर्वक और एक क्षमापत्र के साथ ले जाया जायगा, उसने सम्राट् के समक्ष उपस्थित होने का वचन दिया। इस अनुरोध के स्वीकार हो जाने पर, अपने निकट आश्रितों तथा २,००० घुड़सवारों के साथ वह राजसभा में आया। शाहजहाँ के प्रति अपना सम्मान अर्पित करने के बाद ५,००० घुड़सवारों के सहित ६ हजारी मंसबदारी पद पर उसकी तरक्की की गई। उसके अनेक आश्रितजन मंसबदार बनाए गए और शाहजी के जगीर की पुष्टि की गई। उसको कुछ और जनपदों का भी पट्टा मिला जिनके नामों का कहीं उल्लेख नहीं है। सम्भवतः अहमदनगर[1] भी उनमें से एक था। इसी समय के आसपास शाहजी का ममेरा भाई, विठूजी का पुत्र कल्लो जी भोसले[2] ने सम्राट् की सेवा स्वीकार की। उसको एक मंसब दी गई।

निजामशाही प्रदेश के पश्चिमी भाग से खदेड़े जाने पर खान जहाँ लोदी बीजापुर चला गया, और मुगलों के अन्यायपूर्ण प्रवेश के निवारण के लिए, मुहम्मद आदिलशाह को मुर्तिजा निजामशाह के साथ मिल जाने के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया। उसके तर्कों का तात्कालिक प्रभाव न हुआ। विवश होकर वह दौलताबाद लौटा।

१६३० ई०—दक्षिण में १६२९-३० के ऋतु में बिल्कुल वर्षा न हुई और महामारी के साथ एक अकाल प्रारम्भ हुआ। किन्तु यह पता लग जाने पर कि खान जहाँ लौट आया है, महामारी की और खाद्य पदार्थ के दुष्प्राप्य होने की अड़चनों के होते हुए भी अजीम खाँ ने दौलताबाद की ओर प्रस्थान किया। निजामशाह

---

[1] **अहमदनगर की देशमुखी पर शाहजी का कोई वंशागत अधिकार नहीं था किन्तु उसके पुत्र शिवाजी ने इसके स्वामित्व का दावा किया।**

[2] **केलाजी भोसले के नाम शाहजहाँ का मूल फर्मान एक मराठा के कब्जे में पाया गया था जो १८२० में विशालगढ़ के समीप एक तुच्छ विद्रोह का नेता था। औरंगजेब ने केलाजी भोसले की हत्या की किन्तु किस समय और किस परिस्थिति में, यह नहीं मालूम। मराठी हस्तलेख।**

एक सुरक्षित स्थान पर डट गया किन्तु दृढ़ प्रतिरक्षा करने के बाद भी वहाँ से खदेड़ा गया।

इस पराजय से तथा देश की दुरवस्था से विवश हो, खान जहाँ ने अफगानों के पास काबुल में भाग जाने का साहसिक प्रयास किया किन्तु सम्राट् के सिपाही शीघ्र ही उसका निरंतर तथा निकट से पीछा करने में लग गए। और अन्तमें एक दल ने उसको घेर लिया। कुछ विश्वासी अनुयायियों के साथ वह अपने बहुसंख्यक पीछा करने वालों पर टूट पड़ा। और घावों से विद्ध होकर गिरने पर भी वह अन्तिम साँस तक इस प्रकार वीरतापूर्वक लड़ता रहा कि उसके कट्टर से कट्टर शत्रुओं ने भी उसकी प्रशंसा की।

अजीम खाँ अपनी विजय से प्राप्त लाभों की उपलब्धि में लगा। उसने जनपदों पर अधिकार कर एवं निजामशाही के जागीरदारों और मंसबदारों के अभिकर्ताओं को पदच्युत कर, अपने ही अनुयायियों में प्रदेश के खण्डों को बाँटा। दौलताबाद से दक्षिण की ओर प्रस्थान करते समय उसका कई स्थानों पर अधिकार हुआ। उसने भीर के समीप धरुर के मजबूत किले पर सहसा आक्रमण किया। ऐसा प्रतीत होता है कि निजामशाह के सैनिकों का नेतृत्व दो अधिकारी कर रहे थे— बहलोल खाँ जो लोदी का एक अफगान अनुयायी था और मुक्रिब खाँ जो अस्थायी युद्ध चलाता रहा और बारंबार खदेड़े जाने पर भी दमन न किया जा सका।

१६३१ ई०—मुर्तिजा निजामशाह ने देखा कि अव्यवस्था और विनाश उसको चारों ओर से घेरे हुए है किन्तु अपने शासन के दोषों को खोज निकालने का न तो उसको विवेक था और न उसमें उनको दूर करने की प्रतिभा थी। उसको अपने मन्त्रियों पर विश्वास न रहा। अतः उसका ध्यान अपने बन्दी, फतह खाँ की ओर गया। कारावास से निकाल कर उसने उसको पुनः शक्ति प्रदान की। तकर्रिब खाँ, इस कार्यवाही से उद्विग्न होकर तथा अपने को संकट में देख कर, अजीम खाँ से जाकर मिल गया। उसको सम्राट् की सेना में छ हजारी घुड़सवारी का पद मिला। उसकी भ्रष्टता इस अवसर पर मुगलों के लिए उपादेय हुई क्योंकि एक नए शत्रु के रूप में सुल्तान मुहम्मद आदिलशाह का संकट सामने खड़ा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब मलिक अम्बर से युद्ध हो रहा था, किसी समय मुगल सम्राट् और इब्राहिम आदिलशाह के बीच में एक गुप्त बँटवारे की सन्धि हुई थी जिसकी शर्तें थीं कि यदि बीजापुर शासन निजामशाही प्रदेश को विजय करने में क्रियात्मक सहयोग प्रदान करेगा, तो कोंकण में निजामशाही के अधिकृत जनपद, एवं शोलापुर का दुर्ग, और पूर्वी ओर के पाँच दुर्ग जिनका सम्बन्ध बीदर के समीप के आदिलशाही जनपदों से था और जिनमें से धरुर भी एक था उसको मिलेंगे।

किन्तु मुहम्मद आदिलशाह ने, आरम्भ में इस सन्धि को स्वीकार करते प्रतीत होते हुए भी, सच्चाई से इस सन्धि का पालन नहीं किया। निजामशाही प्रदेश के एक अंश पर अधिकार जमाने के लिए तो वह उत्सुक था, किन्तु मुगल ऐसी वृहद् शक्ति के साथ हिस्सा बँटाना उसने बुद्धिमानी नहीं समझा। वर्तमान अवसर पर, उसने मुर्तिजा निजामशाह से एक गुप्त समझौता किया और अपने सेनापति रनदुल्लह खाँ के नेतृत्व में एक सेना यह प्रचार करते हुए भेजी कि यह मुगलों से मिलने जा रही है। अजीम खाँ के सेना के समीप पहुँचने पर, रनदुल्लह खाँ ने यह प्रार्थना भेजी कि सन्धि के अनुसार धरुर का दुर्ग आदिलशाह के सैनिकों को सौंपा जाय। अजीम खाँ ने यथान्याय यह विरोध किया कि न तो उन्होंने इस पर अधिकार करने में सहायता दी और न अपने पक्ष की शर्तों को ही पूरा किया। अतः वह इस माँग को पूरा नहीं कर सकता। अपनी सच्चाई प्रमाणित करने के लिए अब भी अनेक अवसर हैं, सम्राट् उसकी इस प्रार्थना का भविष्य में ध्यान रखेगा। इसी अवधि में मुर्तिजा निजामशाह ने बीजापुर के राजा को शोलापुर लौटाना स्वीकार किया और उनके बीच में, पारस्परिक प्रतिरक्षा के हेतु, मुगलों को खदेड़ देने के लिए एक सन्धि हुई।

इन मित्र राजाओं की योजनाओं के परिपक्व होने के पूर्व ही अजीम खाँ और रनदुल्लह खाँ की सेनाओं के बीच झगड़े का अवसर उठ खड़ा हुआ और एक युद्ध हुआ जिसमें बीजापुर की सेना पराजित हुई।

ये दोनों राज्य मैत्री-संगठन कर अब भी अपने २ अपहृत प्रदेशों को प्राप्त कर सकते थे। किन्तु इसी समय के लगभग मुर्तिजा निजामशाह उस दुष्ट फतह खाँ द्वारा जिसका उन्होंने अपमान किया था कारावास में डाला तथा गला घोंट कर मारा गया। उस अभागे राजकुमार के समस्त सामन्त भी मारे गए।

प्रतिकार और हिंसा के इन कार्यों की सफाई देने के उद्देश्य से फतह खाँ ने शाहजहाँ के पास यह निवेदन भेजा कि सम्राट् की सेवा के प्रति अपनी श्रद्धा के साक्ष्य स्वरूप ही उसने ऐसा किया और मृत राजा के लड़के को, सम्राट् की इच्छा प्राप्त होने तक, रिक्त-सिंहासन पर बैठाया है।

शाहजहाँ ने, उत्तर में, इस निवेदन का विश्वास करने का बहाना किया और यद्यपि वह यह समझता था कि इस राज्य के शेष जनपद भी शीघ्र ही विजय एवं अधिकार में किए जाने वाले हैं, फिर भी, क्योंकि उनमें से अनेक दुर्गों पर शक्ति द्वारा अधिकार पाना कठिन होता, उन प्रदेशों को उस अनाथ को इस शर्त पर प्रदान करने का बहाना किया कि वह सम्राट् की राजसभा में अपने सब से उत्कृष्ट हाथियों को तथा निजामशाही वंश के स्वामित्व के सबसे अधिक मूल्यवान रत्नों को भेजे। दूसरी ओर फतह खाँ को बहुत सम्मान प्रदान किया गया, जागीर में उसे अनेक जनपद दिए

जाने का वचन दिया गया, जिनमें से कुछ वे जनपद थे जो शाहजी भोसले को पहले प्रदान किए जा चुके थे।

बीजापुर से युद्ध आरम्भ हो जाने पर बड़ी २ सेनाएँ दक्खिन में भेजी गईं। सेना के मुख्य सेनापति आशिफ खाँ ने निजामशाही प्रदेश में से होकर जाते समय मित्र-शक्तियों से अकस्मात् अलग हो जाने पर, मुहम्मद आदिलशाह के प्रदेश पर आक्रमण किया और उसको विनष्ट कर उसकी राजधानी पर घेरा डाला किन्तु सामग्रियों के पहुँचने में रुकावट हो जाने और कपटपूर्वक कार्यवाहियों के लम्बी किए जाने के कारण आशिफ खाँ घेरा उठाने को विवश हुआ और पश्चिम में मरिच तक के प्रदेश को लूट और नष्ट कर सेना सहित लौटा। अब महाबत खाँ ने जो खान जहाँ लोदी के मालवा स्थानान्तरित किए जाने पर दक्खिन के मुगल अधिकृत प्रदेशों का राज्यपाल नियुक्त किया गया था, स्वयं युद्ध संचालन का बीड़ा उठाया। परिस्थितिवश बीजापुर प्रदेश पर अधिकार करने का उद्देश्य त्यागा गया।

१६३२ ई०—फतह खाँ ने माँगे हुए हाथियों और रत्नों को देने में पहले आनाकानी की किन्तु इस माँग को पूरा कर देने पर उसके संरक्षक पद की पुष्टि की गई और वे जनपद जिनके प्रदान करने का वचन दिया गया था उसके पास रहने दिए गए। इस व्यवहार से उद्विग्न होकर, शाहजी भोसले ने मुहम्मद आदिलशाह के प्रमुख मंत्री मुरार पंत के द्वारा जो एक कुशल ब्राह्मण था बीजापुर शासन के पास समझौते के प्रस्ताव भेजे।

इस प्रस्ताव में शाहजी ने मुरार पंत से यह प्रस्ताव किया था कि दौलताबाद के विरुद्ध कार्यवाही की जाय। सैन्यदल की असमर्थता, सामन्तों की सामान्य भ्रष्टता और यह कि फतह खाँ और मुगलों के विरुद्ध पिछली उथल-पुथल से क्षतिग्रस्त लोग सहायता देने के लिए प्रस्तुत होवेंगे, इनका इतने सशक्त ढंग से निरूपण किया गया था कि राजा ने स्वीकृति दे दी।

शाहजी की सेना के सहित बीजापुर सेना के प्रस्थान होने की सूचना पाकर और देश भर में अपने प्रति फैली हुई घृणा को देखकर फतह खाँ ने दुर्ग को समर्पण करने एवं मुगल सेनापति महाबत खाँ की रक्षा में आने का प्रस्ताव भेजा। इतना लाभकारी प्रस्ताव को पाकर महाबत खाँ अत्यन्त प्रसन्न हुआ और जितना भी शीघ्र हो सका दौलताबाद की ओर प्रस्थान किया किन्तु बीजापुर की सेना पहले ही पहुँच गई, और दुर्ग से सम्बन्ध न होने देने के लिए इसके और मुगलों के बीच में आ गई। एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें बीजापुर सेना और शाहजी ने रणस्थली पर डटे रहने का प्रचण्ड प्रयत्न किया किन्तु वे दौलताबाद के दूसरी ओर सोलह मील तक खदेड़ दिए गए।

बीजापुर के सरदार जो दक्खिन के अन्य निवासियों की तरह षड्यंत्र और समझौता वार्ता करने में कुशल थे फतह खाँ के पास अपनी शर्तें भेजीं कि वे अपनी पूर्व मैत्री बनाए रखेंगे और उसकी सहायता करेंगे, यदि वह शाहजी को वेतन देने के लिए तैयार हो और सम्राट् को दौलताबाद समर्पण न करे। यह प्रस्ताव स्वीकार हो जाने पर दोनों पक्ष की सेनाओं ने मुगलों पर अचानक आक्रमण किया। इससे महाबत खाँ इतना कुपित हुआ कि उसने दौलताबाद पर नियमित घेरा डालने और फतह खाँ के अप्रतिम विश्वासघात का दण्ड देने का निश्चय किया। (१) बीजापुर सेना के प्रतिरोध के लिए, (२) अपने सैन्य शिविर की सामग्रियों की रक्षा के लिए और (३) दुर्ग में कोई भी संभार या सामग्री पहुँचने देने से रोकने के लिए तथा अवश्यकतानुसार एक दूसरे की भी सहायता करने के लिए उसने अनुभवी सेनाधिकारियों की देखरेख में अपनी उत्कृष्ट सेना को तीन भागों में बाँटा। उसने सेना के मुख्य भाग को दुर्ग के विरुद्ध सक्रिय युद्ध करने के लिए अपने ही देखरेख में रखा।

फरवरी १६३३ ई०—आक्रमण और प्रतिरक्षा दोनों ही बड़ी प्रचण्डता और लगन से किए गए। किन्तु सामग्री के अभाव से प्रतिरक्षा सैन्यदल को अट्ठावन दिन के घोर युद्ध के बाद आत्मसमर्पण करना पड़ा। फतह खाँ के सब अधिकार छीन लिए गए और उसको निवृत्ति वेतन प्रदान किया गया।[1] वह बालक जिसको उसने गद्दी पर बैठाया था अपने घराने के एक अन्य राजकुमार की तरह ग्वालियर दुर्ग में बन्दी बना कर सजा भोगने के लिए डाला गया।

बीजापुर सेना की ओर से लड़ने वाले प्रबल शाहजी के युद्ध प्रयत्नों को रोकना आवश्यक था। दौलतावाद के घेरे की अवधि में त्र्यम्बक दुर्ग के निजामशाही राज्यपाल महालदार खाँ ने महाबत खाँ के द्वारा सम्राट् को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। महाबत खाँ ने उसको सुझाव दिया कि अपनी निष्ठा को प्रमाणित करने के लिए वह बीजापुर के समीप बसे हुए शाहजी की पत्नी और परिवार को पकड़ ले। अतः किलेदार ने शाहजी की पत्नी एवं बहुत सी सम्पत्ति को हस्तगत किया। किन्तु उसके कुछ सम्बन्धियों ने उसकी प्रतिभू हो कर उसे छुड़ाया और कोंड़ना[2] दुर्ग में पहुँचा दिया।

---

[1] बाद को वह विक्षिप्त होकर सिर के एक पुराने घाव के कारण मरा।

[2] बीजापुर हस्तलेखें। खाफी खाँ लिखता है कि इस अवसर पर शाहजी की पुत्री पकड़ी गयी। किन्तु मुझे यह पता नहीं चल सका कि उसके एक पुत्री थी

दौलताबाद के पतन के बाद महाबत खाँ ने खान दौराँ को उस प्रदेश की रक्षा का भार देकर बीजापुर सेना का पीछा किया। बीजापुर सेना सामने से हट गई और अस्थिर युद्ध चलाती रही। एक डिम्ब युद्ध में ख्यातिप्राप्त मराठा अधिकारी नागो जी[1] काम आया। मुरारपंत ने सन्धि की बात चलाई किन्तु बीजापुर प्रदेश में काफी दूर तक महाबत खाँ के बढ़ जाने पर चुपके से एक बड़ी टुकड़ी ने कष्ट सहित प्रयाण कर दौलताबाद पर आक्रमण करने का असफल प्रयत्न किया। इस वर्ष के अन्तिम दिनों में सम्राट् ने अपने द्वितीय पुत्र सुल्तान शुजा को महाबत खाँ के स्थान पर नियुक्त कर महाबत खाँ को उसका सहायक बनाया। तब से युद्ध की प्रगति रुक गई। परेण्डा दुर्ग पर अधिकार जमाने में तथा बाध्य होकर बुर्हानपुर को अपगमन करने में असफल होने के कारण आगामी वर्ष में महाबत खाँ और सुल्तान शुजा दोनों ही वापस बुला लिए गए।

१६३४ ई०

दौलताबाद का पतन, फतेह खाँ का स्थानान्तरण और बालक राजकुमार का बन्धन हो जाने पर, प्रतिनिधि होने की आकाँक्षा से शाहजी ने एक दूसरे राजकुमार को निजामशाह का वैध उत्तराधिकारी घोषित किया। उसने कुछ ब्राह्मणों की सहायता से व्यवस्था स्थापित की और कुछ किलों और जनपदों पर अधिकार कर सेना एकत्रित की। शाहजी ने कुछ समय के लिए दक्षिण में नीरा नदी से लेकर उत्तर में चान्दोर पर्वत श्रेणी तक, और पूरब में अहमदनगर तक के जनपदों पर और कोंकण के उस समस्त भाग पर जो अहमदनगर राज्य के अधीन था अधिकार किया।[2] केवल कुछ वे किले उसके अधिकार में नहीं आए जहाँ रक्षकसेना थी। उसका दमन करने के लिए पहले एक टुकड़ी पर्याप्त समझी गई। किन्तु उसका दल दिन पर दिन शक्तिशाली होता गया। मुगलों की परेण्डा में पराजय होने के बाद उसने धीरे २ शक्ति बढ़ाई।

सम्राट् शाहजहाँ ने दक्खिन के अधिकृत प्रदेशों को दो शासनों में बाँटा। एक शासन में खानदेश के मुगल अधिकृत जनपद तथा गलना और बरार का पायान-घाट[3]

---

[1] यह कल्पना की जाती है कि यह नागो जी घाटगे जूझार राव था जो मुगलों के विरुद्ध एक युद्ध में मारा गया। (घाटगे परिवार का बखर)।

[2] मराठी हस्तलेखों तथा खाफी खाँ में इन तथ्यों के साक्ष्य हैं। यह निःसन्देह शाहजी की राजपता थी। सब मराठी हस्तलेखों में उल्लेख है कि निजामशाह के परिवार में एक अल्पवयस्कता की अवधि में यह हुआ था।

[3] पायानघाट का अर्थ है निचला मैदान, नीची भूमि। और बालाघाट का अर्थ है पहाड़ी भाग।

सम्मिलित किए गए और दूसरे में निजामशाही प्रदेश के नव-अधिकृत जनपद रखे गए। खान दौराँ और खान जुमाँ को इनका शासन अधिकार सौंपा गया और पश्चिमी जनपदों की व्यवस्था में सहयोग देने तथा शाहजी का दमन करने का भी आदेश दिया गया। शाहजी का दमन करना एक टेढ़ी खीर थी क्योंकि उसके पास एक बड़ी सेना थी और मुरार पंत और रनदुल्लह खाँ और सुल्तान बीजापुर की सहायता भी उसे प्राप्त थी।

दौलताबाद के पतन के बाद भी इस प्रकार के प्रतिरोध होते रहने तथा मुहम्मद आदिलशाह से अत्यन्त कुपित होने के कारण, अहमदनगर प्रदेश की परिस्थितियों का शीघ्र निबटाने की दृष्टि से सम्राट् ने एक बड़ी सेना तैयार की और दक्खिन के अन्य राज्यों पर, न चाहते हुए भी, अधिकार करने के लिए तैयार हो गया। बीजापुर और गोलकुण्डा के प्रति उसका व्यक्तिगत क्रोध और शत्रुता थी। उसने एक राजदूत बीजापुर भेजा और निजामशाही राज्य से कुछ दिन पूर्व छीने गए किलों की तथा उसमें रखी हुई एक बड़ी तोप मलिके मैदान[1], बन्दूकें और अन्य सैन्य सामान लौटाने के लिए आदेश दिया। साथ ही इस बात पर जोर दिया कि सुल्तान किसी भी प्रकार से शाहजी की तथा अन्य उपद्रवी लोगों की सहायता या रक्षा न करे, सम्पूर्ण निजामशाही-कोंकण, तथा शोलापुर दुर्ग और जनपद देने का वचन दिया गया, और आदेशों को न मानने पर विनष्ट करने की दर्पपूर्ण धमकी दी गई किन्तु इनका कोई फल न हुआ। शाहजहाँ ने आक्रमण करने के लिए अपने चुने हुए अड़तालीस सहस्त्र अश्वारोहियों को चार भागों में बाँटा—दो भाग शाहजी के और दो मुहम्मद आदिलशाह के विरुद्ध लड़ने के लिए। शाइस्ता खाँ और अलीवर्दी खाँ के नेतृत्व में एक टुकड़ी शाहजी के दुर्गों, चान्दोर, संगमनेर और नासिक के समीप के शाहजी के दुर्गों पर घेरा डालने के लिए नियत की गई और २० सहस्त्र अश्वारोहियों की एक टुकड़ी खाँन जुमाँ के अधीन रखी गई जिससे वह शाहजी को खदेड़ कर कोंकण के उसके दुर्गों पर अधिकार करे और निजामशाही प्रदेश के किसी भी कोने में उसको ठहरने न दे। खान दौराँ के अधीन एक टुकड़ी नन्देर के समीप के एक स्थान को भेजी गई क्योंकि गोलकुण्डा के सुल्तान अबदुल्ला कुत्ब शाह के विरुद्ध संदेह था। किन्तु यह संदेह दूर हो जाने और सेना के प्रयाण

---

[1] मलिक-इ-मैदान तोप हुसेन खाँ नामक एक कुस्तुनतुनिया निवासी ने १५४९ में अहमदनगर में ढाला था जिसके नाल-मुख का व्यास ४ फुट ८ इञ्च और अन्तर्व्यास २ फुट ४ इञ्च है। औरङ्गजेब ने १६८५ में बीजापुर-विजय की स्मृति में इस पर एक लेख उत्कीर्ण कराया था।

करने के पहले ही अवशेष कर चुकता कर देने पर खान दौराँ की टुकड़ी पूरब ओर के दुर्गों पर अधिकार करने और बीजापुर राज्य के केन्द्र में युद्ध कार्यवाही करने के लिए उपलब्ध हुई। सैयिद खान जहाँ के अधीन आरक्षित टुकड़ी भी बीजापुर के लिए नियत की गई।

१६३५ ई०

अलीवर्दी खाँ के नेतृत्व में शाइस्ता खाँ की एक टुकड़ी ने बिना अधिक प्रतिरोध के चान्दोर और नासिक के करीब के पच्चीस सुदृढ़ दुर्गों पर अधिकार किया[1] स्वयं शाइस्ता खाँ बीजापुर राज्य की सीमाओं की ओर बढ़ा। नलदुर्ग और शोलापुर और बीदर के बीच के जनपद उसके अधिकार में आए। किन्तु घाटों पर स्थित त्र्यम्बक, शिवनेर और कोंड़ाना तथा कोंकण के कई एक दुर्ग फिर भी शाहजी के अनुयायियों के हाथ में बने रहे।

शाहजी बहुत दिनों तक खान जुमाँ के विरुद्ध एक अस्थिर युद्ध करता रहा किन्तु अहमदनगर, चमारगुण्डी और बारामती के समीप के प्रदेश से उत्तरोत्तर खदेड़ा गया और नीरा नदी के उस पार बीजापुर प्रदेश में मरिच और कोल्हापुर की ओर उसका पीछा किया गया। आदिलशाही सेना की सहायता से अपना पीछा करती हुई सेना को अपने आक्रमणों द्वारा तंग करते हुए अपनी सावधानी से अपना बचाव करता रहा। अतः खान जुमाँ को इस निरर्थक अनुक्रमण को त्याग देने तथा कोल्हापुर, मरिच और राईबाग के समीप के प्रदेश को विनष्ट करने की आज्ञा दी गई। इस आदेशानुसार उसने इन नगरों पर अधिकार कर इनको विनष्ट किया। वहाँ के निवासियों को बन्दी बना कर ले गया और हर एक प्रकार की लूट और अपहरण जारी रखा जब तक बीजापुर से युद्ध-विराम सन्धि न हुई। इस सन्धि के बाद फिर उसने शाहजी का पीछा करना आरम्भ किया।

खान दौराँ का प्रयाण खानदेश से बीजापुर की ओर बीदर और कुलबर्गा की दिशा में हुआ। उसने कई दुर्गों पर सहसा आक्रमण कर अधिकार किया, व्यापारिक

---

[1] खाफी खाँ ने इनमें से किसी एक किले में शाहजी के पुत्र और परिवार के पकड़े जाने का उल्लेख किया है जिसकी पुष्टि हमें अन्यत्र नहीं मिली। सम्भवतः इसका सम्बन्ध इसके पूर्व जीजाबाई के बन्दी बनाए जाने से है। इसका यह लिखना कि इस अवसर पर शिवाजी ने भाग कर समुद्रतट के एक किले में शरण ली, इसके पूर्व की एक घटना से सम्बन्धित प्रतीत होता है। अपने प्रथम बन्दी बनाए जाने के पश्चात, ऐसा प्रतीत होता है जीजाबाई मुख्यतया कोण्ड़ाना, शिवनेर और सम्भवतः १६३३ से १६३६ तक यदाकदा महुली में रहीं जो कोंकण में बम्बई से ५० मील उत्तर-पूरब है।

नगरों को लूटा और जहाँ-कहीं वह गया उसने विनाश लीला की। बीजापुर सेना की कुछ टुकड़ियों के सामान्य आक्रमण उसके प्रयाण को नहीं रोक सके। उसके बीजापुर पहुँचने पर मुहम्मद आदिलशाह ने किले की दीवार के बाहर के जलाशयों को खाली कर देने और २० मील की परिधि में के सम्पूर्ण अनाज तथा तृणादि को एकत्रित या विनष्ट करने का निश्चय किया।[1] अतः खान दौराँ राजधानी पर आक्रमण न कर, प्रदेश को लूटने तथा तहस-नहस करने की अपनी योजना को कार्यान्वित करता रहा। सैयिद खान जहाँ की टुकड़ी ने भी इसी प्रणाली का अनुगमन किया। हर स्थानों पर ज्वालाएँ और विनाश मुगल प्रयाणों की विशेषता रहीं।

बीजापुर की सेनाएँ बारम्बार प्रचण्ड रूप से लड़ीं। रनदुल्लह खाँ ने सैयिद खान जहाँ पर बारम्बार सफलतापूर्वक आक्रमण कर, अन्त में, उसे खान दौराँ की टुकड़ी से जाकर मिल जाने के लिए बाध्य किया।

१६३६ ई०—समस्त प्रदेश में की गई विनाश लीला को देख कर मुहम्मद आदिलशाह सन्धि की अभ्यर्थना करने को विवश हुआ। एक सन्धि की गई जिसकी शर्तें उसके लिए आशातीत अनुकूल थीं। इस शांति-कार्य की सामान्य शर्तें और निजामशाही प्रदेश का विभाजन घनिष्ट रूप से शिवाजी के उत्कर्ष से सम्बन्धित है।

इस सन्धि के अनुसार यह निश्चय किया गया कि पुरिन्द और शोलापुर के किले और उनके अधीन जनपद[2] मुहम्मद आदिल शाह को लौटा दिए जायँ। नल-दुर्ग, कल्याणी और शोलापुर के पूर्व का बीदर जनपद पर उसका पूर्ण अधिकार माना गया और पुरिन्द से सम्बन्धित वृहदाकार अस्त्र बीजापुर के किलाबन्दी पर रहने दिया गया, जहाँ वह आज भी है। कोंकण के कल्याणी प्रदेश पर बीजापुर का स्वामित्व था। समुद्र-तट पर इसका विस्तार उत्तर में बसई नदी तक था। यह भी उसको प्रदान किया गया और भीमा और नीरा नदी के बीच का पूरा प्रदेश जो उत्तर में चाकन तक फैला हुआ था और पहले अहमदनगर राज्य का था, अब बीजापुर में मिला दिया

[1] बीजापुर राजधानी के पड़ोस के तीन ओर की भूमि बिलकुल बंजर है। किन्तु नगर के ४ मील दक्षिण में अत्यन्त उर्वर, गहरी काली मिट्टी है। यह मिट्टी छोटी नदी धोन के दोनों ओर कई मील तक फैली हुई है। इसका जल अत्यन्त खारा है जिससे इसकी उपज में खारापन रहता है।

[2] अली आदिलशाह के साथ विवाह होने पर चाँदबीबी के दहेज में शोला-पुर तथा अन्य साढ़े पाँच जनपद बीजापुर को प्रदान किए गए थे। मलिक अम्बर ने इनको १६२४ में बीजापुर से छीना। (शिवदिग्विजय बखर—किंकेड और पारस्निस कृत ए हिस्ट्री आव द मराठा पीपल, भाग १, पृष्ठ १२०)।

गया। इस अर्पण की एक मुख्य शर्त थी कि बीस लाख पगोडा वार्षिक कर के रूप में चुकता किया जाय। इस सन्धि के एक अनुच्छेद के अनुसार सम्राट् ने शाहजी और उसके अनुयायियों को उनके कब्जे के समस्त दुर्गों को सम्पूर्ण तोपों और युद्ध-सामग्री सहित लौटाने पर, क्षमा कर देने का वचन दिया। किन्तु इसका उल्लंघन करने पर उसको बीजापुर प्रदेश से निर्वासित करने और दोनों राज्यों का सामान्य शत्रु घोषित करने की शर्त रखी गई।

१६३७ ई०—सन्धि के अनुसार बीजापुर शासन के आचरण करने पर, शाहजी ने कोंकण की ओर प्रस्थान किया और अपने दुर्गों को समर्पण करने में आनाकानी की। अतः खान जुमाँ उसके विरुद्ध युद्ध चलाता रहा। किन्तु कुछ ही महीनों में त्र्यम्बक, शिवनेर तथा कोंकण के अधिकांश दुर्ग उससे छिन जाने पर शाहजी ने क्षमा की प्रार्थना की और सम्राट् की सेवा में सम्मिलित होने का निवेदन किया। इस निवेदन के उत्तर में उसको मुहम्मद आदिलशाह की सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया गया जिसका उसने पालन किया। संभवतः शाहजी ने बीजापुर को कोंड़ाना[1] दुर्ग समर्पित किया।

१६३७ ई०

उस बालक राजकुमार को जिसको शाहजी ने मलिक अंबर और फतह खाँ का अनुगमन कर गद्दी पर बैठाया था खान जुमाँ ने एक दुर्ग में पकड़ा और राज्य कारागार ग्वालियर में रखा। इस तरह अहमदनगर राज्य की स्वाधीनता नष्ट हुई और बहरी वंश का अन्त हुआ।

---

[1] शासन का प्रधान होने के नाते कोंड़ाना शाहजी के कब्जे में आ गया था। मुसलमान शासक कोंड़ाना और पुरन्दर किलों को अपने ही कब्जे में रखते थे, जागीरदारों को नहीं सौंपते थे।

अध्याय ३

(१६३७ ई० से १६४८ ई० तक)

१६३७ ई०—शाहजी ने बाध्य होकर बीजापुर शासन के अधीन शरण ली। मुरार पन्त तथा वे लोग जिन्होंने उसके साथ काम किया था उसकी योग्यताओं तथा साधनों से परिचित थे। अतः उन्होंने उसका अविलम्ब स्वागत किया। पूना और सोपा जनपद उसकी कौटुम्बिक जागीर थीं।[1] उन पर, उसके कब्जे की पुष्टि की गई। ये जनपद पिछली सन्धि के अनुसार बीजापुर को प्रदान किए गए थे।

---

[1] इस काल से मैंने मुख्यतया मराठी हस्तेलेखों के आधार पर लिखा है। इनमें से जिनका मैं आगे चल कर उल्लेख करूँगा निम्नलिखित हैं :

१. कृष्णाजी अनन्त सभासद की लिखी हुई शिवाजी की जीवनी जो कोल्हापुर के पिछले राजा से प्राप्त हुई। इसकी अनेक प्रतियाँ प्राप्य हैं। मैंने कोल्हापुर के राजा को मूल प्रति लौटा दी और इसकी एक प्रतिलिपि बम्बई की लिटरेरी सोसायटी में जमा की। (यदुनाथ सरकार के अनुसार 'सभासद बखर' शिवाजी के सम्बन्ध का सर्वप्रथम एवं सब से अधिक मूल्यवान मराठी विवरण है जो १६६७ में जिंजी में शिवाजी के पुत्र राजाराम की प्रेरणा से लिखा गया था। उस समय जिंजी पर घेरा पड़ा हुआ था। सम्भवतः कृष्णाजी के पास उस समय कोई प्रलेख नहीं थे क्योंकि निर्दय शत्रु राजाराम का बुरी तरह पीछा कर रहे थे। ऐसी स्थिति में कागज-पत्र आदि लेकर जगह २ भागते फिरना शक्य नहीं था। कृष्णाजी शिवाजी का समसामयिक एवं उसका सभासद था। बाद के अनेक बखर इसी पर आधारित एवं संस्कृत उद्धरण, चमत्कारपूर्ण, काल्पनिक एवं भावनामय विवरणों से युक्त आलंकारिक भाषा में लिखे हुए हैं, यद्यपि कुछेक बखरों में सत्य घटनाओं की कुछ शुद्ध परम्पराएँ भी हैं जिनकी सत्यता अ-मराठी आधारों से प्रमाणित हुई है।—सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, ग्रन्थसूची, पृष्ठ ३६१-२।)

२. मल्हार राव चिटणीस कृत 'लाइव्ज आव द राजाज, एण्ड हिस्ट्री आव द महराठा एम्पायर।' यह इतिहास प्राचीनतम काल से वर्तमान काल तक का है और मूल ज्ञापन-पत्र तथा अनेक प्रामाणिक मूल कागजों से या उनके प्रतिलिपियों

नीरा और भीमा नदियों के बीच के नव-प्राप्त जनपदों की व्यवस्था करने के लिए मुरार पन्त की नियुक्ति हुई। इस काम में, प्रतीत होता है, शाहजी ने उसकी बहुत सहायता की। इस सम्पर्क से मुरार पन्त को उसके जन्मजात गुणों एवं प्रतिभा के और भी प्रमाण प्राप्त हुए जिसके फलस्वरूप उसने उसको प्रशंसा और अनुग्रह से लाद दिया और राजसभा को लौटने पर राजा से उसकी बहुत श्लाघा की।

कार्णाटक के विरुद्ध एक सैन्य अभियान में, रनदुल्ला खाँ के अधीन, शाहजी द्वितीय सेनापति बनाया गया। बाद को वचनानुसार उसको उस क्षेत्र के कोल्हर, बंगलोर, उसकोट, बालापुर, और सेर[1] की जागीर दी गई। सम्भवतः उसकी सेवाएँ उपलब्ध करने के हेतु मुहम्मद आदिलशाह ने उसको करार[2] जनपद के २२ ग्रामों की देशमुखी प्रदान की जिसका अधिकार किसी प्रकार शासन को प्राप्त हो गया था।

राजकीय सेवा से मुक्त हो जाने पर, शाहजी का अपने सम्बन्धियों, सिन्दखेड़ के देशमुख जाधवों से राजनीतिक सम्बन्ध जो कभी भी घनिष्ट नहीं था पूर्णरूप से विच्छिन्न हो गया। जगदेवराव जाधव उसका चचिया श्वसुर मुगलों की ओर से एक

से संकलित है जिनको रायगढ़, जिंजी और सातारा के दरबारों में उसके अत्यन्त प्रख्यात पूर्वजों ने लिखा या प्रतिलेखन किया था। मल्हारराम राव ने शिवाजी की अत्यन्त विस्तृत जीवनी लिखी है किन्तु उसने मूल्यवान् पत्रों और अभिलेखों का जो उसके कब्जे में थे उचित उपयोग नहीं किया है। अधिकारियों और विभागों को दिए गए शिवाजी के आदेश अत्यन्त पूर्ण और सन्तोषजनक हैं। इन आदेशों की कुछ मूल प्रतियाँ बालाजी अवजी के हाथ के लिखे हैं जिनको मैंने अन्य स्रोतों से प्रमाणित कराया है। [illegible] एक प्रति मैंने बम्बई की लिटिरेरी सोसायटी में जमा की है।

३. [illegible]ली के राजा चन्द्रराव मोरे के वंशजों से प्राप्त शिवाजी की एक जीवनी। ४. शिवाजी की एक जीवनी जिसके कुछ अंशों को टामस कोट्स ने अनूदित किया है। ५. शिवाजी की एक जीवनी जिसके कुछ अंशों का अनुवाद सर बर्री क्लोज ने किया है। ६. शिवाजी की एक जीवनी जो बीजापुर के समीप कोल्हर के कुलकर्णी से प्राप्त की गई थी। ७. खटाव देश के देशपाण्डे कृत मराठों का इतिहास जिसमें बीजापुर के राजाओं का भी वर्णन है।

मुगलों के इतिहास के सम्बन्ध में मेरा मुख्य आधार खाफी खाँ है।

[1] कोल्हर, बंगलोर, उसकोट, बालापुर और सेरा जनपद आधुनिक मैसूर राज्य के मध्य और पूर्वीय भागों में हैं।

[2] करार का आधुनिक नाम कराड है जो सातारा से ३१ मील दूर कोयना और कृष्णा के संगम पर बसा है।

युद्ध में उसके विरुद्ध लड़ा। घरेलू बातों का मराठों के लोकाचरण पर बहुत प्रभाव रहता है और हो सकता है कि जगदेवराव के द्वेष का कुछ व्यक्तिगत कारण रहा हो। शाहजी ने १६३० में, अपनी प्रथम पत्नी जीजा बाई के कुपित होने पर भी मोहिते नामक एक दूसरे कुल में अपना विवाह किया। जीजा बाई अपने मातृपक्ष के किसी सम्बन्धी के यहाँ चली गईं और वहीं, ऐसा प्रतीत होता है, १६३३ में बन्दी की गईं।

अपनी पत्नी, लखजी जाधव राव की पुत्री से, शाहजी के दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र का नाम सम्भाजी और कनिष्ठ का नाम शिवाजी पड़ा। ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता को बहुत प्रिय था और शैशव काल से उसके साथ रहता था। किन्तु कनिष्ठ पुत्र अपनी माता के ही साथ रहा। शिवाजी का जन्म शिवनेर[1] दुर्ग में मई[2] १६२७ में हुआ। अपने बालकपन के उस अशान्त काल में, वह अपनी माता की जागरूकता से, अपने मुसलमान शत्रुओं के हाथों में पड़ने से वह कई बार बचा। यह नहीं मालूम कि अपनी माता के बन्दी बनाए जाने के समय वह कहाँ छिपाया गया था। सम्भव है कि जीजा बाई का छुटकारा इस आधार पर प्राप्त किया गया हो कि उसका पति उसके प्रति उदासीन रहता है और उसके न छोड़े जाने तक मुगल सेना में बने रहे उसके अनेक सम्बन्धियों की, जाधव और भोसले दोनों ही की, उन लोगों के विचारानुसार, अप्रतिष्ठा रहेगी।

शाहजी के दूसरा विवाह करने के फलस्वरूप शिवाजी के माता-पिता में उत्पन्न अनबन के कारण तथा देश के संकटाकीर्ण दशा के कारण शिवाजी सात साल की अवधि तक १६३० से १६३६ सहित तक अपने पिता का दर्शन न कर सके। जब शाहजी मुरार पंत के साथ बीजापुर गए तो जीजा बाई भी उनके साथ गईं। किन्तु निम्बालकर की कन्या साई बाई के साथ शिवाजी के विवाह समारोह तक ही

---

[1] यह पूना के ५० मील उत्तर में है। नगर का नाम जुन्नर है और किले का नाम शिवनेर। जीजाबाई ने अपनी होने वाली सन्तान की मंगलकामना के लिए अधिष्ठात्री देवी 'शिवा-भवानी' की मनौती मानी थी। शिवादेवी के नाम पर बालक का नाम शिव रखा गया जो दक्षिणियों के उच्चारण के अनुसार शिवा हो गया।

[2] यदुनाथ सरकार तथा किंकेड और पारस्निस शिवाजी का जन्मदिवस १० अप्रैल १६२७ मानते हैं किन्तु सरदेसाई ६ अप्रैल को। जेधे शाकावली और सूर्यवंशम् के अनुसार जन्मतिथि १६ मार्च १६३० है। कोई भी तिथि मानी जाय, इससे शिवाजी का महत्त्व कम नहीं होता।

वह उनके साथ रहीं। इस समारोह के बाद शाहजी ने कार्णाटक समरयात्रा पर प्रस्थान किया और शिवाजी अपनी माता के साथ पूना में रहने के लिए भेजे गए। अपनी द्वितीय पत्नी तुकाबाई मोहिते से शाहजी का वेंकाजी नामक एक पुत्र था। एक नर्तकी से उसको एक अवैध पुत्र हुआ जिसका नाम उसने संताजी रखा।

सब मराठा उच्चाधिकारियों के पास लेखक और कारकुन[1] के रूप में अनेक ब्राह्मण सदैव रहते हैं। ऐसे लोगों की एक बहुत बड़ी भीड़ शाहजी के साथ रहती थी जिनमें से अनेक ने उसके भाग्य का अनुगमन किया और उसके अधिक वैभव काल में उसकी सफलता में योगदान दिया। वे लोग जो प्रदेश पर मुगलों का आधिपत्य हो जाने से विस्थापित हो गए थे, जीविका और काम की आशा में प्रकृत्या उसका सहारा लिया। उन लोगों में उसके अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति नारु पंत हनमंते और दादाजी कोंडदेव[2] भी थे। उसने नारु पंत को कार्णाटक के जनपदों की और कोंडदेव को पूना में अपने कुटुम्ब और जागीर की देखरेख का काम सौंपा।

दादाजी एक योग्य राजस्व अधिकारी था। उसकी देखरेख में खेती की शीघ्र ही उन्नति हुई और जनसंख्या में वृद्धि हुई। इन्दापुर और बारामती जनपदों की प्राप्ति से उसकी प्रतिभा के लिए और अधिक अवसर प्राप्त हुआ। ये जनपद तथा पूना के समीप की घाटियाँ जो मावल नाम से प्रसिद्ध हैं शाहजी को कार्णाटक में उसकी उत्कृष्ट सेवाओं के बदले में प्राप्त हुई थीं। उन्होंने इनका प्रबन्ध दादाजी कोंडदेव[3] को सौंपा।

---

[1] ये ब्राह्मण जब साधारण कार्यों में लगाए जाते हैं कारकुन या लेखक कहलाते हैं। किन्तु जब वे किसी बड़े आदमी की ओर से किसी सार्वजनिक कार्य पर भेजे जाते हैं वे वकील कहलाते हैं। प्रत्येक मराठा जिसके पास कुछ भूमि, द्रव्य, या दो-तीन अश्वारोही होते हैं एक कारकुन रखता है और उसकी सारी सम्पत्ति उसी की देखरेख में रहती है। कुछ चाल चल कर वह अपने स्वामी को ऊँचे व्याज पर ऋण देता है और शीघ्र ही उसको अपना ऋणी बना लेता है। इस तरह से मराठा उसकी मुट्ठी में हो जाता है। किन्तु अनेक ब्राह्मण कारकुनों ने गाढ़े समय पर मराठा परिवारों की अत्यन्त निष्ठा से सहायता की है।

[2] दादाजी कोण्डदेव पूना जनपद में रानाडे उपशाखा के एक देशस्थ ब्राह्मण घराने में पैदा हुआ था। शिवदिग्विजय और चिटणिस बखर के अनुसार वह पटस परगने के मालथन गाँव का और तारीख-इ-शिवाजी के अनुसार धुलीगाँव और हिंगने खुर्द गाँव का कुलकर्णी था।

[3] मराठी हस्तलेखें।

गोलकुण्डा और बीजापुर दोनों में अपनी २ सीमाओं को बढ़ाने के निमित्त कार्णाटक की भूमि को हस्तगत करने की उच्चाभिलाषा व्याप्त हुई। इन राज्यों में आपस में शत्रुता नहीं थी। किन्तु दक्षिण के छोटे राजाओं की आपसी फूट से प्राप्य सुलभ विजय द्वारा अपना उत्कर्ष करने की होड़ में वे लगे हुए थे। वे न तो अपनी संकटपूर्ण स्थिति पर ध्यान देते थे और न मुगलों के विरुद्ध अपनी सामान्य प्रतिरक्षा के लिए गठबन्धन करने का प्रयास करते थे, यद्यपि वह यह जानते थे कि उनकी आपसी प्रतिद्वन्द्विता और ईर्ष्या से उनकी सुरक्षा कितनी खोखली हुई है। बीजापुर के राजा का १६४१ में कुत्बशाह की पुत्री से विवाह हो जाने से एकता की ओर एक पग बढ़ा।

१६४१ ई०

मुहम्मद आदिलशाह युद्धप्रिय नहीं था। बीजापुर से दूर वह मुश्किल से कभी जाता था। उसने अपनी सेनाओं को अपने सेनाध्यक्षों को सौंप रखा था। किन्तु उसने एक जलमार्ग बनाकर तथा अनेक भव्य भवनों[1] से अलंकृत कर अपनी राजधानी की उन्नति की। यह जलमार्ग अब भी वर्तमान है।

सम्राट् शाहजहाँ ने १६३६ की सन्धि के बाद नव-विजित प्रदेश की व्यवस्था और उन्नति करने का प्रयास किया। दक्षिण के दोनों शासन एक कर दिए गए और राजकुमार औरंगजेब वहाँ का राजप्रतिनिधि नियुक्त हुआ। इस अवसर पर वह बहुत ही थोड़ी अवधि तक वहाँ रहा और मात्र बागलान[2] को विजय किया जिसका अधिकांश भाग बाद को त्यागना पड़ा।

शाहजहाँ ने महाराष्ट्र के मुग़ल विजित प्रदेश में टोडरमल की राजस्व प्रणाली को प्रचलित किया। अकबर के राज्यकाल में की गई अपनी अर्थव्यवस्था और मुद्रा विभाग की नियमावली के कारण टोडरमल[3] ने महान ख्याति अर्जित की थी।

टोडरमल की व्यवस्था के अनुसार, सर्वप्रथम, भूमि की उर्वरा शक्ति के परिपेक्ष्य में कृषिव्यय या उत्पादित वस्तु-प्रकार के अनुसार, सकल उपज का आधे

---

[1] बीजापुर हस्तलेखें।

[2] बागलान सातमाल पहाड़ियों के उत्तर में नासिक जनपद में एक ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है।

[3] मध्यकालीन इतिहास में टोडरमल से अधिक ख्याति का अब तक कोई दूसरा नाम नहीं है। अकबर के सब सुधारों की अपेक्षा जनता का सर्वाधिक कल्याण इस महान अर्थशास्त्री के मालगुजारी-प्रणाली के पुनर्निर्माण से हुआ—लेनपूल : मेडेईवल इण्डिया, पृष्ठ २६१।

से सातवें भाग तक घटते-बढ़ते अनुपात में कर निर्धारित किया गया। तत्पश्चात् राजकोय-भाग मुद्रा के रूप में परिवर्तित किया जाता था और मापन, वर्गीकरण, और पंजीकरण करने के बाद प्रत्येक खेत की वर्ष भर की सम्पूर्ण उपज का चौथाई भाग नियमित राजस्व निर्धारित किया जाता था और भूमि का यही स्थायी कर माना जाता था। शाहजहाँ ने भीमा नदी के उत्तर के जनपदों में यह पद्धति प्रचलित की। यह काम एक योग्य अधिकारी मुर्शीद कुली खाँ की देखरेख में हुआ जिसने इस कार्य को लगभग बीस वर्षों में सम्पन्न किया। यह प्रणाली टंका[1] नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि टोडरमल रजतमुद्रा टंक या टंका में राजस्व ग्रहण करता था। टोडरमल के पहले साम्राज्य भर में राजस्व लेखा में ताम्रमुद्रा टंका प्रचलित था।[2] इसी समय अर्थात् १६३७–३८ ई० में महाराष्ट्र में फसली[3] वर्ष प्रचलित किया गया।

दादाजी कोंडदेव जिनके जनपद मुगलों के जनपदों से सटे थे, मलिक अम्बर की प्रणाली को बरतता रहा। प्रत्येक बोए हुए खेत की वार्षिक उपज का एक अनुपात जो प्रतिवर्ष नियत होता था कर के रूप में लिया जाता था। अथवा जब राजस्व वस्तुरूप में नहीं ग्रहण किया जाता था तो उसके बदले मुद्रा में चुकता किया जाता था। यह पद्धति स्थायी भूमि-कर-निर्धारण पद्धति से भिन्न थी, क्योंकि राजस्व फसल की स्थिति के अनुसार न केवल परिवर्तनीय था बल्कि किसी २ विशेष वस्तुओं में दर सम्भवतः ऊँचा था। इस प्रथा से जनपदों की उन्नति हुई। प्रतीत होता है यह प्रथा इस प्रदेश के लिए अधिक उपयुक्त थी। उसके प्रबन्ध की एक स्वर से अत्यन्त प्रशंसा की जाती है। मावल या पहाड़ी घाटियों के निवासी निर्धन किन्तु दृढ़ शरीर के थे। सभी ऋतुओं में अत्यन्त उद्योग करने पर भी उनका मुश्किल से निर्वाह होता था। दादाजी के प्रशासन के आरम्भिक दिनों में उनका जीवन अत्यन्त कष्टमय था। तन ढकने को उनके पास वस्त्र न थे। निर्दय ऋतुओं से अपनी रक्षा करने के लिए उनके पास मुश्किल से कुछ टूटी-फूटी कुटियाँ थीं। किन्तु जङ्गली जानवरों

---

[1] टंक या टंका संस्कृत शब्द टंकक से बना है। यह चार माशे तौल की चाँदी का एक सिक्का था। टका दो पैसे मूल्य का ताँबे का एक सिक्का था।

[2] खाफी खाँ के आधार पर यह वर्णन दिया जा रहा है। दूसरे ग्रन्थों में मैंने इसकी चर्चा नहीं देखी। अब भी कुलकर्णी कभी २ ग्राम राजस्वलेखा टका में लिखते हैं।

[3] फसली शब्द फस्ल (ऋतु, उपज) से बना है। यह सूर्य-वर्ष पर आधारित है, न कि चन्द्र-वर्ष पर जिसके कारण राजस्व तथा अन्य नागरिक व्यवहारों में कठिनाई होती थी।

से अपनी रक्षा करने के लिए उनके पास हथियार अवश्य थे। इन मावलों की दशा सुधारने के निमित्त उन्होंने कई वर्षों तक उनसे जमीन का कोई कर नहीं लिया और राजस्व इकठ्ठा करने के लिए बहुत से मावलों को नाममात्र वेतन और निर्वाह के लिए दिए गए मोटे अनाज़ पर चपरासी के पद पर रखा।

शाहजी का परिवार इस समय भी दादाजी की देखरेख में था। दादाजी ने जीजा बाई के रहने के लिए पूना में एक बड़ा भवन बनवाया और उनके पुत्र की शिक्षा के लिए उनके कुल के उपयुक्त शिक्षा प्रदान की। बहुत ही कम मराठे लिख-पढ़ सकते हैं। इस प्रकार की विद्या को वे कारकुनों का काम, और पतनकारी नहीं, तो कम से कम, अप्रतिष्ठाजनक समझते हैं। शिवाजी अपना नाम कभी नहीं लिख सके किन्तु भाला, तलवार और कृपाण चलाने में कुशल एवं निपुण धनुर्धर और लक्ष्यभेदी थे। उनके देशवासियों की अश्वारोहण में सदा ही ख्याति थी और इस काम में शिवाजी सर्वोपरि थे। उनको अपनी जाति के सभी आचार-विचार रीति-रिवाज की पूर्ण जानकारी थी। उनको पवित्र ग्रन्थों के लोकप्रिय भागों का ज्ञान था। युवक शिवाजी को महाभारत, रामायण और भागवत के काल्पनिक पराक्रमों के विवरण प्रिय थे। वह कथा समारोहों में उपस्थित होने की उत्सुकता में महान संकट का सामना करते थे।

हिन्दुओं की धार्मिक और सहज भावनाएँ शिवाजी में कूटकूट कर भरी थीं। और उनमें छोटी ही अवस्था में मुसलमानों के प्रति घृणा घर कर गई। कुछ अंश तक ये भावनाएँ अधिक उत्कृष्ट देशभक्ति की कमी पूरी करती थीं। इससे उन्हें साहसिक कार्यों को करने की उत्तेजना सम्भवतः मिली होगी। किन्तु उन्होंने इन भावनाओं का दूसरों को प्रेरणा देने में तब तक उपयोग नहीं किया जब तक कि उन्हें नई योजनाओं को बनाने तथा सम्पन्न करने में इन सशक्त और स्वाभाविक सहायकों की सहायता से सफलता न प्राप्त हुई।

आरम्भ में उनकी ये योजनाएँ मात्र व्यक्तिगत लाभ के लिए होती थीं। लगभग सोलह वर्ष की वय में वह उच्छृङ्खल वृत्ति के मनुष्यों के साथ रहते और एक छोटा स्वतन्त्र शासक होने की बात करते थे। उनके संरक्षक ने ऐसा करने का निषेध किया। अतः शिवाजी बाध्य होकर बातचीत में अधिक सावधानी बरतने लगे किन्तु यदाकदा वह कई दिनों के लिए कोंकण चले जाते थे। उनको ऐसे अभियानों से दूर रखने के प्रयास में दादाजी कोंडदेव उनके प्रति अधिक ध्यान देने लगे और उन्हें जागीर की देखरेख का काम सौंपा।[1]

---

[1] शिवाजी के प्रति दादाजी कोंडदेव के रुख का जो वर्णन ग्रान्ट डफ ने

दादाजी के कई कारकुन शिवाजी के घनिष्ठ मित्र थे जो बाद में उनके अभि-कर्ता और सलाहकार हुए। अधिकांश अधिकार शिवाजी को सौंपे गए। अतः पूना के समीप के आदरणीय मराठों से उनका सम्पर्क बढ़ा और दूसरों को उपकृत तथा अनुरक्त करने के कारण उन्हें उस प्रदेश के जनसाधारण की सद्भावना प्राप्त हुई। किन्तु इस समय भी यह कानाफूसी की जाती थी कि कोंकण में की गई कुछ व्यापक डाकों की लूट का एक भाग उन्हें भी मिलता है।

शिवाजी सदा मावलों का पक्षपात करते थे। उन्होंने यह देखा कि आकृति से ग्राम्य और बुद्धिहीन होने पर भी मावले क्रियाशील ही नहीं बल्कि अपने अभ्यस्त कामों में दक्ष तथा विश्वास की जगहों पर अत्यन्त विश्वसनीय हैं। दादाजी अपने मावलों का बहुत ध्यान रखते थे मावले उनके अभियानों तथा शिकार में साथ रहते थे। और वह न केवल मावलों में बल्कि मावल में रहने वाले समस्त लोगों में अत्यन्त लोकप्रिय थे। इन घाटियों में तथा घाट-माथा और कोंकण के विभिन्न भागों में घूमने से वह उस वन्यप्रदेश के पथों और सङ्कटपूर्ण भागों से पूर्ण-तया परिचित थे। बाद को वह यहीं डट गए। आसपास के किलों की दशा उन्हें ज्ञात थी अतः उन्होंने उनमें से एक को प्राप्त करने की योजना बनाई।

समस्त मुसलमान शासनों में गढ़ साधारणतया बहुत उपेक्षित रहे। राजा या उसके कुछ मंत्रियों द्वारा कुछ उत्कृष्ट किलों में किलेदार की नियुक्ति अवश्य की गई थी और युद्ध आसन्न होने पर अच्छी सैन्य टुकड़ियाँ भी वहाँ रख दी जाती थीं किन्तु अन्य समय में उनकी देखरेख की आवश्यकता इतनी नहीं समझी जाती थी। सामान्यतया ये किले अपने २ जनपद के मोकासादार (स्थायी भूस्वामी), आमिलदार (कर-संग्राहक), जागीरदार या देशमुख को सौंपे जाते थे।

मुसलमान सैन्यदल वहाँ इसलिए नहीं रखा जाता था कि वहाँ की जलवायु विशेषरूप से वर्षा ऋतु में अहितकर थी। इन किलों पर सदा ही अत्यन्त आसानी से अधिकार हुए थे। अतः उनके वास्तविक महत्त्व के अनुपात में उनका महत्त्व नहीं आँका गया। इस समय बीजापुर शासन और मुगलों में युद्ध नहीं चल रहा था।

किया है उसकी यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स में पूर्णरूप से पुष्टि की है। किन्तु राजवाड़े ने मराठा इतिहास की जो सामग्री प्रकाशित की है उसकी पन्द्रहवीं जिल्द में छपे लेखों से प्रतीत होता है कि दादाजी शिवाजी के कार्यकलापों के बिरोधी नहीं थे और सम्भवतः शाहजी भी शिवाजी के कार्यों से सहमत थे, यद्यपि यह बात उनसे छिपी नहीं थी कि शिवाजी के विद्रोह से वह कष्ट में पड़ सकते है।

अतः बीजापुर शासन की समस्त श्रेष्ठ सैन्य टुकड़ियाँ कार्णाटक को लूटने और उसपर अधिकार करने में लगी हुई थीं। शाहजी की जागीर में दादाजी कोंडदेव की देखरेख में कोई गढ़ नहीं थे। अजेय कोंडाना (अब सिंहगढ़) दुर्ग का किलेदार मुसलमान था। पुरन्दर का प्रभार मुरार पन्त द्वारा नियुक्त एक ब्राह्मण के हाथ में था। शाहजी के परिवार का दोनों ही किलेदारों से घनिष्ठ सम्बन्ध था विशेषरूप से पुरन्दर के नीलकंठ राव से जो पहले निजामशाही सरकार का एक कर्मचारी था और जिसने शाहजी का साथ दिया था।

मावल के यशाजी कंक, तानाजी मालूसरे[1] और बाजी फसलकर तीन ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने शिवाजी का सदैव साथ दिया। इनमें से अन्तिम व्यक्ति मूसरेखोरा का देशमुख था। और शेष दोनों को भी अपने २ जन्मस्थान के पहाड़ियों में कुछ वंशागत अधिकार प्राप्त थे। ये तीनों शिवाजी के प्रथम ज्ञात अनुयायी और सैन्य अनुगामी थे। इन लोगों की सहायता पाकर शिवाजी ने तोरण के किलेदार से संपर्क स्थापित किया। यह अत्यन्त दुर्गम पहाड़ी किला पूना से बीस मील दक्षिण-पश्चिम में नीरा नदी के उद्गम स्थान पर था। शिवाजी ने कुछ अज्ञात साधनों द्वारा किलेदार को उस किले को समर्पण करने के लिए राजी किया।

१६४६ ई०—यह घटना १६४६ में हुई।[2] इन किलों पर अधिकार करने के बाद यह छद्म करते हुए कि वे शासन के हित में कार्य कर रहे हैं उन्होंने यह सूचित करने के लिए अपने अधिवक्ताओं को बीजापुर भेजा कि उन्होंने क्या किया है और उस वियुक्त प्रदेश में एक राजनिष्ठ सेवक के रहने से राजा को कितने प्रत्याशित अमूल्य लाभ होंगे, क्योंकि जनपदों की ठीकेदारी देशमुखों के पास है जिनका स्वार्थ

---

[1] तानाजी मालूसरे सम्भवतः मराठा नहीं था बल्कि महाबलेश्वर पहाड़ियों के निचले भाग के गोदाव्ली नामक एक गाँव का निवासी था। ऐसा दावा किया जाता है कि उसके पूर्वज १३०० के लगभग दक्खिन और कोंकण में आकर बसे। मूलतः अपने पड़ोस के कोलियों की लगातार लूटों को रोकने तथा उस क्षेत्र में व्यवस्था बनाए रखने के लिए शिवाजी ने उनको नौकरी पर रखा था।

[2] मराठी हस्तलेखों। ऐसा समझा जाता है कि जब शिवाजी ने तोरण पर अधिकार किया, तब किलेदार और रक्षक-सैनिक दक्षिण-पश्चिम मानसून की घनघोर वर्षाकाल में घाटी में ठहरे हुए थे। (किंकेड और पारस्निस, पृष्ठ १३४)। कृष्णाजी सभासद ने तोरण पर अधिकार किए जाने का उल्लेख नहीं किया है। यदुनाथ सरकार द्वारा उल्लिखित फारसी विवरणों में चन्दन पहला किला था जिस पर शिवाजी का अधिकार हुआ। तोरण का अर्थ है किसी स्थान का बहिर्द्वार।

वहाँ की सम्पत्ति को छिपाने में निहित है। अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने उससे कहीं अधिक राजस्व भेजा जितना उस दस वर्ष की अवधि में जिसमें वह प्रदेश बीजापुर के अधिकार में था उस प्रदेश से बीजापुर को मिला था। उसके आवेदनों का उत्तर दिनोंदिन स्थगित रखा गया। यह शिवाजी के हित में था। इससे शिवाजी को समय मिला। अपने पक्ष का निवेदन करने के अतिरिक्त उन्होंने राजसभासदों को उत्कोच देकर मिला लिया जैसा कि ऐसे अवसरों पर साधारणतया होता है। कई वर्षों तक शिवाजी के प्रति उदासीनता ही रही।

इधर शिवाजी के अधिवक्ता बीजापुर शासन का इस तरह मनोरञ्जन कर रहे थे, उधर शिवाजी मावलों को एकत्रित करने और तोरण के किले की मरम्मत तथा मजबूती करने में लगे थे। इस किले[1] के कुछ अवशेषों को खोदते समय उन्हें अकस्मात् बहुत पुराने समय की एक बड़ी स्वर्ण-राशि उपलब्ध हुई। यह देवी भवानी की शिवाजी पर की हुई अनुकम्पा का चमत्कार समझा गया। इससे उनको अपनी योजनाओं को सम्पन्न करने में बड़ी सहायता और उत्साह मिला। अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य युद्ध सामग्रियाँ खरीदी गईं। उन्होंने इस तरह प्राप्त द्रव्य से एक अन्य गढ़ भी बनाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए तोरण से तीन मील दूर दक्षिण-पूरब में मोहोरबध पर्वत को चुना और आश्चर्यजनक परिश्रम से एक गढ़ निर्माण किया जिसका नाम उन्होंने राजगढ़ रखा। ८

बीजापुर शासन को इस दुर्ग के निर्माण की प्रगति का विवरण मिलता रहा। इस काम को करने की मनाही की गई और कार्णाटक में शाहजी के पास इस आशय के पत्र भेजे गए कि ये कार्यवाहियाँ क्यों की जा रही हैं। उत्तर में शाहजी ने लिखा कि उसके पुत्र ने उससे मंत्रणा नहीं की है। स्वयं वह और उसका सारा परिवार बीजापुर नवाब के राजनिष्ठ भृत्य हैं। शिवाजी निश्चय ही जागीर की उन्नति और सुरक्षा के लिए कार्य कर रहा है। उसी समय शाहजी ने शिवाजी की इन कार्यवाहियों की भर्त्सना करते, समाधान माँगते, और इस कार्य से निवृत्त होने को लिखते हुए एक पत्र दादाजी कोण्डदेव और शिवाजी को लिखा। दादाजी कोंडदेव ने शिवाजी के कल्याण की तीव्र अभिलाषा से शिवाजी को इस कार्य से विरक्त होने के लिए हर एक प्रकार से समझाया। उन्होंने उस सम्भावित विनाश और निश्चित सङ्कट को निरूपित किया जो शिवाजी इस प्रकार के साहसिक और अवैध आचरण से मोल ले रहे थे। उन्होंने यह भी समझाया कि बीजापुर शासन के राजनिष्ठ रहने में अपने

---

[1] मराठी हस्तलेख। शिवाजी इसको प्रचण्डगढ़ कहते थे किन्तु इस पुस्तक में इसका पुराना नाम ही रखा गया है क्योंकि इसी नाम से यह अब भी विख्यात है।

पिता के नाम और माननीयता से उसे कितने बड़े लाभ हैं। उचित शब्दों में शिवाजी ने समाधान किया। किन्तु उस वृद्ध को यह लगा कि शिवाजी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए हैं। वृद्धावस्था की निर्बलता, रोगक्षीणता और अब अपने स्वामी के परिवार के भविष्य की चिन्ता से ग्रस्त दादाजी अधिक दिनों तक न जिए। मरने के पूर्व उन्होंने शिवाजी को बुला भेजा। पूर्व अभ्यासानुसार उन्हें अपने उद्देश्य से विचलित न कर, उन्होंने शिवाजी को स्वतन्त्र होने की अपनी योजनाओं को सम्पन्न करने, ब्राह्मण, गऊ और कृषकों की रक्षा करने, हिन्दुओं के मन्दिरों को अपवित्र होने से बचाने तथा अपने भविष्य का निर्माण करने की सलाह दी। यह कह कर और अपने परिवार को अपने युवा स्वामी के हाथों में सौंप कर उन्होंने प्राण त्याग किए।

मरणासन्न दादाजी कोण्डदेव की इस आज्ञा से शिवाजी को अपने उद्देश्य में और अधिक दृढ़ता मिली और जागीर के अवर अधिकारियों की दृष्टि में इससे शिवाजी के उद्देश्यों की पुष्टि हुई। उनके व्यक्तित्व को पर्याप्त रूप से ऊँचा उठाने तथा सम्भवतः कुछ अंशों में उनके कार्यों के उद्देश्यों को उत्कृष्ट बनाने में दादाजी के शब्दों का अवश्य ही प्रभाव हुआ होगा।

अपने पिता के नाम पर उन्होंने जागीर का भार सम्हाला। कुछ ही दिनों बाद शाहजी के भेजे हुए दूत दादाजी कोंडदेव से कुछ बकाया राजस्व लेने के लिए आए किन्तु शिवाजी ने अपने संरक्षक की मृत्यु का समाचार देकर उनको विदा किया। वर्तमान तथा बाद के कई अवसरों पर उन्होंने कोई रकम चुकता नहीं की और अन्त में अपने पिता को यह सूचित किया कि इस निर्धन प्रदेश का व्यय इतना बढ़ गया है कि उन्हें कार्णाटक की अपनी अधिक विस्तृत और उपजाऊ भूमि के ही ऊपर निर्भर करना होगा।

आरम्भ में जागीर के दो अधिकारी शिवाजी के विचारों से सहमत नहीं हो रहे थे। अतः उनको अपनी ओर मिलाना या हटा देना ही श्रेयस्कर था। उनमें से एक फिरंगोजी नर्साला था जिस पर चाकन दुर्ग का प्रभार था और दूसरा बाजी मोहिते था जो शाहजी की द्वितीय पत्नी तूकाबाई का भाई और सोपा जनपद का प्रबन्धक था।

शिवाजी के दूत फिरंगोजी को भ्रष्ट करने में सफल हुए। उसने शिवाजी को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं और चाकन पर उसके कमान की पुष्टि की गई। आस-पास के ग्रामों का राजस्व-प्रबन्ध उसको इस शर्त पर सौंपा गया कि वह दादाजी कोंडदेव की प्रणाली का अनुगमन करेगा।

अब तक की समस्त उपलब्धियों में कोंडाना का कब्जा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। एक मुसलमान किलेदार ने घूस की एक बड़ी रकम पाकर शिवाजी

को यह किला समर्पित किया और शिवाजी ने इस किले का नाम बदल कर या इसके पुराने नाम का उद्धार कर सिंहगढ़[१] रखा। सिंहगढ़ के नाम से यह अब भी विख्यात है।

बाजी मोहिते के पास तीन सौ अच्छे अश्वारोही थे। उसने सोपा पर अधिकार कर लिया और समस्त संदेशों का शिष्ट उत्तर भेजते हुए भी, न तो उसने राजस्व चुकता किया और न किसी भी ऐसे प्रस्तावों की ओर ध्यान दिया जो शाहजी द्वारा प्रमाणित नहीं थे। शिवाजी ने एक मावले दल के साथ आधी रात में चुपके से सोपा घेरा और बाजी मोहिते और उसके दल पर आक्रमण कर उसको बन्दी बनाया और मोहिते तथा अन्य उन लोगों को जो उसकी सेवा में नहीं आना चाहते थे कार्णाटक में अपने पिता जी के पास भेजा।

बारामती और इन्दापुर के राजस्वाधिकारी, सामान्य दैनिक कार्यपरिपाटी में कोई बाधा न पड़ने के कारण, अनुमानतः राजस्व संग्रह करते रहे और शाहजी के पुत्र के अधिकार का विवाद न उठाते हुए दादाजी कोंडदेव की मृत्यु के बाद कुछ समय तक पूना में जमा भी करते रहे। किन्तु यह जनपद तथा सोपा के परगने पर्वतों से दूर थे और ऐसी सङ्कटपूर्ण स्थिति में थे कि शिवाजी सदा उनकी रक्षा नहीं कर सकते थे।

पुरन्दर दुर्ग के किलेदार की मृत्यु भी उसी समय के आसपास हुई जब दादाजी कोंडदेव की हुई थी। उसके तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र बीजापुर से पुष्टि पाए बिना सैन्य दल का नायक बन बैठा। उसके दोनों छोटे भाइयों ने भी वहाँ के किलेदारी में तथा दुर्ग से सम्बन्धित कुछ खेतों और चारण-भूमि के लाभ में अपने २ बराबरी के हिस्से का दावा किया और शिवाजी से अपने आपसी झगड़ों का निबटारा करने में सहायता चाही। गुप्त रीति से दोनों छोटे भाइयों का पक्ष लेते हुए शिवाजी ने इस विवाद में सजीव रुचि ली।

जब ये विवाद चल रहे थे, शिवाजी ने एक उपयुक्त समय में, यह प्रदर्शित करते हुए कि वह सोपा की ओर जा रहे हैं. पुरन्दर किले के नीचे डेरा डाला और जैसी उन्हें आशा थी, उनको कुछ सेवकों के साथ किले में आने का निमन्त्रण मिला। जब ज्येष्ठ भाई विश्राम करने के लिए चला गया, शिवाजी ने बात ही बात में उन दोनों कनिष्ठ भाइयों से कहा कि बड़े भाई को बन्दी बना लेने के बाद ही वह न्याय-पूर्ण निर्णय करने के लिए तैयार होंगे। यही सबसे अच्छा तरीका है। दोनों भाई

---

[१] मराठे कहते हैं कि सिंह-कन्दरा के अर्थ में शिवाजी ने सिंहगढ़ नाम रखा, और शिवाजी के शब्दों से भी यह प्रमाणित है।

तुरन्त इसके लिए तैयार हो गए। हर एक विरोध का पूर्णतया सामना करने का साधन उपस्थित करने के बहाने शिवाजी ने किले के नीचे ठहरी हुई अपनी सेना के पास एक दूत भेजा और प्रातः होने के बहुत पहले मावलों के एक दल ने किले के ऊपरी और निचले हिस्सों पर अधिकार कर लिया। ज्येष्ठ भाई बन्दी था और उसके दोनों छोटे भाई अपने समस्त सैन्यदल के साथ पूर्णतया शिवाजी की मुट्ठी में थे। शिवाजी ने इस विश्वासघात की सफाई देने का प्रयत्न यह कह कर किया कि उन्होंने स्वतन्त्र होने की योजना बनाई है।[1] उन्होंने उन सब को पुरन्दर से हटा तो दिया किन्तु इनाम ग्रामों को उनको देकर तथा अपनी सेना में भर्ती होने को प्रेरित कर उन सब भाइयों को अपनी ओर मिला लिया। शिवाजी की सेना में रहते हुए उन लोगों ने कुछ नाम कमाया।

बिना हलचल या खून-खराबी के शिवाजी ने ये सब उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। राजकीय जनपदों में कोई उपद्रव नहीं खड़ा किया गया। मुहम्मद आदिलशाह प्रासादों और मकबरों के बनवाने, तथा कार्णाटक की भूमि पर अधिकार करने में व्यस्त था। शाहजी की जागीर में हुई अनियमताएँ यदि पूर्णतया ज्ञात भी रही हों, तो भी बहुत बड़ी नहीं समझी गईं, जब तक कि स्वयं जागीरदार शासक के मुट्ठी में था।

इस तरह शिवाजी ने चाकन और नीरा के बीच के प्रदेश पर अधिकार प्राप्त किया। अपने ही प्रदेश के पर्वतों के मायावी व्याघ्र की तरह वे तब तक निरीक्षण करते और झुक कर चलते, जब तक कि वह चुपके से ऐसी स्थिति में न आ जाते जहाँ से वह तुरन्त अपने भक्ष्य पर छलाँग मार सकें। जिस ढङ्ग से शिवाजी ने अपना पैर जमाया वही उनके आरम्भिक उत्कर्ष का पता लगाने की कठिनाई का तथा आश्चर्यजनक वेग से उस समय उनकी शक्ति के विस्तार होने का कारण है, जब उनकी प्रगति ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया और उनका छिपा रहना असम्भव हो गया।

---

[1] किंकेड और पारस्निस, रानाडे और शेडगावकर और शिवदिग्विजय बखरों को उद्धृत करते हुए, शिवाजी की कार्यवाही के वैकल्पिक विवरण देते हैं जो ग्रान्ट डफ के इस मत का परिमार्जन करते हैं कि यह किला विश्वासघात द्वारा प्राप्त किया गया। सभासद बखर से ग्रान्ट डफ के विवरण की सामान्य रूपरेखा की पुष्टि होती है—सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृष्ठ ४०।

अध्याय ४

(१६४८ ई० से १६५७ ई० तक)

१६४८ ई०—नीरा के दक्षिणी तट का, पूरब में सीरवल तक और दक्षिण में कृष्णा नदी के उत्तर के पहाड़ी श्रेणियों तक, ठीकेदार हरदस मावल का वंशागत देशमुख बन्दल था। रोहिरा दुर्ग का प्रभार उस पर था। शिवाजी से बहुत पहले ही से ईर्ष्यालु होने के कारण, एक मजबूत रक्षक सैन्यदल खड़ा कर वह पुरन्दर के आसपास के प्रदेश की सावधानी से रक्षा करता था। यह देशमुख मराठा था। किन्तु देशपाण्डे एक प्रभु था।[1] जो शंकरजाति की एक उपजाति थी और जिसका शिवाजी सदा पक्षपात करते थे। एक शासकीय मोकासादार का मुख्य कार्यालय स्थान वइ[2] था। पाण्डवगढ़, कमलगढ़, तथा पड़ोस के अन्य किलों का प्रभार इस मोकासादार पर था।

कृष्णा से वर्ना नदी तक का घाट-माथा का प्रदेश जाव्ली के राजा चन्द्रराव मोरे के हाथ में था।

कोल्हापुर जनपद और पन्हाला का मजबूत किला राज्यनियुक्त एक मराठा अधिकारी के अधीन था।

कोंकण में बीजापुर राज्य की प्राचीन भुक्ति जागीर के रूप में थी या वंशा-

---

[1] प्रभु बम्बई और मध्यप्रदेश में पाए जाते हैं और अवध के एक क्षत्रिय राजा चन्द्रसेन के अनुमानित वंशज होने के नाते अपने को चन्द्रसेनीय कायस्थ प्रभु कहते हैं। गुप्तकाल में अपने सरकारी पद के महत्त्व के अनुसार उन्होंने अपने नाम के आगे गुप्ते, राजे, प्रधान, चतुर्बल या चौबल, रानदिप या रानदिवे आदि नाम लगाए। बाद के सरकारी पद के साक्ष्य स्वरूप उन्होंने अपने नामों में चिटनवीस या चिटणिस, फदनीस, पोटनीस और सबनीस उपनाम जोड़े। शिवाजी के सर्वाधिक विश्वासपात्र पोषक ये प्रभु थे : मुरारबाजी, बालाजी अवजी, चिटणिस खण्डुबल्लाल, और प्रयागजी अनन्त। (ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स आव द सेन्ट्रल प्राविंसेज, चौथी जिल्द)।

[2] वइ सातारा से २० मील उत्तर-पश्चिम में कृष्णा के किनारे है।

गत देशमुखों को ठीके पर दी गई थी। किन्तु दाभोल, अञ्जनवील, रत्नागिरि, और राजापुर ये बन्दरगाह और उनके अधीनस्थ जनपद राजकीय अधिकारियों के हाथ में थे। वाड़ी के सावन्त मुख्य वंशागत सरदार थे। वे गोआ के पुर्तगाली प्रदेश से सटे हुए दुर्जय प्रदेश के देशमुख और जागीरदार थे। उनके बन्दरगाह पहले कुली नाम से कुख्यात समुद्र दस्युओं के आश्रय थे। महत्त्व की दृष्टि से सावन्तों के बाद शृङ्गारपुर के दलवियों[1] का नाम आता है जो दुर्गम प्रदेश में बसे होने के कारण जाव्ली के राजा की तरह लगभग स्वतन्त्र थे।

कल्याण[2] प्रान्त जिसको अहमदनगर के राजा ने १६३६ की सन्धि के अनुसार बीजापुर को प्रदान किया था विशेषतया दो अधिकारियों की देखरेख में थे। इसका उत्तरी भाग भीमरी (या भिवण्डी) से नागोतना (या नागा थाना) तक राजा का नियुक्त एक सम्माननीय मुसलमान अधिकारी के अधीन था जिसका मुख्य कार्यालय कल्याण भीमरी नगर में था। उसका प्रभार विस्तृत था जिसमें घाटों के ऊपर और नीचे के कई दुर्जय किले सम्मिलित थे। किन्तु यह किले कुछ कारणों से जिनका पहले निर्देश किया जा चुका है, बहुत उपेक्षित थे। इस प्रान्त का दक्षिणी भाग जागीर के रूप में एक हबशी के हाथ में था।[3] इसके बदले में वह जहाँ तक मालूम किया जा सका है व्यापार की रक्षा करने और तीर्थयात्रियों को लाल समुद्र पहुँचाने के लिए एक बेड़ा रखता था। उसका स्वामित्व वंशागत नहीं समझा जाता था बल्कि यह जागीर बेड़े के सबसे योग्य हबशी अधिकारी को प्रदान की जाती थी। इस प्रकार चुना हुआ मुखिया वजीर[4] कहलाता था।

---

[1] दलवी शब्द दलवह (सेनानायक, दलपति) का अपभ्रंश है। सूर्वे परिवार वाले शृङ्गारपुर के दलवियों के कारभारी थे।

[2] आधुनिक कल्याण 'थाना' जनपद में बम्बई से ३३ मील उत्तर-पूरब है।

[3] मलिक अम्बर के समय में निजामशाही बेड़े के हबशी नौकाध्यक्ष हबश खाँ और सीदी अम्बर थे। उस समय रहरी का कमान एक हबशी अधिकारी सीदी बलबल के पास था। सीदी शब्द सैयिद (स्वामी) का अपभ्रंश है।

[4] निर्णय करने के अर्थ में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के 'विचार' शब्द से वजीर शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। अब्बासी खलीफाओं तथा अटोमन तुर्कों के समय वजीरों को सचिव का कार्य करने के अतिरिक्त कोषाध्यक्ष तथा प्रार्थना-पत्रों पर निर्णय देने का अधिकार भी था। नियमानुसार उत्तर-काल में 'वजीर' उच्च अधिकारियों की पदवी मात्र था। (एनसाइक्लोपीडिया आव इस्लाम, जिल्द ५, पृ० १३५)। दक्षिण भारत के सुलतानों के समय में भी (शाहजी भोसले अथवा जंजीरा के हबशी

उसके समुद्रयानों के कुछ मल्लाह उसके देशवासी होते थे। इस तरह कोंकण में अफ्रीकावासियों का एक छोटा सा उपनिवेश बस गया था। डण्डा राजपुरी बन्दरगाह एक बड़ा समुद्री भाण्डागार था। इसी के बीच में छोटा सुरक्षायुक्त जंजीरा द्वीप[1] है। दक्षिण भारत की बोलचाल की भाषा में अफ्रीका देश के विभिन्न निवासियों को सीदी[2] नाम से पुकारते है। इस समय फतह खाँ जो सामान्यतया सीदी कहलाता था, यहाँ का मुख्य हबशी था। मुख्य हबशी और उसके उत्तराधिकारी सीदी उपाधि धारण करते थे और इसी नाम से ये यूरोपवासियों में प्रख्यात हैं। सीदी पर ताला, घोसालगढ़[3] और रइरी आदि कई किलों का प्रभार था। वे सब किले मराठों[4] की देखरेख में सौंप दिए गए।

शिवाजी गुप्त किन्तु सक्रिय रूप से अत्यन्त विस्तृत योजनाओं में लगे थे जिनकी पूर्ति में वे स्वयं मावलों को एकत्रित और सशस्त्र करने में और उनके कुछ ब्राह्मण कोंकण में सूचना प्राप्त करने और उनके विचारों का प्रसार करने में लगे थे।

यह सूचना पाकर कि कल्याण का शासक मुल्लाना अहमद द्वारा एक बड़ा कोष दरबार को भेजा गया है, शिवाजी ने सोपा में तीन सौ घोड़े एकत्रित कर और उनपर अपने विश्वसनीय बारगीरों को बैठा कर मावलों के एक दल के साथ कोष-रक्षकों पर आक्रमण कर उनको तितर बितर कर दिया और कोष को अपने अश्वारोहियों में बाँट कर उसे अत्यन्त शीघ्रता से राजगढ़ पहुँचाया। इस साहसिक लूट से उनका वास्तविक रूप पूर्णतया प्रत्यक्ष हो गया। किन्तु राजधानी में यह सूचना पहुँचते २ यह खबर भी आई कि शिवाजी ने कांगुरी, तूङ्ग, तिकोना, भूरप, कोआरी,

---

याकूत खाँ के सदृश) कोई भी उच्चाधिकारी वजीर कहलाता था। किन्तु उत्तर भारत के मुगल साम्राज्य में 'वजीर' शब्द का अर्थ प्रधानमन्त्री था। यह आवश्यक न था कि आय-विभाग के अतिरिक्त इसके अधीन शासन का कोई मुख्य विभाग हो। यह एक सम्मानसूचक उपाधि थी।—यदुनाथ सरकार कृत मुगल शासन-पद्धति, पृष्ठ० १७)।

[1] यह अर्बी शब्द जजीरा (द्वीप) का अपभ्रंश है।

[2] यह अर्बी शब्द सैयिद (स्वामी) का अपभ्रंश है, किन्तु दक्षिण में इसका उच्चारण गर्हित अर्थ में होता है।

[3] तालागढ़ रोहा के १० मील दक्षिण में है। घोसालगढ़ कोलाबा जनपद के रोहा से ५ मील दक्षिण-पश्चिम है।

[4] खाफी खाँ; ओर्मे; और दक्षिणी कोंकण के जिलाधीश एवं दण्डनायक से प्राप्त एक बिखरा हुआ पारम्परिक फारसी हस्तलेख।

लोहगढ़ और राजमाँची[1] नामक किलों पर आक्रमण कर अधिकार में कर लिया है। ताला, घोसालगढ़, और दुर्जय पहाड़ी दुर्ग रहरी उनके दूतों को दिए गए। कोंकण के कई धनी नगर लूटे गए और मावलों ने लूट के माल को अत्यन्त नियमितता से राजगढ़ पहुँचाया।

किन्तु इससे उनके कार्यों की सीमा या सफलता की इति न हुई। दादाजी कोंडदेव के एक ब्राह्मण शिष्य आवाजी सोनदेव ने जिसके साहस और व्यवहार की पहले से ही ख्याति थी कल्याण पर चढ़ाई की और वहाँ के राज्यपाल को बन्दी कर उस क्षेत्र के सभी किलों का आत्मसमर्पण करा लिया।

इस आशातीत सफलता की उल्लासपूर्ण सूचना पाकर शिवाजी शीघ्र कल्याण पहुँचे और आबाजी सोनदेव को सर्वोच्च प्रशंसा प्रदान कर उसे इस महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया। राजस्व व्यवस्था का तुरन्त प्रबन्ध हुआ। प्राचीन संस्थाएँ जिनके चिह्न जहाँ कहीं भी प्राप्त हो सके पुनर्जीवित की गईं। मन्दिरों को और ब्राह्मणों को दिए हुए समस्त वृत्तिदान और दान वस्तुओं का सावधानी से प्रावर्त्तन और रक्षण किया गया। सीदी भीषण पड़ोसी था अतः उसकी छीनी हुई जागीरों को सुरक्षित रखने के लिए घोसालगढ़ के समीप बीर वाडी, और रहरी के समीप लिंगन[2] नाम के दो किलों के बनवाने की आज्ञा दी।

शिवाजी ने आबाजी सोनदेव द्वारा बन्दी किए हुए मुल्लाना अहमद को ससम्मान छोड़ दिया। किन्तु उसके दरबार पहुँचने के पहले ही, उसके बन्दी बनाए जाने और किलों को समर्पण करने की सूचना वहाँ आ चुकी थी। नवाब ने उसको सम्मान अर्पण करने की अनुज्ञा तो दी किन्तु उसको पुनः विश्वास अथवा लाभ का कोई पद नहीं दिया।

---

[1] कांगुरी महाद से १२ मील पूरब है। भूरप या (सुधागढ़) रोहा से १५ मील पूरब है। राजमाँची भोर घाट से ६ मील उत्तर है। लोहगढ़ खण्डाला से ४ मील पश्चिम है। इन किलों पर किस प्रकार आक्रमण किया गया इसका सन्तोषजनक विवरण प्राप्त नहीं है। गढ़ों के समीप के ग्रामवासी गढ़ों के घरों की छावनी के लिए पत्तियों और घास का अंशदान शिवाजी के समय के पहले से दिया करते थे। एक बार कुछ विद्रोही रक्षकसैन्य के एक दो आदमियों को भ्रष्ट कर घास के एक २ बोझ लादे हुए जिसमें वे अपने हथियार छिपाए हुए थे वार्षिक अंशदान देने के बहाने किले में प्रवेश पा गए। उन्होंने रक्षकसैन्यदल पर अकस्मात् आक्रमण कर गढ़ पर अधिकार किया।

[2] लिंगन रायगढ़ से ५ मील पूरब है।

मुल्लाना अहमद की शिवाजी के विद्रोहसम्बन्धी सूचना से बीजापुर में व्यापक चिन्ता फैलने लगी किन्तु महमूद आदिलशाह ने इस विश्वास से कि शाहजी गुप्त रीति से इस विद्रोह को उत्तेजित करते हैं, शक्ति द्वारा इसे दबाने का कोई सक्रिय उपाय नहीं किया। रनदुल्लह खाँ के दरबार लौट आने से शाहजी उस प्रदेश का राज्यपाल होगया था और उसकी शक्ति कार्णाटक में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। सम्भव है कि इस बात से मुहम्मद आदिलशाह को संदेह उत्पन्न हुआ हो। इसकी पुष्टि इस बात से भी हुई कि शिवाजी के विद्रोह का आरम्भ शाहजी के जागीर से हुआ और उस प्रदेश में फैला जहाँ कुछ समय पूर्व शाहजी के शक्ति का दमन किया गया था।[1]

अतः नवाब ने मुधोल के बाजी घोरपड़े के पास जो उसी प्रदेश में शाहजी के साथ काम कर रहा था एक व्यक्तिगत आज्ञा शाहजी को पकड़ने और बन्दी बनाने के लिए भेजी। घोरपड़े ने विश्वासघात कर यह कार्य सम्पन्न किया। उसने शाहजी को एक समारोह में निमन्त्रित कर बन्दी बनाया।

१६४६ ई०—दरबार में लाए जाने के बाद शाहजी को अपने पुत्र के विद्रोह को दबाने के लिए प्रेरित किया गया और उसके साथ पत्र-व्यवहार करने की छूट दी गई। किन्तु शाहजी आग्रहपूर्वक यह कहते ही रहे कि उसका अपने पुत्र से सम्बन्ध विच्छेद हो चुका है और वह उसके प्रति उतना ही विद्रोहात्मक है जितना नवाब के शासन के प्रति, और उसने बलपूर्वक उसके दमन की अनुशंसा की किन्तु इससे महमूद आदिलशाह को उसकी निर्दोषता का किंचिन्मात्र विश्वास न हुआ और शाहजी की अनुमानित अवज्ञा से क्रुद्ध हो कर उसने उसको एक पत्थर के कारावास में बन्द रखने की आज्ञा दी। इस कारावास का दरवाजा एक छोटे से रन्ध्र को छोड़ कर मूँद दिया गया और उससे यह कहा गया कि यदि एक निश्चित समय के भीतर उसका पुत्र समर्पण नहीं करेगा तो यह छिद्र भी सदा के लिए बन्द कर दिया जायगा।

अपने पिता के कारावास और सङ्कट की सूचना पाकर शिवाजी के मन में समर्पण करने का विचार उठा किन्तु उनकी पत्नी साई बाई ने इस विचार को यह कह कर दबा दिया कि कुख्यात विश्वासघाती शासन का विश्वास करने की अपेक्षा अपनी वर्तमान शक्ति को बनाए रखकर शाहजी को छुड़ा लेना अधिक सम्भव है। इसके विकल्प स्वरूप शिवाजी ने एक विशिष्ट नीति अपनाई। अब तक शिवाजी सम्राट् के प्रदेश या उसकी प्रजा को पीड़ा पहुँचाने से सावधानी पूर्वक बचते रहे, सम्भवतः मुगलों की महान् शक्ति के कारण या इस विचार से कि बीजापुर शासन की ओर से अत्यन्त सङ्कटपूर्ण स्थिति में ढकेले जाने पर वे सम्राट् की शरण लेंगे। अतः उन्होंने

---

[1] मराठी हस्तलेख; खाफी खाँ; बीजापुर हस्तलेख; और परम्परा।

अपने पिता का छुटकारा प्राप्त करने के लिए शाहजहाँ से पत्र-व्यवहार किया जिसके फलस्वरूप सम्राट् शाहजी की पूर्वकृत धृष्टता और अवज्ञा को क्षमा करने एवं उनको शाही-सेवा में लेने और शिवाजी को पाँचहजारी मंसब प्रदान करने को राजी हुआ।[1] सम्भवतः सम्राट् के प्रभाव से, और मुरारपन्त[2] की मैत्री के कारण शाहजी की असहाय मृत्यु से रक्षा हुई। प्रतिभूति देने पर उनको कारागार से मुक्ति मिली। किन्तु वे चार वर्ष तक बीजापुर में एक खुले कैदी के रूप में रखे गए।

१६५० ई०—अपने पिता का प्राणदण्ड कुछ समय के लिए स्थगित हो जाने से शिवाजी का आसन्न उद्देश्य तो पूरा हुआ, किन्तु मुगल सेवा में अपनी भरती होने के प्रस्ताव को वे चतुरता से अनिश्चित स्थिति में डाले रहे। इसका कारण यह था कि उन्होंने अपने पिता अथवा अपनी ओर से जुन्नर और अहमदनगर जनपदों के देशमुखी प्राप्य पर वंशागत अधिकार का दावा प्रस्तुत किया था। इस प्रत्यक्ष उद्देश्य को लेकर शिवाजी का अभिकर्त्ता आगरा पहुँचा, किन्तु जैसा सम्भवतः पहले ही से मालूम था देशमुखी प्राप्त करने में असफल रहा। किन्तु उसने शाहजहाँ से इस आशय का एक पत्र प्राप्त किया कि दरबार में शिवाजी के आने पर इस दावे पर विचार होगा।[3]

१६५१ ई० और १६५२ ई०—चार वर्ष की उस अवधि में जब शाहजी बीजापुर में रोक रखे गए थे शिवाजी ने, सम्भवतः अपने पिता की सुरक्षा की आशङ्का से, बहुत ही कम आक्रमण किए और नवाब भी सम्भवतः इस डर से कि कहीं शिवा जी उस प्रदेश को मुगलों के हवाले न कर दें उनके विरुद्ध सेना भेजने से अपने को रोके रहा। बकाया कर न भुगतान होने का बहाना लेकर सम्राट् ऐसा कर भी सकता था। इसी बीच स्वयं शिवाजी को गिरफ्तार करने का एक निर्बल प्रयत्न किया भी गया। इस काम को करने का बीड़ा बाजी शामराज नाम के एक हिन्दू ने

---

[1] शिवाजी के नाम सम्राट् शाहजहाँ के मूल पत्र।

[2] कर्नल विल्क्स लिखता है कि रनदुल्ला खाँ के द्वारा यह कार्य हुआ। मराठी अभिलेखों में उसका नाम मुरार पन्त के साथ अवश्य आता है। किन्तु १६४३ में उसकी मृत्यु हो चुकी थी जैसा कि उसकी कब्र पर अंकित दिनांक से प्रतीत होता है। उसके एक पुत्र या सम्बन्धी की भी यही उपाधि थी। किन्तु उसका इतना प्रभाव या ऊँचा पद नहीं था कि उसने शाहजी का छुटकारा कराया हो।

[3] शाहजहाँ का मूल-पत्र। शिवाजी के नाम शाहजहाँ और औरङ्गजेब के लिखे हुए मूल-पत्र सातारा के राजा के पास हैं। उनकी प्रतियाँ बम्बई की लिटिरेरी सोसायटी में जमा की गई हैं।

उठाया। शिवाजी बहुधा कोंकण के महर नगर में निवास करते थे। अवसर की ताक में शामराज का दल चन्द्रराव मोरे के प्रदेश में से होकर पार घाट में छिप गया किन्तु शिवाजी को इसका आभास हो गया। उन्होंने उस पर घाट की तरी में धावा बोला जिससे घबड़ा कर उसके दल ने जङ्गल में भाग कर शरण ली।

१६५३ ई०—शाहजी ने कार्णाटक की अपनी जागीर को लौटने की अनुज्ञा प्राप्त करने का भरसक उपाय किया किन्तु असफल रहे। अन्त में उस क्षेत्र में बड़े २ उपद्रव होने लगे जिससे बाध्य होकर नवाब को उसके पक्ष की बातों को सुनना पड़ा। शाहजी के यह वचन देने पर कि वह मुधोल के जागीरदार को तङ्ग नहीं करेगा उसको पूर्णतया स्वतन्त्र किया। दोनों दलों को जो कुछ अतीत में हुआ था उसको भुला देने के उद्देश्य से मुहम्मद आदिल शाह ने उनको अपने २ वंशागत देशमुखी अधिकारों और इनामों का प्रावर्तन करने के लिए बाध्य किया। शाहजी ने कुरार के जनपदों के अपने इन अधिकारों को बाजी घोरपड़े के उन अधिकारों से परिवर्तन कर लिया जो उसके पास कार्णाटक में थे[1], किन्तु इस समझौते का पालन नहीं किया गया। और अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही शाहजी ने शिवाजी को एक पत्र लिखा कि यदि तुम मेरे पुत्र हो तो मुधोल के बाजी घोरपड़े को दण्ड दो। शिवाजी ने अवसर पाकर इस बदला लेने की आज्ञा का भयानक रूप से पालन किया।[2]

१६५३ ई०—कार्णाटक लौटने पर शाहजी को मालूम हुआ कि उस प्रदेश

---

[1] मूल करण की प्रतिलिपि, और मराठी हस्तलेखें।

[2] किंकेड और पारस्निस द्वारा उद्धृत शिवदिग्विजय बखर के अनुसार पत्र की अन्तिम पंक्तियाँ ये थीं: 'ईश्वर तुम्हारी आशाओं को सफल करे और समृद्धि करे। बाजी घोरपड़े के प्रति सदा शिष्ट रहो, क्योंकि तुम जानते हो कि उसका मुझ पर कितना आभार है।' शिवाजी ने इस द्वि-अर्थी पत्र के अनुसार कार्य किया। यदुनाथ सरकार के अनुसार बाजी घोरपड़े ने भागते हुए शाहजी को काफी पीछा करने के बाद पकड़ा। और शिवाजी ने अपने पिता की मुक्ति के लिए दिल्ली के सम्राट् से नहीं, बल्कि दक्खिन के सूबेदार राजकुमार मुराद बख्श से पत्र-व्यवहार किया। सम्भवतः शाहजी का छुटकारा बीजापुर के दो प्रमुख अभिजातों, शर्जा खाँ और रनदुल्ला खाँ के मैत्रीपूर्ण मध्यस्थता से हुआ, मुगल प्रयत्न से नहीं। सरकार के अनुसार बंगलोर, कोंडाना और कन्दर्पी नामक किलों के समर्पण किए जाने पर एवं मुहम्मद आदिलशाह के एक पुत्र के पैदा होने की खुशी में १६ मई १६४९ के दिन वह छोड़े गए। 'शिवभारत' काव्य में शाहजी की नजरबन्दी का सच्चा विवरण है। —सरकार : शिवाजी, पृष्ठ २२-२३।

के उपद्रवों की सूचनाओं में अतिशयोक्ति नहीं थी। प्रत्येक छोटे-मोटे सरदार लूट और उपद्रव द्वारा अपने पड़ोसी को कमजोर करने और अपने को मजबूत करने के प्रयत्न में लगे थे। स्वयं उसके जागीर में लूट का बोलबाला था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी को कनकगिरि के किलेदार के एक आक्रमण का बदला लेने के लिए भेजा। इस लड़ाई में उसका दल हार गया और शम्भाजी मारे गए। बाद को शाहजी ने कनकगिरि पर आक्रमण कर अपने अधीन कर लिया और शम्भाजी के मृत्यु का बदला लिया। फिर भी शम्भाजी के मृत्यु से उनको अत्यन्त दुःख होता रहा। इस घटना के बाद कार्णाटक के उनके मुख्य अभिकर्त्ता एक ब्राह्मण नारु पन्त हनवन्ते की मृत्यु हुई। उसने मलिक अम्बर के शिष्यत्व में शिक्षा पाई थी और कई वर्षों तक शाहजी की सेवा की थी। भाग्यवश उसके अत्यन्त प्रतिभावान् पुत्र रघुनाथ नारायण ने उसकी जगह ग्रहण की। कार्णाटक में दिन पर दिन उपद्रव बढ़ते गए। इस कारण बीजापुर शासन का ध्यान शिवाजी की ओर से एकदम हट गया। अपने पिता के स्वतन्त्र होते ही उन्होंने सम्पूर्ण घाट-माथा और कोंकण के शेष हिस्से पर अधिकार करने की नई २ योजनाएँ बनाई।

१६५५ ई०—बीजापुर शासन के विरुद्ध जाव्ली के राजा को बुलाने का उनका प्रयत्न सफल न हुआ। चन्द्रराव ने शिवाजी के विरुद्ध कोई लड़ाई नहीं छेड़ी। और उनके सब दूतों का शिष्टतापूर्ण स्वागत किया, किन्तु नवाब के विरुद्ध विद्रोह में भाग लेने से वह मुँह मोड़े रहा। शिवाजी को इस आधार पर शत्रुता करने का बहाना मिला कि उसने शामराज के दल को अपने प्रदेश से होकर जाने की अनुज्ञा दी थी और उसकी तथाकथित सहायता भी की थी। किन्तु राजा इतना शक्तिशाली था कि उसके विरुद्ध अभियान की सफलता निश्चित न थी। शिवाजी के मावलों से मिलता-जुलता एक सबल अश्वारोही दल उसके पास था। उसके दोनों पुत्र, उसका भाई, और उसका मन्त्री हिम्मतराव सभी सम्मानप्राप्त कुशल सैनिक थे। और कोई ऐसा उपाय भी सामने न था जिससे शिवाजी उनके बीच में भेदभाव डाल सकें। ऐसी परिस्थिति में शिवाजी ने जिन्होंने कुछ दिनों से युद्ध के लिए तैयार एक सेना खड़ी की थी, प्रत्यक्षतः अपना और चन्द्रराव की कन्या का विवाह पक्का करने के लिये किन्तु वस्तुतः स्थिति की तथा वहाँ के मुख्य स्थानों की ठीक २ सूचना प्राप्त करने के लिए, अपने दो अभिकर्त्ताओं, रघुवल्लाल नाम एक ब्राह्मण को और शम्भाजी कवजी एक मराठा को भेजा।

रघुबल्लाल ने अपने साथियों तथा पच्चीस मावलों को लेकर जाव्ली प्रस्थान किया। उनका शिष्टतापूर्वक स्वागत किया गया और उन्होंने चन्द्रराव से कई बार भेंट की। यह देख कर कि राजा एकदम अरक्षित है, रघुबल्लाल ने उसको और उसके

भाई को मार डालने की एक घृणित योजना बनाई। शम्भाजी कवजी तुरन्त ही इस योजना से सहमत हुए। इसकी सूचना पाने पर शिवाजी[1] ने भी इसकी पुष्टि की और घाटों पर चुपचाप सैनिक भेजे गए। इस बहाने से कि वह दूसरी ओर व्यस्त है शिवाजी ने राजगढ़ से पुरन्दर को प्रस्थान किया और वहाँ से रातों रात कृष्णा के उद्गम-स्थान महाबिलेश्वर[2] पहुँच कर आसपास के जङ्गलों में एकत्रित अपनी सेना से जाकर मिले। प्रबन्ध पूरा हो जाने की सूचना पाकर रघुबल्लाल ने राजा और उसके भाई से एक वैयक्तिक परामर्श करने की माँग का अवसर निकाला। उस अव-

---

[1] जाव्ली सातारा जिले के उत्तर-पश्चिम के कोने में महाबलेश्वर पहाड़ के पाँच-छः मील पश्चिम की ओर है। आठ पीढ़ी से युद्ध और लूट-खसोट के द्वारा मोरे परिवार के भाण्डार में बहुत धन सञ्चय था। इनके पास १२,००० पदाति सेना थी। ये सैनिक मावलों के जाति-भाई एवं बलवान और साहसी थे। जाव्ली राज्य प्रायः सम्पूर्ण सातारा जनपद में फैला हुआ था। इसके पश्चिम की ओर समुद्र से ४,००० फुट की ऊँचाई पर सह्याद्रि खड़ा है और पूरब के ओर की तराई घने जङ्गलों और पत्थरों से भरी पड़ी है। पश्चिम के ओर की पथरीली जमीन ६० मील चौड़ी है। इसको पार कर उस ओर कोंकण जाने के लिए आठ घाटियाँ पार करनी पड़ती हैं जिनमें से दो ही ऐसी हैं जिनमें बैलगाड़ी चल सकती है। यही जाव्ली देश दक्षिण और पश्चिम की ओर शिवाजी के राज्य विस्तार की राह रोके हुए था और मावलों के समस्त मुखियों को शिवाजी के साथ होने में बाधा डाल रहा था एवं शिवाजी-विरोधी दल संगठित कर रहा था।—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ २४-२५। किंकेड और पारस्निस (हिस्ट्री आव द मराठा पीपल) के अनुसार चन्द्रराव मोरे की हत्या के षड्यन्त्र में शिवाजी का हाथ नहीं था। किन्तु यदुनाथ सरकार उन प्रलेखों की विश्वसनीयता स्वीकार नहीं करते जिनके आधार पर इन लेखकों ने शिवाजी को इस हत्या से मुक्त किया है। सरकार के अनुसार शिवाजी के समस्त प्राचीन हिन्दू जीवनी लेखक इस बात से सहमत हैं कि शिवाजी ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण हत्या की। किन्तु उस समय उसकी शक्ति शैशवावस्था में थी और अपने को दृढ़ करने के साधनों के चुनाव में वह संकोचशील नहीं रह सकता था। बिल्कुल इसी प्रकार की परिस्थिति में शेरशाह ने दक्षिण बिहार के किलों को प्राप्त करने में इसी प्रकार का विश्वासघात किया था। शिवाजी ने कभी भी इस घटना के सम्बन्ध में कोई कपट की बात नहीं की।—सरकार : शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ० ४३-४४।

[2] महाबलेश्वर सातारा के ३० मील उत्तर-पश्चिम में, समुद्र-तल से ४,५०० फीट ऊपर है।

सर पर उसने राजा के हृदय को वेधा और शम्भाजी कवजी ने उसके भाई की हत्या की। उनके साथी पहले से तैयार थे ही, अतः तुरन्त ही हत्यारे भागे और झपट कर चारों ओर फैले हुए घने वनों में चले गए। वहाँ उनकी शिवाजी से भेंट हुई जो पूर्व योजनानुसार उनकी सहायता के लिए आ रहे थे। इस भयानक कुकृत्य से उत्पन्न सत्रास के कम होने के पूर्व ही जाव्ली चारों ओर से घिर गया। यद्यपि आक्रमण अप्रत्याशित था, फिर भी राजा के पुत्रों और हिम्मतराव के नेतृत्व में सेना साहसपूर्ण प्रतिरोध करती रही जब तक हिम्मतराव खेत और दोनों पुत्र बन्दी न हुए। शिवाजी का शीघ्र ही चन्द्रराव के कब्जे की भूमि पर अधिकार हुआ। वासोता[1] का दुर्जय किला और शिवतर खोरा पर अधिकार हो जाने से जाव्ली की विजय पूर्ण हुई। चन्द्रराव के बन्दी पुत्रों की इस आधार पर बाद को हत्या की गई कि वे बीजापुर शासन से गुप्त पत्र-व्यवहार करते हैं। उनके बध किए जाने की तारीख का ठीक २ पता नहीं चल सका। इसके बाद शिवाजी मावलों के साथ रात्रि में सीढ़ी लगाकर रोहिरा किले में प्रवेश कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ का देशमुख बन्दल जो उस समय किले में मौजूद था, भयध्वनि के प्रथम क्षण में ही हथियार लेकर खड़ा हो गया। शत्रुओं की संख्या अत्यधिक होने पर भी उसके आदमियों ने घुटना नहीं टेका, जब तक कि वह मार नहीं डाला गया। उनका नेतृत्व देशपाण्डे बाजी प्रभु कर रहा था। शिवाजी ने उसके प्रति उदारता दिखलाई, अत्यन्त अनुग्रह से उससे भेंट की, और उसके सम्पूर्ण वंशागत कब्जे की पुष्टि की। शिवाजी से उसका सम्बन्ध था ही, बाद को वह अपने विजयी के भाग्य का अनुसरण करने को तैयार हुआ। वह एक अच्छी संख्या के अश्वारोहियों का दलपति बनाया गया। अन्त तक उसने अपने निष्ठायुक्त और साहसपूर्ण चरित्र को बनाए रखा।

१६५६ ई०—नीरा और कोयना के तटों पर की अपनी कब्जे के भूमि तक पहुँच पाने के लिए तथा पारघाट की प्रतिरक्षाओं को दृढ़ बनाने के लिए शिवाजी ने कृष्णा के उद्गम के निकट एक ऊँची चट्टान पर एक अन्य गढ़ बनाने का निश्चय किया। इसकी रूपरेखा बनाने का काम एक देशस्थ ब्राह्मण मोरो त्रिमल पिंगले को सौंपा गया जो कुछ ही दिनों पहले पुरन्दर दुर्ग का नायक नियुक्त हुआ था। छोटी ही अवस्था में वह अपने पिता के साथ जो शाहजी की सेवा में था कार्णाटक गया, किन्तु १६५३ में वहाँ से वापस आकर कुछ दिनों बाद शिवाजी की सेवा में लगा।

---

[1] वासोतागढ़ जिसका नाम शिवाजी ने वज्रगढ़ रखा था सातारा के जाव्ली तालुका में पश्चिमी घाट के कोर पर स्थित है। इसका निर्माण सिलाहार वंश के भोज द्वितीय (११७८-९३) ने किया था।

सौंपे हुए प्रत्येक कार्य को योग्यतापूर्ण ढंग से सम्पन्न करने के कारण वह शीघ्र ही अपने स्वामी का विश्वास भाजक हुआ। और प्रतापगढ़[1] नामक एक नए किले के निर्माण से उसके प्रति की हुई अनुकूल धारणा की पुष्टि हुई।

इस काल में शिवाजी का मुख्यमन्त्री शामराज पन्त[2] नामक एक ब्राह्मण था जिसको उसने पेशवा की उपाधि देकर गौरवान्वित किया, और जैसा कि मराठों में प्रचलित है ऐसे ऊँचे असैनिक पद पर स्थित व्यक्ति को बहुत अधिक-सैनिक कमान भी प्राप्त हुआ।

१६५७ ई०—शिवाजी ने अब तक अपनी हड़प तथा लूटों को बीजापुर प्रदेश तक ही सीमित रखा था। किन्तु दण्ड का भय न रहने से और परिस्थितिवश भी वे और भी अधिक साहसी हो गए और अपनी मूल नीति को छोड़ कर शाही जनपदों की लूट आरम्भ की। किस निमित्त से उन्होंने ऐसा किया यह समझने के लिए हमें मुगलों की कार्यवाहियों की ओर ध्यान देना होगा।

१६३६ ई०—१६३६ के शान्ति-सन्धिकाल से दक्खिन में उनके द्वारा विजित प्रदेशों पर उनका विघ्नरहित आधिपत्य रहा और वे अपनी उपलब्धियों की वृद्धि प्रशंसनीय ढंग से करते रहे।

१६५० ई०—कंधार-अभियान के पश्चात् राजकुमार औरङ्गजेब दूसरी बार १६५० में दक्खिन का राज्यपाल नियुक्त हुआ और उसने कई वर्षों तक उन सक्रिय उपायों में कुछ भी कमी नहीं की जो न्यायपूर्ण कर-निर्धारण निश्चित करने तथा यात्रियों और व्यापारियों की रक्षा करने के लिए किए गए थे। मलिक अम्बर के खड़की नगर को उसने शासन का केन्द्र बनाया जिसका नाम उसने अपने नामानुसार औरंगाबाद[3] रखा। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में युद्ध का नेतृत्व करने के कारण उसमें लिप्सा बढ़ गई थी।

१६५५ ई०—१६५५ में गोलकुण्डा दरबार में भेदभाव उत्तेजित करने का उसको अवसर प्राप्त हुआ। इस समय कुत्बशाह का प्रधानमन्त्री मीरजूमला[4] था।

---

[1] प्रतापगढ़, समुद्रतल से ३,५४३ फीट ऊपर, महाबलेश्वर से आठ मील दक्षिण-पश्चिम में है।

[2] इनका पूरा नाम शामराज नीलकंठ रंझेकर है। पन्त पण्डित का लघुरूप है। पेशवा (फारसी शब्द) का अर्थ नेता है।

[3] इसके पूर्व फतह खाँ इसका नाम फतहनगर बदल चुका था। बीजापुर हस्तलेख।

[4] मीरजूमला अर्दिस्तान का एक साहसी इरानी व्यापारी था। एक सफल

उसने यह पद अपनी योग्यता और धन के कारण प्राप्त किया था। उसका बड़ा दबदबा था और एशिया के प्रत्येक मुसलमान-दरबार में उसका अत्यन्त व्यापक सम्मान था। प्रारम्भ में वह हीरे-जवाहरात का व्यापारी था और इस नाते उसका परिचय विभिन्न देशों तथा राजकुमारों से हुआ। अपनी प्रतिभा, धन, और व्यवहार कुशलता से गोलकुण्डा का वजीर होने के बहुत पहले से वह राजदरबार में लोकप्रिय था।

उसका पुत्र मुहम्मद अमीन दुराचारी, किन्तु अपने पिता की तरह आत्म-विश्वासी था। इसने स्वयं अब्दुला कुत्बशाह के या उसके प्राधिकार के प्रति कुछ अभद्रता की। अतः सुलतान ने उसको दण्ड देना उचित समझा। इस व्यवहार से मीरजूमला को रोष हुआ। अतः उसके और सुलतान के बीच में विवाद खड़ा हुआ। जिसके फलस्वरूप अन्त में मीरजूमला ने अपनी रक्षा के लिए सम्राट् के पास एक औपचारिक प्रार्थनापत्र भेजा। औरंगजेब ने इस आवेदनपत्र का जोरदार शब्दों में अनुमोदन किया, इससे उसकी और मीरजूमला की मैत्री की नींव पड़ी। यह मैत्री औरंगजेब का उत्कर्ष करने में अत्यन्त सहायक हुई।

शाहजहाँ ने उतने ही उत्साह से जितना कि औरङ्गजेब चाहता था मीरजूमला का पक्ष ग्रहण किया और इस सम्बन्ध में कुत्बशाह के नाम एक आज्ञापक पत्र भेजी। इस हस्तक्षेप से घबड़ाकर सुलतान ने मुहम्मद अमीन को कारावास में डाल दिया और प्रतिभू स्वरूप उसके पिता की सम्पत्ति पर अधिकार किया।

नमक-मिर्च लगा कर जिस रूप में औरङ्गजेब ने इस कार्यवाही को प्रस्तुत किया उससे शाहजहाँ कुपित हुए विना न रहा। कुपित स्वेच्छाचारी अपनी आज्ञा का पालन कराने में देर नहीं करता। मुहम्मद अमीन को छुड़ाने तथा मीरजूमला की क्षतिपूर्ति की माँग के लिए शाहजहाँ ने औरङ्गजेब को अपनी सेना तैयार करने और माँग पूरा न होने पर गोलकुण्डा के प्रदेश पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

सुलतान सम्राट् का हस्तक्षेपाधिकार स्वीकार करने को तैयार न हुआ। अतः औरङ्गजेब ने बिना युद्ध घोषित किए, अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलतान मुहम्मद को एक बड़ी सेना के साथ भेजा। यह छद्म किया गया कि वह अपनी चचेरी बहिन सुलतान शुजा की पुत्री से विवाह करने के लिए हैदराबाद से होकर बंगाल जा रहा है। अपनी मुख्य सेना लेकर औरङ्गजेब ने भी प्रस्थान किया। अब्दुल्ला कुत्बशाह इस चालाकी

व्यापारी होने के बाद वह अबदुल्ला कुत्बशाह का प्रधानमन्त्री और गोलकुण्डा राज्य का वास्तविक स्वामी हुआ। बाद को वह मुगल सेवा में एक ऊँचे पद पर रखा गया। उसकी मृत्यु १६६३ में हुई।

को भांप न सका जब तक कि युवा राजकुमार शत्रुरूप में उसके फाटकों तक न पहुँचा। इससे घवड़ाकर सुलतान ने अपने पड़ोसियों से सहायता की माँग की तथा मुगलों को भी रियायतें दी। मुगलों ने किले पर आक्रमण कर हैदराबाद नगर की प्रचुर सम्पत्ति को लूटा और सहायता को आती हुई कुमुकों को बीच ही में रोका। इससे सुलतान अत्यन्त विपन्नावस्था में पड़ा।

अपने क्रोध के प्रथम उफान के शान्त होने पर शाहजहाँ को जल्दी में दिए हुए इस आज्ञा का खेद हुआ। अतः उसने औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा कि वह सुलतान की अधिक दुर्दशा न कर उससे उचित सन्धि कर ले। किन्तु औरङ्गजेब सुलतान का अत्यन्त अपमान-जनक आत्मसमर्पण कराने पर तुला था। सुलतान मुहम्मद के घेरा डालते ही सुलतान ने मुहम्मद अमीन को मुक्त किया तथा उसके पिता की संपत्ति को लौटाया। अब उसने अपनी लड़की का विवाह सुलतात मुहम्मद के साथ कर दिया और औरङ्गजेब द्वारा निर्धारित एक करोड़ रुपया वार्षिक कर का सम्पूर्ण बकाया देने को बाध्य हुआ। शाहजहाँ ने इन कार्यवाहियों की पुष्टि की किन्तु बीस लाख रुपये की छूट दी।

१६५६ ई०—मीरजूमला और औरङ्गजेब दोनों इस बात से सहमत थे कि बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों को विजय कर मुगल साम्राज्य के सूबे बनाया जाय। ऐसा करने के लिए औरङ्गजेब ने यह आड़ ली कि वहाँ के साधनों पर कब्जा करने की अपेक्षा वह काफिरों के उस प्रदेश में इस्लामी धर्म का प्रचार करने की आशा से अधिक प्रेरित है। मीरजूमला शाही दरबार में आने को निमंत्रित किया गया और थोड़े दिनों बाद वजीर के पद पर आसीन हुआ। सम्भवतः अपना तथा औरङ्ग-जेब के भविष्य का ध्यान रखकर, अवसर पाते ही वह अपनी योजना की उपयुक्तता पर जोर देता था। थोड़े ही दिनों बाद एक ऐसा अवसर उपस्थित हुआ कि सम्राट् ने उनकी विजय-अभियान की योजना को कार्यान्वित करने की स्वीकृति दी। यह अवसर मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु से उपस्थित हुआ जो एक लम्बी बीमारी के बाद ४ नवम्बर १६५६ को बीजापुर में हुई।

नियमित रूप से कर न देने पर भी मृत सुलतान और सम्राट् के बीच में दाराशिकोह के प्रभाव से सद्भावना बनी रही। अतः औरङ्गजेब ने दाराशिकोह के प्रति इर्ष्यालु होने के कारण, सुलतान से व्यक्तिगत शत्रुता ठान ली।

मुहम्मद आदिलशाह के मरने पर सुलतान अली आदिलशाह द्वितीय तुरन्त ही उन्नीस वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। उसके राज्य की सम्पत्ति अब भी प्रचुर थी। उसके पास प्रभूतकोष, उपजाऊ प्रदेश, और सशक्त सेना थी। किन्तु उसकी अधिकांश सेना कार्णाटक में विद्रोहात्मक जमींदारों को दबाने में लगी थी।

नए सुलतान के राजगद्दी पर बैठने के बाद न तो सम्राट् को सूचित करने की शिष्टता प्रदर्शित की गई, और न उसे कोई श्रद्धाञ्जलि भेजी गई। अतः मुगलों ने यह बात उड़ा दी कि अली आदिलशाह मृत सुलतान का पुत्र नहीं है और सम्राट् को एक उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहिए। तत्कालीन युरोपीय पर्यटकों के ग्रन्थों में भी इसी बात का उल्लेख है[1]। सम्भव है कि उन्होंने उस समय की मुगल सूचना के आधार पर ऐसा लिखा हो क्योंकि इस प्रकार की कोई बात का उल्लेख न तो बीजापुर के कागजों में और न मराठी हस्तलिपियों में है। इस मुगल अभियान की सम्भवतः इतनी भी सफाई नहीं दी जा सकती जितनी कि एशियाई सरकारों के अनियमित कार्यवाहियों की सफाई सामान्यतया दी जाती है।

सम्राट् ने मीरजूमला को बीजापुर अभियान सेना का मुख्य सेनापति नियुक्त किया और औरङ्गजेब को उसका सहायक बनाया। किन्तु दोनों के आपसी समझौते के अनुसार मुख्य प्राधिकारी औरङ्गजेब था और मीरजूमला का नाममात्र प्राधिकार था। मुगलों के इस अप्रत्याशित आक्रमण का सामना करने के लिए बीजापुर दरबार पर्याप्त सेना एकत्रित न कर सका। सीमांत के कुछ खतरे के स्थानों पर सशक्त सैन्य टुकड़ियाँ लगा दी गईं। और उनको सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से खान मुहम्मद तथा अन्य नामी मुसलमान अधिकारी कुछ अश्वारोहियों को लेकर मैदान में आ डटे। सर्जा राव घाटगे, बाजी घोरपड़े, निम्बालकर और अन्य मराठे जागीरदार अपने सिपाहियों को लेकर शीघ्र ही वहाँ आए। औरङ्गजेब बीजापुर प्रदेश के सीमान्त की ओर पूर्वी रास्ते से मार्च १६५७ में बढ़ा और तुरन्त ही कल्याण दुर्ग पर उसका अधिकार हुआ और बीदर जिसकी सैन्य-टुकड़ी पर अत्यन्त भरोसा किया जाता था, शस्त्रागार में अकस्मात् आग लग जाने से, एक ही दिन में मुगलों के हाथ में आ गया। इस अप्रत्याशित सफलता से औरङ्गजेब को अत्यन्त प्रसन्नता हुई[2] और अपनी

---

[1] टवर्निअर। बर्निअर। सम्भवतः यह वही लोक प्रचलित कहानी है जिसको फ्रायर ने आदिलशाह के पुत्र के सम्बन्ध में लिखा है और सम्भवतः उसी तरह अप्रमाणिक है। फ्रायर की कहानी यह है कि अली आदिलशाह एक महावत का पुत्र था जिसका पहुँच गुप्त रीति से मुहम्मद आदिलशाह की रानी तक हुई।—फ्रायर, पृष्ठ १६६।

[2] शिवाजी के नाम लिखे हुए एक पत्र में औरङ्गजेब ने लिखा कि उसने दक्खिन और कार्णाटक विजय की कुंजी, दुर्जय बीदर दुर्ग पर एक ही दिन में कब्जा कर लिया है जिसकी एक वर्ष से अधिक युद्ध के बाद कठिनता से आशा की जा सकती थी।—शिवाजी के नाम औरङ्गजेब का मूल पत्र।

प्रगति को तेज करने में उसने कोई कोर-कसर न उठा रखी। कुलबर्गा अचानक आक्रमण न सह सका। मुगल सेना तुरन्त आगे बढ़ी किन्तु अश्वारोहियों ने इसे बहुत परेशान किया और अभूतपूर्व अड़चन डाली। औरङ्गजेब बीजापुर के मंत्री एवं सेनापति खान मुहम्मद को भ्रष्ट करने में सफल हुआ। अतः खान मुहम्मद मुगलों का अभियान रोकने में पूर्णतया उदासीन रहा। औरङ्गजेब के लिए राजधानी को जाने वाली सड़क खुली छोड़ दी गई। पूर्व इसके की वहाँ के निवासी जल को नष्ट और खाद्य सामग्री को एकत्रित कर सकें औरङ्गजेब ने राजधानी को घेर लिया। अत्यन्त विनम्र होकर सुलतान ने एक करोड़ नकद रुपया देने तथा अन्य कोई भी त्याग करने को प्रस्तुत हो कर युद्ध रोकने की प्रार्थना की। किन्तु औरङ्गजेब इस पर पूरा कब्जा करने से कम की बात ही नहीं करना चाहता था। किन्तु उसको अकस्मात् अपना इरादा बदलना पड़ा क्योंकि उसको उसी समय अपनी बहिन रोशनारा बेगम[1] द्वारा भेजा हुआ सम्राट् की तथाकथित सांघातिक बीमारी का गुप्त संदेश मिला।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे—दाराशिकोह अपने पिता के साथ आगरे में था, सुलतान शुजा बंगाल का राज्यपाल था, औरङ्गजेब दक्खिन के अभियान में लगा था और सुलतान मुराद गुजरात का राज्यपाल था। राजसिंहासन को प्राप्त करने के लिए हर एक ने अपनी २ सेनाएँ पहले ही से एकत्रित कर ली थीं। दाराशिकोह को पहले ही से बड़े २ प्राधिकार मिले हुए थे और अपने पिता का जीवन खतरे में होने पर उसने राज्य की सम्पूर्ण शक्ति ग्रहण कर ली थी। औरङ्गजेब को गोलकुण्डा के घेरे से अपने हाथ खींचने को विवश करने में और बीजापुर के विरुद्ध किए गए अभियानमें औरङ्गजेब को मीरजूमला के नीचे पद दिये जाने में उसी का प्रभाव समझा गया। वह अपने सभी भाईयों से ईर्ष्या करता था किन्तु औरङ्गजेब से भय खाता था। और उसका डरना ठीक भी था क्योंकि संयम और धार्मिक कट्टरता का परदा डाले हुए उच्चाभिलाषी औरङ्गजेब की तुलना में निष्कपट और निर्भीक किन्तु असावधान और उतावला दारा ठहर नहीं सकता था। दारा अकबर के उदार विचारों का खुलम-खुल्ला अनुगामी था जो शाही सेवा में नियुक्त अधिकांश मुसलमानों के धार्मिक भावनाओं के अनुरूप नहीं था। औरङ्गजेब ने इस कमजोरी को भांपा और इसका लाभ उठाया। कुरान के आदेशों का पालन वह अत्यन्त कट्टरता से करता था और वह ऐसा छद्म करता था या सचमुच वह ऐसा विश्वास करता था कि धर्म का हित तथा इस्लाम मत का प्रचार सर्वोपरि है। दारा ने

---

[1] मुगल सिंहासन के लिए किए गए १६५८ के प्रतिरोध में रोशनारा बेगम ने औरङ्गजेब का और जहाँनारा बेगम ने दारा शिकोह का पक्ष ग्रहण किया।

मीरजूमला को तथा समस्त अन्य मुख्य अधिकारियों को जो दक्खिन में शाही-सेवा में लगे थे दिल्ली लौट आने का आदेश भेजा। सम्भव है उसने कुछ अंश तक बीजापुर का पक्षपात करने तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी भाई से घृणा करने के कारण ऐसा किया हो। मीरजूमला की सलाह से औरङ्गजेब ने दिल्ली की ओर प्रस्थान कर इस आज्ञा को निष्फल करने का तुरन्त फैसला किया। अली आदिल शाह के प्रस्तावों को मानने, बहुत बड़ी मात्रा में नकद रुपया प्राप्त करने और उपलब्धियों को त्यागने के पश्चात् उसका प्रस्थान नर्मदा की ओर हुआ। उस समय मीरजूमला का परिवार दारा के वश में आगरे में था। अतः उसकी इच्छा से औरङ्गजेब ने उसे कैद कर दौलताबाद दुर्ग में रखा जहाँ उसने अपने छोटे बच्चों तथा परिवार की महिलाओं को भी ठहराया। उसने अपने द्वितीय पुत्र सुलतान मुअज्जम को औरंगाबाद शासन का प्रभार सौंपा। सर्वप्रथम औरङ्गजेब ने मुराद बख्श के मन में यह बात जमाई कि वह अपनी आत्मरक्षा में अपने शत्रु भाई दारा के विरुद्ध हथियार उठाने को बाध्य हुआ है, राजसिंहासन प्राप्त करने की उसकी जरा भी अभिलाषा नहीं है क्योंकि यह उसके चिर-अभिलाषित एकान्त धार्मिक जीवन से मेल नहीं खाता, और मुरादबख्श को सिंहासन पर बैठाने में वह उसकी सहायता करेगा। अतः दोनों की सेनाएँ एक हो गईं और दो घमासान युद्धों में शाही सेनाओं की पराजय हुई। वहाँ से भाग कर दारा ने एक सेना एकत्रित की किन्तु उसकी फिर पराजय हुई। विश्वासघात द्वारा वह पकड़ा गया और औरङ्गजेब को सौंपा गया, तथा उसकी आज्ञा से उसकी हत्या की गई। आशा के विपरीत शाहजहाँ को अपनी बीमारी से छुटकारा मिला। वह अपने पुत्रों के पास बराबर यह आज्ञा भेजता रहा कि वे अपने २ शासनों को लौट जाँय किन्तु यह छद्म करते हुए कि दारा ने उन कूटलेखों को भेजा है उन्होंने इन आज्ञाओं की ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया। अपने पिता को अपने वश में करने के बाद औरङ्गजेब ने मुरादबख्श को कैद किया, उसकी सेना को अपनी ओर मिलाया, और सम्राट् को पदच्युत कर वह १६५८[1] में सिंहासन पर बैठा। दक्खिन से मीरजूमला को बुलाकर उसने अपने भाई शुजा के ऊपर चढ़ाई की। अपनी सेना की पराजय होने पर शुजा अराकान भाग जाने को विवश हुआ जहाँ वह मार डाला गया। इस तरह अकेला औरङ्गजेब बचा जो मुगल-साम्राज्य का एकमात्र स्वत्वाधिकारी, सर्वेसर्वा हुआ।

---

[1] औरङ्गजेब ने प्रथम बार अनौपचारिक रूप से २१ जुलाई १६५८ को और दूसरी बार अपने भ्राताओं की पूर्ण पराजय के पश्चात् १६५९ में राज्यारोहण किया।

अध्याय ५

(१६५७ ई० से १६६२ ई० तक)

१६५७ ई०—जिस समय औरङ्गजेब बीजापुर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था, उसको शिवाजी का पत्र मिला जिसमें शिवाजी ने सम्राट् के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित की थी। औरङ्गजेब ने उसके प्रस्तावों को स्वीकार कर, बीजापुर से छीने हुए प्रदेश को उसके पास रहने देने की, तथा समुद्रतट पर स्थित दाभोल और इसके अधीन प्रदेश[1] पर अधिकार करने की उसे स्वीकृति दी। औरङ्गजेब कि इच्छा थी कि शिवाजी उससे भेंट करें जिससे कि वह उसे समझा सके कि उन दोनों के मिल जाने से शिवाजी को कितना बड़ा लाभ हो सकता है।[2] औरङ्गजेब के प्रति विनम्रता तथा आज्ञाकारिता दिखलाते हुए भी शिवाजी, अभियान के लिए आती हुई सेना को लूटने तथा अपने धन एवं घुड़सवारों की वृद्धि करने में नहीं चूकते थे। इस समय तक उन्होंने सिलाहदारों[3] के रूप में, जैसा कि सामान्यतया होता है, अश्वारोहियों की भरती आरम्भ नहीं की थी।

मई १६५७ की एक रात्रि में शिवाजी ने जुन्नर नगर पर आक्रमण कर वहाँ से नकद तीन लाख पगोडा[4] सिक्का, दो सौ घोड़े, कुछ मूल्यवान कपड़े तथा अन्य वस्तुएँ लूट कर पूना ले गए और वहाँ से इनको राजगढ़ भेजा। पट्टा पर आक्रमण करने की आशा में शिवाजी ने अहमदनगर को जाने वाली एकान्त सड़कों से प्रस्थान किया। किन्तु जब उनके सैनिक लूट-मार कर रहे थे, तभी किले की एक टुकड़ी ने उस पर आक्रमण किया। उनके हाथ केवल सात सौ घोड़े और चार हाथी लगे।

पूना लौटने पर शिवाजी ने बहुत से घोड़े खरीद कर एक बारगीर[5] अश्वारोही

---

[1] मूल पत्र, औरङ्गजेब का शिवाजी के नाम।

[2] मूल पत्र, औरङ्गजेब का शिवाजी के नाम। मराठी हस्तलेखें।

[3] सिलाहदार—किराए के अश्वारोही।

[4] तीन लाख हूण या होंण (= १२ लाख रुपये)—यदुनाथ सरकार : औरङ्गजेब, पृ० २४८; शिवाजी, पृ० २८।

[5] बारगीर स्थायी, वेतनभोगी, सरकारी अश्वारोही थे जिनको सरकारी घोड़े और सामान दिए जाते थे।

दल तैयार किया। उन्होंने मराठा सिलाहदारों की भी भरती की। मानकोजी डटनडे जिसको उन्होंने सरएनौबत (सेनापति) की उपाधि दी थी कई वर्षों तक उनके अश्वारोहियों की एक छोटी टुकड़ी का सेनापति रहा। उसके मरने पर नेताजी पालकर सेनापति हुए। उनका उस प्रदेश के विभिन्न भागों के सिलाहदारों[१] पर बहुत प्रभाव था। किन्तु स्वभावतः वह निर्दयी और सिद्धान्तरहित था।

मुगलों की सफलता और बीजापुर के सङ्कट से शिवाजी भयभीत हुए। अत्यन्त विनम्र शब्दों में अपने पूर्वकृत कार्यों के लिए क्षमा माँगते हुए और भविष्य में राजनिष्ठ बने रहने का वचन देते हुए, शिवाजी ने औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा तथा अपने वचनों की पुष्टि करने के लिए अपने विश्वस्त प्रतिनिधियों में से रघुनाथ पन्त को भेजा किन्तु साथ ही वह अपनी सेना में वृद्धि करने में भी लगे रहे।

शाहजहाँ की बीमारी की सूचना, बीजापुर से सन्धि, और उत्तर की ओर औरङ्गजेब के प्रस्थान से स्थिति बदल गई। अतः शिवाजी ने अपने दूसरे दूत कृष्णाजी भासकर को औरङ्गजेब के पास भेजा। शिवाजी ने जो कुछ पहले हुआ था उसके लिए क्षमा माँगी, इस आपत्तिकाल में औरङ्गजेब को सहायता देने तथा उसकी अनुपस्थिति में शाही प्रदेश की रक्षा करने का प्रस्ताव रखा। किन्तु साथ ही मुगल जनपदों के अन्दर कुछ वंशागत स्वत्वों पर अपने दावों का प्रश्न भी उठाया, और शाही सेना की सेवा के बदले में देशमुखी तथा अपने परिवार की जागीर के कुछ हिस्से की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया। दूत द्वारा यह भी कहलाया कि कोंकण के अनेक भागों में आदिल खाँ का प्रबन्ध अत्यन्त खराब है और पूरे कोंकण का प्रबन्ध शिवाजी को हस्तांतरित करने से बड़ा लाभ होगा।

१६५८—औरङ्गजेब ऐसी परिस्थिति में नहीं था कि वह इन गर्वीली माँगों का बुरा मानता। यह समझ कर कि बीजापुर के विरुद्ध शिवाजी के आक्रमणों से शाही प्रदेश की सुरक्षा बनी रहेगी, औरङ्गजेब ने शिवाजी को रघुनाथ पन्त और कृष्णाजी भासकर द्वारा भेजे हुए सम्वादों का उल्लेख करते हुए एक कूटनीतिक पत्र लिखा। उसने उनके अपराधों को क्षमा किया और उन्हें कोंकण को अपने अधिकार में लेने की स्वीकृति दी और अपने वंशागत दावों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिए सोन पण्डित (आवाजी सोनदेव) को भेजने को कहा। उसने यह भी लिखा कि शर्तें तय हो जाने पर शिवाजी पाँच सौ घोड़े शाही सेना को देंगे और अपनी शेष सेनाओं के बल पर शाही जनपदों में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखेंगे।[२]

---

[१] सिलाहदार किराए के अश्वारोही थे जो अपने घोड़े और हथियार रखते थे।

[२] मराठी हस्तलेखें, तथा यशवन्तसिंह और कासिम खाँ के युद्ध के तुरन्त बाद

समझौते की बात यहीं पर रह गई और इसमें कोई प्रगति न हुई। कोंकण को विजय करने के लिए शिवाजी ने अपने सैनिकों को तैयार किया तथा समुद्रतट के कई उपेक्षित दुर्गों पर अधिकार किया। बाद को वहाँ से समुद्री लूट-मार करने के लिए शिवाजी ने नावें एकत्रित कीं। उनके नाना जाधवराव का एक पुराना सिपाही गोमाजी नायक था जो जीजाबाई के सङ्कटपूर्ण जीवन का साथी रहा था। उसके विवेकपूर्ण तर्कों से प्रभावित होकर शिवाजी ने बीजापुर शासन से निवृत्त किए हुए सात सौ मुसलमान पठान अश्वारोहियों को अपनी सेना में भरती कर उन्हें एक ब्राह्मण सेनापति, रघुबल्लाल के अधीन रखा जिसने चन्द्रराव मोरे की हत्या की थी।

युवा अली आदिलशाह अपने विश्वासघाती, आपसी लड़ाई में व्यस्त सामन्तों को दबा रखने में असमर्थ था। शिवाजी के भयानक विद्रोह को दबाने के स्थान पर वे एक दूसरे का विनाश करने के षड्यन्त्र में लगे थे। मुख्य मन्त्री खान मुहम्मद जिसने पिछले युद्ध में सुलतान के साथ विश्वासघात किया था, न्यायपूर्वक अपराधी ठहराया गया किन्तु उसका नियमित न्यायिक विचार नहीं किया गया बल्कि कुछ हत्यारों द्वारा नगर के मुख्य द्वार पर हाथी पर से खींचा जाकर निर्दयतापूर्वक मारा गया। आरम्भ में वह एक हबशी दास था और उसका नाम रेहन था। इब्राहिम आदिलशाह ने उसको अपने पुत्र मुहम्मद को दिया जिसका वह बाद को मन्त्री हुआ। युवा सुलतान ने उसकी सम्पत्ति का अपवर्तन करने के स्थान पर, जैसा कि साधारणतया होता है, उसको उसके पुत्र ख्वास खाँ को अर्पण किया। किन्तु उसे अपने पिता की हत्या सदा खटकती रही। मात्र आवश्यकतावश उनका आपस में मेल था।

१६५६ ई०—शिवाजी ने पेशवा शामराज पन्त को एक बड़ी सेना के साथ कोंकण पर अधिकार करने के लिए भेजा। किन्तु आक्रमण की आशङ्का से फतह खाँ पहले से ही तैयार बैठा था। उसने पेशवा की सेना का घोर संहार कर पराजित किया।

शिवाजी की यह पहली पराजय थी और इससे वह अत्यन्त खिन्न हुआ। भगोड़ों की सहायता करने के लिए उसने रघुनाथ पन्त के सेनापतित्व में सिपाहियों की एक नई टुकड़ी भेजी। शामराज पन्त पेशवा पद से हटा दिए गए और यह पद मोरो त्रिमल पिंगले को प्रदान किया गया। शामराज पन्त के पराजय के पहले, सावन्त घराने वालों ने जो वरी के देशमुख और जागीरदार थे शिवाजी की महान् तैयारियाँ तथा बीजापुर शासन की ढिलाई देख कर शिवाजी से एक समझौता करने के लिए

लिखा हुआ औरङ्गजेब का एक मूलपत्र। यह युद्ध नर्मदा के समीप नहीं, जैसा कर्नल डो सम्भवतः मानते हैं, बल्कि उज्जैन के १२ मील भीतर हुआ था।

अपना एक प्रतिनिधि भेजा। शिवाजी तुरन्त तैयार हो गए और यह तय हुआ कि राजस्व का आधा हिस्सा शिवाजी लेंगे, जिसको वह अपने आदमियों द्वारा इकट्ठा करायेंगे; और राजस्व का शेष आधा हिस्सा तथा देशमुखी पावना सावंतों को मिलेगा। इन छूटों के बदले में सावंत के सैन्यदल किलों में रहेंगे तथा आवश्यकता होने पर सेवा में तुरन्त अर्पित करने के लिए तीन हजार पदातियों का एक दल वे सदा प्रस्तुत रखेंगे।[1] इस समझौते से सावंतों को खेद हुआ और उन्होंने इस समझौते की शर्तों का पालन नहीं किया और शीघ्र ही उनकी निष्ठा बीजापुर की ओर हो गई।

सीदी ने रघुनाथ पंत का डट कर मुकाबला किया किन्तु वर्षा आरम्भ हो जाने से लड़ाई रुक गई। वर्षाकाल में पेशवा और नेताजी पाल्कर के संयुक्त सेनापतित्व में एक बड़ी सेना खड़ी की गई। किन्तु अत्यन्त उग्र वर्षा के कारण सीदी की भूमि पर आक्रमण न किया जा सका। इसी बीच एक अधिक प्रबल शत्रु ने शिवाजी के विरुद्ध सङ्कट उपस्थित किया।

बीजापुर राज्य ने शिवाजी को दबाने के लिए एक सक्रिय कदम उठाया। एक सेना खड़ी की गई जिसमें प्रचुर सामान, पाँच हजार घोड़े, सात हजार चुने हुए पदाति, तोपचियों की एक लम्बी कतार (उस समय के अनुसार), बहुत से राकेट और ऊँटों पर चढ़ाई हुई अनेक भँवर-कड़ियाँ थीं। इस अभियान का नेतृत्व करने के लिए एक उच्च पदाधिकारी अफजल खाँ ने अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। दक्खिन के अन्य मुसलमान निवासियों की तरह उसने भी बड़ी लम्बी डींग हाँकी कि वह उस तुच्छ विद्रोही को पकड़ ला कर सुलतान के सिंहासन के चरणपीठ के नीचे जञ्जीरों से बाँध कर रखेगा।

सितम्बर के महीने की भीषण वर्षा के चपेट से बच कर चलने के लिए सेना पण्ढरपुर गई और वहाँ से वइ को मुड़ी। इसके पहुँचते ही शिवाजी प्रतापगढ़ आकर ठहरे और अफजल खाँ के पास अत्यन्त विनम्र संदेश भेजा कि ऐसे महान् व्यक्ति का सामना करने का विचार भी उनके मन में नहीं उठता। और वे खाँ की मध्यस्थता से बीजापुर राज्य से केवल सन्धि करने को उत्सुक हैं। उन्होंने अपने आचरण के लिए अत्यन्त दुःख प्रगट किया और यह निराशा व्यक्त की कि खाँ के छत्रच्छाया में शरण पाने पर भी उन्हें आशा नहीं है कि सुलतान उनको क्षमा करेगा। किन्तु फिर भी यदि खाँ उन पर अनुग्रह कर दे तो वे अपना सम्पूर्ण प्रदेश खाँ को अर्पण करने को प्रस्तुत हैं।

---

[1] मूल सन्धि की प्रतिलिपि।

अफजल खाँ अन्य मुसलमान सामंतों की तरह अत्यन्त अहंकारी था और शिवाजी को अत्यन्त क्षुद्र समझता था। वह उस प्रदेश का राज्यपाल रह चुका था वह जानता था कि इस जङ्गली प्रदेश में घुस-पैठ करना कितना कठिन है। शिवाजी के बारम्बार आवेदन से भी वह प्रभावित हुआ। अतः उसने पंताजी गोपीनाथ नाम के एक ब्राह्मण को जो उसकी सेवा में था कुछ अनुचरों के साथ प्रतापगढ़ भेजा। वहाँ के किले के नीचे पारगाँव में आने पर शिवाजी ने उससे भेंट की। उस ब्राह्मण ने यह निवेदन किया कि अपने घनिष्ठ मित्र शाहजी के पुत्र होने के नाते अफजल खाँ की शिवाजी से कोई शत्रुता नहीं है और वह यह प्रयत्न करेगा कि शिवाजी उस प्रदेश के कुछ भाग का जिस पर उन्होंने अधिकार जमा लिया है जागीरदार बना दिए जाएँ। इस खुली भेंट में शिवाजी ने अपने सन्देशों की भाषा की अपेक्षा कुछ कम विनम्र शब्दों में उसके लिए सन्तोष तथा आभार प्रकट किया और कहा कि उन्हने कई पालेगारों (छोटे स्वतन्त्र शासकों) को दबा कर बीजापुर राज्य की सेवा की है।

अक्टूबर—शिवाजी ने ब्राह्मणों के ठहरने का प्रबन्ध औरों से अलग कुछ दूरी पर किया था। आधी रात को शिवाजी ने पन्ताजी से एक गुप्त भेंट की और यह निवेदन किया कि स्वयं भवानी ने उसे ब्राह्मण और गाय की रक्षा करने, देवताओं और मन्दिरों की प्रतिष्ठा भंग करने वालों को दण्ड देने, तथा अपने धर्म के शत्रुओं का प्रतिरोध करने की आज्ञा दी है। अब तक उसने हिन्दुओं तथा उनके धर्म की रक्षा के लिए ही सब कुछ किया है। ब्राह्मण होने के नाते उसको भवानी की आज्ञा को पूरा करने में सहायता देना उचित है। अब आगे उसे अपनी जाति और देश-वासियों के बीच आराम का वैभवपूर्ण जीवन बिताना चाहिए। शिवाजी ने उसको उपहार भेंट किए और इनाम[1] में, सदा के लिए उसको तथा उसके वंशजों को हेवरा ग्राम प्रदान करने का निश्चित वचन दिया। कोई भी ब्राह्मण इस प्रकार की धर्म-दुहाई का और साथ ही इस प्रकार के लाभ का लोभ संवरण नहीं कर सकता। दूत ने शिवाजी के प्रति अपनी निष्ठा का वचन दिया और देवी की शपथ ली की उसके जरा भी विचलित होने पर देवी उसको दण्ड दे। ब्राह्मण दूत ने यह संकेत दिया कि जैसा कि अफजलखाँ का स्वभाव है वह सम्मेलन के लिए तैयार हो जाएगा। शिवाजी ने अपने एक विश्वस्त ब्राह्मण कृष्णाजी

[1] विद्वानों तथा धार्मिक लोगों को दी गई भूमि पर वंशागत, करमुक्त अधिकार।

भासकर[1] को बुला भेजा। उन लोगों में पूर्णरूप से सलाह हुई। इन लोगों का मिलन नितांत गुप्त रखा गया।

दो-चार प्रत्यक्ष भेंट और विवाद के बाद शिवाजी का प्रतिनिधि कृष्णाजी भासकर पन्ताजी गोपीनाथ के साथ अफ़जलखाँ के शिविर को गया। पन्ताजी ने अफ़जलखाँ को समझाया कि शिवाजी अत्यन्त भयभीत हैं और खाँ से व्यक्तिगत आश्वासन पा कर वे आत्मसमर्पण करेंगे। भेंट होना निश्चित हुआ और बीजापुर की सेना जाव्ली चली गई। प्रतापगढ़ दुर्ग के नीचे एक स्थान पर भेंट का प्रबन्ध हुआ। खाँ के आने के लिए जङ्गल काटकर एक रास्ता बनाया गया किन्तु पहुँच के शेष सब रास्ते सावधानी से बन्द कर दिए गए। शिवाजी ने मोरोपन्त और सेनापति नेताजी पाल्कर तथा उसके कई सहस्र मावले पदातियों को बुला भेजा। नेताजी को किले के पूर्वी ओर के जङ्गल में ठहराया गया जहाँ खाँ के कुछ अनुचर आकर ठहरने वाले थे मोरो त्रिमल और उनके पुराने अनुभवी सैनिक जाव्ली के समीप बीजापुर की मुख्य सेना के आसपास छिप गए और यह योजना बनाई गई कि नेताजी तीव्र तुरही ध्वनि सुन कर, और मोरो त्रिमल प्रतापगढ़ से पाँच तोपों की गर्जना सुन कर आक्रमण आरम्भ करेंगे।

अफजलखाँ के पन्द्रह सौ सैनिक जो उसके साथ आए थे पन्ताजी गोपीनाथ के सुझाव पर प्रतापगढ़ से कुछ सौ गज दूरी पर ठहराए गए जिससे कि शिवाजी शंकित न हों। अफजलखाँ बारीक मलमल की पोशाक पहन कर और एक तलवार लेकर और जैसा कि तय हुआ था अपने केवल एक सशस्त्र अनुचर के साथ, पालकी में बैठ कर एक खुले बंगले में आया जो इस अवसर के लिए बनाया गया था।

शिवाजी ने कोई पुण्य किन्तु साहसिक कार्य करने की सी तैयारियाँ कीं जैसे कि वह कोई आपराधिक और विश्वासघाती कार्य करने को नहीं सोच रहे हैं। उन्होंने अत्यन्त भक्तिभाव से स्नान-ध्यान कर अपनी माता के चरणों में शिर नवाया और आशीर्वाद[2] माँगा। उसके बाद वह उठ खड़े हुए और इस्पात की जञ्जीर से निर्मित

---

[1] किंकेड एवं सरकार के अनुसार कृष्णाजी भासकर अफजल खाँ का दूत था और पन्त जी गोपीनाथ शिवाजी का।

[2] किंकेड और पारस्निस लिखते हैं कि जीजीबाई ने शिवाजी को चेतावनी दी कि पुत्र, सावधान रहना और अपने भाई सम्भा जी का बदला लेना—पृष्ठ १६०। सरकार के अनुसार माता जीजी बाई ने शिवाजी को आशीर्वाद देकर भविष्यवाणी की कि 'तेरी ही जय होगी'—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ ३३।

शिरस्त्र और कवच धारण कर ऊपर से अपनी पगड़ी और सूती कपड़े पहन लिए। अपनी दाहिनी बाहीं में एक वक्र करौली या बिछुआ[1] छिपा कर रखा और अपने बाएँ हाथ की अंगुलियों पर एक बघनखा[2] टिका लिया। इस तरह सुसज्जित होकर, शिवाजी किले से धीरे २ नीचे आए। खान वहाँ पर पहले ही से उपस्थित था और देरी के कारण व्यग्र हो रहा था। उसी समय शिवाजी आते हुए दिखाई पड़े। प्रत्यक्ष-तया, वे शस्त्रहीन थे और केवल एक सशस्त्र अनुचर, उनका विश्वस्त मित्र तानाजी मालूस्रे[3] उनके साथ था। अफजल खाँ के दृष्टिपथ में शिवाजी बारम्बार रुक जाते थे, मानो शंकाकुल हों, उनका कद छोटा था ही। शिवाजी को आश्वस्त करने के लिए, ब्राह्मण की धूर्तता से, सशस्त्र अनुचर कुछ कदम दूर खड़ा किया गया। शिवाजी के अनुचर के कमर में दो तलवारें जैसा कि मराठों में चलन है, लटक रही थीं। अफजल खाँ ने सम्भवतः इसीलिए इस पर कोई आपत्ति नहीं की, और वह शिवाजी से मिलने दो तीन कदम आगे बढ़ा। आपस में उन दोनों का परिचय कराया गया और जब वे एक दूसरे का यथाव्यवहार आलिङ्गन कर रहे थे, विश्वासघाती मराठा ने अफजल खाँ के पेट में बघनखा भोंक दिया[4]। अफजल खाँ

---

[1] बिछुआ विच्छू से मिलता-जुलता एक दुधारी करौली है जिसमें आधे इञ्च की दूरी पर किन्तु एक दूसरे से समानान्तर, दो वक्र फलक होते हैं जो एक ही मुठिया में लगे रहते हैं—एकवर्थ : बाल्लाड् आव द मराठाज, टिप्पणी १२, पृष्ठ १२०।

[2] बघनखा स्पात का बना हुआ एक छोटा शस्त्र है जो तर्जनी और कनिष्ठिका पर पहना जाता है। इसमें तीन वक्र फलक होते हैं। यह सुगमता से आधे बन्द हाथ में छिप जाता है। इसमें बाघ के नख के रूप के कांटे निकले होते हैं।

[3] यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि शिवाजी के साथ जीवमहला नाम का तलवार का खिलाड़ी, और हनुमन्त राव मोरे का प्राणहन्ता शम्भू जी कावजी थे। तानाजी मालूस्रे इस दल में नहीं था। जीवमहला ने अफज़ल खाँ के रक्षक प्रसिद्ध तलवार चलाने वाले सैयिद बन्दा का शिर काटा और शम्भू जी कावजी ने मरणासन्न अफजल खाँ का शिरश्छेदन कर शिवाजी के समक्ष उपस्थित किया—सरकार : शिवाजी, पृ० ३५-३७।

[4] शिवाजी के दूत पंताजी गोपीनाथ ने बहुत बड़ी रिश्वत देकर बीजापुर के सरदार से पता लगा लिया कि खाँ ने भेंट के समय शिवाजी को कैद करने का प्रबन्ध किया है, क्योंकि शिवाजी के समान धूर्त व्यक्ति को लड़ाई में जीतना कठिन है। अतः शिवाजी ने अफजल का बध कर अपनी रक्षा करनी चाही।

फुर्ती से अलग हो गया। 'विश्वासतघात और हत्या' यह चिल्लाते हुए अपनी तलवार पर हाथ रखा, किन्तु शिवाजी ने तुरन्त ही करौली भोंक दी। खाँ ने तलवार खींचकर शिवाजी पर पहले ही वार कर दिया था। किन्तु गुप्त कवच ने शिवाजी की रक्षा की। एक ही क्षण में यह सब हुआ। शिवाजी अपने वैरी के हाथ से तलवार छीन ही रहे थे कि उन दोनों के अनुचर उनकी ओर झपट कर आए। सैयिद बन्दा ने अपने जीवन-रक्षार्थ समर्पण करना अस्वीकार किया और शिवाजी और उनके अनुचर से लड़ता २ मरा। इसी बीच में अनुचरों ने खाँ को उठाकर पालकी में लिटा दिया। यह हाथापाई समाप्त होते २ खंडू मल्ले तथा शिवाजी के कुछ और अनुचरों ने मरणासन्न खाँ का सिर काट लिया और प्रतापगढ़ ले गए। पूर्व निश्चित संकेत-ध्वनि होते ही, सब ओर छिपे हुए मावले अपने २ निकट के बीजापुर सैनिकों पर टूट पड़े जिनको इतना भी मौका नहीं मिला कि घोड़ों पर चढ़ें या हथियार उठावें। नेताजी पाल्कर ने किसी को प्राण-दान नहीं दिया। किन्तु मोरो पन्त को यह आज्ञा मिली कि आत्मसमर्पण करने वालों को जीवन-दान दिया जाय। इस अवसर पर तथा अन्य अनेक अवसरों पर शिवाजी की मानवता सुविख्यात है[1]। जिन सैनिकों ने भागने का प्रयास किया था उनमें से बहुत से

खाँ ने गद्दी से उठ कर एवं कुछ पग आगे बढ़ कर, शिवाजी को गले लगाने के लिए हाथ बढ़ाया। शिवाजी नाटे और दुबले थे, वे लम्बे और चौड़े शरीर वाले अफ़जल के कन्धे तक पहुँचते थे। इसलिए खाँ के दोनों हाथों ने शिवाजी का गला घेर लिया। उसके बाद अफ़जल खाँ ने एकाएक शिवाजी का गला अपने बाएँ हाथ से बड़े जोर से दबाया और दाहिने हाथ से कमर से लम्बा सीधा छूरा निकालकर शिवाजी की बाईं बगल में चोट की, लेकिन वह छिपे कवच में छुरा धुस न सका। गला दबने से शिवाजी का दम घुटने लगा, परन्तु पल भर में बुद्धि को ठिकाने लाकर बायाँ हाथ जोर से घुमा कर उन्होंने अफ़जल खाँ के पेट में बघनखा घुसेड़ दिया और उससे खाँ के पेट को फाड़ डाला जिससे खाँ की अंतड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं। साथ ही दाहिने हाथ का बिछुआ खाँ की बगल में भोंका। जख्मी अफ़जल खाँ के हाथ की पकड़ ढीली पड़ी। तब शिवाजी जल्दी से अपने को छुड़ाकर चबूतरे पर से नीचे कूदे और अपने साथियों की ओर दौड़े। ये सब बातें एक पल में हुईं।—सरकार : शिवाजी पृ० ३४-७।

[1] यदि कभी भी शिवाजी ने बन्दियों के प्रति निर्दयता की तो वे वही अवसर

जङ्गल में भटकने के बाद बहुत ही दुर्दशा में कई दिनों तक पकड़ २ कर लाए गए। उन मराठे कैदियों के प्रति इतना अच्छा बर्ताव किया गया कि उनमें से बहुत से कैदी शिवाजी की सेवा में आगए। बन्दी बनाए गए मराठों में जूझार राव घाटगे सब से अधिक विख्यात था। उसके पिता और शाहजी घनिष्ठ मित्र थे। किन्तु वह बीजापुर के प्रति अपनी राज-भक्ति छोड़ने को तैयार न हुआ। इसलिए मूल्यवान् उपहार देकर उसकी प्रार्थना पर उसे जाने दिया गया। खण्डुजी काकडे ने अफजल खाँ के पुत्र और परिवार को बन्दी बनाया। किन्तु उत्कोच की एक बड़ी रकम पाकर पर्वतों के उस पार जाने वाले एकान्त रास्तों से तथा कोयन नदी के किनारे २ ले जाकर उनको सुरक्षित स्थान, कुरार पहुँचाया। यह बात मालूम हो जाने पर शिवाजी की आज्ञा से उसका शिरच्छेदन किया गया।

इस सफलता से मराठों में, जो साधन की लेशमात्र चिन्ता नहीं करते, शिवाजी की बहुत ख्याति हुई। इसके तात्कालिक लाभ के रूप में चार हजार घोड़े, अनेक हाथी, बहुत से ऊँट, प्रभूत कोष और लड़ाई के सारे साज-सामान प्राप्त हुए। शिवाजी ने अपने आहत सैनिकों को कंगन, हार, सोने और चाँदी की जंजीरें और कपड़े दे कर उनका सम्मान किया। बड़ी विधि से ये सब उपहार दिए गए। इससे उनके सैनिकों में भविष्य में अधिक कार्य करने का उत्साह बढ़ा और उसके पराक्रमों का सुयश फैला। शिवाजी के वंशजों के शस्त्रागार में अफजल खाँ की तलवार इस समय भी एक मूल्यवान् विजय-चिह्न के रूप में रखी है। पन्तोजी गोपीनाथ को उसके विश्वासघात के उपहारस्वरूप पूर्व प्रतिज्ञानुसार अर्पण मिला और शिवाजी की सेवा में उसकी पर्याप्त पदोन्नति की गई।[१]

अवसर पाकर सीदी ने ताला और गोसाला पर घेरा डाला किन्तु अफजल खाँ और बीजापुर सेना की दुर्दशा सुन कर भाग खड़ा हुआ। पन्हाला का अधिकारी कुछ शर्तों पर उस महत्त्वपूर्ण स्थान पन्हाला को समर्पण करने के लिए तैयार

थे जब उन्होंने यह समझा कि वे कैदी जिद से धन छिपाए हुए हैं जिसके आहरण के लिए वे दृढ़ थे।

[१] मराठी और फारसी हस्तलेखें, और अँग्रेजी अभिलेखें। वे अंग्रेजी अभिलेख जिनका सत्रहवीं शती में उल्लेख हुआ है मुख्यतया ईस्ट इण्डिया हाउस, लन्दन में हैं। शिवाजी ने अफजल खाँ के शिविर के खम्भों पर के स्वर्ण लट्टुओं को महाबलेश्वर मन्दिर को भेंट की जहाँ वे अब भी परिरक्षित हैं—पारस्निस : महाबलेश्वर, पृष्ठ २८।

हुआ[1]। किन्तु इस डर से कि कहीं इसमें बीजापुर की कोई चाल न हो शिवाजी ने अन्नाजी दत्तो को एक सशक्त मावली दल के साथ वहाँ भेजा और स्वयं उसने समय पर काम आने के लिए अश्वारोहियों और पदातियों की एक बड़ी सेना खड़ी की। अन्नाजी दत्तो को सफलता मिली और पन्हाला और पवनगढ़ दोनों उसके अधीन हुए। शिवाजी ने वसन्तगढ़ पर अधिकार कर कृष्णा नदी के तटों के प्रदेशों से कर वसूल किया तथा बत्तीस सरला की गढ़ी में एक थाना[2] या रक्षक-सैन्य दल और एक करसंग्राही अधिकारी रखा। सह्याद्रि पर्वत श्रेणियों के नीचे और ऊपर के किलों पर भी उसका सरलता से अधिकार हुआ, किन्तु रंगना और केल्ना दुर्ग सहसा आक्रमण द्वारा अधिकार में लिए गए। केल्ना का नाम विशालगढ़ रखा गया।

बीजापुर के एक अधिकारी रुस्तमज़ुमा को जो इस समय मेरिच (मिराज) में नियुक्त था कोल्हापुर जनपद की रक्षा करने की आज्ञा दी गई। उसके पास केवल तीन हजार अश्वारोही और एक छोटा पदाति-दल था। स्वयं शिवाजी और उनके अश्वारोहियों के आक्रमण से उसकी पराजय और उसकी सेना का भारी संहार हुआ। वह कृष्णानदी के उस पार भागा।[3] अन्नाजी दत्तो को समस्त खाली अश्वारोहियों

---

[1] एक बीजापुर हस्तलेख के अनुसार शिवाजी ने छल द्वारा इस पर अधिकार किया। मराठा विवरण तथा एक अन्य बीजापुर हस्तलेख के अनुसार एक हिन्दू ने जिसके प्रभार में यह था इसे समर्पण किया। पन्हाला बीजापुर के एक सेनापति रुस्तमज़ुमा की जागीर में था। कहा जाता है कि शिवाजी ने रुस्तमज़ुमा को भ्रष्ट किया। राजापुर और कारवार की फैक्टरियों के अँग्रेज व्यापारी बारम्बार रुस्तमज़ुमा पर यह अभियोग लगाते हैं कि वह शिवाजी से मिला है और अपनी ही जागीर के कुछ नगरों की लूट का हिस्सा लेता है।

[2] थाना का शाब्दिक अर्थ है एक रक्षक सैन्यदल। किन्तु इसका दूसरा अर्थ है, विशेषकर दक्खिन के इतिहास में, सैनिक चौकी जिसमें निम्न राजस्व अधिकारी प्रदेश की रक्षा करने, पुलिस की सहायता करने तथा राजस्व को एकत्रित करने के लिए रहते हैं, चाहे यह थाना एक किला या एक खुला गाँव हो। थानेदार को किसान अपना स्वामी मानते हैं। इस कारण रक्षक सैन्यदल शब्दों से इसका पूरा भाव नहीं निकलता। अतः इस पुस्तक में कभी २ थाना शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

[3] मराठी हस्तलेखे। राजापुर के अँग्रेज व्यापारियों के पत्र में यह लिखा है कि रुस्तमज़ुमा ने अफ़जल खाँ के पुत्र के नेतृत्व में सैनिकों का एक छोटा दल भेजा

को विशालगढ़ में एकत्रित करने की आज्ञा दी गई। आगे बढ़कर बीजापुर के पड़ोस तक के अनेक गाँवों को लूट कर अधिकांश नगरों से अंशदान एकत्रित कर तथा सारे प्रदेश को आतंकित कर, अपना पीछा किए जाने के पहले ही शिवाजी सवेग लौट आए।

विशालगढ़ आने के बाद शिवाजी ने समुद्रतट पर स्थित राजापुर पर आक्रमण कर अंशदान ग्रहण किया तथा दाभोल प्रदेश पर[1] अधिकार कर बहुत सा लूट का माल उपलब्ध किया।

अफजल खाँ और उसकी सेना का विनाश, पन्हाला पर अधिकार, रुस्तम जुमा की पराजय तथा शिवाजी का राजधानी के फाटकों तक आजाने से बीजापुर में इतनी घबड़ाहट हुई कि सामन्तों की आपसी गुटबन्दी भी कुछ हद तक दब गई, किन्तु फिर भी यह निश्चय न किया जा सका कि सेना का नेतृत्व किस विशेष व्यक्ति को दिया जाय। अतः यह सुझाव दिया गया कि स्वयं सुलतान युद्ध का सञ्चालन करें। किन्तु अन्त में सुलतान ने एक हबशी अधिकारी सीदी जौहर को, जो उस समय करनूल में नियुक्त था और जिसने कार्णाटक में अनेक अवसरों पर विशेष ख्याति[2] पाई थी, सेना-सञ्चालन का भार सौंपा और उसे सलाबत खाँ की उपाधि दी। उसकी सेना अफजल खाँ की सेना से दुगुनी थी। अफजल खाँ के पुत्र फज्ल मुहम्मद खाँ ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के उद्देश्य से सेना के साथ चलने की अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। यह निश्चय हुआ कि सीदी जौहर पन्हाला पर

और विश्वासघातपूर्वक शिवाजी के हाथों में फँसा दिया। किन्तु व्यापारियों को जैसी सूचना मिलती थी वैसा ही वे लिख मारते थे। वे स्वयं लिखते हैं कि सूचनाएँ ऐसी परस्पर-विरोधी हैं कि वे नहीं जानते कि वे किस सूचना का विश्वास करें। किन्तु उनकी चिट्ठियाँ दिनांकों को निश्चित करने, तथा देशी लेखकों द्वारा स्वीकृत तथ्यों की पुष्टि करने के लिए बहुत मूल्यवान् हैं।

[1] इस समय यह रत्नागिरि जनपद का एक छोटा बन्दरगाह है। चौदहवीं से सोलहवीं शती तक यह दक्षिण-कोंकण का मुख्य बन्दरगाह था जहाँ से फारस और लाल समुद्र के बन्दरगाहों से बहुत व्यापार होता था—आई० जी बाम्बे, १६०६, २, पृष्ठ १६३।

[2] इस समय बीजापुर हस्तलेखों में उसका उल्लेख सलाबत खाँ के नाम से है। किन्तु इस पुस्तक में सीदी जौहर ही नाम लिखा गया है। जंजीरा के सीदियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ओर्म ने भ्रमवश ऐसा लिखा है।

और फतह खाँ सीदी कोंकण में शिवाजी के अधिकृत प्रदेशों पर आक्रमण करेंगे। वरी के देशमुख-परिवार का भी सहयोग प्राप्त हुआ।

इधर यह प्रबन्ध किया गया कि कोंकण की रक्षा शिवाजी, फतह खाँ का सामना रघुनाथ पन्त, कल्याण-भीमरी के जनपदों और किले की रक्षा आबाजी सोनदेव, तथा वरी के सावन्तों के विरुद्ध बाजीराव फसलकर युद्ध करेंगे जो पदातियों के सर-ए-नौबत या प्रधान सेनापति थे। पुरन्दर, सिंहगढ़ प्रतापगढ़, तथा आसपास के प्रदेश की रक्षा का भार मोरो पन्त को सौंपा गया। शिवाजी ने पन्हाला को वास्तविकता से अधिक मजबूत समझ कर उतावले होकर स्वयं ही इसकी रक्षा करने की ठानी।

मई—उन्होंने बीजापुर सेना के रास्ते में रुकावट नहीं डाली। किन्तु पन्हाल किले के समीप बीजापुरी सेना के ठहरते ही नेताजी पाल्कर के अश्वारोही पास-पड़ोस के प्रदेश को लूटना, सेना के सामान क आने में रुकावट डालना, शत्रुओं के अश्वारोहियों से मुठभेड़ न कर रात्रि-अभियानों द्वारा उनको पीड़ित करना आरम्भ किया। शत्रुओं के असावधान होने पर मावले तलवार लेकर खड्डों से निकल कर शत्रुओं पर टूट पड़ते थे। जब वे सावधान होते, तो उन पर हथगोले फेंक कर भाग जाते। इस तरह मराठों ने बड़ा उपद्रव मचाया और लेशमात्र हानि उठाकर बहुसंख्यक बीजापुरी सैनिकों को मार गिराया। सीदी जौहर ने आज्ञा दी कि इन आक्रमणकारियों के प्रति जरा भी दया न की जाय। स्वयं उसने अभियान का नेतृत्व कर तथा समस्त चौकियों पर अधिकार कर किले पर बड़ा गहरा घेरा डाला, प्रतिकूल ऋतु होने पर भी वहाँ डटा रहा, और किले पर अधिकार करने की भरसक चेष्टा की।

कोंकण में युद्ध बड़ी सरगर्मी से किया गया। अपने बेड़े की सहायता से सीदी ने कई बार सफल आक्रमण किया और रघुनाथ पन्त को हानि पहुँचाई। बाजीराव पसलकर का वरी के सावंत के साथ युद्ध अनिश्चित रहा। किन्तु इसमें दोनों ही ओर के सेनापति काम आए।

सितम्बर—पन्हाला पर चार महीने से घेरा पड़ा हुआ था और शिवाजी उसमें बुरी तरह फंस गए थे। बाहर से पूर्णतया सम्बन्ध टूट गया था। शत्रु अत्यन्त आशान्वित और सावधान थे। शिवाजी ने साहस और सूझबूझ से काम निकालने की योजना बनाई। समझौते की बात चली और सीदी जौहर का वचन पाकर[1] कि शिवाजी को किसी प्रकार का संकट न होगा, और शिवाजी को यह अच्छी तरह

[1] वर्तमान समय में भी सीदी अपने वचनों की सच्चाई के लिए विख्यात हैं।

मालूम था कि सीदी जौहर का विश्वास किया जा सकता है, शिवाजी उससे मिले और उसको यह विश्वास दिलाया कि वह समर्पण करना चाहते हैं। आग्नेय अस्त्रों का चलना बन्द हुआ, दो एक तुच्छ स्थानों को छोड़ कर जिसको शिवाजी ने चतुरता से सबेरे तक के लिए रोक रखा था हर चीज अपने नियमित रूप में कर दी गई। शाम होते २ उनको किले को लौट जाने की अनुज्ञा दी गई। अब सम्पूर्ण सेना ने किले को अपना ही समझा और सुरक्षिता का अनुभव किया।

किन्तु अँधेरी रात में शिवाजी चुने हुए मावलों के साथ पहाड़ी से उत्तर कर अशंकित पहरेदारों के पास से हो कर निकले। उनके भागने का संदेह होने के पूर्व ही वे रंग्ना[1] की ओर पूरे वेग से बढ़े। जब यह पता चला फज्ल मुहम्मद खाँ और सीदी जौहर के पुत्र सीदी अजीज ने अश्वारोहियों को लेकर शिवाजी का पीछा किया और उनके पीछे २ उनकी पदाति सेना भी चली। काफी दिन चढ़ आने पर वे शिवाजी के पास पहुँच सके। उस समय शिवाजी एक घाट में से हो कर जा रहे थे जहाँ से रंग्ना केवल छः मील रह गया था। शिवाजी ने पीछा करने वालों को रोकने के लिए, हरदास मावल के देशपाण्डे एवं अपने पूर्व शत्रु बाजी प्रभु के नेतृत्व में मावलों का एक दल वहाँ खड़ा कर तब तक घाट को रोके रहने को कहा जब तक कि उनके पहुँचने पर किले से पाँच तोपों की आवाज न हो। देशपाण्डे ने अपना वचन निभाया और आगे बढ़ने का प्रयत्न करने वाले अश्वारोहियों को पीछे खदेड़ा और पदातियों के दो आक्रमणों को भी वीरतापूर्वक निष्फल किया। दोपहर होते २ अफजल खाँ के पुत्र के नेतृत्व में पदातियों के एक तीसरे दल ने अत्यन्त दृढ़ता से आक्रमण किया। इस उग्र आक्रमण के सामने घाट के वीर रक्षक ठहर न सके किन्तु उनका मनोरथ पूरा हो चुका था। मरने के पहले सांकेतिक तोपों की आवाज बाजी प्रभु के कानों में पड़ी और उसने संतोष की साँस लेकर प्राण त्यागा। बहुसंख्यक शत्रुओं के आक्रमण के बावजूद मावले उनके शरीर को उठा कर ले गए, और इस प्रकार उन्होंने अपने धैर्य का तथा बाजी प्रभु के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया। इस युद्ध में इस दल के आधे मावले वीरगति को प्राप्त हुए।

फज्ल खाँ रंग्ना पहुँच कर ठहरा। किन्तु सीदी जौहर, अपनी योजना के

---

[1] किंकेड और पारस्निस, और यदुनाथ सरकार के अनुसार शिवाजी ने विशालगढ़ का रास्ता पकड़ा जो वहाँ से २७ मील दूर है। गजपुर की सकरी घाटी में बीजापुर की दृढ़ सैनिक बाढ़ को रोकने में बाजी प्रभु तथा उसके ७०० वीर मराठे सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति देकर अपना प्रण पूरा किया—किंकेड, पृष्ठ १६८; सरकार : शिवाजी, पृष्ठ ४१-४२।

पूर्णतया निष्फल हो जाने से तथा सुलतान के यह आरोप लगाने पर कि उसने शिवाजी से उत्कोच ग्रहण किया है, अपनी जागीर एवं शासन स्थान करनूल को चला गया। आदिलशाह ने स्वयं नेतृत्व ग्रहण कर कुरार को प्रस्थान किया। आसपास के समस्त जनपद-अधिकारी जिनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर ली थी अपनी राजनिष्ठा अर्पण करने के लिए शाही शिविर में उपस्थित हुए। सुलतान ने पन्हाला और पवनगढ़ पर आक्रमण कर अपने अधिकार में किया। रंगना और विशालगढ़ को छोड़ कर, आसपास के सब किले जो पिछले वर्ष शिवाजी के अधिकार में चले गए थे पुनः सुलतान के कब्जे में आए। वर्षा आरम्भ हो जाने के कारण सुलतान ने सह्याद्रि पर्वतों से दूर हट कर कृष्णा के किनारे चिमलगे स्थान पर डेरा डाला।

जनवरी १६६१ ई०

शिवाजी चुपचाप बैठे नहीं रहे। उन्होंने राजापुर पर अधिकार किया और लूटा। इस अवसर पर अँगरेजों को भी कुछ क्षति उठानी पड़ी। उनके कुछ व्यापारी पकड़े तथा दो वर्ष तक एक गढ़ में रखे गए। उनके ऊपर यह आरोप लगाया गया—जिसकी पुष्टि कभी नहीं हुई—कि उन्होंने पन्हाला[1] के घेरे के समय सीदी जौहर को सहायतार्थ हथगोले और बम गोले दिए थे। इसके बाद शिवाजी ने मराठा पालेगार दलवे की अधिकृत भूमिपर आक्रमण कर उसकी राजधानी शृङ्गारपुर को अपने अधिकार में लिया। दलवे इस युद्ध में खेत रहा। इस युद्ध तथा जाव्ली के युद्ध को लोगों ने उतना अच्छा नहीं समझा जितना कि मुसलमानों के विरुद्ध किए गए युद्ध समझे गए थे। इस युद्ध में कोई भयंकर काण्ड भी नहीं हुआ जिसका कुछ अन्य स्थानों की तरह शिवाजी को कलंक लगता, फिर भी अधिकांश सम्भ्रांत हिन्दू सीदी के प्रदेश को भाग गए। बड़ी कठिनता से तथा वहाँ के एक सम्मानित कुल सूरवे, को मिलाने के बाद ही भागी हुई जनता वापस आई। इस कलंक को मिटाने तथा अपने पूर्वकृत कार्यों का पश्चात्ताप करने के लिए शिवाजी हिन्दू धर्म विधान को तत्परता से पालन करने लगे। परिस्थितिवश तुलजापुर की देवी भवानी को अपनी श्रद्धा अर्पण न कर सकने के कारण शिवाजी ने प्रतापगढ़ के किले में देवी भवानी का एक मन्दिर निर्माण कराया। शिवाजी धार्मिक कृत्यों का पालन अत्यन्त कठोरता

---

[1] मराठी हस्तलेखें। बीजापुर हस्तलेखें, और अँग्रेजी अभिलेखें। चार अँग्रेज व्यापारी पकड़े गए थे जो तीन वष से अधिक समय तक बन्धन में रहने, बहुत लम्बी लिखा-पढ़ी करने, तथा छुटकारा देने पर लगभग ५ फरवरी १६६३ को छोड़े गए।

से करने लगे। उन्होंने यशस्वी रामदास[1] को अपना आध्यात्मिक गुरु माना जिनका पवित्र उच्च चरित्र ही उनके जीवन का लक्ष्य हुआ।

किन्तु शिवाजी की भक्ति-भावना से उनके सैनिकों की सक्रियता में कोई बाधा नहीं पड़ी। वर्षाऋतु की कठिनाई होते हुए भी मराठा सेना ने फतह खाँ सीदी के सैनिकों को पीछे खदेड़ा और दंडा राजपुरी पर अधिकार किया। जंजीरा के ऊपर भी गोलाबारी की गई किन्तु तोपों और तोपचियों की कमी के कारण प्रभावोत्पादक कार्य न हो सका। उनको शीघ्र ही बीजापुर के एक सम्भावित आक्रमण का सामना करने के लिए जाना पड़ा।

जिस समय अली आदिलशाह चिमलगे में ठहरा हुआ था, उसने सीदी जौहर के पास कई व्यक्तियों को भेजा। अन्त में वह शाही शिविर में आया जहाँ उसकी शिष्टतापूर्ण और ससम्मान आवभगत की गई। सुलतान इब्राहिम खाँ के प्रभाव में थे अतः सीदी जौहर को सुलतान की सच्चाई में शंका थी और प्रथम अवसर पाते ही वह अपने जागीर को लौट गया। सीदी जौहर को उत्तरीय कार्णाटक के छोटे-मोटे विद्रोहों को दमन करने का कार्य सौंपा गया किन्तु उसने इस आज्ञा का पालन करने की तत्परता नहीं दिखलाई। अतः यह समझा गया कि वह गुप्त रीति से विद्रोहियों की सहायता करता है और शिवाजी से भी उसका सम्बन्ध है। सुलतान ने कार्णाटक की ओर प्रस्थान किया। शिवाजी को दबाने के निमित्त सावंतों की सहायता करने के लिए बहलोल खाँ और मुधोल के बाजी घोरपड़े भेजे गए। तैयारी सम्बन्धी कुछ कार्य से बाजी घोरपड़े अपने जागीर को गए। मुधोल में घोरपड़े की उपस्थिति एवं अरक्षित अवस्था की सूचना पा कर अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिए शिवाजी तेजी से विशालगढ़ से प्रस्थान कर वहाँ गए और अकस्मात् आक्रमण कर घोरपड़े तथा उसके अधिकांश सम्बन्धियों और अनुयायियों को मार डाला। मुधोल को लूट कर और वहाँ प्रचण्ड आग लगाकर शिवाजी अत्यन्त शीघ्रता से विशालगढ़ लौटे। घोरपड़े के स्थान पर ख्वास खाँ बहलोल खाँ का सहायक सेनापति बनाया गया। यह सेना कोंकण के घाटों तक पहुँची ही थी कि वे कार्णाटक की सेना की सहायता के लिए बुला लिए गए।

१६६२ ई०—रायचूर और तुरगल के आक्रमण में घनघोर युद्ध हुआ जिसमें अली आदिलशाह ने व्यक्तिगत वीरता दिखलाई। सीदी जौहर के प्रति सुलतान

---

[1] कुछ लेखक शिवाजी की राजनीतिक विजय का श्रेय रामदास स्वामी (१६०८-८१) को देते हैं। किन्तु सरकार के अनुसार रामदास का प्रभाव केवल आध्यात्मिक था—सरकार : शिवाजी, पृ० १७४।

आशंकित था, अतः सीदी उसकी मुट्ठी में जाना नहीं चाहता था। उसने सुलतान की सेना के जूझार राव घाटगे और फल्टन के नायक की टुकड़ियों पर आक्रमण किया जिससे चारों ओर गड़बड़ी मच गई और उनको अत्यस्त अव्यवस्थित अवस्था में पीछे हटना पड़ा। किन्तु बहलोल खाँ की सहायता पा कर उन्होंने सीदी जौहर पर आक्रमण किया और पराजित किया। सीदी जौहर ने थोड़े ही समय तक युद्ध चलाया ही था कि उसके साथियों ने, सुलतान से क्षमादान पाने के निमित्त उसको मार डाला। सुलतान ने उसके पुत्र सीदी अजीज को क्षमा किया और कुछ दिनों बाद अपने मन्त्री अब्दुल मुहम्मद की राय से अपना कृपापात्र बनाया। इस विद्रोह को दबाने के बाद भी व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। विद्रोही बहुत से थे और युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा। पूरे दो वर्ष व्यतीत होने के बाद, सोन्दा के राजा[1] से कर लेकर यह अभियान समाप्त किया गया। इस अभियान में आदिलशाह को केवल आंशिक सफलता मिली। वह बीजापुर लौट आया।[2]

बीजापुर की पूरी फौज कार्णाटक में लगी रहने के कारण शिवाजी ने पिछले वर्ष खोई हुई भूमि को फिर से प्राप्त किया। वरी के देशमुखों के प्रदेश पर अधिकार किया गया। सावंत परिवार शृङ्गारपुर के पिछले पालेगार के एक निकट सम्बन्धी रामदलवे के साथ गोआ में जाकर शरण ली। शिवाजी की धमकी पाकर पुर्तगालियों ने उन्हें गोआ छोड़ने को विवश किया। बीजापुर शासन से त्यक्त हो कर, गोआ से खदेड़े जाकर सावंत परिवार शिवाजी की शरण में आया। शिवाजी ने उनके अधिकार की पुनः स्थापना की और बाद को वे शिवाजी के सच्चे अनुयायी हुए। रामदलवे भी आकर शिवाजी से मिल गया। कभी २ उसके सम्बन्धी अशांति पैदा कर देते थे किन्तु शिवाजी दक्षिणी कोंकण के साधनों का, वहाँ के कुछ अच्छे पदातियों का, तथा अपने अधीनस्थ अधिकारियों का मूल्य समझते थे।

सावंतों[3] के इस प्रदेश में शिवाजी ने अपने ही सैन्यदल रखे और वहाँ के पदातियों को दूर २ प्रदेश में भेजा। शिवाजी ने रइरी और सिन्धुदुर्ग[4] या

---

[1] सोन्दा के राजा विजयनगर वंश की एक शाखा के वंशज थे और उत्तर कनाडा जनपद के सोन्दा गाँव में रहते थे।

[2] बीजापुर हस्तलेख। नसरत ने अलीनामू पुस्तक में अलीआदिल शाह के कार्णाटक अभियान का वर्णन किया है।

[3] अब यह प्रदेश सावन्तवाड़ी कहलाता है।

[4] सिन्धु दुर्ग के परकोटों का घेरा दो मील है। इसके अन्दर एक शिवजी की मूर्ति है जिसकी मालवाँ और रत्नागिरि जनपद के मराठे पूजा करते हैं।

मालवाँ का निर्माण कर एक जहाजी बेड़ा तैयार किया। कोलाबा[1] का पुनः निर्माण और पुष्टि की गई; स्वर्णदुर्ग[2] और विजयदुर्ग (या घेरिया) की मरम्मत की गई और इन सब स्थानों पर नावें बनायी गईं। उनका मुख्य भाण्डागार बम्बई से २० मील दक्षिण में कोलाबा बन्दरगाह था। दर्यासागर और मैनक बंधारी[3] इन बेड़ों के सेनानायक बनाए गए और उन्होंने समुद्री लूट का कार्य शीघ्र ही आरम्भ किया। पुर्तगालियों ने मराठा बेड़े द्वारा की हुई लूटों को रोकने के लिए शिवाजी के पास एक राजदूत भेजा। शिवाजी ने फौरन ही उनकी बात इस शर्त पर मान लिया कि वे उनको तोपें तथा लड़ाई के अन्य सामान सम्भरण करेंगे। जैसा कि आशा थी इन सामानों की माँग बारम्बार होती रही सावंतों का दमन हो जाने के बाद अली आदिल शाह के मन्त्री अब्दुल मुहम्मद ने शिवाजी से एक गुप्त समझौता किया। सम्भवतः यह काम शाहजी के द्वारा हुआ। इस समझौते की क्या शर्तें थीं किसी को भी नहीं मालूम। विश्वासघाती घोरपड़े की हत्या हो जाने के बाद शाहजी को अपने लड़के के शौर्य से प्रसन्नता हुई। अपने शासन की स्वीकृति एवं अनुमति लेकर शाहजी अपने पुत्र व्यंकोजी के साथ शिवाजी से भेंट करने आए। शिवाजी ने अपने पिता का अत्यन्त आदर किया और उनके पहुँच की सूचना पाकर उनसे भेंट करने के लिए कई मील दूर गए और अपने घोड़े से उतर कर अत्यन्त विनम्रता पूर्वक उनको प्रणाम किया। अपनी पिता की पालकी के साथ २ आग्रह-पूर्वक पैदल चलते रहे और बारम्बार आज्ञा मिलने पर भी उनके समक्ष नहीं बैठते थे। कई हफ्ते के भ्रमण और समारोह के बाद शाहजी अत्यन्त प्रसन्न हो कर सुलतान के लिए शिवाजी के उपहारों को लेकर बीजापुर लौटे। शाहजी के मध्यस्थ होने की इस बात से पुष्टि होती है कि इस समय के बाद शाहजी के जीवन पर्यन्त शिवाजी और बीजापुर के बीच में झगड़े शांत रहे, और यदि कभी हुए भी तो उसमें शिवाजी

---

[1] कोलाबा किला बम्बई से लगभग २० मील दूर एक द्वीप पर बना है।

[2] स्वर्ण दुर्ग को जो रत्नागिरि जनपद में है बीजापुर के सुलतानों ने पन्द्रहवीं शती में बनवाया था।

[3] इस समुद्री कप्तान की शुद्ध उपाधि सम्भवतः दरियासारङ्ग (समुद्रनायक) थी। दर्या (फारसी) का अर्थ महासागर है। सारङ्ग (संस्कृत) का अर्थ समुद्र; जल; रत्न है। शिवाजी जी की जीवनी में कृष्णाजी अनन्त ने इसका दोनों ही नाम लिखा है : दर्यासारङ्ग, और दर्यासवतसागर। मैनक स्पष्ट ही माइनायक का अपभ्रंश है जिसका अर्थ मानकर और यदुनाथ सरकार के अनुसार 'जलनायक' है। वह स्पष्टतः बन्धारी जाति का था।—सरकार : शिवाजी, पृ० १३४।

आक्रामक नहीं थे। कुछ मराठों की ऐसी राय है कि शिवाजी ने शाहजी के कहने से राजगढ़ से रइरी को अपना मुख्य आवास बनाया। यह निश्चित है कि शिवाजी ने इसी काल में रइरी का नाम रायगढ़ रखा और आवाजी सोनदेव को भिन्न २ अधिकरियों और निकटस्थ शासन विभागों के आवास के लिए किले के अन्दर सर्वजनीन भवन निर्माण करने की आज्ञा दी। यह काम कई वर्षों तक पूरा न हो सका। इस किले को अजेय करने की दृष्टि से पर्वत के प्राकृतिक प्रतिरक्षाओं को दृढ़ीभूत करने के लिए, कुछ समय तक बहुसंख्यक श्रमिक लगाए गए।

इस समय सम्पूर्ण कोंकण पर, कल्याण से गोआ तक अर्थात् तट के लगभग चार अक्षांश लम्बाई तक तथा कोंकण-घाट-माथा पर, भीमा नदी से वर्ना नदी तक लगभग १६० अँग्रेजी मील की दूरी तक शिवाजी का अधिकार था। उनके प्रदेश की अधिकतम चौड़ाई सोपा से जंजीरा तक १०० अँग्रेजी मील से अधिक नहीं थी। उनके प्रदेश के आकार की अपेक्षा अनुपाततः उनकी सेना बहुत बड़ी थी। यह देखते हुए कि उनकी सेना का निर्वाह लूट-मार पर आश्रित था, यह कहने में सम्भवतः अतिशयोक्ति नहीं है कि उनकी सेना में पचास हजार पदाति और सात हजार अश्वारोही थे। उनकी शक्ति प्रबल थी। और बीजापुर से युद्ध बन्द हो जाने पर उन्हें मुगलों के विरुद्ध अपनी शक्ति का उपयोग करने का अवसर मिला।

अध्याय ६

(१६६२ ई० से १६६७ ई० तक)

१६६२ ई०—शिवाजी बीजापुर के युद्ध में इतने संलग्न थे कि वे उत्तर भारत की घटनाओं का लाभ नहीं उठा सके, और कल्याण-भीमरी पर मुगलों का प्रभुत्व हो जाने पर वे चुपचाप रहे। मोरो पन्त के अधीन पदाति सेना और नेताजी पाल्कर के अधीन अश्वारोही सेना तैयार की गई। मोरो पन्त ने जुन्नर के उत्तर में कई किलों पर अधिकार किया। नेताजी पाल्कर ने निर्दयतापूर्वक मुगल जनपदों में लूटमार की। गाँवों को लूटने और नगरों से अंशदान संग्रह करने की आज्ञा उसे दी गई थी। किन्तु उसने इन आज्ञाओं का अतिक्रमण कर औरङ्गाबाद तक के देहातों में लूटमार की। चारों ओर आतङ्क फैल गया, और वह शीघ्रता से एक ओर से दूसरी ओर जाकर बिना विरोध के सुरक्षित पूना लौट आया।

सम्राट् ने राजकुमार सुलतान मुअज्जम के स्थान पर शायस्ता खाँ को अमीर-उल-उमरा की उपाधि देकर दक्खिन का राज्यपाल नियुक्त किया। सम्राट् ने उसको मराठों के साहसिक अभियानों का दण्ड देने, शिवाजी के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण करने, और किले छीनने की आज्ञा दी। शायस्ता खाँ ने एक बड़ी फौज लेकर औरङ्गाबाद से प्रस्थान किया। उसने सोपा पर अधिकार करने के लिए एक टुकड़ी भेजी तथा जनपदों पर अधिकार करने की दृष्टि से वह शिवाजी के सम्बन्धी, सिन्दखेड़ के देशमुख, जाधव राव पर टूट पड़ा। मुगल सेना के समीप आने पर शिवाजी राजगढ़ से सिंहगढ़ चले आए और उसी को उन्होंने अपना मुख्य आवास बनाया। शायस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार कर कत्रजे घाट और सेवापुर गाँव को अपने अधिकार में लाने के लिए सशक्त टुकड़ियाँ भेजीं। किलों का सूक्ष्म निरीक्षण करने के लिए दल भेजे गए। उसके और जुन्नर के बीच में चाकन का किला था। उसने मुख्य सेना लेकर इसके विरुद्ध अभियान किया किन्तु किलेदार फिरङ्गोजी नर्साला ने जो १६४६ से इसके किलेदार थे समर्पण करना अस्वीकार किया और प्रशंसनीय प्रतिरक्षा की। चाकन का किला लगभग दो महीने तक मुगल सेना के विरुद्ध टिका रहा। किन्तु अन्त में घेरे के छप्पनहवें दिन उत्तर-पूर्व कोने के बुर्ज के नीचे एक सुरङ्ग में विस्फोट हुआ जिससे दीवार फट गई और सैन्यदल के बहुत से आदमी मर गए। आक्रमण

करने के लिए मुगल तैयार बैठे ही थे और झपट पड़े किन्तु अपने वीर हवलदार के नेतृत्व में सैन्यदल के शेष सैनिकों ने इतनी वीरता से फटी हुई दीवार की प्रतिरक्षा की कि आक्रामकों की एक भी न चली। अँधेरा हो जाने पर जब आक्रमण रुका, तब तक वे अपने स्थान पर डटे ही रहे। प्रातः होने पर फिरङ्गोजी नर्साला ने समर्पण कर दिया। उसकी वीरता के वशीभूत होकर शायस्ता खाँ ने उसका बड़ा सम्मान किया और सम्राट् सेवा में भर्ती होने के लिए उसको बहुत प्रलोभन दिए किन्तु उनको ग्रहण कर नर्साला ने अपने नाम में धब्बा नहीं लगाया। शायस्ता खाँ ने उसे ससम्मान जाने दिया और वह शिवाजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिवाजी ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और उसको उपहार दिया।[1]

१६६३—मुगलों के अनुसार चाकन के युद्ध में उनके नौ सौ आदमी हताहत हुए। शायस्ता खाँ को अनुभव हो गया कि पहाड़ी किलों का जीतना कितना कठिन है। किन्तु औरङ्गजेब की दृष्टि में मराठा-शत्रु तुच्छ थे और पहाड़ी किलों का जीतना एक सरल बात थी। औरङ्गजेब की आज्ञा से राजा यशवन्तसिंह एक बड़ी सेना के साथ शायस्ता खाँ के साथ गए। ऋतु के कारण पूरी सेना पूना के समीप निष्क्रिय पड़ी रही। दूसरी ओर नेताजी पाल्कर ने अहमदनगर और औरङ्गाबाद जनपदों को जलाया और लूटा। एक दल ने तुरन्त ही उसका पीछा किया। कई मराठे मरे और स्वयं नेताजी घायल हुए, किन्तु बीजापुर के सेनापति रुस्तम जुमाँ की कृपा से भाग जाने में सफल हुए।

इसी बीच शायस्ता खाँ पूना आकर दादाजी कोंडदेव के बनाए हुए घर में रहने लगा। शायस्ता खाँ शिवाजी के छल-कपट से काफी परिचित था, अतः उसने सावधानी के अनेक उपाय किए। विना प्रवेशपत्र के कोई सशस्त्र मराठा पूना में प्रवेश नहीं पा सकता था और उन्हीं सरदारों के मराठा अश्वारोही वहाँ आ पाते थे जिनको सम्राट् से भूमि मिली थी। जो कुछ हो रहा था उसके प्रति शिवाजी सजग थे और उन्होंने खाँ पर अकस्मात् आक्रमण करने का निश्चय किया। वहाँ प्रवेश पाने की नियत से उन्होंने दो ब्राह्मण भेजे। पूरा प्रबन्ध हो जाने पर एक दिन अप्रैल[2] महीने में सूर्यास्त होते ही शिवाजी सिंहगढ़ से चले। उनके साथ काफी संख्या में पदाति थे। उन्होंने उनको छोटे २ दलों में सड़क के किनारे लगा दिया।

---

[1] वह सातारा जनपद के भूपालगढ़ का किलेदार बनाया गया जिसका वर्तमान नाम बसरूर है।

[2] मराठी हस्तलेखें। अँग्रेज व्यापारियों का दिनांक १२ अप्रैल १६६३ का एक पत्र जब वे राजापुर में खुले कैदी थे।

केवल यशजी कंक, तानाजी मालूसरे, तथा पच्चीस मावलों को लेकर शिवाजी ने पूना में प्रवेश किया। शिवाजी के दूतों ने[१] एक मराठा पैदल-सैनिक को जो खाँ की सेवा में था मिला लिया था। उसने विवाहोत्सव के बहाने बाजा बजवा कर अपने मराठा सम्बन्धियों की जो सदा सशस्त्र रहते हैं एक शोभायात्रा निकालने की अनुज्ञा प्राप्त की। पूना खुला हुआ नगर था। अतः शिवाजी अपने दल के साथ अपने दूतों की युक्ति से सरलता से चुपचाप भीड़ में मिल गए और इस शोभायात्रा में सम्मिलित हुए। जब चारों ओर नीरवता फैल गई शिवाजी और उनके साथी जो खाँ के आवास के हर एक द्वार और पथ से परिचित थे, कुछ सावल लेकर मुर्गा घर की ओर बढ़े जिसके ऊपर एक खिड़की थी जो किंचित् बन्द कर दी गई थी। इस खिड़की में से उन्होंने शीघ्र ही एक रास्ता बना लिया। खाँ के परिवार में की कुछ स्त्रियाँ जाग गईं और तुरन्त ही दौड़ कर अपने स्वामी को जगाया। शायस्ता खाँ भाग कर एक खिड़की से रस्सी के बल उतरने ही वाला था कि उसके हाथ पर एक आघात हुआ जिससे उसकी एक अंगुली कट गई।[२] भाग्यवश वह बच निकला किन्तु उसका पुत्र अब्दुल फतह खाँ और उसके घर के अधिकांश पहरेदार मारे गए।

सम्भावित अड़चन पड़ने के पहले ही शिवाजी और उनके दल के आदमी वहाँ से निकल आए और सिंहगढ़ के रास्ते में ठहरी हुई अपनी टुकड़ियों को क्रमशः एकत्रित करते हुए आगे बढ़े। तीन या चार मील जाने पर अपनी संख्या को छिपाने एवं शत्रुओं के प्रति अपनी अवहेलना और घृणा प्रकट करने के लिए उन्होंने मसालें जला लीं। इस तरह मुगल शिविर के दृष्टिपथ में जहाँ से वे स्पष्ट दिखाई पड़ते थे, उन्होंने किले में प्रवेश किया।

शिवाजी के देशवासी इस वीरतापूर्ण कार्य की अत्यन्त प्रसन्नता से प्रशंसा करते हैं। दूसरे दिन प्रातः कुछ मुगल सवार गर्व करते, भेरियाँ बजाते, और तलवारें घुमाते हुए आए। उनके आने में कोई रुकावट नहीं डाली गई और जब वे किले के

---

[१] मराठी हस्तलेखों में यह नहीं लिखा है कि किस प्रकार उनके दूतों ने उनका प्रवेश कराया, किन्तु खाफी खाँ के वर्णन में सम्भाव्यता के पूर्ण चिह्न हैं। कट्रू ने भी इसकी पुष्टि की है।

[२] यदुनाथ सरकार के अनुसार शिवाजी ने एक ही चोट में शायस्ता खाँ की अँगुलियाँ काट डालीं। इस समय महल की एक दासी ने वहाँ का दिआ बुझा दिया। इससे दो मराठे अँधेरे में रास्ता न पाकर पानी के कुण्ड में गिर पड़े। इसी बीच दासियों ने शीघ्रतापूर्वक खाँ को एक सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया। इसका पूर्ण विवरण सरकार ने शिवाजी नामक पुस्तक में पृष्ठ ४५ से पृष्ठ ४९ तक दिया है।

समीप आगए उनपर तोप छोड़ी गई जिससे वे अत्यन्त घबड़ाहट में भागे। कडतोजी गूजर[1] जो समीप ही थे अपने अश्वारोहियों को लेकर उन पर टूट पड़े और उनको खदेड़ दिया। मुगल अश्वारोहियों का पीछा करने का यह पहला अवसर था। इस सफलता से उत्साहित होकर, कडतो जी गूजर ने मुगलों की कई छोटी २ टुकड़ियों को काट डाला।

इस प्रकार की छोटी २ हारों से अपमानित और खिन्न शायस्ता खाँ और भी अधिक हतोत्साहित हुआ। घबड़ाहट में उसने यशवन्तसिंह पर प्रमाद करने, सेना को प्रस्तुत न रखने, और शिवाजी से उत्कोच ग्रहण करने का आरोप लगाया। औरङ्गजेब ने उन दोनों को दक्खिन से बुला लिया और सुलतान मुअज्जम को दक्खिन का राज्यपाल नियुक्त किया। शायस्ता खाँ को बङ्गाल का राज्यपाल बनाया। किन्तु यशवन्त सिंह को सुलतान मुअज्जम का सहायक सेनापति रहने दिया। यशवन्तसिंह ने सिंहगढ़ पर घेरा डालने का कुछ प्रयत्न किया और वह भी थोड़े समय तक। चाकन[2] और जुन्नर में सशक्त टुकड़ियाँ रखी गईं। किन्तु मुख्य सेना औरङ्गाबाद लौट आई।

शिवाजी झूठी अफवाह उड़ाने में कुशल थे। उन्होंने कल्याण और दण्डा-राजपुरी में एक सेना एकत्रित की और यह खबर फैला दी कि वह बसई और चौल में पुर्तगालियों पर आक्रमण तथा सीदी के विरुद्ध एक बड़ा अभियान करने वाले हैं। किन्तु वास्तव में उनकी दृष्टि सूरत पर थी जो उस समय भारत के सबसे अधिक धनवान नगरों में था। वहाँ उनका एक गुप्तचर बहिरजी नायक पहले ही से आवश्यक प्रारम्भिक निरीक्षण कर रहा था। नासिक के समीप के एक मन्दिर में दर्शन करने तथा मोरो त्रिमल द्वारा नव-विजित किलों का निरीक्षण करने के बहाने शिवाजी उत्तर की ओर गए और उस समय, जब कि यह समझा जाता था कि वह भक्ति भाव में लगे हुए हैं चार हजार अश्वारोहियों को लेकर उन्होंने सूरत पर

---

[1] गुर्जर जाति ने श्वेत हूणों के पश्चात् ४५२ ई० में भारत में प्रवेश किया। ये काठियावार, गुजरात, पञ्जाब, उत्तर प्रदेश के उत्तरीय जनपदों में तथा मध्य प्रदेश के हुसंगाबाद और नीमार जनपदों में पाए जाते हैं। और पशुओं की चोरी करने में दक्ष हैं।

[2] इसी समय के लगभग जब सेना वहाँ से हट गई थी शिवाजी पूना नगर में तुकाराम की कथा सुनने के लिए गए। चाकन के रक्षक सैन्यदल से बन्दी बनाए जाते २ बचे। मराठी हस्तलेखों के अनुसार भगवान् पण्डुरंग ने अपने चमत्कारपूर्ण हस्तक्षेप से शिवाजी की रक्षा की।

आक्रमण किया और छः दिनों तक इसकी प्रचुर सम्पत्ति को लूटा और अपनी लूट बिना किसी रुकावट के सुगमतापूर्वक रायगढ़ ले गए जिसको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। सूरत में बहुत लूट हुई। यह लूट और भी अधिक होती यदि अँग्रेजी और डच कारखाने उनके मुट्ठी में आ जाते। किन्तु अँग्रेजों ने बड़ी वीरतापूर्वक प्रतिरक्षा की। वे अपनी तथा कुछ नागरिकों की सम्पत्ति की रक्षा करने में सफल हुए। उस समय सर जार्ज आक्सेंडन सूरत का राज्यपाल था।[1]

१६६४ ई० ५ जनवरी

शिकार खेलते समय घोड़े से गिर कर शिवाजी के पिता की मृत्यु तुङ्गभद्रा नदी के किनारे वेदनोर के समीप वसुआपट्टम् गाँव में जनवरी १६६४ में हुई। इस समय वह बीजापुर सेना की ओर से कुछ उपद्रवी जमींदारों को दबाने में सहायता पहुँचाने के लिए गए थे। शाहजी के मरने के समय उनके पास न केवल बीजापुर शासन की दी हुई जागीर थी, बल्कि तञ्जोर प्रदेश और अर्नी, और पोर्टोनोवो[2] किले भी थे। वह अली आदिल शाह की आज्ञा का पालन करते रहे। अतः प्रतीत होता है उसने इनके नवीन उपलब्धियों को अपने अधिकार में रखे रहने पर कोई आपत्ति नहीं की। सामान्य सूतक मनाने और सामान्य अन्त्येष्टि क्रिया करने के कुछ दिन बाद शिवाजी सिंहगढ़ से रायगढ़ चले आए और कुछ महीनों तक शासनकार्य तथा शासकीय विभागों का सुधार और व्यवस्था करने में लगे रहे। इसी अवसर पर उन्होंने राजा की उपाधि धारण की और अपने नाम के सिक्के ढलवाए।[3]

वर्षा आरम्भ होने पर नेताजी पाल्कर अपने सफल अभियानों से लौट आए। शिवाजी के बेड़े ने मक्का को जाते हुए कुछ मुगल जहाजों को पकड़ कर धनी तीर्थ यात्रियों से छुड़ाई प्राप्त की। अगस्त के महीने में स्वयं शिवाजी ने अहमदनगर की

---

[1] सूरत की लूट का अत्यन्त सूक्ष्म विवरण अँग्रेज व्यापारियों के अभिलेखों में प्राप्त है जो उस समय ईस्ट इण्डिया हाउस में थे। अँग्रेजों ने दूसरे महाजनों की सम्पत्ति को लूटे जाने से रक्षा की। इससे औरङ्गजेब ने उनकी एक वर्ष की पूरी मालगुजारी माफ की और उनके माल पर की चुङ्गी में भी एक प्रति सैकड़े की चिरस्थायी छूट दी। स्मिथ नाम के एक अंग्रेज बन्दी ने देखा कि शिवाजी उन आदमियों के सिरों और हाथों को काटने की आज्ञा दे रहे हैं जिन पर यह सन्देह था कि वे अपने धन को छिपाए हुए हैं।—शिवाजी, पृष्ठ ४९-५५।

[2] अंग्रेजी अभिलेखों के अनुसार शाहजी ने पोर्टो नोवो पर जुलाई १६६१ में अधिकार किया।

[3] शिवाजी के नाम के ये सिक्के अप्राप्त हैं।

बाजार को तथा औरङ्गाबाद के पड़ोस को लूटा। उनकी अनुपस्थिति में पन्हाला स्थित बीजापुरी सेना ने सन्धि तोड़ी और कोंकण को पुनः

अक्टूबर

जीतने का प्रबल प्रयत्न किया। किन्तु शिवाजी जो उस समय के अँग्रेजी अभिलेखों के अनुसार, सर्वत्र उपस्थित तथा प्रत्येक आपत्काल के लिए तैयार रहते थे एक बड़ी सेना लेकर वहाँ आए और शत्रुओं को परास्त कर बड़ा संहार किया।[1] वेनगुरला के निवासियों ने उनके सैन्यदल पर धावा किया था अतः शिवाजी ने इसको जला कर राख कर दिया। और मुगलों के भावी आक्रमण की आशंका से वह शीघ्रता से सिंहगढ़

१६६५ ई०

आए। किन्तु यह ज्ञात होने पर कि मुगलों का इरादा आक्रमणात्मक कार्यवाही करने का नहीं है उन्होंने अश्वारोहियों की एक टुकड़ी कृष्णा नदी के दक्षिण के बीजापुर प्रदेश में लूटमार करने को भेजी। उन्होंने यह खबर उड़ा दी कि वे मुगल शिविर पर आक्रमण करने वाले हैं। एक ओर इस किंवदन्ति का प्रचार हो रहा था, दूसरी ओर

फरवरी

उन्होंने एक बड़ा बेड़ा[2] इकठा कर अकस्मात् समुद्र तट की ओर प्रस्थान किया। मालवाँ से जहाज पर चढ़, उन्होंने गोआ से लगभग एक सौ तीस मील नीचे धनधान्यपूर्ण बर्सीलोर (बसरूर)[3] नगर पर आक्रमण किया और लौट कर चार हजार आदमियों के साथ गोकर्ण तक गए। इस बेड़े के अधिकाँश भाग को निवृत्त कर शिवाजी अपनी श्रद्धा अर्पण करने के लिए समीप के मन्दिर में गए। वहाँ से लौटने पर उन्होंने अपने सैनिकों को कई दलों में विभक्त किया जिन्होंने सारे प्रदेश को लूटा और पड़ोस के कई धनाढ्य व्यापारिक नगरों से प्रचुर लूट की सम्पत्ति प्राप्त की। कारबार[4] में प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही की

---

[1] कारबार और राजापुर के अँग्रेज व्यापारी लिखते हैं कि ६००० बीजापुरी सैनिक मारे गए।

[2] कारबार कारखाने के एक पत्र के अनुसार इस बेड़े में एक मस्तूल की तीस से एक सौ पचास टन वाली ८५ नावें तथा तीन मस्तूल वाले ३ बड़े जहाज थे।

[3] वर्सीलोर (आधुनिक बसरूर) दक्षिण कनाडा जनपद में एक बन्दरगाह है। मराठी बखरों में इसका नाम बसनूर और हसनूर दोनों दिया हुआ है।

[4] प्राचीन कारबार नगर उत्तरी कनाडा जनपद में आधुनिक कारबार नगर से तीन मील पूरब है। यह निर्यात व्यापार का विख्यात केन्द्र था।

गई अतः शिवाजी ने अंशदान[1] मात्र लिया। सेना को स्थलमार्ग से भेज कर शिवाजी ने जलमार्ग से रायगढ़[2] को प्रस्थान किया। तेज अंधड़ और उत्तर-पश्चिमी हवा के कारण शिवाजी को कई दिन रुकना पड़ा। कहा जाता है कि ऐसा इसलिए हुआ था कि शिवाजी की कुलदेवी इस अभियान से अप्रसन्न हुई थीं। किन्तु शिवाजी को इससे भी अधिक बेचैनी मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ, एक अफगान की संयुक्त सेना के आने से हुई।

औरङ्गजेब की मनसा सम्पूर्ण दक्खिन को एक ही बार में विजय करने की थी और वह 'पहाड़ी चूहा'[3] को हेय दृष्टि से देखता था। अतः उसने इस समय पूरे उत्साह से शिवजी से युद्ध आरम्भ नहीं किया। वह स्वयं भी निरापद नहीं था। उसके सामने राज्यापहरण किए जाने का संकट उपस्थित था, विशेषतया उसके पिता के जीवितावस्था में। और ईर्ष्यालु स्वभाव होने के कारण वह किसी का विश्वास नहीं करता था। राजा की उपाधि धारण करने, सिक्का ढालने, अनेक लूट अभियान करने, तथा सूरत को भी लूटने से औरङ्गजेब इतना कुपित नहीं हुआ जितना कि मक्का को जाने वाले तीर्थयात्रियों के बलात् धनापहरण से। अपने को कट्टर धार्मिक समझने के कारण औरङ्गजेब के लिए यह उचित ही था कि वह ऐसे धर्मद्वेषी को उसको ऐसे कुकृत्य के लिए दण्ड दे जो न केवल उसके धर्म के विरुद्ध जघन्य पाप था बल्कि उसके साम्राज्य के लिए भी अपमानजनक था।

औरङ्गजेब मिर्जा राजा जयसिंह और दिलेर खाँ दोनों ही से सशंकित था। पहले ये दोनों ही दारा के पक्ष में थे किन्तु बाद को औरङ्गजेब ने उन्हें अपनी ओर मिला लिया। जयसिंह पर औरङ्गजेब ने कभी भी पूरा विश्वास नहीं किया। दिलेर खाँ पर भी उसका विश्वास नहीं था क्योंकि वह पहले दारा के पक्ष में था और साहसी, निर्भीक और वीर भी था, और अफगानों पर जिनकी संख्या राजकीय सेवा में बहुत थी उसका बड़ा प्रभाव था। दूर दक्खिन देश और उसके निवासियों से

---

[1] इस अंशदान में अँग्रेजी व्यापारियों ने नकद ११२ पौन्ड दिया था।

[2] मराठी हस्तलेखों के अनुसार इस यात्रा में शिवाजी ने हसनूर की लूट में अपार सम्पत्ति प्राप्त की। मराठों के अनुसार हसनूर गोआ प्रदेश के बारदेज भूभाग में एक नगर है। अँग्रेजी अभिलेखों के अनुसार शिवाजी ने बर्सीलोर को लूटा।

[3] फ्रयर। वह लिखता है कि मैदान में शिवाजी की नहीं चलती अतः वे मैदान को लूट कर पूर्ण वेग से भाग कर पहाड़ों में छिप जाते हैं। इसी कारण औरङ्गजेब ने शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहा है। आदमियों से लड़ना सरल है किन्तु पहाड़ों से लड़ना एक टेढ़ी खीर है।

ये अपरिचित थे। अतः औरङ्गजेब ने शिवाजी को दबाने, तथा निरन्तर निर्धन होते जाते हुए बीजापुर शासन से युद्ध करने और वहाँ से कर वसूल करने में उनको लगाना उचित समझा। यह जानते हुए भी कि जयसिंह के पास बीजापुर और शिवाजी को दबाने का पूरा साधन नहीं है उसने यह काम जयसिंह को सौंपा। वह किसी पर इतना विश्वास नहीं करता था कि उसे पर्याप्त सेना दे। सम्भवतः उसकी नीति यह थी कि दक्खिन के राज्य इतने झकझोरते जाते रहें कि जब वह चाहे तब वह उन पर अधिकार कर ले।

राजा जयसिंह के प्रस्थान करने के बाद उसके लड़के रामसिंह को सम्राट् के दरबार में रहने की आज्ञा हुई, प्रत्यक्षतः अपने पिता के सम्मान के लिए किन्तु वस्तुतः जयसिंह के आचरण के बन्धक रूप में। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि उस समय जब शिवाजी समुद्र-अभियान पर गए उनको जयसिंह के पहुँच का पता न था। पुरन्दर पर घेरा डाल कर और दिलेर खाँ को वहाँ छोड़ कर जयसिंह ने सिंहगढ़ पर घेरा डाला और अपनी अगली टुकड़ियों को राजगढ़ तक भेजा। शिवाजी जयसिंह के आने की सूचना पाकर शीघ्रता से राजगढ़ आए और समस्त प्रमुख व्यक्तियों से सम्मति की। नेताजी पाल्कर का काम शत्रुओं की गति का निरीक्षण करना था। किन्तु वह इस समय अपने अश्वारोहियों के मुख्य दल के साथ बहुत दूर था। यद्यपि शिवाजी ने उस समय उसको इस पद से हटाना विवेकपूर्ण नहीं समझा किन्तु उसकी इस उपेक्षा को वे कभी भूले नहीं।[1] कडतोजी गूजर को सक्रिय होने के और भी अवसर प्राप्त

---

[1] मनौची के हस्तलेख के आधार पर कट्रो ने लिखा है कि नेताजी ने जयसिंह से उत्कोच ग्रहण किया। यद्यपि मराठी हस्तलेखों में इसका उल्लेख नहीं है फिर भी इसकी यह धारणा अधिक सम्भव प्रतीत होती है। (डफ)।

[आगरे से शिवाजी के पलायन (१७ अगस्त १६६६) के बाद १६ अगस्त १६६६ को औरङ्गजेब ने राजा जयसिंह को नेताजी पाल्कर को चतुरतापूर्वक गिरफ्तार कर दरबार में भेजने को लिखा। नेताजी पाल्कर शिवाजी का सम्बन्धी एवं उसका दाहिना हाथ था। जयसिंह की नीति से वह दक्खिन की शाही सेना में भरती हो गया था। जब वह दिल्ली में पकड़ कर लाया गया तब २ फरवरी १६६७ को जीवन की भिक्षा माँग कर वह मुसलमान होने को तैयार हुआ। मुसलमान हो जाने के बाद उसने अपने चाचा गोंडाजी तथा अपनी दो पत्नियों को भी इस्लाम धर्म स्वीकार कराया। सम्राट् ने ६ मई १६६७ को उसको अपनी पत्नियों के साथ इस्लाम संस्कार के अनुसार फिर से विवाह करने की आज्ञा दी और उसकी पत्नियों को पाँच हजार का आभूषण प्रदान किया। किन्तु शिवाजी के पास लौटने पर १६

हुए। पीछा करने वालों को चकमा देने में वह दक्ष था। खाद्य सामग्री संग्राहियों के कई दलों को उसने रोक लिया और सूचनाएँ बराबर भेजता रहा।

राजा जयसिंह[1] की ख्याति, उसकी सेना की शक्ति, उसके आक्रमण की अप्रत्याशित प्रबलता से शिवाजी को असाधारण भय और घबराहट हुई। शिवाजी के भक्तों के अनुसार देवी भवानी ने शिवाजी को राजा जयसिंह से न लड़ने का स्वप्न दिया, अतः रायगढ़ की सभा में कोई निर्णय न हो सका।

रायगढ़ सभा की अनिश्चितता से पुरन्दर के सैन्यदल का उत्साह कम न हुआ महर का देशपाण्डे बाजी प्रभु[2] इस किले का हवलदार था। इसके सैनिक मावले और हितकरी थे। वीरता से और योग्यतापूर्वक देशपाण्डे अपनी जगह पर डटा रहा। दिलेर खाँ ने किले के पहुँच के रास्तों के प्रत्येक चौकी पर हमला किया।[3] किन्तु उसके अग्रिमदल खदेड़ दिये गए। अतः उसने नीचे के किले के एक बुर्ज के नीचे की चट्टान में सुरंग लगाना आरम्भ किया। दुर्ग रक्षक बारम्बार उन पर झपटते थे और सुरङ्ग लगाने वालों को बारम्बार पीछे खदेड़ते थे। किन्तु अन्त में आड़ पाकर वे वहाँ दृढ़ता से जम गए। बारम्बार असफल होने के बाद वे चट्टान और प्रतिरक्षाओं को चूर करने में सफल हुए और एक आक्रमण करने के बाद नीचे के ('माची')

जून १६७६ को प्रायश्चित कराकर वह फिर से (झेधे शाकावली के शब्दों में) 'शुद्ध हिन्दू' किया गया।—सरकार : हाउस आव शिवाजी, पृ० १७२-३।]

[1] अपनी राजधानी के नाम पर वह अम्बर (जयपुर या जयनगर) का राजा कहलाता था।

[2] वीर शिरोमणि बाजी प्रभु से जिसने पन्हाला से शिवाजी के लौटने के अवसर पर शिवाजी के शत्रुओं को रोकने में अपने प्राणों की आहुति दी इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

[3] पुरन्दर का किला पूना शहर से चौबीस मील दक्षिण है। यह एक महान् सुरक्षित पहाड़ का ढेर है। पुरन्दर की चोटी समतल भूमि से दो हजार पाँच सौ फुट ऊँची है। यह किला चारों तरफ खड़े कटे पत्थरों से घिरा हुआ है। इसके तीन सौ फुट नीचे पहाड़ से लगा हुआ नीचे का किला है जिसे मराठी में 'माची' कहते हैं। इसी माची में फौज के रहने के मकान और कारखाने थे। पूरब की ओर माची के कोने से एक मील लम्बा एक पहाड़ है, उसके सिरे पर दीवाल से घिरा हुआ रुद्रमाल अथवा वज्रगढ़ नाम का एक दूसरा किला है। इस वज्रगढ़ से माची के ऊपर गोला बरसा कर सहज में ही वहाँ से शत्रुओं को भगा दिया जा सकता है—सरकार : शिवाजी पृ० ५६-६०।

किले पर पहुँच गए और घरों को लूटने में लग गए। इतने में हितकरी लक्ष्य भेदियों ने ऊपर से संहारक आग उगली। आक्रमणकारी कोने २ में छिपे या बाहर भागे। बाजी प्रभु मावलों को लेकर मुगलों पर टूट पड़ा, सब विरोधियों को मार गिराया और उनको पहाड़ी के नीचे खदेड़ दिया। दिलेर खाँ हाथी पर बैठे २ तलहटी से आक्रमण की प्रगति देख रहा था। अपने सैनिकों की भगदड़ देख कर उसने अपने धनुष को चढ़ाया, पठानों के एक दल को आगे बढ़ने को ललकारा, और भगोड़ों को एकत्रित कर अपने हाथी को आगे किया किन्तु दुर्गरक्षकसैन्य जो अन्य सब मराठों की तरह सफलता मिलने के कारण निर्भीक थे उन पर टूट पड़े। मावलों की तलवारों के आगे सशक्त अफगान भी टिक न सके। उनके नेता की प्रत्यक्ष वीरता देखकर दिलेर खाँ ने स्वयं ही अपने बाण से उसको मार गिराया। उसी क्षण सम्पूर्ण दुर्गरक्षकदल उसको उठा कर भाग खड़ा हुआ और भागता ही गया जब तक कि वह किले के ऊपरी हिस्से में नहीं पहुँच गया। किले के निचले हिस्से ('माची') पर मुगलों का फिर अधिकार हो गया किन्तु ऊपर की अग्निवर्षा से बाध्य हो कर उनको यह स्थान छोड़ना पड़ा। दिलेर खाँ ने सामने के उत्तरी हिस्से को अजेय समझ कर वज्रगढ़[1] नामक एक छोटे पृथक किले पर जो पुरन्दर के उत्तर-पूर्व कोने में स्थित था सीढ़ी द्वारा जाने का निश्चय किया। इस किले से पुरन्दर की किलेबन्दी और प्रतिरक्षात्मक प्रबन्ध का बड़ा भाग दृष्टिगोचर होता है। यह प्रयास सफल हुआ। इस गढ़ से ऊपरी किले को तोड़ने के लिए तोपें चढ़ाई गईं। वर्षा आरम्भ हो जाने से बहुत रुकावट पड़ी। मुगल तोपखाना अत्यन्त खराब था और कई सप्ताह की लगातार अग्निवर्षा के बाद भी वे उस किले की प्रतिरक्षाओं को प्रभावित न कर सके। किन्तु दुर्गरक्षक दल की हिम्मत छूट गई और उन्होंने सूचना भेजी कि अब वे आगे प्रतिरोध नहीं कर सकते। वे तो किले को खाली कर दिए होते किन्तु शिवाजी ने उनको तब तक रुके रहने के लिए कहलाया, जब तक वे सूचना न भेजें।

आरम्भ से ही शिवाजी प्रस्ताव और सन्देश भेजते रहे। जयसिंह ने अनुग्रह करने का आश्वासन भी दिया। किन्तु जयसिंह अपने प्रतिद्वन्द्वी के स्वभाव को जानते थे। अतः उन्होंने अपने प्रयत्नों और तैयारियों में ढिलाई नहीं की। अब शिवाजी ने मुगलसेवा को स्वीकार करने तथा अधिकृत प्रदेशों का कुछ भाग छोड़ने की अपनी पुरानी युक्ति की। शिवाजी ने रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री को जयसिंह के पास भेजा जो शिवाजी के कुछ प्रस्तावों को मानने को तैयार हुए। पहले तो उन्होंने शिवाजी की सच्चाई में विश्वास नहीं किया। किन्तु रघुनाथपन्त ने उन्हें विश्वास

[1] मराठों के अनुसार रुद्रमाल।

दिलाया कि शिवाजी छल नहीं करेंगे, तब जयसिंह ने शिवाजी को आश्वस्त करने के लिए न्यायशास्त्रीजी से कहा कि शिवाजी एक राजपूत के नाम पर सम्राट् से न केवल क्षमा-दान बल्कि अनुग्रह और रक्षा भी पाने का विश्वास रखें। यह वार्ता चल ही रही थी कि शिवाजी सम्भवतः अपने सैनिकों से अपनी वास्तविक अभिलाषा छिपाने के लिए रायगढ़ से प्रतापगढ़ और वहाँ से जाव्ली चले गए। कुछ इनेगिने अनुचरों को साथ लेकर शिवाजी ने जुलाई के महीने में पर्वतों को पार किया और सीधे जयसिंह के शिविर में पहुँचे और सूचना भेजी कि शिवाजी राजा आए हैं। जयसिंह ने एक आदमी भेजा जो शिवाजी को उनके पास ले आया। शिवाजी के पहुँचने पर जयसिंह अपने शिविर से निकल कर बाहर आए और शिवाजी को गले लगा लिया। जयसिंह ने शिवाजी को अपनी दाहिनी ओर बैठाया और बड़े आदर और सहृदयता से उनके प्रति व्यवहार किया और रघुनाथ पन्त द्वारा भेजे गए आश्वासनों को दुहराया। शिवाजी ने अत्यन्त विनम्र शब्दों में बात की। जयसिंह ने शिवाजी को अपने खेमों से मिले हुए खेमों में ठहराया। दूसरे दिन शिवाजी दिलेरखाँ से मिलने के लिए गए जो इस समय भी पुरन्दर के किले को घेरे हुए था और अब समझौते में सहयोगी न किए जाने से अत्यन्त खिन्न था। उसने धमकी दी कि वह पुरन्दर किले पर अधिकार किए बिना न रहेगा और प्रत्येक आदमी को तलवार के घाट उतारेगा। किन्तु शिवाजी ने फाटक की कुञ्जियाँ स्वयं अपने हाथ से उसे देकर, और यह कह कर कि सब किले और सारा प्रदेश उसका है और वे केवल क्षमा चाहते हैं और अनुभव से उन्हें विश्वास हो गया है कि औरङ्गजेब के चुने हुए वीरसैनिकों का प्रतिरोध करना मूर्खता है और वे सम्राट् की सेना में भरती होने मात्र की अपेक्षा करते हैं, शिवाजी ने उसे शांत और संतुष्ट किया। शिविर में शिवाजी के लौटने के तुरन्त बाद युद्ध रुका और कई सम्मेलनों के बाद सम्राट् की अभिपुष्टि सापेक्ष निम्नलिखित शर्तें तय हुई। किन्तु यह सब जयसिंह के बन्धक पर हुआ, अन्यथा शिवाजी अपने को मुगल सेना के बीच में सुरक्षित न समझते। प्रारम्भिक अनुच्छेद के अनुसार शिवाजी ने मुगलों से छीने हुए प्रदेश और किलों को छोड़ा। निजामशाही शासन से छीने हुए प्रदेश में बत्तीस अधिकृत या बनवाए हुए किलों में से बीस किले जिसमें पुरन्दर और सिंहगढ़ भी थे शिवाजी ने जयसिंह को दिए और इन किलों के अधीनस्थ प्रदेश भी अर्पण किए।[1]

---

[1] शिवाजी ने, बखरों के अनुसार २७ और खाफी खाँ के अनुसार २३, किले अर्पण किए। सरकार ने खाफी खाँ की संख्या को स्वीकार किया है। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार निम्नलिखित मराठा किले मुगलों को सौंपे गए थे :—

शेष बारह किलों[1] के अधीनस्थ प्रदेश जिनका वार्षिक राजस्व एक लाख पगोडा प्राक्कलित किया गया था तथा उनकी समस्त शेष उपलब्धियाँ सम्राट् के अधीन जागीर के रूप में शिवाजी के पास रहने दी गई। उनके अष्टवर्षीय पुत्र शम्भाजी को पांचहजारी मनसब प्रदान की गई। इस समझौते का सबसे उल्लेखनीय अंश शिवाजी का प्रस्ताव था कि उनको कुछ अर्पण बीजापुर पर प्रदान किया जाय—सम्भवतः निजामशाही प्रदेश में उनके मिथ्या वंशागत अधिकारों के बदले तथा जो कुछ उन्होंने सम्राट् को अर्पण किया था उसके कुछ पारितोषिक स्वरूप भी। इन अर्पणों का प्राक्कलन पाँच लाख पगोडा था। ये घाटों के ऊपर के कुछ जनपदों के चौथाई और दशमांश राजस्व के रूप में थे जिसको उन्होंने चौथ और सरदेश-मुखी[2] का नाम दिया, इसको उगाहने का प्रभार उन्होंने अपने ऊपर लिया। इस प्रबन्ध का राजकीय प्राधिकार प्राप्त करने के लिए शिवाजी इतने उत्सुक थे कि उन्होंने इस शर्त की स्वीकृति हो जाने पर तीन लाख वार्षिक किश्त के दर से चालीस

(अ) दक्खिन में—(१) रुद्रमाल (वज्रगढ़), (२) पुरन्दर, (३) कोण्डाना, (४) रोहिड़ा, (५) लोहगढ़, (६) ईसागढ़, (७) तुङ्ग, (८) तिकोना, (९) खड़कला (कोण्डाना के पास)।

(आ) कोंकण में—(१०) माहुली, (११) मुरञ्जन, (१२) खरि दुर्ग, (१३) भण्डरदुर्ग, (१४) तुलसीखुल, (१५) नरदुर्ग, (१६) खईगढ़ (अङ्कोला), (१७) मर्गगढ़ (अतरा), (१८) कोहेज, (१९) बसन्त, (२०) नंग, (२१) करनाला, (२२) सोनगढ़, (२३) मानगढ़। (अ० ना०, पृ० ९०५)—सरकार : औरङ्गजेब, पृ० २७०। शिवाजी, पृ० ६४।

[1] शेष बारह किले ये हैं : १. राजगढ़, २. तोरण, ३. रइरी (रायगढ़), ४. लिंगाना, ५. महारगढ़ ६. बालागढ़, ७. घोसालागढ़, ८. आशेरी, ९. पालीगढ़, १०. भूरप (सुधागढ़), ११. कुमारी और १२. उदयदुर्ग।

[2] मराठी सेना विजयादशमी के दिन छावनी से कूच कर आस-पास के पड़ोसी प्रदेशों में पेट भरती और चौथ वसूल करती रहती थी। यह कर राजा का प्राप्य राजस्व नहीं था। यह डाकुओं को खुश रखने का उपाय मात्र था। इसका मराठी नाम 'खण्डनी' ('ये रुपये लेकर हमें रिहाई दो, बाबा') था। चौथ वसूल करने पर भी वे दूसरे शत्रुओं के आक्रमण से उस देश की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं मानते थे। चौथ के बदले में स्वयं उस देश को न लूटने का केवल अनुग्रह करते थे। सरकार : शिवाजी, पृ० १६२, १६७।

लाख पगोडा का पेशकश (भेंट) देने तथा एक अतिरिक्त सैन्य टुकड़ी रखने का प्रस्ताव रखा।[१]

औरंगजेब ने शिवाजी को एक लम्बा पत्र लिख कर पुरंदर सम्मेलन में स्वीकृत शर्तों की स्पष्ट शब्दों में पुष्टि की। औरंगजेब के पत्र में चौथ और सरदेशमुखी का उल्लेख नहीं है।[२] सचमुच, सम्भवतः उसने इन शब्दों का अर्थ अथवा इनके कपटपूर्ण प्रवृत्ति को नहीं समझा। औरंगजेब बीजापुर शासन को खोखला करना चाहता था। अतः उसने शिवाजी के प्रस्ताव को इस शर्त पर स्वीकार किया कि शिवाजी अपनी सेना लेकर राजा जयसिंह का साथ देंगे बीजापुर को विजय करने का प्रयास करेंगे और पेशकश (भेंट) का पहला अंश चुकता करेंगे। इस समझौते के अनुसार शिवाजी ने दो हजार अश्वारोहियों और आठ हजार पदातियों को लेकर जयसिंह को सहयोग दिया। सयुक्त सेना ने नवम्बर महीने के लगभग प्रस्थान किया और शिवाजी के संबंधी बीजापुर के जागीदार बुजाजी नायक निम्बालकर पर चढ़ाई की और फल्टन पर अधिकार किया तथा टटोरा (टथवाड) दुर्ग पर शिवाजी के मावले सीढ़ी लगाकर चढ़े। रास्ते के सब किलेबन्द स्थानों पर अधिकार कर लिया गया।

---

[१] शिवाजी ने इस प्रस्ताव को चलन के अनुसार एक प्रार्थना पत्र के रूप में सम्राट् को भेजा। और जयसिंह के सुझाव पर सम्राट् से भेंट करने के अपने इरादे को अत्यन्त शिष्ट भाषा में यह लिख कर व्यक्त किया कि उनकी इच्छा शाही द्वार को चूमने की है। ग्रान्ट डफ की उपर्युक्त टिप्पणी गलत है। मिर्जा राजा जयसिंह, सम्राट, शिवाजी और दिलेर खाँ के बीच जो पत्र-व्यवहार हुए थे वे अब प्रकाश में आ गए हैं। इनके अँग्रेजी अनुवाद सरकार के हाउस आव शिवाजी नामक पुस्तक में प्राप्य हैं। इन पत्रों से पूरी बात स्पष्ट हो गई है। शिवाजी ने दिल्ली जाने या दरबार में उपस्थित होने के लिए कभी आवेदन नहीं किया। मिर्जा राजा जयसिंह के सचिव उदीराज मुन्शी ने औरङ्गजेब के नाम शिवाजी के इन दोनों निकृष्ट आवेदन पत्रों को उपयुक्त फारसी शैली में लिखा था। इन पर शिवाजी के मोहर की छाप लगाई गई थी मानो शिवाजी ने उनको भेजा है।—सरकार : हाउस आव शिवाजी, पृ० १२७-१५०।

[२] एक फारसी अखबारात के अनुसार सम्राट् ने २१ अगस्त १६६७ को दक्खिन के दीवान शफी खाँ को आज्ञा दी कि शिवाजी को सूचित किया जाय कि शिवाजी द्वारा अर्पण किए हुए किलों के आसपास की भूमि की देशमुखी उनको प्रदान की गई है, कोई शाही अधिकारी उनकी उगाही में रुकावट न डाले।—सरकार : हाउस आव शिवाजी, पृ० १७४-५।

अली आदिल शाह ने मुगलों की माँगों की पूर्ति करने का वादा किया। किन्तु जयसिंह आगे बढ़ते गए बीजापुर सेना का मुख्य सेनापति प्रधानमंत्री अब्दुल मुहम्मद मंगलवेहरा[1] के समीप था। बीजापुरी अश्वारोहियों ने बड़े उत्साह और सक्रियता से मुगल सेना का प्रतिरोध किया। अब्दुल करीम बहलोलखाँ ख्वासखाँ, सीदी उजेज (सीदी जौहर का पुत्र) और शिवाजी का सौतेला भाई व्यंकोजी राजा भोसले बीजापुर सेना के प्रमुख अधिकारी थे। इस युद्ध में बीजापुर की मराठा अश्वारोही सेना ने असाधारण पराक्रम दिखलाया। इनमें व्यंकोजी राजा और मस्वर[2] का देशमुख रद्दाजी माने अत्यंत विशिष्ट थे।

मुगलों की ओर से शिवाजी और नेताजी पाल्कर ने विशेष प्रतिभा दिखलाई विशेषकर पृष्ठरक्षक युद्ध में। शिवाजी के अश्वारोहियों ने अन्य अनेक दृढ़ स्थानों पर अधिकार किया। इन सेवाओं के बदले में औरंगजेब ने शिवाजी को एक पत्र लिखा जिसमें उसने इनकी वीरता की बहुत प्रशंसा की और एक सम्मान-सूचक उपहार भेजा। एक दूसरे पत्र में औरंगजेब ने शिवाजी को दरबार में आने को निमंत्रित किया। उसने शिवाजी को ऊँचा पद और सम्मान प्रदान करने और दक्खिन को लौट जाने की अनुज्ञा देने का वचन दिया। शिवाजी और जयसिंह अब एक दूसरे का विश्वास करने लगे थे। जयसिंह की सलाह और आश्वासन से शिवाजी ने दिल्ली जाने का निश्चय किया और रघुनाथ पंत को दिल्ली भेजा—प्रत्यक्षतः शिवाजी के आगमन की सूचना देने के लिए किन्तु विशेषतः शाही दरबार के प्रमुख व्यक्तियों तथा वहाँ की परिस्थिति के सम्बन्ध की सूचना ग्रहण करने के लिए। शिवाजी ने अपने समस्त प्रमुख अधिकारियों को रायगढ़ आने की आज्ञा प्रसारित की। वे इकट्ठे हो ही रहे थे कि शिवाजी ने जाकर सब किलों को देखा और प्रत्येक प्रभारी अधिकारी को अत्यन्त कठोर आज्ञाएँ देकर राजधानी को लौट आए और सभा में सम्मिलित हुए।

उन्होंने मोरो त्रिमल पिङ्गले, आबाजी सोनदेव और अन्नाजी दत्तो को अपनी अनुपस्थिति में पूर्ण प्राधिकार दिया और सब अधिकारियों को उनकी आज्ञाओं का पालन और सम्मान करने का आदेश दिया। इस समय उनके हाथ में बहुत ही कम प्रदेश था। कोंकण में इसका विस्तार चौल से पोण्डा के पड़ोस तक और घाट-माथा में नीरा नदी से रङ्गना तक था।

---

[1] मंगलवेहरा (मंगलवेध) बीजापुर से ५२ मील उत्तर है। [2] मस्वर (महस्वाद) सातारा के ५१ मील पूरब है।

अपने ज्येष्ठ पुत्र तथा पाँच सौ चुने हुए अश्वारोहियों और एक हजार मावलों के साथ शिवाजी ने १६६६ के मार्च के आरम्भ में दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। दिल्ली[1] के समीप पहुँचने पर औरङ्गजेब ने उनके स्वागतार्थ केवल राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह को और एक अवर पद के अधिकारी को भेजा। शिवाजी को यह बुरा लगा किन्तु उन्होंने इस उपेक्षा को सह लिया। शिवाजी (दिवान-ए-खास में) उपस्थित किए गए। उन्होंने नजर (उपहार) भेंट की किन्तु उनको केवल पाँच हजारी का पद दिया गया। इस अपमान से वे बहुत खिन्न हुए[2] और शब्दों में अपनी खिन्नता प्रकट करने लगे। उनके आसपास के लोगों ने उनके शब्दों को सम्राट् से कहा। दरबार समाप्त होने पर शिवाजी को सूचना भेजी गई कि भविष्य में दरबार में सम्राट् उनसे भेंट नहीं करेंगे। इससे शिवाजी का शंकित होना उचित ही था। शिवाजी ने औरङ्गजेब के वास्तविक अभिप्राय का पता लगाने के उद्देश्य से रघुनाथ पन्त को एक प्रार्थनापत्र देकर भेजा। इसमें उन्होंने दिल्ली में अपने आने के कारणों, सम्राट् के निमंत्रण और वादों, अपनी सेवाओं, औरङ्गजेब द्वारा पुष्टि की हुई शर्तों, शिवाजी द्वारा तत्काल उनकी पूर्ति, आदिलशाही या कुतुबशाही राज्यों को विजय करने में सम्राट् सेना को हर प्रकार से सहायता देने के अपने आश्वासन का उल्लेख किया। यदि सम्राट् उनकी सेवाओं को ग्रहण करना नहीं चाहते, तो उनको अपनी

---

[1] शिवाजी की औरङ्गजेब से भेंट दिल्ली में नहीं आगरे में हुई थी। शिवाजी के साथ केवल एक सौ सेवक और कुल २०० से २५० तक अनुरक्षक थे जिनमें से एक सौ सिलाहदार और शेष बारगीर थे। किन्तु उनका साज-सामान बहुत ही वैभवपूर्ण था।—सरकार : शिवाजी, पृ० ७३, हाउस आव शिवाजी, पृ० २६१।

[2] शिवाजी के आगरा पहुँचने पर शिवाजी का उचित स्वागत नहीं हुआ। उनके भेंट और सलाम के उत्तर में औरङ्गजेब चुप रहा। शिवाजी पाँच हजारी मनसबदारों में खड़े किए गए। उनको खिलअत और सिरोपाव नहीं मिले जो राजकुमारों, मन्त्री जाफर खाँ, और महाराजा यशवन्त सिंह (जोधपुर) को दिए गए। यह अपमान शिवाजी के लिए जो घंटे भर से दरबार में खड़े रहने के कारण थक गए थे असह्य हो गया। वे शोकाकुल होकर क्रोध से लाल होगए। उनकी आँखें डबडबा आईं। औरङ्गजेब ने रामसिंह से कहा कि शिवाजी से पूछो उसकी तबियत कैसी है। शिवजी अपना क्रोध शब्दों में प्रकट कर वहीं से मुड़ कर बादशाह की तरफ पीठ कर चल पड़े और एक ओर जाकर बैठ गए। सम्राट् ने कुमार रामसिंह को आज्ञा दी कि शिवाजी को डेरे पर ले जा कर शान्त करो।—सरकार : शिवाजी, पृ० ७३-७६।

जागीर को लौट जाने की अनुज्ञा दी जाय, क्योंकि उनके तथा उनके दक्खिन के साथियों के स्वास्थ्य के लिए उत्तरी भारत की जलवायु प्रतिकूल है। औरङ्गजेब ने टालमटोल का उत्तर दिया। शहर कोतवाल को शिवाजी पर पहरा रखने के लिए नियुक्त किया जिससे वे सुरक्षा-बन्धन के बिना अपना आवास छोड़ने न पाएँ। शिवाजी ने अपने आदमियों के रोके रखे जाने के कष्ट का प्रतिवाद किया। औरङ्गजेब ने उनको दक्खिन लौटने के लिए तुरन्त ही परिपत्र प्रदान किया। औरङ्गजेब ने समझा कि अब शिवाजी पूर्णतया उसके मुट्ठी में हैं। इससे शिवाजी को भागने में अधिक सुविधा हुई। रामसिंह उनकी योजना के रहस्य को जानते थे।[1] उसने अपने पिता के दिए हुए वचन के कारण शिवाजी की ओर से आँख मूँद ली।[1] शिवाजी का बन्धन इतना कठोर नहीं था कि वह दूसरों से मिलने के लिए आ जा न सकें[1] या उनको उपहार न भेजे। शिवाजी ने बीमारी के बहाने वैद्यों को बुला भेजा, औषधि ली

[1] कुमार रामसिंह के कर्मचारी राजदरबार के सम्बन्ध की प्रतिदिन की सूचना डिंगल भाषा में लिख कर आमेर दीवान के पास भेजते थे। उन कागजों में स्पष्ट लिखा है कि सम्राट् ने शिवाजी के ऊपर रोक लगा दी थी कि वे किसी के घर, यहाँ तक कि रामसिंह के घर पर न जायँ। आगरा के कोतवाल फौलाद खाँ की सरकारी फौजों और तोपों के पहरों के अतिरिक्त रामसिंह के कछवाही फौज का पहरा था। डेरे के अन्दर तेजसिंह और उसके अनुयायियों के अतिरिक्त, अर्जुनजी, सुखसिंह नाथावत, तथा अन्य राजपूत गस्त लगाते थे। शिवाजी आगरे में १२ मई १६६६ को प्रातः पहुँचे और उसी दिन सम्राट् से भेंट की। जयसिंह के विरोधी दरबारियों ने सम्राट् को यह नीति अपनाने को सहमत किया कि शिवाजी या तो मार डाले जायँ या किसी किले में रखे जायँ या जेल में डाल दिये जायँ। जब कुमार रामसिंह को इस प्रकार की सूचना मिली तो उन्होंने कहा कि शिवाजी मेरे पिता के वचन पर यहाँ आए हैं। पहले मेरी हत्या की जाय उसके बाद सम्राट् शिवाजी का जो करना चाहें करें। अन्ततोगत्वा शिवाजी ने कुमार के तम्बू में महादेव जी की पूजा कर एवं उन पर जल चढ़ाते हुए अपने सदाचरण का दृढ़सङ्कल्पपूर्वक आश्वासन दिया। तदुपरान्त रामसिंह ने सुरक्षाबन्धक-पत्र भर कर सम्राट् को दिया। १८ अगस्त को सबेरे ४ घड़ी बीत जाने पर यह पता चला कि १००० आदमियों के पहरे से शिवाजी निकल गए हैं। राज्य भर के रास्तों की चौकियों, घाटों और पहाड़ों की घाटियों में आज्ञा भेजी गई कि दक्खिन के सब मुसाफिरों को पकड़ कर देखो कि उनमें शिवाजी तो नहीं हैं। किन्तु राजकीय सन्देशवाहकों के पहुँचने के पहले ही शिवाजी अत्यन्त वेग से बिना विश्राम लिए या सुविधापूर्वक भोजन किए हर एक घाटों और पहाड़ी घाटियों से होते हुए

और शीघ्र ही और अधिक बीमार हो गए। बीमारी कुछ सम्हलने पर उन्होंने ब्राह्मणों को बड़े २ दान और वैद्यों को उपहार दिए। उन्होंने कई लम्बे झाल बनवाए जिसमें मिठाई भर कर वह प्रतिदिन अपने कमरों से बाहर अपने परिचित बड़े २ लोगों के घरों पर या फकीरों में बाँटने के लिए मस्जिदों में भेजते थे। इस तरह थोड़े दिन चलता रहा। एक दिन शाम को एक झाल में शम्भाजी को रख दिया और दूसरे में अपने को। इस तरह उनके नौकर उन्हें सन्तरियों के पहुँच के बाहर, एक एकान्त स्थान पर ले गए जहाँ से वह चुपचाप झाल के बाहर निकल आए। शिवाजी ने दिल्ली के उपनगर को प्रस्थान किया जहाँ एक घोड़ा तैयार खड़ा था। उस पर वह और उनके पीछे शम्भाजी बैठ गए और दूसरे दिन मथुरा पहुँचे। वहाँ कई ब्राह्मण और उनके विश्वासपात्र मित्र तानाजी मालूसरे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सब योजना तैयार थी। शम्भाजी वहाँ पूना देश के एक ब्राह्मण परिवार की देखरेख में छोड़े गए जिसका दूर का सम्बन्ध मोरो त्रिमल पिङ्गले[1] से था। कई महीने तक शम्भाजी वहाँ रहे और बाद को दक्षिण लाए गए।

दूसरे दिन काफी समय बीत जाने तक शिवाजी के भागने का पता न चला क्योंकि उनका एक सेवक बीमार बनकर उनके बिस्तरे पर लेट गया था। शिवाजी और उनके साथी गोसाईयों का भेष बनाकर अनेक धार्मिक स्थानों को गए, किस रास्ते से वह दक्खिन पहुँचे यह सन्तोषरूप से नहीं कहा जा सकता। शिवाजी नौ महीने की अनुपस्थिति के बाद दिसम्बर १६६६ में गोसाईं के भेष में रायगढ़ पहुँचे। तब तक दक्खिन की परिस्थिति शिवाजी के अधिक अनुकूल हो

एवं गोंडवाना पार करते हुए, ऊबड़-खाबड़, सुनसान दक्खिन-पथ से आगरे से भागने के बाद केवल २५ दिन में अपने घर राजगढ़ पहुँचे। इस तरह शिवाजी अपने उद्देश्य में सफल हुए किन्तु उनके स्वास्थ्य को गहरा धक्का लगा और राजगढ़ पहुँचते ही वे बीमार पड़े।—सरकार : हाउस आव शिवाजी, पृ० १५१-१७३।

[1] कृष्णाजी अनन्त सभासद के एक हस्तलेख में लिखा है कि मोरो पन्त (पिङ्गले) की बहिन का उसके एक पुत्र से विवाह हुआ था। जब ब्राह्मण-परिवार शम्भाजी को लेकर दक्खिन की ओर आ रहा था, एक मुगल कर्मचारी द्वारा पकड़े जाने पर उसके सन्देह को दूर करने के लिए ब्राह्मणों ने शम्भाजी के साथ एक पंक्ति में बैठ कर भोजन किया मानो वह शूद्र नहीं बल्कि उनकी ही श्रेणी का एक ब्राह्मण है। शिवाजी के पेशवा मोरो पन्त पिङ्गले के बहनोई कृष्णाजी विश्वनाथ और उनके भाई काशीराव और विसाजी पन्त थे। सरकार : शिवाजी पृ० ८२-८३।

गई थी। जयसिंह ने बीजापुर पर घेरा डाला था किन्तु दक्खिन के घुड़सवारों ने उसे बहुत परेशान किया और उसकी खाद्य सामग्री को रोक लिया। बीमारी का और पानी के कमी का बड़ा कष्ट था।[1]

मुगलों की ढिलाई देख कर गोलकुण्डा के सुलतान ने बीजापुर की सहायता के निमित्त नेकनाम खाँ सेनापति के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी भेजी। औरङ्गजेब के राजदूत ने जो कुत्बशाह के दरबार में था इस बात का प्रतिवाद किया, किन्तु औरङ्गजेब ने जयसिंह को कोई सहायता नहीं भेजी। अतः जयसिंह को भासित हो गया कि सम्राट् की दृष्टि में उसके त्याग, शौर्य और वीरता का, और उसके साहसी राजपूतों के प्राणों के बलिदान का कोई मूल्य नहीं है। अतः उसने औरंगाबाद को लौट जाने का निश्चय किया। शिवाजी के छोड़े हुए किलों के सैन्यदल के भरणपोषण का साधन उसके पास नहीं था। लोहगढ़, सिंहगढ़ और पुरंदर में, तथा माहुली और करनाल में जो कोंकण में हैं जयसिंह ने शक्तिशाली सैन्यदल रखा। ऐसे अन्य स्थानों पर भी कुछ आदमी रहने दिए गए जहाँ खाद्य सामग्री उपलब्ध थी। शेष सब स्थानों के फाटक जला दिए गए और वे प्रतिरक्षाएँ जो जल्दी २ में नष्ट की जा सकीं

[1] शिवाजी और उनके साथी पहली रात को वेग से घोड़ा दौड़ाकर मथुरा पहुँचे। इस दौड़ादौड़ में शम्भाजी आगे चलने में बिल्कुल असमर्थ से हो गए थे। तब मथुरा निवासी तीन मराठा ब्राह्मणों ने जो पेशवा के साले थे देश और धर्म के नाम पर बादशाही दण्ड की चिन्ता न कर शम्भाजी को अपने यहाँ टिकाया। उनमें से एक भाई शिवाजी को रास्ता दिखाने के लिए कुछ दूर गया। दाढ़ी-मूँछ मुड़वा कर, शरीर में भस्म लगा कर, खोखली लाठी में मोहरें-जवाहरात भर कर शिवाजी ने संन्यासी के भेष में मथुरा से प्रस्थान किया। प्रयाग के पुण्यक्षेत्र में गंगा-जमुना के संगम पर स्नान कर उन्होंने सम्भवतः दक्षिण की ओर सुनसान जङ्गल का रास्ता पकड़ा और बहुत करके बुन्देलखण्ड, गोंडवाना और गोलकुण्डा के राज्य में होते हुए शिवाजी आगरा छोड़ने के २५ दिन बाद १३ सितम्बर १६६६ को वैरागी के रूप में अपनी राजधानी रायगढ़ पहुँचे। किले के फाटक के अन्दर जाकर उन्होंने उत्तर देश से वैरागियों के एक दल के आने की सूचना जीजाबाई के पास भेजी और जीजाबाई के आने पर उनके पैरों पर अपना शिर रखा। शिवाजी के भागने का औरङ्गजेब को जीवन-भर खेद रहा। इक्यानबे वर्ष की आयु में मरते समय अपने वसीयतनामे में उसने लिखा था, 'वह देखो अभागा शिवाजी हमारे नौकरों की असावधानी से भाग गया और उसके लिए हमको जीवन के अन्त तक इन सब कष्टदायक युद्धों में उलझे रहना पड़ा।'—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ ८०-८३।

विनष्ट की गईं। उन पर फिर से अधिकार करने के अवसर की उपेक्षा नहीं की गई। मोरोपंत ने उनकी मरम्मत की, नए सैन्यदल रखा, मुगल दलों को खदेड़ा। कोंकण में शिवाजी का सुरक्षित आगमन कल्याण प्रदेश के अधिकांश भाग पर पुनः अधिकार कर सूचित किया गया। दिल्ली से शिवाजी के भाग आने से औरङ्गजेब को बड़ा धक्का लगा यद्यपि वह यह छद्म करता रहा कि वह शिवाजी को ससम्मान बिदा करना चाहता था। उसने रामसिंह पर शिवाजी के भागने में सहायता करने का आरोप लगाया और उसे दरबार में आने से मना किया। जयसिंह की असफलता का बहाना लेकर उसके स्थान पर दक्खिन में सुलतान मुअज्जम और यशवन्तसिंह भेजे गए। जयसिंह को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी गई किन्तु रास्ते में ही उनकी मृत्यु हो गई।[1] सम्राट् के शासन का यह अभिशाप था कि वह अपने सच्चे हितैषियों का अविश्वास करता था। थोड़े ही दिनों के लिए दिलेर खाँ मालवा भेजा गया। राजकुमार से उसकी पटरी नहीं खाती थी और यशवन्तसिंह भी उससे घृणा करता था किन्तु ईर्ष्यालु स्वभाव के औरङ्गजेब को उसका दक्षिण में रहना उपयुक्त लगा। सम्राट् बीजापुर पर आक्रमण करने को सोचता था किन्तु अपने साम्राज्य के उत्तरी भागों में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी। गर्ववश वह अपने पुत्र का अपमान नहीं चाहता था, किन्तु ईर्ष्यावश किसी सहायक को विजयलाभ करने योग्य सैन्यशक्ति भी सौंपना नहीं चाहता था।

---

[1] शिवाजी के भागने के बाद और देश लौटने तक जयसिंह के भय और दुश्चिन्ता का पारावार न था। उसको चारों ओर अँधेरा दिखाई देने लगा। उसकी बीजापुर की चढ़ाई व्यर्थ हुई, उसके बादशाह का और उसका बहुतसा द्रव्य मिट्टी में मिल गया जिसकी पूर्ति की कोई सम्भावना न थी। इसके अतिरिक्त यह आशङ्का भी बनी हुई थी कि बिगड़े हुए शिवाजी अपने देश लौट कर मुगलों से न मालूम किस प्रकार बदला ले बैठें। इन सब बातों से बढ़ कर चिन्ता उन्हें, बादशाह के सन्देह के कारण, अपने वंश की आशा कुमार रामसिंह के अपमानित और दण्डित होने की थी और यह हुआ भी। जयसिंह द्वारा पहले की अनेकों लड़ाईयाँ जीतना, सरकारी काम में अपने लाखों रुपये बरबाद करना, जिन्दगी-भर राजसेवा में खून बहाना इत्यादि सब बातें बेकार हुईं। दक्षिण की यात्रा और प्रशासन के बदले उन्हें अपमान मिला। बादशाह ने उन्हें अपने पद से हटा कर बुलवा भेजा। परिश्रम, हानि, चिन्ता और अपमान का मारा हुआ वह बूढ़ा राजपूतवीर रास्ते में बुर्हानपुर शहर में शरीर त्याग २८ अगस्त १६६६ को संसार की सब तकलीफों से मुक्त हो गया।—सरकारः शिवाजी, पृष्ठ ८४-८५।

अध्याय ७

(१६६७ ई० से १६६९ ई० तक)

सुलतान मुअज्जम की दक्खिन के राज्यपाल-पद पर पुनः नियुक्ति तथा यशवन्त सिंह की वहाँ उपस्थिति शिवाजी के अत्यन्त अनुकूल थी। यशवन्तसिंह सम्माननीय किन्तु अन्य राजपूतों की तरह अत्यन्त लोभी था। वह एक कट्टर हिन्दू था[१]। पहले उसने औरङ्गजेब का विरोध किया किन्तु बाद को विद्रोह-काल में वह उसकी तरफ हो गया। औरङ्गजेब उसके प्रति संशयालु था। सुलतान मुहम्मद मुअज्जम अच्छे स्वभाव का राजकुमार था। वह साहसी, उदार और विश्वासी था किन्तु आमोदप्रिय, मुक्तहस्त, सरलस्वभाव का, और यशवन्त सिंह से बहुत प्रभावित था।

शिवाजी ने मुक्तहस्त होकर स्वर्ण व्यय किया। शिवाजी ने सुलतान मुअज्जम को एक प्रार्थना पत्र दिया कि राजकुमार उसका मध्यस्थ हो। इस पत्र में शिवाजी ने अपनी सच्चाई और राजनिष्ठा का भी आश्वासन दिया। राजदरबार में भी प्रार्थना पत्र भेजे गए। अपनी सुविधा देख कर औरङ्गजेब ने उनकी प्रार्थनाओं को स्वीकार किया। सुलतान मुअज्जम ने शिवाजी को राजा की उपाधि[२] दी और शम्भाजी

[१] शिवाजी के नाम लिखे हुए दिनांक २४ फरवरी १६६८ के अपने पत्र में औरङ्गजेब ने शिवाजी को राजा शिवाजी लिखा है। किंकेड और पारस्निस ने इस पत्र का एक अंग्रेजी अनुवाद अपने इतिहास ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री आव द मराठा पीपल' के पृ० २२५ पर दिया है।

[२] जजिया के संबंध में औरङ्गजेब के नाम लिखा हुआ यशवन्त सिंह का पत्र शिवाजी की कृति के रूप में राजा कोल्हापुर के पास परिरक्षित है (डफ)। किन्तु यदुनाथ सरकार के अनुसार यह कृति नीलप्रभु मुन्शी की है जो शिवाजी के नाम से औरङ्गजेब के पास उसके अन्यायपूर्ण प्रजापीड़न के प्रतिवाद स्वरूप भेजी गई थी। औरङ्गजेब की भर्त्सना करते हुए शिवाजी ने लिखा था कि आप जजिया कर द्वारा राज्यकोष भरना चाहते हैं जो मेरे विरुद्ध युद्ध करने के कारण खाली हुआ है। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने सब धर्म-सम्प्रदायों के प्रति सर्वजनीन मैत्री की

को मन्सबदारी और बरार के जागीर की पुष्टि प्राप्त कराई। बरार के जागीर का प्रभार रावजी सोमनाथ को दिया गया जो वहाँ का मोकासादार बनाया गया। वह उपयुक्त सेवकों के साथ वहाँ पहुँचा। शम्भाजी अश्वारोहियों का एक दल लेकर औरङ्गाबाद में राजकुमार की सेवा में उपस्थित हुआ किन्तु अवस्था छोटी होने के कारण उसको उनके पिता के पास लौटा दिया गया। कड़तोजी गूजर जिनको शिवाजी ने प्रताप राव की उपाधि तथा अश्वारोहियों के सर-ए-नौबत (सेनापति) का पद प्रदान किया था इस टुकड़ी के दलपति बनाए गए। पूना, चाकन और सोपा जनपद शिवाजी को लौटाए गए किन्तु सिंहगढ़ और पुरन्दर के किले रोक रखे गए।

शिवाजी पर यह अनुग्रह सम्राट् ने क्यों किया इसका कोई कारण नहीं मालूम होता। सम्भवतः जैसा कि मराठी हस्तलेखों में लिखा है, प्रलोभन देकर अपने वश में करने के उद्देश्य से ऐसा किया गया था। किन्तु कोई ऐसा साक्ष्य नहीं है कि सुलतान मुअज्जम को यह रहस्य मालूम था, अथवा अपने पिता की इच्छानुसार उसने शिवाजी को पकड़वाने, साम्राज्य के असन्तुष्ट सामन्तों को प्रत्यक्ष करने और अपने पक्ष में प्राणोत्सर्ग का साहस करने वालों में अपने प्रति सन्देह और अविश्वास पैदा करने के लिए उसने एक बनावटी विद्रोह किया था। अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण के बिना ऐसा मानना उचित नहीं है।

नीति अपना कर सौजन्य और सुनाम रूपी अमरता प्राप्त की है। उनके शासन काल में अनेक देश और किले जीते गए। उनकी धन-सम्पत्ति दिनों दिन बढ़ती गई और ईश्वर के प्राणी शान्ति और निर्भयता की नींद सोए। किन्तु आप के शासन काल में बहुत से किले और प्रदेश आपके हाथ से निकलते जा रहे हैं क्योंकि मेरी ओर से उनके नाश और छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्न में कमी नहीं है। जनता कुचली जा रही है और राजस्व का दशांश भी कठिनता से वसूल होता है। प्रायः सारी प्रजा हिन्दू और मुसलमान भूख के मारे त्राहि-त्राहि कर रही है और आप निर्धन और अकाल के मारे हुए लोगों से जजिया ले रहे हैं। ईश्वर सब का मालिक है केवल मुसलमानों का ही नहीं। मस्जिद में उनके स्मरण के लिए अजान दी जाती है तो मन्दिर में उनकी खोज की व्याकुलता में घंटा बाजाया जाता है। अपने धर्म और कर्मकाण्ड के लिए कट्टरपन दिखाना एक नई रेखा खींच कर ईश्वर की भूल दिखाना है। यदि हिन्दुओं को डर दिखा कर ही आप का धर्म प्रमाणित होता है तो पहले महाराणा राजसिंह से जजिया वसूल कीजिए, फिर मुझसे जजिया वसूल करना कठिन न होगा।—सरकार : शिवाजी, पृ० १५३—६।

इस वर्ष के मध्य में आगरे में बीजापुर के प्रधानमंत्री शाह अब्दुल हुसेन कमाना के प्रयत्न से औरङ्गजेब और अली आदिल शाह के बीच में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार बीजापुर ने मुगल साम्राज्य को शोलापुर का किला तथा एक लाख अस्सी हजार पगोडा वार्षिक राजस्व प्रदान करने वाला प्रदेश दिया। शिवाजी यशवन्त सिंह और राजकुमार की उपेक्षा का आश्वासन पाकर बीजापुर से चौथ और सरदेशमुखी उगाहने वाले ही थे कि वहाँ के प्रधानमन्त्री अब्दुल मुहम्मद ने शिवाजी को तीन लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया। किन्तु शिवाजी से किए गए इस समझौते को बीजापुर में गुप्त रखा गया क्योंकि वहाँ के गर्वीले मुसलमान हिन्दुओं को कर देना अपना अपमान समझते थे। इसी प्रकार का एक समझौता गोलकुण्डा के कुत्बशाह ने शिवाजी से किया जिसके अनुसार उन्होंने पाँच लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

अब शिवाजी ने सम्पूर्ण कोंकण पर अधिकार करने की ओर ध्यान दिया। गोआ और जंजीरा उनके प्रथम लक्ष्य थे। किन्तु पुर्तगालियों को उनकी योजना का पता चल जाने से अत्यन्त प्रयास करने के बाद भी शिवाजी सुदृढ़ जंजीरा पर अधिकार न कर सके। सीदी ने बम्बई के अंग्रेजों से सहायता माँगी। शिवाजी १६६८ और १६६६ में अपने शासन की आन्तरिक व्यवस्था को पूरा करने और सुधारने में लगे रहे। शिवाजी की दूरदर्शिता ध्यान देने योग्य है कि उनकी बनाई हुई योजनाएँ तथा प्रबन्ध उनके देशवासियों की प्रतिभा के अनुकूल थे। उनके पदाति उनके शक्ति के केन्द्र थे और उनके किले उनके लूट को सुरक्षित रखने के स्थान थे। शिवाजी के पदाति घाट-माथा के मावले, और कोंकण के हेतकरी[1] थे। ये लोग अपने निजी हथियार रखते थे। शासन उनको केवल युद्ध सामग्री देता था। उनकी पोशाक में एकरूपता नहीं थी किन्तु वे साधारणतया आधी जाँघ तक की जाँघिया, एक लङ्गोट, एक पगड़ी और कभी २ एक सूती अध्धी पहनते थे। बहुतों के पास एक चदरा ही होता था। उनमें से अधिकांश आदमी अपने कमर में एक चदरा लपेटे रहते थे जो ओढ़ने के भी काम आता था। एक तलवार, एक ढाल, और एक बन्दूक उनके सामान्य शस्त्र थे। कुछ हेतकरियों के पास, विशेषकर सावंतवाडी पदातियों के पास एक विशेष प्रकार की बन्दूक थी। हर दसवें आदमी के पास एक धनुष और बाण था जो रात्रि आक्रमण और अभियानों में उपयोगी था। उस समय आग्नेय अस्त्रों

---

[1] हेतकरी मुख्यरूप से बन्धारी थे जिनमें और मराठों में एक स्पष्ट एकजातीय सम्बन्ध है। इनकी उपजातियाँ वही हैं जो मराठों की उपजातियाँ हैं, जैसे गावदे या गौड़, और शिन्दे, जाधव, कदम और चवाण।

के उपयोग का निषेध था। वे आरक्षित रखे जाते थे। हेतकरी अच्छे लक्ष्यभेदी थे। और मावले हाथ में तलवार लेकर जान पर खेल जाते थे। वे दोनों ही ढालू स्थानों पर असाधारण सरलता से चढ़ जाते थे और चट्टानों को सीढ़ी के सहारे आसानी से लांघते थे।

दस आदमियों के ऊपर नायक नाम का एक अधिकारी होता था और हर पचास आदमियों पर एक हवलदार। सौ आदमियों के ऊपर का अधिकारी जुमलादार कहलाता था और एक हजार का सेनापति एक हजारी कहलाता था। पाँच हजार आदमियों को अधीन रखने वाले अधिकारी भी होते थे। उनके और सर-ए-नौबत या प्रधान सेनापति के बीच में कोई पद श्रेणी नहीं थी।

अश्वारोही सेना दो प्रकार की थी—१. बारगीर और २. सिलाहदार[१]। सामान्यतया केवल शिवाजी के बारगीरों को घुड़सवारी के लिए राज्य से घोड़े मिलते थे। बारगीरों के दल को पागा या घरेलू सिपाही कहा जाता है। शिवाजी सिलाहदारों तथा ठीकेदारों के अश्वारोहियों की अपेक्षा इनका अधिक विश्वास करते थे। सिलाहदार अपने निजी घोड़े रखते थे। आज्ञा उल्लंघन करने वालों को भयभीत करने, तथा अपनी सूचना-प्रणाली को दृढ़ और दोषरहित करने के लिए शिवाजी पिछले दोनों प्रकार के अश्वारोहियों में एक अनुपात अपने पागा का मिला देते थे। इस सूचना-प्रणाली से अत्यन्त गुप्त परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने, अपहार रोकने, और विश्वासघात निष्फल करने में सहायता मिलती थी।

घुटने तक लम्बी, कसी जाँघिया, एक पगड़ी जिसकी एक तह बहुत से अश्वारोही ठुड्डी के नीचे से लाकर बाँधते हैं, एक सूती दोहरी अध्धी और कमर में लपेटा हुआ कपड़े का एक टुकड़ा, पेटी की अपेक्षा जिससे वे साधारणतया अपने तलवारों को लटकाए रहते हैं, मराठा अश्वारोहियों का सामान्य पहनावा है। वह एक तलवार और ढाल लिए रहता है। प्रत्येक दल में कुछ अनुपात में अश्वारोही बन्दूक लिए रहते हैं। भाला उनका जातीय शस्त्र है। भाला चलाने में तथा घोड़ों के नियन्त्रण में वे कलापूर्ण तथा दक्ष हैं। भाला चलाने वाले सामान्यतया एक तलवार और कभी २ एक ढाल रखते हैं। ढाल भारी होती है और भाला टूट जाने पर काम में आती है।[२]

---

[१] सिलाहदारों और उन सब अश्वारोहियों को जो पागा के नहीं थे अपना निजी हथियार रखना पड़ता था। पागा के सम्बन्ध में शिवाजी ने मितव्यय की एक अत्यन्त सावधान नियमावली बना रखी थी।

[२] मराठों के घोड़ों के जीन के अगले हिस्से में दो कपड़े के थैले जो डोरी से

पच्चीस अश्वारोहियों पर एक हवलदार, एक सौ पच्चीस पर एक जुमलादार और पाँच जुमलादारों या छः सौ पच्चीस अश्वारोहियों के ऊपर एक सूबेदार होता था। शिवाजी ने प्रत्येक सूबेदार के पास एक लेखाध्यक्ष और एक लेखापरीक्षक की नियुक्ति की थी और वे अनिवार्यतः ब्राह्मण या प्रभु होते थे। दस सूबेदार या छः हजार दो सौ पचास अश्वारोहियों पर जिनकी गणना केवल पाँच-हजार की जाती थी, पाँच हजारी होते थे। इनके साथ एक मजमुआदार या ब्राह्मण लेखापरीक्षक और एक प्रभु पञ्जीयक और लेखाध्यक्ष जो अमीन कहलाता था रहते थे। ये राजकीय भृत्य थे। इनके अतिरिक्त जुमलादार से ऊँचे प्रत्येक अधिकारी के पास एक या अधिक कारकुन थे जिनका वेतन वह स्वयं देता था, तथा कुछ अन्य भृत्य थे जो शासन से वेतन पाते थे। प्रधान सेनापति सर-ए-नौबत था। उसका स्थान पाँचहजारी के ऊपर था। अश्वारोही सेना तथा पदाति सेना के एक २ सर-ए-नौबत थे।

प्रत्येक जुमलादार सूबेदार और पाँचहजारी के पास सूचना लेखक तथा गुप्त सूचना देने वालों के अतिरिक्त स्वीकृत गुप्तचर थे। शिवाजी का प्रधान गुप्तचर बहिरजी नायक नाम का एक मराठा था। जैसा कि कुछ ब्राह्मण अनायास स्वीकार करते हैं, शिवाजी की कुछ खोजें जो देवी भवानी की बताई हुई कही जाती हैं इसी के कारण थीं।

मराठे, और सम्भवतः भारत के सभी निवासी, तन्द्रा और उदासीनता छोड़ कर कार्यरत हो जाते हैं, जब उन्हें अपने या दूसरों के आचरण सम्बन्धी कुछ भी दायित्व सौंपा जाता है। शिवाजी अपने जीवनक्रम के आरम्भ में प्रत्येक आदमी को स्वयं ही निरीक्षण कर नियुक्त करते थे। और उसकी निष्ठा और सद्चरित्र के लिए दूसरे व्यक्तियों को जो उनकी सेवा में थे प्रतिभू करते थे। इस प्रणाली से प्रायः प्रत्येक आदमी अपने कुछ साथियों का जिम्मेदार था। शिवाजी इस पद्धति पर बल देते थे यद्यपि यह औपचारिक था और सुगमता से कोई भी आदमी इस जिम्मेदारी की अवहेलना कर सकता था।

कभी २ मावले केवल निर्वाह के लिए अनाज पाने की शर्त पर भरती किए जाते थे। पदाति का नियमित वेतन एक से तीन पगोडा[1], बारगीर का दो से पाँच

कसकर बंधे होते हैं लटकते रहते हैं। मराठे इनमें खाद्य पदार्थ या लूट का माल रखते हैं। जीन के पिछले भाग में बाईं ओर एक तोबड़ा लटका रहता है जिसमें घोड़े की अगाड़ी और पिछाड़ी तथा उसके बाँधने की खूटियाँ रहती हैं।

[1] बीजापुरी पगोडा का मूल्य तीन से चार रुपये तक था।

पगोडा, और सिलाहदार का छः से बारह पगोडा मासिक था।[1] सब लूट और उपहार शासन की संपत्ति थी। इसको निश्चित समय पर शिवाजी की राजसभा में लाना पड़ता था। और प्रत्येक व्यक्ति अपनी उपलब्धियाँ, औपचारिक रूप से प्रदर्शित कर अर्पण करता था। उसे इसके बदले में कुछ आनुपातिक अंश मिलता था, प्रशंसा होती थी, विशिष्टता प्रदान की जाती थी, तथा ऊंचा पद प्राप्त होता था। मराठे आज भी 'शत्रु को लूटना' पद विजय के अर्थ में प्रयोग करते हैं। उनकी दृष्टि में यही विजय का एक मात्र वास्तविक प्रमाण है। अच्छे ऋतु में घोड़े, विशेष कर शिवाजी के आगे के इतिहास में, शत्रु-देश पर निर्वाह करते थे और वर्षा ऋतु में किले के अधीन की गोचर भूमि के समीप ठहराए जाते थे। उनके लौटने के पूर्व ही वहाँ की घास काट कर तथा अनाज निकाल कर किले में रख लिया जाता था। इस काम के लिए कुछ व्यक्ति नियुक्त होते थे जिनको वंशागत कर-मुक्त-भूमि प्रदान की जाती थी।

शिवाजी दशहरा बड़ी धूमधाम से मनाते थे। इस अवसर पर पूरी सेना इकट्ठा होती थी और उसका निरीक्षण होता था और हर एक सैनिक के सामान की परिगणना की जाती थी जिससे कि यह मिलान किया जा सके कि उसने क्या उपलब्धि की है या उसकी क्या क्षति हुई है। उसके क्षति की पूर्ति की जाती थी। उसके पास यदि कोई ऐसा माल निकलता था जिसका वह कोई संतोषजनक कारण नहीं दे सकता था तो वह जब्त किया जाकर शासन-कोष में रखा जाता था। इन सामानों में से जो २ सामान वह चाहता था उनका मूल्य देकर वह उनको ले सकता था। प्रतिवर्ष लेखा-संवरण किया जाता था और शासन पर निकलने वाली शेष रकम का या तो नकद भुगतान होता था या अधिकारी के पक्ष में राजस्व संग्राहकों के नाम प्राप्यक दिए जाते थे। किन्तु गऊ, कृषक और महिलाओं[2] को लूटने की

[1] पदाति के जुमलादार का वेतन सात पगोडा और अश्वारोही के जुमलादार का बीस पगोडा था। अश्वारोही दल के सूबेदार को पचास पगोडा और एक पालकी मिलती थी। पाँचहजारी को दो सौ पगोडा प्रतिमास के अतिरिक्त एक पालकी और आफताबगीर (धूप रोकने के लिए) मिलते थे।

[2] शिवाजी के ऐसे विचार होने पर भी मराठी सेनाओं की लूट और बलपूर्वक उगाही के कारण कृषक समुदाय की समृद्धि नहीं हुई। यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि शिवाजी के नियमों का बहुधा उल्लंघन होता था। शिवाजी के लिए यह असंभव था कि वे अपने सैनिकों और शिविर के आदमियों को वैयक्तिक लूट करने से रोक सकते। मराठा सेना के पीछे२ अशासकीय लुटेरों के दल चलते थे। मराठा सिपाही

पगोडा, और सिलाहदार का छः से बारह पगोडा मासिक था।[1] सब लूट और उपहार शासन की संपत्ति थी। इसको निश्चित समय पर शिवाजी की राजसभा में लाना पड़ता था। और प्रत्येक व्यक्ति अपनी उपलब्धियाँ, औपचारिक रूप से प्रदर्शित कर अर्पण करता था। उसे इसके बदले में कुछ आनुपातिक अंश मिलता था, प्रशंसा होती थी, विशिष्टता प्रदान की जाती थी, तथा ऊंचा पद प्राप्त होता था। मराठे आज भी 'शत्रु को लूटना' पद विजय के अर्थ में प्रयोग करते हैं। उनकी दृष्टि में यही विजय का एक मात्र वास्तविक प्रमाण है। अच्छे ऋतु में घोड़े, विशेष कर शिवाजी के आगे के इतिहास में, शत्रु-देश पर निर्वाह करते थे और वर्षा ऋतु में किले के अधीन की गोचर भूमि के समीप ठहराए जाते थे। उनके लौटने के पूर्व ही वहाँ की घास काट कर तथा अनाज निकाल कर किले में रख लिया जाता था। इस काम के लिए कुछ व्यक्ति नियुक्त होते थे जिनको वंशागत कर-मुक्त-भूमि प्रदान की जाती थी।

शिवाजी दशहरा बड़ी धूमधाम से मनाते थे। इस अवसर पर पूरी सेना इकट्ठा होती थी और उसका निरीक्षण होता था और हर एक सैनिक के सामान की परिगणना की जाती थी जिससे कि यह मिलान किया जा सके कि उसने क्या उपलब्धि की है या उसकी क्या क्षति हुई है। उसके क्षति की पूर्ति की जाती थी। उसके पास यदि कोई ऐसा माल निकलता था जिसका वह कोई संतोषजनक कारण नहीं दे सकता था तो वह जब्त किया जाकर शासन-कोष में रखा जाता था। इन सामानों में से जो २ सामान वह चाहता था उनका मूल्य देकर वह उनको ले सकता था। प्रतिवर्ष लेखा-संवरण किया जाता था और शासन पर निकलने वाली शेष रकम का या तो नकद भुगतान होता था या अधिकारी के पक्ष में राजस्व संग्राहकों के नाम प्राप्यक दिए जाते थे। किन्तु गऊ, कृषक और महिलाओं[2] को लूटने की

[1] पदाति के जुमलादार का वेतन सात पगोडा और अश्वारोही के जुमलादार का बीस पगोडा था। अश्वारोही दल के सूबेदार को पचास पगोडा और एक पालकी मिलती थी। पाँचहजारी को दो सौ पगोडा प्रतिमास के अतिरिक्त एक पालकी और आफताबगीर (धूप रोकने के लिए) मिलते थे।

[2] शिवाजी के ऐसे विचार होने पर भी मराठी सेनाओं की लूट और बलपूर्वक उगाही के कारण कृषक समुदाय की समृद्धि नहीं हुई। यदुनाथ सरकार लिखते हैं कि शिवाजी के नियमों का बहुधा उल्लंघन होता था। शिवाजी के लिए यह असंभव था कि वे अपने सैनिकों और शिविर के आदमियों को वैयक्तिक लूट करने से रोक सकते। मराठा सेना के पीछे२ अशासकीय लुटेरों के दल चलते थे। मराठा सिपाही

या किसी भी दशा में पीड़ित करने की मनाही थी। केवल उन धनी मुसलमानों को या उनके हिन्दू नौकरों को जो छुटकारा दे सकते थे बन्दी किया जाता था। युद्ध अभियान में किसी भी महिला को अपने साथ ले जाने पर सैनिक मृत्युदण्ड का भागी होता था।

प्रत्येक दोष को तथा अपहार को रोकने में शिवाजी की सूचना-व्यवस्था का सबसे बड़ा हाथ था। वे दण्ड भी कठोर देते थे। जो अधिकारी और सैनिक विशिष्टता प्रदर्शित करते थे या आहत या किसी प्रकार से क्षतिग्रस्त होते थे, उनकी पदोन्नति, और क्षतिपूर्ति की जाती थी या सम्मान प्रदान किया जाता था। शिवाजी को जागीरप्रथा पसन्द नहीं थी। उन्होंने कुछ-एक की अभिपुष्टि की किन्तु विरले ही किसी को नई सैनिक जागीर दी। वे केवल किलों के स्थापनव्यय वहन के लिये ही जागीर लगाते थे। उन्होंने इनेगिने ही कुछ व्यक्तिगत अभिहस्तांकन किए। गुणी पुरुषों को तथा धर्मकार्य के लिए उन्होंने भूमिपुरस्कार दिए क्योंकि भूमिदान, विशेष कर ब्राह्मणों को, सब दानों में विशिष्ट है।[1]

शिवाजी अनुशासन का बहुत ही ध्यान रखते थे। किसी भी दशा में बड़ों की आज्ञा का तुरन्त पालन करना आवश्यक था। किलों में इस नियम का कड़ाई से पालन किया जाता था। किले का शासन हवलदार[2] के हाथ में था और उसके अधीन एक या अधिक सर-ए-नौबत होते थे। पुरन्दर, रायगढ़ और पन्हाला सदृश बड़े किलों के हर दिशा में एक २ सर-ए-नौबत रखे जाते थे। प्रत्येक किले में एक मुख्य लेखक तथा एक सेनारसदविभागाध्यक्ष होता था। मुख्य लेखक ब्राह्मण होता था और सबनीस[3] कहलाता था। रसद विभाग का अध्यक्ष सामान्यतया प्रभु जाति

का साधारण कर्तव्य लूट करना था। इसीके तर्कसंगत उपसिद्धान्तरूप पिण्डारी पैदा हुए।—सरकार :-शिवाजी, पृ० १८६।

[1] जागीर और इनाम भूमि, पूर्णतः या अंशतः, कर-विमुक्त थीं और राज्य के प्रति की हुई सेवाओं के लिए तथा मन्दिरों, विद्वानों आदि को दी जाती थीं।

[2] किले के वे सेनानायक जो राजाज्ञा से नियुक्त किए जाते थे किलेदार कहलाते थे। किले के वे सेनानायक जो राजाज्ञा से नियुक्त नहीं होते थे हवलदार कहलाते थे।

[3] कुछ कायस्थ प्रभुओं का उपकुल नाम सबनीस है, इससे प्रतीत होता है कि कुछ सबनीस प्रभु थे।

में से लिया जाता था और कारकानीस (कारखाना-नवीस) कहलाता था। किले में अन्दर आने और जाने, चक्कर, पहरा, और परिरक्षा, जल की रखवाली, अनाज भाण्डार और युद्ध-सामग्री सम्बन्धी नियम अत्यन्त व्यापक थे। प्रत्येक विभाग के अधिकारी को उसके पथप्रदर्शन के लिए स्पष्ट नियमावली दी जाती थी जिसके पालन में किंचिन्मात्र भी ढिलाई असह्य थी। कठोर मितव्ययता शिवाजी की व्यय-सम्बन्धी आज्ञाओं की विशेषता थी।

रक्षक सैन्यदल में कभी २ कुछ सामान्य पदाति होते थे किन्तु इनके अतिरिक्त हर किले में अलग २ और पूर्णसंस्थापन होता था जिसमें ब्राह्मण, मराठे, रामोसी, महर और माँग होते थे। ये सब गढ़करी[१] कहलाते थे। इनका निर्वाह हर एक किले के समीप के करमुक्त क्षेत्रों के स्थायी अर्पण से होता था जो किले की रखवाली करते रहने पर वंशागत था। रामोसी, महार और माँग चौकियों में काम करते थे। वे सूचना लाते थे, सब रास्तों की निगरानी रखते थे और पूँछ-ताँछ करने वालों को भुलावा देते थे और छितरे हुए शत्रुओं को रोक लेते थे यह संस्थापन नया और कार्यशील था और इससे शिवाजी का उद्देश्य बड़ी खूबी से पूर्ण होता था और यह संस्था यहाँ के निवासियों की प्रतिभा के अनुकूल थी। गढ़करी अपनी बोलचाल की भाषा में किले को माता कहते थे जो उनको भोजन देती थी। अन्य लाभों के साथ एक लाभ यह भी था कि अनुभवी या गुणी सैनिकों के लिए इससे अच्छी योजना नहीं बनाई जा सकती थी।

शिवाजी की राजस्व व्यवस्थाएँ दादाजी कोंणदेव की व्यवस्थाओं पर आधारित थीं। करनिर्धारण उपज की वास्तविक स्थिति पर किया जाता था, जिसके आनुपातिक विभाजन में से $\frac{3}{5}$ अंश कृषक को और $\frac{2}{5}$ अंश शासन को मिलता था। किसी प्रदेश पर शिवाजी का स्थायी अधिकार हो जाने पर, हर प्रकार के सैनिक-अंशदान रोक दिए जाते थे, राजस्व की हर प्रकार की ठीकेदारी बन्द कर दी जाती थी और स्वयं शिवाजी द्वारा नियुक्त अभिकर्त्ता राजस्व संग्रह करते थे।

छोटे जनपद का प्रभार एक तरफ़दार या तालुक़दार पर होता था। उसके नीचे कारकुन होते थे जो दो या तीन गाँवों की देखभाल करते थे। और वे या तो ब्राह्मण या प्रभु होते थे। हरएक कारकुन के साथ एक मराठा हवलदार[२] होता था। अधिक बड़े प्रदेश पर एक सूबेदार[२] या मामलतदार[३] होता था। जिसके अधीन एक

---

[१] गढ़करी का अर्थ है गढ़ के निवासी। [२] ये दोनों असैनिक अधिकारी थे।
[३] मामलतदार का अर्थ तहसीलदार या संग्राही है। यह मुआमला (मामला;

या अधिक किले होते थे और इसमें वह अनाज और धन इकट्ठा करता था। शिवाजी देश के प्रबन्ध में देशमुखों या देशपाण्डेयों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे। और यह भी नहीं चाहते थे कि वे अपना प्राप्य एकत्रित करें जब तक कि वह कूत न लिया जाय और उसके लिए वार्षिक आज्ञा न निकल जाय। पटेल, खोटे, और कुलकर्णियों की कठोरता से जाँच पड़ताल होती थी और शिवाजी का शासन सामान्य कृषकों में जनप्रिय था। शिवाजी ग्राम और जनपद के अधिकारियों के प्रति सदैव ईर्ष्यालु थे और ये अधिकारी शासन से अप्रसन्न रहे होते यदि उनको सैनिक सेवा में भरती हो जाने से उपलब्ध लाभ न हुए होते।

शिवाजी के बाद मराठा शासन के ब्राह्मण मन्त्रियों ने सैनिक और नागरिक सेवा में लगे हुए लोगों को वेतन के बदले गाँवों के राजस्व के हिस्सों का स्थायी अर्पण देने की प्रथा चलाई। शिवाजी इस प्रथा का विरोध करते थे क्योंकि इससे जनता पर सीधा अत्याचार होने का डर था और इससे प्राधिकार के विभाजन का और प्राधिकार के विभाजन से शासन के निर्बल होने का, और ग्राम और जनपद अधिकारियों का शासन का विरोध करने का भय था, जैसा कि वे बहुधा बीजापुर शासन का करते थे। शिवाजी ने सब गाँवों की दीवारों को गिरवा दिया और अपने प्रदेश में किसी भी स्थान पर जहाँ उनकी सेना ठहरी न हो किलेबन्दी करने की मनाही कर दी।

धार्मिक संस्थाओं की बड़ी सावधानी से रक्षा की गई और जिन मन्दिरों के निर्वाह का प्रबन्ध नहीं था उनको पर्याप्त अर्पण प्रदान किए गए किन्तु वहाँ के प्रभारी ब्राह्मणों को व्ययलेखा रखना पड़ता था। कब्रों, मस्जिदों और सन्तों के सम्मान में बनाए गए स्मृतिचिह्नों के निर्वाह के लिये मुसलमान शासन से नियत किए हुए किसी भी भत्ते को शिवाजी ने कभी भी विविक्त नहीं किया।

शिवाजी के राजस्व नियम सरल और कुछ बातों में विवेकपूर्ण थे। किन्तु यह असम्भव मालूम पड़ता है कि उनके जीवन में, इन नियमों के कारण, उतनी उन्नति तथा जनसंख्या में उतनी वृद्धि हुई जितने की उनके देशवासी उनको श्रेय देते हैं। उनके जनपद बहुधा लूटमार से अरक्षित थे और उनके पास इनका प्रबन्ध करने के लिए कभी भी पर्याप्त समय नहीं रहा। मुसलमान लेखकों तथा एक तत्कालीन अँग्रेज[1]

झगड़ा, विवाद) शब्द से बना है इसका शुद्ध अर्बी रूप मुआमलतदार है।—ज्ञान शब्द कोश, पृ० ६३३ और ६४४।

[1] ग्रान्ट डफ द्वारा उल्लिखित वर्णन फ्रयर कृत न्यू एकाउन्ट आव ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया, पृष्ठ १४६ में है।

यात्री फ्रयर के अनुसार उनका प्रदेश अत्यन्त शोचनीय दशा में था। मुसलमान लेखकों ने उन्हें मात्र एक लुटेरे और विनाशक के रूप में चित्रित किया है। किन्तु बीजापुर से छीने हुए जनपदों ने जिनका प्रबन्ध कृषकों या शासन के प्रत्यक्ष अभिकर्त्ताओं के हाथ में था इस परिवर्तन से सम्भवतः पर्याप्त लाभ उठाया।

व्यवहारवाद के लिये पंचायतें थीं। सैनिकों के विवाद का निर्णय उनके अधिकारी करते थे। शिवाजी की दण्डविधि शास्त्रों पर आधारित थी। उनके पूर्व के शासकों ने कुरान के सिद्धान्तों को प्रचलित किया था। लम्बे समय तक उन नियमों के प्रचलित रहने से वे नियम जनता में स्थायी हो गये थे। इसी कारण हिन्दूविधि और मराठा चलन में अन्तर है।

शासन सञ्चालन में सहायता देने के लिये शिवाजी ने आठ प्रधान पद स्थापित किए। उन पदों तथा उन पदों पर आसीन व्यक्तियों के नाम ये हैं:

१. पेशवा (मुख्य प्रबन्धक या प्रधानमन्त्री)। इस पद पर मोरो पंत (मोरेश्वर त्रिमल पिङ्गले) थे।

२. मज्जिमदार (मजमुआदार) (महावित्त-अधीक्षक तथा महालेखा परीक्षक)। उनके नागरिक कर्तव्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे, और उनका संस्थापन अवश्य ही विस्तृत था। इस पद पर कल्याणी प्रदेश के राज्यपाल आबाजी सोनदेव थे।

३. सबनीश (शुरूनवीस) महाअभिलेखपाल, पत्रव्यवहार-विभाग के अधीक्षक, सब पत्रों के परीक्षक)। समस्त विलेख और अनुदान सर्वप्रथम उनके खातों में चढ़ाए जाते थे और उनके वैध होने के लिए यह जरूरी था कि उनके द्वारा किए गए परीक्षण तथा प्रविष्टि का साक्षीकरण हो। अन्नाजी दत्तो इस पद पर थे।

४. वङ्कानीस (वकाए नवीस)। यह अधिकारी निजी वृत्तपत्र, अभिलेखों और पत्रों को रखता था। वह राजपरिवार-सेना तथा संस्थापन का अधीक्षक था। इस पद पर दत्ताजी पन्त थे।

५. सरनौबत (सर-ए-नौबत) (सेनापति)। दो सर-ए-नौबत थे: १. प्रताप राव गूजर अश्वारोहियों के, और २. यशाजी कंक पदातियों के।

६. दबीर (परराज्य-सचिव)। यह दूसरे राज्यों के दूतों तथा कार्यों का प्रभारी था। इस पद पर सोमनाथ पन्त थे।

७. न्यायाधीश (न्यायिक मामलों के अधीक्षक)। नीराजी रावजी और गोमाजी नायक इस विभाग का प्रबन्ध करते थे।

८. न्यायशास्त्री (हिन्दूविधि और शास्त्रों के विवेचक)। धर्म, दण्डविधि

तथा विज्ञान, विशेषकर न्यायिक-फलितज्योतिष से सम्बन्धित सब कार्यों का प्रभार इस पद पर था। इस पद पर शम्भा उपाध्याय थे। बाद को इस पद पर रघुनाथ पन्त[1] नियुक्त किए गए।[2]

न्यायाधीश और न्यायशास्त्री प्रधानों के अतिरिक्त इन नागरिक-पदों के शेष प्रधान सैनिक-नेता भी थे और उनको बहुधा अपने निर्धारित कामों की देखरेख करने का समय नहीं मिलता था। इसलिए इन सबों के पास सहायक थे जो कारबारी कहलाते थे और उनको बहुधा सार्वजनिक अभिलेखों पर अपने प्रधान की मोहर या चिह्न लगाने का अधिकार मिलता था। जब उनको ऐसा अधिकार मिलता था तब वे मुतालिक कहलाते थे। प्रत्येक विभाग और प्रत्येक जनपद संस्थापन में आठ अवर अधिकारी थे जिनके अधीन बहुत से सहायक होते थे। इन अधिकारियों के नाम ये हैं :

१. कारबारी, मुतालिक (दीवान)।

२. मजमुआदार (लेखानिरीक्षक और लेखापाल)।

३. फड़नीस या फड़नवीस (सहायक लेखानिरीक्षक और लेखापाल)।

४. सबनीस (लेखक) कभी २ दफ़्तरदार कहा जाता था।

५. कर्कानीस (कारखाना-नवीस) (सैन्य के खाद्य-सामग्री का अधिकारी)।

६. चिटनीस (चिटनवीस या पत्रव्यवहार लेखक)।

७. जमादार (नकदी को छोड़ कर शेष सब मूल्यवान् वस्तुओं का प्रभारी कोषाध्यक्ष)।

८. पोटनीस (रोकड़िया)।

शिवाजी अपना एक निजी कोषाध्यक्ष, एक चिटनीस और फड़नीस तथा एक फारसीनवीस रखे थे। उनका चिटनीस बालाजी अवजी नाम का एक प्रभु था जिसकी विदग्धता और बुद्धिमत्ता बम्बई स्थित अँग्रेज शासन ने उस समय अभिलिखित किया जब वह एक कार्य से वहाँ भेजा गया था।

---

[1] रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री और रघुनाथ पन्त हनमन्ते अलग २ व्यक्ति हैं। सरदेसाई के अनुसार सुमन्त (दबीर) रामचन्द्र त्रिम्बक थे और अमात्य (मजमुआ-दार) रामचन्द्र नीलकण्ठ थे।

[2] इन पदों के संस्कृत नाम ये थे : १. मुख्य प्रधान। २. अमात्य। ३. सचिव। ४. मन्त्री। ५. सेनापति। ६. सुमन्त। ७. न्यायाधीश। ८. पण्डित राव (दानाध्यक्ष)।

शाहजी के मुख्य प्रबन्धक का एक निकट सम्बन्धी बालकिशन पन्त हनमन्ते शिवाजी का फड़नीस था। वह बात ध्यान देने योग्य है कि, क्योंकि इससे मालूम होता है कि सम्बन्ध बना रहा, उसका कोषाध्यक्ष चमरगुण्डी के शेषनायक पुण्डे का पौत्र था। यह वही आदमी है जिसके पास शाहजी के विवाह के पहले मल्लोजी भोसले ने रुपया जमा किया था।[1]

---

[1] ऐसे थे शिवाजी के राजनीतिक आदर्श कि आज भी हम प्रायः बिना किसी परिवर्तन के उनको ग्रहण कर सकते हैं। जनता में शान्ति, व्यापक सहिष्णुता, सब वर्णों और सम्प्रदायों के लिए समान अवसर, प्रशासन की कल्याणकारी, सक्रिय और शुद्ध प्रणाली, व्यापार वृद्धि के लिए नौ-सेना और जन्मभूमि की रक्षा के लिए प्रशिक्षित सैनिक-शक्ति का आदर्श उन्होंने अपने सामने रखा। एकान्त ध्यानावस्था द्वारा नहीं बल्कि कार्य द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय-विकास का प्रयास किया। प्रत्येक योग्य आदमी को चाहे वह महाराष्ट्र का रहा हो या भारत के दूसरे प्रदेश से आया हो विश्वास था कि शिवाजी द्वारा उसको कोई ऐसा उपयुक्त कार्य मिलेगा जिससे उसकी आन्तरिक शक्ति को कार्य करने का तथा राज्य का हितसाधन करते हुए विशिष्टता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होगा। शिवाजी के प्रशासन की क्रियाएँ बहुमुखी थीं जिससे जनता पूर्ण और विभिन्न प्रकार के विकास करने में समर्थ हुई। आजकल के समस्त आधुनिक सभ्य राज्यों का भी ऐसा ही उद्देश्य है। एक व्यक्ति की मूलशक्ति से यह सब राष्ट्रीय प्रसार हुआ। शिवाजी नए महाराष्ट्र के शक्ति-स्रोत के केन्द्र थे। प्रत्येक मनुष्य का चरित्र और योग्यता को शीघ्रता से परखने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। वे स्व-शिक्षित व्यक्ति थे······उनकी प्रशासकीय और सैनिक प्रणालियाँ उनकी अपनी ही सृष्टि थीं और उनके देश और युग के पूर्णतया उपयुक्त थीं। प्रत्येक चीज उनके हृदय और मस्तिष्क से निकली थी······वह न केवल मराठा राष्ट्र के निर्माता थे बल्कि मध्ययुगीन भारत के सब से महान् निर्माणकारी प्रतिभावान् व्यक्ति थे। राज्यों का पतन होता है, साम्राज्य छिन्न-भिन्न होते हैं, राजवंश समाप्त होते हैं, किन्तु शिवाजी के तुल्य वास्तविक 'वीर राजपुरुष' की स्मृति समस्त मानव के लिए सर्वोत्कृष्ट कार्यों के निमित्त, हृदय को अनुप्राणित, कल्पना को जाग्रत्, और अनुवर्ती युगों के मस्तिष्क को प्रेरित करने के लिए एक अक्षय ऐतिहासिक उत्तराधिकार के रूप में राष्ट्र की आशा का स्तम्भ, विश्वकामना का केन्द्र रहती है। सन्त रामदास के शब्दों में 'छत्रपति शिवाजी कीर्ति रूप हैं'।—यदुनाथ सरकार : हाउस आव शिवाजी, पृ० ११४-१५

अध्याय ८

(१६७० ई० से १६७६ ई० तक)

१६७० ई०—शिवाजी की प्रत्यक्ष निष्क्रियता से तथा बीजापुर राज्य और मुगलों की सन्धि से दक्खिन में चिर-अज्ञात शान्ति की आशा हुई थी। लोगों की यह धारणा हुई थी कि अब तक की उपलब्धियों से सन्तुष्ट हो कर या यह समझ कर कि वे शाही सेना से पार न पा सकेंगे शिवाजी लूटमार से अपना हाथ खींच लेंगे और मुगलों का लोहा मानने वाले लोगों के व्यवहारानुसार मुगल राज्यपाल को उपहारें देकर उसकी कृपा प्राप्त करेंगे। इस बात की काफी चर्चा थी कि सुलतान मुअज्जम और यशवन्त सिंह दोनों ही शिवाजी से बड़ी २ रकम पाते हैं। औरङ्गजेब के कानों तक भी यह बात पहुँची। उन्हें अपनी उग्र अप्रसन्नता का भय दिखाते हुए सम्राट् ने शिवाजी, प्रतापराव गूजर, तथा अन्य अनेक प्रमुख अधिकारियों को पकड़ने का एक अलङ्घनीय आदेश भेजा। सम्राट् की आज्ञा पहुँचने के पहले ही सुलतान मुअज्जम को यह बात मालूम हो गई थी। उसने चुपचाप प्रतापराव गूजर को सावधान किया। प्रतापराव शिवाजी के दूत नीराजी रामजी को साथ लेकर, घोड़े पर सवार हो कर उसी रात भागा और सुरक्षापूर्वक पूना पहुँचा। सुलतान मुअज्जम ने उनका पीछा करने के लिए एक सैनिक टुकड़ी भेजी। यदि वह ऐसा न करता तो सम्राट् को मुँह दिखाने योग्य भी न रहता। अपने प्रति औरङ्गजेब का निश्चित शत्रुभाव देखकर शिवाजी ने शीघ्र ही अपने स्वाभाविक ऊर्ज का परिचय दिया। शिवाजी ने सिंहगढ़ और पुरन्दर किलों को जिसमें सशक्त राजपूतदल उपस्थित थे लेने का निश्चय किया। सिंहगढ़ एक अत्यन्त दुर्धर्ष किला था जिसका किलेदार अत्यन्त प्रख्यात सैनिक उदयभान था और यह किला अजेय समझा जाता था। अतः यहाँ के सैनिक प्रमादी हो गए थे। तानाजी मालूसरे ने एक हजार मावलों को चुनकर तथा अपने छोटे भाई को साथ लेकर इस साहसिक अभियान की जिम्मेदारी ली। विभिन्न मराठी अभिलेखों में इस अभियान का विशद वर्णन दिया हुआ है।

सिंहगढ़ महान् सह्याद्रि श्रेणी के पूर्वी ओर उस स्थान के समीप स्थित है जहाँ से पुरन्दर पर्वत की शाखाएँ फूट कर दक्खिन में प्रवेश करती हैं। मात्र पूरब और पश्चिम से, अत्यन्त ऊँचे और सकड़े सेतुओं से होकर ही इस दुर्ग में प्रवेश पाना

शक्य है। इसके उत्तर और दक्षिण की ओर भयंकर खड्ड हैं। इस भयंकर पर्वत में प्रायः आधे मील की लम्बी चढ़ाई है। इस चढ़ाई के बाद चालीस फीट से भी अधिक ऊँची कसौटीपत्थर की एक वृहत् खड्डयुक्त दीवार है। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त वहाँ पर पत्थर की एक सुदृढ़ प्राचीर है जिसमें अनेक मीनारें हैं। किले का आकार त्रिकोण है और इसका भीतरी घेरा दो मील से अधिक है। इसका बाहरी भाग प्रत्येक ओर भीमकाय व्याघात सा प्रतीत होता है। फाटकों को छोड़ कर किसी ओर से इसमें प्रवेश पाना शक्य नहीं प्रतीत होता। स्वच्छ आकाश में इसकी चोटी से पूरब की ओर संकीर्ण किन्तु सुन्दर नीरा-घाटी दिखाई देती है। उत्तर की ओर एक विस्तृत मैदान है जिसके अग्रभाग में पूना स्थित है, जहाँ शिवाजी ने अपनी युवावास्था व्यतीत की थी। दक्षिण और पश्चिम की ओर लुढ़कते हुए, पर्वताकार अपरिमित मेघ समूह आकाश में लुप्त या दूर क्षितिज में समाए हुए दिखाई पड़ते हैं। इसी ओर रायगढ़[1] है। इसी स्थान से तानाजी मालूसे के नेतृत्व में एक हजार चुने हुए मावलों ने विभिन्न मार्गों से जिससे मात्र वे ही परिचित थे सिंहगढ़ पर अभियान करने के लिए प्रस्थान किया था। मराठी हस्तलेखों के अनुसार 'यह माघकृष्ण नवमी की रात्रि थी'। तानाजी ने अपने आदमियों को दो भागों में बाँटा जिनमें से आधे कुछ दूर ठहरे कि आवश्यकता होने पर आगे बढ़ेंगे। और आधे आदमी चट्टान के तलेटी में छिपे। चट्टान के एक ऐसे स्थान पर जहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन था, और जहाँ किसी के उपस्थिति की कम से कम संभावना थी एक आदमी चढ़ा और शीघ्रता से रस्सियों की एक सीढ़ी बनाई। इसके सहारे एक-एक मावले चढ़े और दुर्ग के अन्दर पहुँच कर लेट गए। मुश्किल से तीन सौ मावले किले के अन्दर पहुँचे ही थे कि कुछ ऐसा हुआ कि संकट-नाद किया गया और रक्षक सैन्यदल का ध्यान उस ओर खिंचा जिधर से मावले चढ़ रहे थे। स्थित का पता लगाने के लिए एक रक्षक सैनिक आगे बढ़ा। किन्तु किसी मावले धनुर्धर के एक सांघातिक बाण ने उसको सदा के लिए शांत कर दिया। फिर भी उनके आवाजों के हल्ले और हथियारों की ओर की गई दौड़ से तानाजी को आक्रमण की सफलता की आशा हुई। जिस ओर से आवाजें आ रही थीं उसी ओर धानुष्कों ने बाण चलाए। नीले दीपकों के प्रकाश तथा रक्षकसैनिकों द्वारा प्रदीप्त अनेक मशालों के उजेले में राजपूत दिखाई

[1] यहाँ पर राजगढ़ होना चाहिए जो सिंहगढ़ से केवल १५ मील पर है। प्रतीत होता है उस समय शिवाजी राजगढ़ में थे जहाँ से अग्निलपट स्पष्टतया दिखाई पड़ी होगी। सिंहगढ़ से रायगढ़ दिखाई नहीं पड़ता और लगभग ३० मील दूर है।

दिए जो शस्त्रों से लैस हो रहे थे। किन्तु आक्रामक भी छिपे न रह सके। घनघोर मुठभेड़ हुई। यद्यपि असमय में ही मावलों की उपस्थिति प्रकट हो गई थी, और गिनती में उनसे कहीं अधिक शत्रु उनका सामना कर रहे थे, फिर भी वे आगे बढ़े। किन्तु तानाजी मालूसे के धराशायी होने पर मावलों के पैर उखड़ गए और वे जिधर से सीढ़ी लगा कर चढ़े थे उसी ओर भागे। किन्तु उसी समय तानाजी के छोटे भाई सूर्याजी आरक्षित सैन्यदल लेकर वहाँ आ पहुँचे। भगोड़ों को एकत्रित किया और उनको ललकारा कि उनमें से कौन ऐसा है जो महरों द्वारा गड्ढे में फेंके जाने के लिए अपने पिता के अवशेष को छोड़ कर भागेगा। रस्सियाँ तोड़ दी गई हैं, और यही समय है कि वे अपने को शिवाजी के मावले सिद्ध करें। यह आह्वान, तानाजी की मृत्यु, अपने साथियों का आगमन, और एक नेता की उपस्थिति ने उनके अन्दर ऐसी दृढ़ता भरी कि उनके वार का सामना करना सम्भव न था। 'हर हर महादेव'[1] की गर्जना करते हुए, वे शत्रुदल पर जी-जान से टूट पड़े। और शीघ्र ही किले को हस्तगत किया। उनके कोई तीन सौ आदमी हताहत हुए। प्रातः होने पर ज्ञात हुआ कि विपक्षदल के नेता को मिलाकर पाँच सौ पराक्रमी सैनिक आहत या वीरगति को प्राप्त हुए। दो चार ने जो छिपे थे आत्म-समर्पण किया। किन्तु प्राणों की चिन्ता न कर कई सौ राजपूत नीचे कूदे जिनमें से अनेकों की हड्डियाँ चूर २ हो गईं।

अभियान की सफलता की सूचना शिवाजी को पूर्व योजनानुसार एक छाए हुए घर में आग लगा कर दी गई। किन्तु तानाजी मालूसे की मृत्यु से शिवाजी बहुत खिन्न हुए और उन्होंने कहा कि 'किला तो मिल गया पर सिंह खो गया'। शिवाजी ने इस अवसर पर किराए के प्रत्येक मावले सैनिक को एक चाँदी का कड़ा या कङ्गन दिया तथा अधिकारियों को पदानुसार पुरस्कृत किया। यह किला सूर्याजी की देखरेख में रखा गया। एक महीने बाद उन्होंने सीढ़ी लगाकर नाम मात्र अवरोध के बाद पुरन्दर को भी अपने अधिकार में किया।

मार्च

कोंकण में स्थित माहुली किले ने मराठों के दाँत खट्टे किए। इस अभियान में मोरो पन्त की पराजय हुई और एक हजार सैनिक काम आए किन्तु वह घेरा डाले ही रहा। अन्त में दुर्गरक्षकों को दो महीने तक दृढ़ता से सामना करने के बाद किले को समर्पण करना पड़ा। करनूल, कल्याण-प्रदेश और लोहगढ़ पर भी अधिकार किया गया। शिवनेर के विरुद्ध अभियान असफल रहा। शिवाजी की देखरेख में

[1] मावलों का युद्धघोष श्री महादेव था।

जंजीरा पर घेरा डाला गया। शिवाजी १६६१ से ही इस काम के लिए तोपें ढलवा रहे थे। इस चढ़ाई में उन्होंने अपनी पूरी ताकत लगा दी। अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर शिवाजी ने किसी तरह फतह खाँ को अपनी ओर कर लिया। किन्तु उसके अधीनस्थ तीन हबशी शिवाजी के लिए कंटक थे। वे कट्टर मुसलमान थे और मराठा नाम से चिढ़ते थे। उन्होंने अपनी सुरक्षा को खतरे में देखकर और अपने देशवासियों की सम्मति प्राप्त कर फतह खाँ को कारावास में बन्द कर दिया। वे अपनी जागीर तथा बीजापुर बेड़े को शाही प्राधिकार में रखने को प्रस्तुत हुए, यदि सूरत का मुगल राज्यपाल उनका पक्ष ग्रहण करे। सीदी सम्बल, सीदी याकूत और सीदी खैरो—ये तीनों हबशी विरोधी थे। अन्तिम दो ने सीदी सम्बल को अपना नेता चुना। सूरत के अधिकारी ने उनके प्रस्तावों को मान लिया तथा औरङ्गजेब ने उन शर्तों की पुष्टि की और प्रधान सीदी की उपाधि वजीर से याकूत खाँ कर दी।[1]

अक्टूबर ३—शिवाजी ने पन्द्रह हजार आदमियों को लेकर सूरत में प्रवेश किया। कुछ दिन पहले शिवाजी की लूट के भय से वहाँ एक रक्षकसैन्यदल रखा गया था किन्तु अकस्मात् या जानबूझकर यशवन्त सिंह ने या राजकुमार ने इस रक्षकदल को वहाँ से वापस बुला लिया था। दुर्ग में केवल कुछ सौ आदमी बचे थे। तीन दिन तक आराम से शहर की लूट हुई। स्ट्रेन्सह्याम मास्टर के नेतृत्व में अंग्रेजों ने अपनी प्रतिरक्षा की, और अनेक मराठों को[2] अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। डच कारखाना सुनसान स्थान पर था इससे बच गया। फ्रांसीसियों ने शिवाजी के सैनिकों को एक तातारी राजकुमार पर आक्रमण करने के लिए कारखाने से होकर जाने दिया और एक घृणित तटस्थता का परिचय दिया। यह राजकुमार मक्का की तीर्थयात्रा से लौटा था। इस लूट में शिवाजी को मूल्यवान् वस्तुएँ प्राप्त हुईं।[3]

---

[1] इस पर बीजापुर का नियन्त्रण ढीला था। सीदी सम्बैल १६७१ से बेड़े का नेता था। 'जैसे घर का चूहा, सीदी लोग भी ठीक उसी प्रकार के बैरी थे।' जहाज में चढ़ कर जिधर चाहते उधर उतर कर गाँव लूटते और प्रजा को दास बनाते थे।

[2] केवल ५० अँग्रेज थे। अनेक सैनिक उनके बन्दूकों की अचूक गोलियों के शिकार हुए।

[3] अँग्रेज व्यापारियों के अनुसार, 'यह अपने ही पुत्रद्वारा पदच्युत किया हुआ काशगर का भूतपूर्व राजा था'। शिवाजी ने इसके निवासस्थान पर सोने, चाँदी, और घरेलू बर्तन, एक स्वर्ण पलंग तथा अन्य मूल्यवान् सामान के रूप में एक विशाल कोष प्राप्त किया। सूरत से मराठों के चले जाने के बाद शहर के गरीबों ने मकानों में

बुर्हानपुर से एक सूचना पाकर, तीसरे दिन के बाद शिवाजी अपनी सेना के साथ सल्हेर के विख्यात पथ से लौट गए किन्तु वहाँ के निवासियों के नाम एक पत्र छोड़ते गए कि भविष्य में लूट से छुटकारा पाने के लिए उन्हें प्रति वर्ष बारह लाख रुपये का कर देना होगा। वे, चंदौर के समीप, कंचिन मंचिन के आगे बढ़े ही थे कि मुगल सेनापति दाउद खाँ के नेतृत्व में एक पाँच हजार अश्वारोही दल उनका पीछा करता हुआ आया। किन्तु इससे कोई घबराहट नहीं हुई। इतने ही में पता चला कि नासिक के समीप के बड़े दर्रे और उसके बीच में एक अधिक बड़ा दल आगया है। अतः शिवाजी ने शत्रु का ध्यान बटाने की दृष्टि से, अपनी सेना को चार या पाँच दलों में विभाजित किया। इनमें से एक दल इस बड़े शत्रुदल से डिम्बयुद्ध में संलग्न हुआ। दो दल आसन्नआक्रमण करने को प्रस्तुत हुए। और वह दल जिसको कोष सौंपा गया था शत्रु के आगे निकल कर और घाट की ओर तेजी से बढ़ कर, सुगमतापूर्वक कोंकण में प्रवेश किया। इस दल को बच कर निकल जाने में सुविधा देने के लिए शिवाजी अपनी चाल धीमी किए रहे, अन्यथा वह लड़ाई से बचते, यदि बिना लड़ाई के वे अपनी लूट बचा सकते। तब तक दाउद खाँ आ पहुँचा। शिवाजी घूम पड़े और आक्रमण कर उसको पीछे खदेड़ा। अपने पृष्ठ भाग की रक्षा करने के लिए उन्होंने एक दल वहीं रहने दिया और आगे बढ़ कर वे अधिक बड़े दल पर टूट पड़े। अपने इस अप्रत्याशित आक्रमण से शत्रु दल को पराजित कर महोर के देशमुख की विधवा को भी जो एक मराठा टुकड़ी की नेत्री थी बन्दी कर लिया। उसका बहुत सम्मान किया और मूल्यवान् उपहारों के साथ उसे उसके घर भेजा।

प्रताप राव गूजर के अधीनस्थ दस हजार अश्वारोहियों ने तथा पेशवा के सेनापतित्व में बीस हजार पदातियों ने सम्भवतः भड़ौच पर किए जाने वाले आक्रमण में सहयोग देने के लिए प्रस्थान किया। तथा समुद्रमार्ग से एक सौ साठ जहाजों का एक बेड़ा भी चला। किन्तु यह अभियान रोक दिया गया और जहाजी बेड़ा दाभल वापस बुला लिया गया। साथ में इस बेड़े ने दमण के पास एक बड़े पुर्तगाली जहाज को साथ लेता आया। पुर्तगालियों ने भी शिवाजी के बारह जहाजों को पकड़ा और बसई ले गए।

दिसम्बर—खानदेश उस समय एक समृद्ध तथा घना बसा हुआ प्रदेश था। शिवाजी की आज्ञा से प्रतापराव गूजर ने इस पर आक्रमण किया और अंशदान

जो कुछ बचा था लूटा। 'अँग्रेज कोठी के जहाजी गोरों ने भी इस लूट-पाट में पूरा २ भाग लिया।'

उगाह कर तथा करिंजा[1] आदि अनेक बड़े नगरों को लूट कर अपने रास्ते में पड़ने वाले ग्राम अधिकारियों से एक लिखित वचन लिया कि वे शासन को दिए जाने वाले वार्षिक राजस्व का चौथाई शिवाजी या उनके अधिकारियों को देंगे जिसके बदले में उन्हें शिवाजी की ओर से नियमित रसीदें मिलेंगी। इससे उन्हें न केवल लूट से निष्कृति मिलेगी बल्कि उनकी रक्षा भी की जायगी[2]। इसे हम प्रत्यक्ष मुगल-अधीनस्थ प्रदेश पर मराठा चौथ लगाए जाने की सर्वप्रथम तिथि मान सकते हैं।

१६७१ ई० जनवरी—पदाति सेना लेकर मोरो पन्त ने औंध और पुत्ता तथा अन्य दुर्गों को और सल्हेर गढ़ी को अपने अधीन किया।

शिवाजी की असाधारण सफलता के मुख्य कारण मुगलों की निश्चेष्टता और सैनिकों की कमी थी। जिस समय पेशवा माहुली पर घेरा डाले हुए थे, पर्याप्त सेना जुन्नर में और पाँच हजार आरक्षित सैनिक सूरत में थे। उस समय शिवाजी भी उनका अवरोध करने के लिए चालीस हजार सैनिक एकत्रित कर सकते थे। मुगलों की सेना की कमी के अतिरिक्त कुछ और भी बातें शिवाजी के पक्ष में थीं। जनश्रुति के अनुसार सुलतान मुअज्जम और शिवाजी में गठबन्धन था। पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि इन दोनों में पारस्परिक सद्भावना अवश्य थी। निश्चय ही यशवन्त सिंह शिवाजी के प्रति शत्रुभाव नहीं रखता था। अधिकबलन के लिए बारम्बार आवेदन पत्र भेजे जाते थे जिस पर उसकी संस्तुति रहती थी और जिसको वह अच्छी तरह जानता था कि ईर्ष्यालु औरङ्गजेब स्वीकार नहीं करेगा। इसका भी कोई संतोषजनक प्रमाण नहीं है कि सुलतान मुअज्जम विद्रोह करना चाहते थे। किन्तु संभव है अधिकबलन माँगने में तथा शिवाजी के विरुद्ध अधिकतम प्रयास न करने में वह मुगल-सम्राटों के सब पुत्रों की, अपने २ दल को दृढ़ करने की जन्मजात अभिलाषा से प्रभावित हुआ हो, क्योंकि अपने पिता

---

[1] करिंजा की लूट में प्रताप राव को एक करोड़ रुपये मूल्य के महीन कपड़े, चाँदी और सोना प्राप्त हुए जिनको वह चार हजार बैलों और खच्चरों पर लादकर लाया। सब स्थानों के लोगों ने मारे डर के शिवाजी को लिखा कि 'हम प्रतिवर्ष आपको चौथ (शाही मालगुजारी की चौथाई) दिया करेंगे'।—सरकार : शिवाजी, पृ० ९४।

[2] सूरत के व्यापारियों के विवरणों के अनुसार इस लूट अभियान का नेतृत्व शिवाजी स्वयं कर रहे थे। यह लूट बड़ी कठोरता से की गई। इसमें सभी प्रमुख आदमी जो बुर्का में नहीं भाग सके पकड़ कर ले जाए गए।

की मृत्यु पर उनके और मृत्यु के बीच में दो ही विकल्प होते थे, कारावास या राजसिंहासन। संभव है इसी कारण शिवाजी की बढ़ती हुई लूटों से उसे खेद न होता रहा हो, क्योंकि इसकी आड़ में, अधिक अनुयायी भरती किए जा सकते थे और अपने विचारों से सहमत होने को औरङ्गजेब को बाध्य कराने की आशा थी। किन्तु उसकी यह आशा पूरी न हुई, यशवन्त सिंह वापस बुला लिया गया और महाबत खाँ के सेनापतित्व में, दक्खिन में चालीस हजार आदमी भेजे गए। महाबत खाँ सुलतान मुअज्जम से इतना पूर्णतया स्वतंत्र था कि वह औरङ्गाबाद में कुमार के पास मुश्किल से एक हजार अश्वारोही रहने देता था। महाबत खाँ वर्षा शुरू होने तक केवल औंध और पुत्ता पर अधिकार कर सका था। अगले ऋतु में काफी समय तक छावनी में ही पड़ा रहा। आधी सेना ने, दिलेर खाँ के नेतृत्व में, चाकन पर आक्रमण किया और आधी ने सल्हेर पर घेरा डाला। शिवाजी ने इसको बचाने का बहुत प्रयत्न किया। सैन्यरक्षक दल कुछ कारणवश जो स्पष्ट नहीं है, पर्याप्त खाद्य भांडार एकत्रित नहीं कर सका था। और इसके बिलकुल समीप में नियुक्त शिवाजी के दो हजार उत्कृष्ट अश्वारोहियों को पठानों के एक दल ने टुकड़े २ कर दिया था। अतः तत्काल इस की रक्षा परमावश्यक थी। इस काम के लिए मोरोपंत और प्रतापराव गूजर बीस हजार अश्वारोहियों के साथ भेजे गए कि युद्ध करें। उनके पहुँच की सूचना पाते ही उनका सामना करने के लिए मुगल सेनापति ने अपनी सेना का अधिकतम भाग इखलास खाँ के नेतृत्व में भेजा। प्रतापराव जो अग्रिम मराठा सेना का नेतृत्व कर रहा था इखलास खाँ को आक्रमण करने के लिए उत्सुक देखकर, उसकी प्रतीक्षा की, आक्रमण के लिए आगे बढ़ने को आकर्षित किया, उसके आगे भागा, और जब मुगल सेना क्रमविहीन हो गई, उस पर घूम पड़ा और मोरो पन्त की सहायता पाकर उसको करारी हार दी। व्यवस्थित होकर मुगल एकत्रित हुए। उन पर आक्रमण किया गया, वे तितर-बितर किए गए, और भयङ्कर संहार के साथ पराजित किए गए। बाईस प्रख्यात अधिकारी मारे गए तथा अनेक प्रमुख सेनापति आहत हुए और बन्दी बनाए गए। मराठों के पाँचहजारी सेनापति सूर राव काकरे[1] मारे गए तथा पाँच सौ से अधिक मराठे हताहत हुए।

१६७२ ई०

मुगलों के विरुद्ध न्याययुक्त युद्ध में शिवाजी के सैनिकों द्वारा सम्पन्न सब विजयों में यह सर्वाधिक पूर्ण विजय थी। मराठों की ख्याति में इस विजय का बहुत

---

[1] सूर राव काकरे मावलों का नेता था। जाव्ली अभियान में, तथा सीदी द्वारा रोहिर की चढ़ाई में इसकी विशेष ख्याति हुई।

बड़ा हाथ था। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि मुगलों ने सल्हेर का घेरा उठा लिया और उनकी सेना शीघ्रतापूर्वक औरङ्गाबाद को लौट गई। ऊँचे पद के बन्दियों के प्रति जो रायगढ़ भेज दिए गए थे शिवाजी ने आदरपूर्वक व्यवहार किया और जब उनके घाव भर गए उनकी प्रतिष्ठापूर्वक विदाई की। वे कैदी जिन्होंने उनकी सेवा में रहना पसन्द किया उनकी सेवा में ले लिए गए। बीजापुर और मुगल दोनों सेनाओं के भगोड़े बड़ी संख्या में मराठा झण्डे के नीचे इकट्ठे होने लगे।[1]

वर्षा ऋतु में शिवाजी ने उत्तरी कोंकण के अनेक स्थानों पर अधिकार कर लिया। ये स्थान छोटे २ पालेगारों (विद्रोही जमींदारों) के पास थे जिनको उन्होंने अपनी तरफ आजाने के लिए बाध्य किया। पुर्तगालियों के विरुद्ध शिवाजी का युद्ध चल ही रहा था और उन्होंने उन्हें हटा देने की धमकी भी दी थी और उनके अधिकृत कोली प्रदेशों की समीपता से यह डर भी था कि वे दामण और बसई के किलों पर आक्रमण करेंगे। शिवाजी की एक सैन्य टुकड़ी ने पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत शष्ठि द्वीप के घोड़ बन्दर नामक छोटे किले पर आक्रमण भी किया था किन्तु वे पीछे खदेड़ दिए गए। अपनी बस्ती के समीप मराठों की उपस्थिति से बम्बईस्थित अँग्रेज अपनी किलेबन्दी को दृढ़ करने तथा शिवाजी से कुछ किसी प्रकार की सन्धि करने के लिए उत्सुक हुए जिससे कि उनकी पिछली हानियों की क्षतिपूर्ति की जाय और भविष्य में पारस्परिक लाभ हो। अब तक अँग्रेजों की शिवाजी की लूटमार से आर्थिक हानि नहीं हुई थी और बम्बई में उस समय भी जब शिवाजी सूरत के कारखाने पर आक्रमण कर रहे थे, शिष्टता का आदान-प्रदान होता रहा। इसका कारण यही था कि बम्बई द्वीप अनाज और जलाने की लकड़ी के लिए प्रायद्वीप पर आश्रित था और शिवाजी का तट बहुत ही सङ्कट में पड़ जाता, यदि अँग्रेज शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए मुगलों को अपने बन्दर में से होकर जाने देते। राजापुर की लूट के समय से ही जो जनवरी १६६१ में हुई थी अँग्रेज क्षतिपूर्ति के लिए शिवाजी से निवेदन कर रहे थे। उनके अनुसार उनकी प्राक्कलित हानि दस हजार पगोडा से अधिक थी और शिवाजी उन्हें लगातार आश्वासन देते रहे कि यदि वे जंजीरा के विरुद्ध उनकी सहायता करेंगे या अपने कारखाने को ही

[1] शिवाजी का झंडा गहरा नारंगी रंग का भगवा झंडा था। क्योंकि उन्होंने अपने संपूर्ण राज्य को अपने गुरु रामदास के चरणों पर अर्पित कर दिया था। उनकी आज्ञा से उनकी ओर से शिवाजी शासन चलाते थे। अतः इसका रंग संतों के कषाय कपड़ों की तरह भगवा रखा गया।

पुनर्स्थापित करेंगे, तो वे उनकी क्षति की पूर्ति करेंगे। अँग्रेज कहते थे कि वे तटस्थ हैं, वे मात्र व्यापारी हैं जो अपनी सम्पत्ति की रक्षा के सिवाय कभी हथियार नहीं उठाते, और राजापुर लौटने के पहले वे उनके वचनों की पूर्ति की प्रतिभूति चाहते है।

इसी बीच में मुगल प्रदेशों के शासन में एक परिवर्तन आगया। महाबत खाँ और सुलतान मुअज्जम दोनों ही बुला लिए गए और गुजरात का राज्यपाल खान जहाँ बहादुर दक्खिन का राज्यपाल नियुक्त किया गया। खान जहाँ यह मानकर कि उसकी सेना आक्रामक कार्यवाहियों के लिए पर्याप्त नहीं है, मराठा आक्रमण को रोकने के लिए, और तोपों द्वारा खुले हुए दर्रों की रक्षा के लिए घाटों के अवरोध की एक योजना बनाई। किन्तु उसके सहायक सेनापति दिलेर खाँ ने इस योजना को नापसन्द किया। इस सेनापति ने पिछले ऋतु में चाकन पर एक सफल आक्रमण किया था। उसने प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही की भ्रांति की पोल खोल दी। और वर्तमान सेना की सहायता से चाहे वह कितनी ही अपर्याप्त हो, प्रमुख किलों पर जोरदार हमला करने की संस्तुति की। किन्तु उसके तर्कों का नए राज्यपाल पर कोई प्रभाव न हुआ और मराठे अश्वारोही, जैसा कि आशा की जा सकती थी, उन दर्रों से जहाँ खान जहाँ स्वयं उपस्थित था खानदेश में न प्रवेश कर विभिन्न दलों में औरङ्गाबाद और अहमदनगर के आसपास उपस्थित हुए। राज्यपाल उनका पीछा करने के लिए विभिन्न दिशाओं में गया किन्तु सफलता हाथ न लगी और अन्त में वर्षा ऋतु में विश्राम करने के हेतु भीमा तट पर स्थित पेडगाँव की छावनी में आया और किलाबन्दी की और इसका नाम बहादुरगढ़ रखा।

उस समय जब खान इस तरह कार्य में व्यस्त था शिवाजी ने गोलकुण्डा पर एक गुप्त अभियान किया और अंशदान की एक बड़ी रकम बलात् वसूल कर बिना विघ्न के, रायगढ़ पहुँचा दिया। इस अभियान से लौटने के तुरन्त बाद ही उन्होंने अपने अधिकांश अश्वारोहियों को मुगल प्रदेश के नगरों से अंशदान ग्रहण करने और छोटे गाँवों को लूटने के लिए छोड़ दिया। इस लूटपाट के युद्ध में मराठे और मुगल दोनों ही अपनी २ अधिक अच्छी स्थित का दावा करते हैं। भाग खड़े होने पर भी, मराठे सामान्यतया अपनी लूट-सम्पत्ति की रक्षा कर लेते थे। अश्वारोहियों को यह हृदयंगम कर दिया जाता था कि ऐसा करना अत्यन्त वास्तविक सम्माननीय कार्य है।

उस अवधि में जब शिवाजी गोलकुण्डा चले गए थे, सूरत और जंजीरा के संयुक्त बेड़े के आक्रमण से तट पर के उनके नगरों और गाँवों को ड़ी क्षति उठानी पड़ी। दण्डा-राजपुरी के तोपखाने भी नष्ट किए गए और सेनापति

रघुवल्लाल मारा गया।[1] गोलकुण्डा अभियान से इस क्षति की पूर्ति हुई और अगले वर्ष के सफल आक्रमण से उनकी शक्ति और सम्पत्ति की वृद्धि हुई।

अनेक प्रकार की अतिचारिता के कारण, १५ दिसम्बर १६७२ को बीजापुर के सुलतान पर लकवा गिरा। उसका जीवन कई दिन तक अटका रहा, किन्तु वह अपने बिस्तरे से फिर न उठा। इसी बीच उसने राजपा के लिए कुछ प्रबन्ध किया। उसका पुत्र सुलतान सिकन्दर पाँचवें वर्ष में था। पादशाह बीबी नाम की मात्र एक पुत्री उसकी सन्तान थी। प्रधानमन्त्री अब्दुल मुहम्मद का व्यक्तिगत चरित्र आदरणीय था किन्तु वह अपने पद से सम्बन्धित कार्यों को करने से झिझकता था। उस समय बीजापुर दरबार में अन्य प्रमुख व्यक्ति ख्वास खाँ, अब्दुलकरीम-बहलोल खाँ और मुजफ्फर खाँ थे।

ये तीनों और उनके आश्रित, और सेवक सार्वजनिक लाभ की बात न सोचकर अपने २ पक्षों को दृढ़ करने पर तुले हुए थे। अब्दुल मुहम्मद इस कलंक से बचा था किन्तु कलहकारियों को दबा रखने की, तथा प्रशासकीय मतभेद होने पर लोगों के मन को प्रभावित करने की पर्याप्त दृढ़ता उसमें नहीं थी। यह बड़े ही सङ्कट का समय था। दलबन्दी पतनोन्मुख राज्य के दुर्दशाग्रस्त अवशेष को उद्वेलित कर रही थी। एक ओर शिवाजी और दूसरी ओर मुगल इस राज्य का विनाश करने पर तुले हुए थे।

ऐसी स्थिति में अब्दुल मुहम्मद ने संस्तुति की कि ख्वास खाँ राजप नियुक्त किया जाय। स्वयं अपने को कुलबर्गा तथा मुगल प्रदेश से मिला हुआ भाग, अब्दुल करीम को मेरिच (मिराज), पन्हाला, धारवार, सुन्दा, बेदनूर और कोंकण, और मुजफ्फर खाँ को शेष कार्णाटक का प्रभार दिया जाय। सुलतान ने इस व्यवस्था का अत्यन्त विरोध किया। किन्तु अन्त में इसे स्वीकार करने को बाध्य हुआ। उसके पुत्र का प्रभार लेने और, जैसा की मन्त्री ने संस्तुति की थी, सुलतान की अन्तिम आज्ञाओं को पाने के लिए ख्वास खाँ सुलतान की शय्या के पास बुलाया गया। ख्वास खाँ ने राजपता स्वीकार की और आज्ञाओं को पालन करने का वचन दिया किन्तु सुलतान के मरने पर जब उसने अपनी शक्ति स्थापित कर ली, उसने अब्दुल करीम और अब्दुल मुहम्मद को उनके शासन प्रभारों पर इस डर से नहीं भेजा कि कहीं वे मुगलों से मिल न जाय। किन्तु मुजफ्फर खाँ को उसने कार्णाटक भेजा। उसने अब्दुल करीम को सेनापति बनाकर और अब्दुल मुहम्मद को उनका हर प्रकार से

---

[1] इसने जाव्ली के राजा की हत्या की थी।

प्रत्यक्ष सम्मान कर संतुष्ट करने का प्रयत्न किया। प्रत्येक दल में ब्राह्मण आश्रित थे। वे अपने स्वामियों के वादों को उत्तेजित करते थे और उनके हिन्दू सम्बन्धों के द्वारा शिवाजी को वहाँ की छोटी से छोटी सूचना मिलती थी। अली आदिल शाह के मर जाने से अब्दुल मुहम्मद से किया हुआ समझौता समाप्त हुआ। अतः शिवाजी ने बीजापुर की गड़बड़ी से लाभ उठाने की तुरन्त तैयारी की।

१६७३ ई०—शिवाजी ने मार्च १६७३ में विशालगढ़ में गुप्त रीति से एक बड़ी फौज एकत्रित की। इसकी एक टुकड़ी ने पन्हाला पर पुनः अधिकार किया और अन्नाजी दत्तो के नेतृत्व में हुबली[1] पर आक्रमण किया जिसमें अब तक की सब लूटों से अधिक लूट का माल प्राप्त हुआ। इस लूट का मराठी हस्तलेखों का वर्णन अविश्वसनीय है किन्तु इतना निश्चय है कि यह बहुत ही बड़ी लूट थी, हर राष्ट्र के व्यापारी लूटे गए थे। इस नगर की प्रतिरक्षा के लिए नियुक्त बीजापुरी सैनिकों ने जो कुछ मराठों से करने को रह गया था उसको पूरा किया। इस व्यापक विपदा में[2] अँग्रेजी कारखाने को भी क्षति उठानी पड़ी। बम्बई के सहायक राज्यपाल अंगियर ने हुबली तथा राजापुर दोनों स्थानों की क्षतिपूर्ति कराने का बारम्बार प्रयत्न किया और अपनी माँगों को प्रस्तुत करने के लिए हर उचित अवसर ढूँढ़े। शिवाजी इस बात का आग्रह करते रहे कि उनके सैनिकों ने हुबली में अँग्रेजों को पीड़ित नहीं किया और, फिर भी, वे सूरत और जञ्जीरा के जहाजी बेड़ों के विरुद्ध सहायता पाने की आशा में सन्धि करने की अपनी इच्छा प्रकट करते रहे और राजापुर की क्षतिपूर्ति करने की आशा देते रहे। विरोधी दल भी, विशेष कर सीदी, अंगियर से सहायता की बारम्बार माँग करता था। किन्तु उन्होंने कठोर तटस्थता की नीति अपनायी और कई ऐसी अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई जिससे शिवाजी और सीदी दोनों ही ने अंगियर के विवेक और दृढ़ता को अतिउच्च सम्मान प्रदान किया।

शिवाजी ने बीजापुर से युद्ध छेड़ा औ सम्पूर्ण तट को अपने अधिकार में करने की उत्सुकता में, कारवार, अंकोला, तथा अन्य अनेक स्थानों पर कब्जा करने के लिए अपना जहाजी बेड़ा भेजा; तथा देशमुखों को विद्रोह करने और मुसलमान सैन्य-रक्षकदलों को खदेड़ देने के लिए उत्तेजित किया। हुबली की लूट से भयभीत हो कर बेदनूर के राना ने रक्षाकी प्रार्थना की, वार्षिक कर देना अंगीकार किया तथा शिवाजी के एक प्रतिनिधि को अपनी राजधानी में रहने की अनुज्ञा दी।

शिवाजी बीजापुर युद्ध को लगातार चलाते रहने को उत्सुक थे, अतः खाँ

---

[1] यह धारवार जनपद में है।

[2] अँग्रेजों को ७,८६४ पगोड़ा की क्षति हुई।

की मध्यस्थता से उन्होंने शाही रक्षा में लिए जाने की इच्छा प्रकट कर खान जहाँ को परितुष्ट करने का प्रयत्न किया। राज्यपाल धोखे में आ गया या आने का बहाना किया। यह निश्चित-सा मालूम होता है कि इस शर्त पर कि शिवाजी मुगल प्रदेश में लूट नहीं करेंगे खान जहाँ दक्खिन में आने के पश्चात् शीघ्र ही शिवाजी के अनुकूल हो गया। एक मावली टुकड़ी ने, मई में, परली पर अधिकार कर लिया, इससे आस-पास के रक्षक सेना दल सावधान हो गए। अतः सातारा ने जहाँ बीजापुर शासन सदा अच्छी व्यवस्था बनाए रखता था कई महीनों तक, सितम्बर के आरम्भ तक, समर्पण नहीं किया। आदिलशाही वंश के पहले से ही बहुत समय तक यह किला राजनीतिक कारावास रहा है। बाद को शिवाजी के वंशज इसी में बन्दी बना कर रखे गए।[1] अच्छी ऋतु आने के पहले ही चन्दन, वन्दन, पाण्डवगढ़ और नन्दगढ़ी और तत्तोरा ये सब किले उनके हाथ में आगए। पन्हाला की क्षति, हुबली की लूट, कारवार के समीप के विद्रोह, तथा इन किलों के निकल जाने से ख्वास खाँ अब्दुल करीम को एक सेना सहित पश्चिम की ओर भेजने को बाध्य हुआ। अब्दुल करीम ने पन्हाला के समीप के अरक्षित भूमि भाग पर अधिकार कर लिया किन्तु शिवाजी ने प्रतापराव गूजर को बीजापुर के पड़ोस में भेजा, जहाँ उसने निर्भय होकर लूट की। इन लूटों के कारण राजप ने अब्दुल करीम को वापस बुला लिया। किन्तु मेरिच (मीराज) और बीजापुर के बीच में प्रताप राव ने उसे रोका और दोनों दल ने डिम्ब युद्ध करना आरम्भ किया। बीजापुरी सेना से प्रतापराव की सेना संख्या में अधिक थी। वह एक ओर व्यापक आक्रमण करने को प्रस्तुत हुआ और दूसरी ओर खाद्य सामग्री तथा छितराए गए सैनिकों को रोका। इस तरह परेशान किए जाने पर अब्दुल करीम ने युद्धविराम के लिए आवेदनपत्र भेजा। उसे सुविधापूर्वक बीजापुर लौटने की स्वीकृति दी गई। किस शर्त पर यह सन्धि की गई यह मालूम नहीं है किन्तु इस सन्धि से शिवाजी बहुत ही असन्तुष्ट हुए। और उसकी व्यथा इस बात से और भी बढ़ी कि फटकारे जाने के बाद प्रताप राव ने अत्यन्त दूर स्थित बरार पायान घाट का अभियान किया। यह अभियान शिवाजी की इच्छा के विरुद्ध था। शिवाजी पहले से ही पोण्डा पर घेरा डाले हुए थे जो उनके प्रदेश तथा दक्षिण की ओर के उनके नवप्राप्त प्रदेशों के बीच में था।

अब्दुल करीम ने इस विचार से कि पन्हाला को पुनः प्राप्त करने का अवसर उपस्थित है बीजापुर में सेना के लिए सैनिकों को भरती करने का बड़ा प्रयास किया। शिवाजी को यह बात मालूम हो गई किन्तु प्रताप राव गूजर की अनुपस्थिति के

[1] लोहगढ़ अहमदनगर का राज्य कारावास था।

कारण तथा अपनी निजी योजनाओं को अधिक अव्यवस्थित न होने देने के कारण, शिवाजी अब्दुल करीम की योजना को उसी के ढंग से निष्फल न कर सके।

१६७४ ई०—तैयारी पूरी हो जाने पर फ़रवरी में एक बड़ी फौज लेकर अब्दुल करीम ने पन्हाला की ओर प्रयाण किया उसके पहुँचने के बाद प्रताप राव गूजर मुख्य अश्वारोही दल लेकर पहुँचा। तुरन्त ही शिवाजी ने उसके पास कहलाया कि वे उसके आचरण से अत्यन्त रुष्ट हैं। और 'बीजापुरी सेना को लूटने के पहले' (बीजापुरी सेना को पराजित किए बिना) वह अपना मुँह न दिखाए। प्रताप राव आक्रमण आरम्भ करने ही वाला था कि यह सन्देश पहुँचा। यह भर्त्स्ना उसे लग गई और अपनी सामान्य प्रणाली को न अपना कर वह तत्काल शत्रु से जा भिड़ा।[1] बीजापुर के सङ्गठित सैन्यदल पर किए गए इस उद्दण्ड आक्रमण में वह तथा उसके अन्य अनेक आदमी खेत रहे और उसकी सेना का मुख्य भाग पूर्णतया पराजित हुआ। अब्दुल करीम ने, बहुत संहार करते हुए, पन्हाला तक मराठों का पीछा किया। वहाँ पन्हाला की तोपों ने भगोड़ों की रक्षा की। इधर मुख्य सेना पर यह बीती, उधर एक मराठा दल जो पाँचहज़ारी अश्वारोहियों के सेनापति हसाजी मोहिते (हम्बीर राव) के नेतृत्व में था और युद्ध में नहीं लगाया गया था वहाँ पर उस समय पहुँचा जब बीजापुरी सैनिक पीछा करने के प्रमादयुक्त उमंग में छिन्न-भिन्न थे। वह अप्रत्याशित रूप से उन पर टूट पड़ा और संग्राम के परिणाम को पूर्णतया उलट दिया। भाग्य के किंचिन्मात्र अपने अनुकूल होने पर मराठे जितनी शीघ्रता से एकत्रित होते हैं उतना अन्य सैनिक नहीं। भगोड़े पीछा करने वाले हुए, पराजय विजय में बदल गई और अब्दुल करीम अपमानित होकर बीजापुर लौटने को बाध्य हुआ। हसाजी मोहिते की इस टुकड़ी में दो अधिकारियों ने बहुत वीरता दिखाई, अतः उनकी पदोन्नति की गई। बाद को उनके, सन्ताजी घोरपड़े और धन्नाजी जाधव के, नाम महाराष्ट्र के इतिहास में बहुत यशस्वी हुए। शिवाजी ने हसाजी मोहिते के नेतृत्व की अत्यन्त प्रशंसा की और उनको हम्बीर राव की उपाधि देकर सर-ए-नौबत नियुक्त किया। प्रताप राव गूजर की सेवाएँ भूली नहीं गईं। शिवाजी ने उसके मृत्यु का शोक मनाया, उसके सम्बन्धियों और आश्रितों के निर्वाह का सुन्दर प्रबन्ध किया और अपने छोटे पुत्र राजाराम का विवाह उसकी कन्या से किया। प्रताप राव की मृत्यु के बाद आबाजी सोनदेव भी स्वर्ग सिधारे। शिवाजी ने घोषणा की थी कि कोई भी पद किसी भी परिवार में वंशागत नहीं होगा, यदि उस परिवार का

[1] यह मुठभेड़ बीजापुर के ३६ मील पश्चिम में उमरानी में हुई थी।

की मध्यस्थता से उन्होंने शाही रक्षा में लिए जाने की इच्छा प्रकट कर खान जहाँ को परितुष्ट करने का प्रयत्न किया। राज्यपाल धोखे में आ गया या आने का बहाना किया। यह निश्चित-सा मालूम होता है कि इस शर्त पर कि शिवाजी मुगल प्रदेश में लूट नहीं करेंगे खान जहाँ दक्खिन में आने के पश्चात् शीघ्र ही शिवाजी के अनुकूल हो गया। एक मावली टुकड़ी ने, मई में, परली पर अधिकार कर लिया, इससे आस-पास के रक्षक सेना दल सावधान हो गए। अतः सातारा ने जहाँ बीजापुर शासन सदा अच्छी व्यवस्था बनाए रखता था कई महीनों तक, सितम्बर के आरम्भ तक, समर्पण नहीं किया। आदिलशाही वंश के पहले से ही बहुत समय तक यह किला राजनीतिक कारावास रहा है। बाद को शिवाजी के वंशज इसी में बन्दी बना कर रखे गए।[१] अच्छी ऋतु आने के पहले ही चन्दन, वन्दन, पाण्डवगढ़ और नन्दगढ़ी और तत्तोरा ये सब किले उनके हाथ में आगए। पन्हाला की क्षति, हुबली की लूट, कारवार के समीप के विद्रोह, तथा इन किलों के निकल जाने से ख्वास खाँ अब्दुल करीम को एक सेना सहित पश्चिम की ओर भेजने को बाध्य हुआ। अब्दुल करीम ने पन्हाला के समीप के अरक्षित भूमि भाग पर अधिकार कर लिया किन्तु शिवाजी ने प्रतापराव गूजर को बीजापुर के पड़ोस में भेजा, जहाँ उसने निर्भय होकर लूट की। इन लूटों के कारण राजप ने अब्दुल करीम को वापस बुला लिया। किन्तु मेरिच (मीराज) और बीजापुर के बीच में प्रताप राव ने उसे रोका और दोनों दल ने डिम्ब युद्ध करना आरम्भ किया। बीजापुरी सेना से प्रतापराव की सेना संख्या में अधिक थी। वह एक ओर व्यापक आक्रमण करने को प्रस्तुत हुआ और दूसरी ओर खाद्य सामग्री तथा छितराए गए सैनिकों को रोका। इस तरह परेशान किए जाने पर अब्दुल करीम ने युद्धविराम के लिए आवेदनपत्र भेजा। उसे सुविधापूर्वक बीजापुर लौटने की स्वीकृति दी गई। किस शर्त पर यह सन्धि की गई यह मालूम नहीं है किन्तु इस सन्धि से शिवाजी बहुत ही असन्तुष्ट हुए। और उसकी व्यथा इस बात से और भी बढ़ी कि फटकारे जाने के बाद प्रताप राव ने अत्यन्त दूर स्थित बरार पायान घाट का अभियान किया। यह अभियान शिवाजी की इच्छा के विरुद्ध था। शिवाजी पहले से ही पोण्डा पर घेरा डाले हुए थे जो उनके प्रदेश तथा दक्षिण की ओर के उनके नवप्राप्त प्रदेशों के बीच में था।

अब्दुल करीम ने इस विचार से कि पन्हाला को पुनः प्राप्त करने का अवसर उपस्थित है बीजापुर में सेना के लिए सैनिकों को भरती करने का बड़ा प्रयास किया। शिवाजी को यह बात मालूम हो गई किन्तु प्रताप राव गूजर की अनुपस्थिति के

---

[१] लोहगढ़ अहमदनगर का राज्य कारावास था।

कारण तथा अपनी निजी योजनाओं को अधिक अव्यवस्थित न होने देने के कारण, शिवाजी अब्दुल करीम की योजना को उसी के ढंग से निष्फल न कर सके।

१६७४ ई०—तैयारी पूरी हो जाने पर फ़रवरी में एक बड़ी फौज लेकर अब्दुल करीम ने पन्हाला की ओर प्रयाण किया उसके पहुँचने के बाद प्रताप राव गूजर मुख्य अश्वारोही दल लेकर पहुँचा। तुरन्त ही शिवाजी ने उसके पास कहलाया कि वे उसके आचरण से अत्यन्त रुष्ट हैं। और 'बीजापुरी सेना को लूटने के पहले' (बीजापुरी सेना को पराजित किए विना) वह अपना मुँह न दिखाए। प्रताप राव आक्रमण आरम्भ करने ही वाला था कि यह सन्देश पहुँचा। यह भर्तस्ना उसे लग गई और अपनी सामान्य प्रणाली को न अपना कर वह तत्काल शत्रु से जा भिड़ा।[1] बीजापुर के सङ्गठित सैन्यदल पर किए गए इस उद्दण्ड आक्रमण में वह तथा उसके अन्य अनेक आदमी खेत रहे और उसकी सेना का मुख्य भाग पूर्णतया पराजित हुआ। अब्दुल करीम ने, बहुत संहार करते हुए, पन्हाला तक मराठों का पीछा किया। वहाँ पन्हाला की तोपों ने भगोड़ों की रक्षा की। इधर मुख्य सेना पर यह बीती, उधर एक मराठा दल जो पाँचहजारी अश्वारोहियों के सेनापति हसाजी मोहिते (हम्बीर राव) के नेतृत्व में था और युद्ध में नहीं लगाया गया था वहाँ पर उस समय पहुँचा जब बीजापुरी सैनिक पीछा करने के प्रमादयुक्त उमंग में छिन्न-भिन्न थे। वह अप्रत्याशित रूप से उन पर टूट पड़ा और संग्राम के परिणाम को पूर्णतया उलट दिया। भाग्य के किंचिन्मात्र अपने अनुकूल होने पर मराठे जितनी शीघ्रता से एकत्रित होते हैं उतना अन्य सैनिक नहीं। भगोड़े पीछा करने वाले हुए, पराजय विजय में बदल गई और अब्दुल करीम अपमानित होकर बीजापुर लौटने को बाध्य हुआ। हसाजी मोहिते की इस टुकड़ी में दो अधिकारियों ने बहुत वीरता दिखाई, अतः उनकी पदोन्नति की गई। बाद को उनके, सन्ताजी घोरपड़े और धन्नाजी जाधव के, नाम महाराष्ट्र के इतिहास में बहुत यशस्वी हुए। शिवाजी ने हसाजी मोहिते के नेतृत्व की अत्यन्त प्रशंसा की और उनको हम्बीर राव की उपाधि देकर सर-ए-नौबत नियुक्त किया। प्रताप राव गूजर की सेवाएँ भूली नहीं गईं। शिवाजी ने उसके मृत्यु का शोक मनाया, उसके सम्बन्धियों और आश्रितों के निर्वाह का सुन्दर प्रबन्ध किया और अपने छोटे पुत्र राजाराम का विवाह उसकी कन्या से किया। प्रताप राव की मृत्यु के बाद आबाजी सोनदेव भी स्वर्ग सिधारे। शिवाजी ने घोषणा की थी कि कोई भी पद किसी भी परिवार में वंशागत नहीं होगा, यदि उस परिवार का

---

[1] यह मुठभेड़ बीजापुर के ३६ मील पश्चिम में उमरानी में हुई थी।

वंशज उस पद के लिए अनुपयुक्त है। किन्तु आबाजी के पुत्र रामचन्द्र पन्त रिक्त-पद के लिए अर्ह होने के कारण अमात्य नियुक्त किए गए।

वर्षा आरम्भ हो जाने से पोण्डा का घेरा उठा लिया गया। शिवाजी ने सूरत स्थित फ्रांसीसियों से तोपें खरीदी थीं किन्तु दीवार में दरार करने में वे असफल रहीं। संभवतः घाटों पर खाद्य-सामग्री की कमी के कारण, इस बार शिवाजी का पूरा अश्वारोही दल चिपलूण की छावनी में ठहरा।

शिवाजी बहुत दिनों से मुद्राएँ प्रचलित किए हुए थे और अपने को राजा और महाराजा कहते थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित करने, राजचिह्नों को धारण करने, और शासनारूढ़ होने के दिन से कालगणना करने, के औचित्य के संबंध में अनेक विद्वान् ब्राह्मणों की सलाह ली। बनारस के एक ख्याति प्राप्त शास्त्री जिनका नाम गागा भट्ट था रायगढ़ पहुँचे। शिवाजी ने यह छद्म किया कि उन्हें भवानी से उनके आने की सूचना मिल गई थी। वे अभिषेक कराने के लिए नियुक्त किए गए। अनेक विधिपूर्वक-संस्कार और प्रत्येक शास्त्रोक्त-क्रिया करने के बाद जिससे कि हिन्दुओं की दृष्टि में यह संस्कार श्रद्धान्वित हो, शिवाजी एक शुभघड़ी में रायगढ़ में ६ जून को सिंहासनारूढ़ हुए।[1] अपनी माता जीजा बाई के मृत्यु के १५ दिन बाद शिवाजी का

---

[1] रानडे लिखते हैं कि शिवाजी कृषक कुनबी जाति के थे। उनकी क्षत्रिय-उत्पत्ति शुद्ध राजनीतिक कारणों से मानी गई। य० ना० सरकार के अनुसार उन दिनों समाज में भोसले वंश को लोग शूद्र ही मानते थे। बालाजी अवजी तथा शिवाजी के अन्य अभिकर्ताओं ने उनकी झूठी वंशावली गढ़ी थी। किंकेड और पारस्निस का यह कथन कि राजा शिवाजी की निःसन्देह राजपूत उत्पत्ति थी निराधार है। शिवाजी की वंशावली स्वीकार कर काशीवासी विश्वेश्वर भट्ट (गागा भट्ट) उनका अभिषेक करने को तैयार हुए। गागा भट्ट दिग्विजयी पण्डित थे, वे 'चारों वेद, षट्शास्त्र, योगाभ्यास, ज्योतिषी तथा मन्त्रों के ज्ञाता एवं सब विद्याओं के पारदर्शी विद्वान् और कलियुग के ब्रह्मवेद थे।' (सभासद बखर)। शिवाजी के पुरखे क्षत्रियों का आचरण त्याग कर पतित हो गए थे, इसलिए शिवाजी ने २८ मई को प्रायश्चित किया और गागाभट्ट ने उन्हें जनेऊ पहना कर क्षत्री बनाया। इस अभिषेक में कृष्णाजी अनन्त सभासद के अनुसार सात करोड़ दस लाख रुपये, और यदुनाथ सरकार के अनुसार केवल पचास लाख रुपये खर्च हुए थे। अभिषेक की धूमधाम में शिवाजी का राजकोष खाली हो गया जिसकी पूर्ति मराठों ने पेडगाँव के अरक्षित मुगल शिविर के एक करोड़ रुपये और दो सौ अच्छे घोड़े लूट कर की, उस समय जब वहाँ का मुगल राज्यपाल बहादुर खाँ दूसरी ओर एक आशङ्कित मराठा लूट-

दूसरी बार राज्याभिषेक हुआ। प्रथम राज्याभिषेक के अनुसार उनका राज्यारोहण ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी से आरम्भ होता है। हेनरी आक्सेनडेन जो बहुत दिनों से स्थगित होती हुई सन्धिको सम्पन्न करने के लिए दौत्य कार्य पर बम्बई से शिवाजी के पास भेजा गया था प्रथम अभिषेक के कुछ संस्कारों के समय उपस्थित था। इस संधि की प्रारम्भिक शर्तों पर ६ अप्रैल को एक भारतीय अभिकर्त्ता ने हस्ताक्षर किया था। इस सन्धि में बीस शर्तें थीं जिनके सारांश को मराठों ने चार शीर्षकों में लिख रखा है:

१. राजापुर की हानियों की क्षति-पूर्ति; राजापुर, दाभोल, चौल, और कल्याण में कारखाने स्थापित करने की अनुज्ञा; शिवाजी के पूरे प्रदेश में व्यापार करने की अनुज्ञा; निश्चित दर के लागू होने से बाध्य न होकर अँग्रेजों को अपने ही मूल्यों पर खरीदने और बेचने की छूट।

२. अँग्रेजों को मूल्य के अनुसार केवल २½ प्रतिशत आयात-कर देना होगा।

३. आपस में मुद्राओं का विनिमय होगा।

४. भग्नपोतों को लौटाना होगा। क्षतिपूर्ति की शर्तों के ढङ्ग से जिसको शिवाजी ने बोल कर लिखाया था, व्यापार के सिद्धान्त सम्बन्धी उनके विचार का पता चलता है। अपने पेचीदेपन में, और नकद रुपया भुगतान से बचने में इसमें मराठा संविदा की मुख्य विशेषता पाई जाती है। शिवाजी ने अँग्रेजों को दस हजार पगोडा देने की अनुज्ञा की। अर्थात् अँग्रेज प्रति वर्ष पाँच हजार पगोडा मूल्य का सामान शिवाजी से तीन वर्ष तक खरीदने को सहमत हुए जिसके लिए अँग्रेजों को मूल्य का आधा भाग देना होगा। इस तरह से वे (तीन साल में) साढ़े सात हजार पगोडा वसूल करेंगे। और शेष ढाई हजार पगोडा :शिवाजी ने राजापुर की फैक्ट्री को उसके पुनर्स्थापन होने पर तब तक के लिए तट-कर से छूट दी जब तक यह रकम पूरी न हो जाय। कुछ कठिनाई के बाद शिवाजी उन शब्दों को मानने के लिए तैयार हुए जिनका सम्बन्ध भग्न-नावों और मुद्रा से था। शिवाजी ने कहा कि जहाजों के मल्लाहों की सहायता और रक्षा की जानी चाहिए। किन्तु भग्न-नावें चिरकाल से देश के राजा की नैसर्गिक संपत्ति समझी जाती हैं। अतः वह यह अधिकार नहीं त्यागेंगे। जहाँ तक अँग्रेजी मुद्रा[1] का संबंध है वह अपने वास्तविक मूल्य पर चलना

अभियान को रोकने के लिए आकर्षित किया गया। शिवाजी के अभिषेक का सरकार ने बड़ा ही सुन्दर विवरण दिया है।—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ १०३-११०।

[1] अंगियर ने १६७० में रुपये, पैसे आदि ढालने के लिए बम्बई की प्रथम

चाहिए किन्तु अन्त में उन्होंने सब शर्तें मान लीं। आक्सेनडेन के दौत्य कार्य से शिवाजी पर अंग्रेजों के संबंध में और अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ा। राजापुर की फैक्ट्री पुनर्स्थापित तो हुई किन्तु इसको कभी लाभ नहीं हुआ। और यह संदिग्ध है कि अंग्रेजों ने जो कुछ सन्धि में निश्चित किया गया था उसे प्राप्त किया। आंगियर के अनंतरित उत्तराधिकारी की न तो अपने पूर्ववर्ती के समान प्रतिभा थी और न प्रभाव। उसकी मृत्यु १६७६ में बम्बई में हुई। शिवाजी के राज्यारूढ़ होने पर, पदों के नाम फारसी से संस्कृत में बदले गए और कुछ पदों के नाम और अधिक लम्बे-चौड़े रखे गए। शिवाजी की मृत्यु के बाद अष्टप्रधानों के नामों को छोड़ कर कोई भी अन्य नए विशिष्ट नाम प्रचलित न रहे। शिवाजी के केवल वे कार्य होते रहे जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है। अश्वारोही और पदाति सेना केवल एक सेनापति के अधीन रखी गई और न्यायाधीश का काम दो आदमियों के स्थान पर केवल एक आदमी को सौंपा गया। मन्त्रियों के नाम तथा उनके पद की पुरानी और नई उपाधियाँ इस प्रकार थीं :

नाम	पुरानी उपाधि	नई उपाधि
१. मोरो पन्त पिंगले	पेशवा	मुख्य प्रधान
२. रामचन्द्र पन्त बौरीकर	मजमुआदार	पन्त अमात्य
३. अन्नाजी दत्तो	शुरूनवीस	पन्त सचिव
४. दत्ताजी पन्त	वकाए नवीस	मन्त्री
५. हम्बीर राव मोहिते	सर-ए-नौबत	सेनापति
६. जनार्दन पन्त हनमन्ते	दबीर	सुमन्त
७. बल्लाजी पन्त	न्यायाधीश	न्यायाधीश
८. रघुनाथ पन्त	न्यायशास्त्री	पण्डित राव

स्वर्ण तुला दान से[१] तथा अपने धर्म के नियमों के अनुसार अनेक दान देने से शिवाजी को राजपूतों में एक ऊँची श्रेणी प्राप्त हुई और ब्राह्मणों ने उनको क्षत्रिय सिद्ध करने का छद्म किया। शिवाजी ने अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी उपाधियाँ धारण

टकसाल स्थापित की थी। ब्रिटिश म्यूजियम में १६७५, १६७७ और १६७८ के चार रुपये हैं जो बम्बई टकसाल में ढाले गए थे।

[१] डॉ० फ्रयर लिखते हैं कि उनका भार लगभग १६००० पगोडा था जो लगभग १० स्टोन के बराबर है। एक स्टोन की तौल १४ पौंड के बराबर है।

कीं और वे सभी सार्वजनिक उत्सवों पर राजत्व के वैभव और गौरव का प्रदर्शन करने लगे।[1]

पुरन्दर सन्धि के समय से शिवाजी यह दावा कर रहे थे कि बीजापुर प्रदेश के विभिन्न भागों की एवं पूरे कोंकण की चौथ पर उनका अधिकार है। इसका उल्लेख नहीं है कि उन्होंने अँग्रेजों से इसकी माँग की। बसई स्थित पुर्तगालियों से कर वसूल करने के लिए, इस वर्ष शिवाजी ने मोरो पन्त को कल्याण भेजा। यह नहीं मालूम कि किस उपाय से पुर्तगाली भुगतान करने से बचे। मराठी इतिहास में इसका उल्लेख नहीं है कि कभी भी पुर्तगालियों ने चौथ देना स्वीकार किया, किन्तु इस बात का बारम्बार उल्लेख है कि उन्होंने कर चुकता किया। सम्भवतः इस अवसर पर कुछ समझौता हुआ।

१६७५ ई०—दिलेर खाँ के नेतृत्व में मुगल सैनिकों ने कुछ शान्ति भङ्ग की। अतः शिवाजी को राज्यपाल से की हुई सन्धि को भङ्ग करने का बहाना मिला। औंध और पत्ता पर अधिकार करने के बाद मोरो पन्त ने शिवनेर को जो शिवाजी की जन्मभूमि थी लेने का असफल प्रयत्न किन्तु मराठे इसे कभी नहीं ले सके। सेनापति हम्बीर राव की सफलता ने इस असफलता की पूर्ति की। उसने सूरत के समीप के एक दर्रे पर चढ़ाई की और अपने अश्वारोहियों को अनेक दलों में बाट कर, बुर्हानपुर प्रदेश को तथा वहाँ से महोर को लूटा। उसके एक दल ने भड़ौच जनपद में अंशदान वसूल किया। यह पहला मराठा दल था जिसने नर्मदा को पार किया।

पन्हाला और तत्तोरा के बीच के सब थानों पर अधिकार कर शिवाजी ने पोण्डा पर घेरा डाला किन्तु जब वे अपने सब पदातियों के साथ कोंकण में कार्य में संलग्न थे, फल्टन के तथा मल्लावरी के देशमुख निम्बालकर और घाटगे ने रक्षक-सैन्यदल पर हमला किया, थानों के सैनिकों को खदेड़ा और अरक्षित देश का अधिकांश भाग बीजापुर के सुलतान के लिए पुनः हस्तगत किया। दिलेर खाँ ने बड़ी तेजी से हम्बीर राव का पीछा किया जो गोदावरी पार कर अपने घर वापस आ रहा था। बड़ी कठिनाई से हम्बीर राव अपने मूल्यवान् लूट के माल को बचा पाए। जिस समय शिवाजी पोण्डा दुर्ग को घेरे हुए थे मुगलों की एक टुकड़ी ने कल्याण जनपद को लूटा। एक सुरङ्ग लगाने पर पोण्डा के किलेदार ने, प्रशंसनीय प्रतिरक्षा

---

[1] ये उपाधियाँ थीं : 'क्षत्रिय कुलावतंस, श्री, राजाशिव, छत्रपति'। सरदेसाई के अनुसार शिवाजी ने 'क्षत्रिय कुलावतंस, सिंहासनाधीश्वर, महाराज छत्रपति' की उपाधियाँ धारण की थीं।

के बाद, समर्पण किया। तत्पश्चात् शिवाजी ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, कोंकण में अंशदान ऊगाहा, अनेक स्थानों की लूट की, घाटों पर चढ़े, सोन्दा भूमिभाग में प्रवेश किया, और लूट का माल लादे हुए रायगढ़ को लौटे।

ऋतु आरम्भ होने पर हम्बीर राव ने मुगल प्रदेश में जाकर बड़ा उपद्रव मचाया। उस समय खान जहाँ बहादुर और दिलेर खाँ दूसरे क्षेत्र में फँसे थे।

अपनी स्थिति डावाँडोल देख कर, और अपने न्यास को पूरा करने की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थ की ओर अधिक ध्यान देने के कारण, बीजापुर राजप ख्वास खाँ ने खान जहाँ से समझौता वार्ता चलाई। बीजापुर प्रदेश को साम्राज्य का एक अधीन प्रांत बनाकर रखना, तथा बालक सुलतान की बहिन पादशाह बीबी को औरङ्गजेब के एक लड़के से विवाह कर देना स्वीकार किया। जब इस कार्यवाही की बीजापुरियों को जानकारी हुई तो अब्दुल करीम के नेतृत्व में सामंतों ने ख्वास खाँ के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा और करीम सिरजा से उसकी हत्या करा दी। उसकी मृत्यु से लोगों को शोक नहीं हुआ विशेष कर इस कारण से कि उसने सुलतान की बहिन को मुगल परिवार में देना स्वीकार किया था, जिसके प्रति बीजापुर निवासियों का विशेष मोह था। अब्दुल करीम ने प्रतिरक्षा करने की तैयारी की आज्ञा दी। यह आज्ञा ऐसी फुर्ती से पालन की गई जो पिछले राजप के अधीन एक असाधारण बात थी। जब खान जहाँ बहादुर बीजापुर सीमा की ओर बढ़ा तो अब्दुल करीम ने उसका सामना करने के लिए प्रस्थान किया। कई लड़ाइयाँ लड़ी गई जिसका अन्त बीजापुरी सेना के लिए लाभदायी हुआ। दिलेर खाँ भी अपने देशवासी अब्दुल करीम के अनुकूल था, अतः एक सन्धि जो बाद को मैत्री में परिणत हुई दिलेर खाँ की मध्यस्थता से सम्पन्न हुई।

१६७६ ई०—शिवाजी ने तीसरी बार तत्तोरा और फ्हाला के बीच का आरक्षित प्रदेश को अपने अधिकार में किया जिससे कि आसपास के जागीरदार भविष्य में आक्रमण न कर सकें। उन्होंने किलों की एक श्रृङ्खला बनाने की आज्ञा दी। इन किलों का नाम उन्होंने वर्धनगढ़, वसनगढ़, सदाशिवगढ़, और मच्छिन्द्रगढ़ रखा। ये किले अधिक दृढ़ नहीं थे किन्तु बीच के थानों को सहारा देने तथा सीमावर्ती अत्यन्त उपजाऊ प्रदेश की रक्षा करने के लिए ये स्थान समझदारी से चुने गए थे। जब शिवाजी यह व्यवस्था करने में संलग्न थे उनपर एक गहरी अज्ञात बीमारी का आक्रमण हुआ। इसके क्या लक्षण थे यह नहीं मालूम। किन्तु इसके कारण उनको कई महीनों तक सातारा में रुकना पड़ा। इस अवधि में उन्होंने धार्मिक विधियों का अत्यन्त कठोरता से पालन किया किन्तु साथ ही वे अपने जीवन के सब

से महत्त्वपूर्ण अभियान की योजना भी बनाते रहे।[1] दूसरी शक्तियों से उनकी प्रारम्भिक वार्ताएँ, भूमि पर उनका दृष्टि-विस्तार, उनके साहस और सूक्ष्म-बुद्धि का संयोजन, और उनके कार्य की आश्चर्यजनक सफलता, इतने आकर्षक हैं कि मात्र उनको पूर्णतया समझने के लिए देश की सामान्य स्थिति की कुछ प्रारम्भिक चर्चा करना उचित है। साथ ही अगले तीस वर्षों की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की भूमिका के रूप में एक संक्षिप्त अनुदर्शन भी आवश्यक है।

---

[1] ओर्म के अनुसार शिवाजी अपनी बीमारी की अवस्था में रायगढ़ में थे।

[2] 'शिवाजी की प्रतिभा अपने समय से कहीं आगे थी। उन्होंने उन अधिकांश सुधारों और कार्यवाहियों को सोचा और कार्यान्वित किया जो आजकल सभ्य राज्य से सम्बन्धित माने जाते हैं। वे हिन्दू धर्म के रक्षक और सब धर्मों का समान आदर करते थे। उनका व्यक्तित्व असाधारण था। वे अन्धविश्वासमूलक अज्ञानता और नितान्त नैराश्य के दलदल में डूबे हुए भारत में एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में चमके। उन्होंने अपनी ही सूझबूझ से राष्ट्रीय उद्धार का एक नया मार्ग निकाला।'—सर देसाई : न्यू हिस्ट्री आव द मराठाज, पृ० २८८-९। 'शिवाजी हिन्दू जाति के अन्तिम मौलिक सङ्गठनकर्त्ता और राजनीति क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ कर्मवीर हैं। उन्होंने मराठा जाति में नया जीवन फूँका, स्वाधीन राज्य की स्थापना की, और यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू अब भी राजकाज में, जल और स्थल युद्ध में, साहित्य और शिल्प वर्धन में, व्यापारी जहाज तैयार करने में, अपने धर्म की रक्षा करने में, और राष्ट्रीयता को पूर्णता प्रदान करने में सक्षम हैं। प्रयाग के अक्षयवट की तरह हिन्दू जाति का प्राण अमर है। सैकड़ों वर्ष तक बाधाओं और विपत्तियों को झेल कर भी पुनः शिर ऊँचा करने की और नए शाखा-पल्लव फैलाने की शक्ति उसमें निहित है। धर्मराज्य स्थापन करने से, चरित्र को दृढ़ रखने से, नीति और नियम का अन्तरात्मा से पालन करने से, जन्मभूमि को अपने स्वार्थ से बढ़ कर समझने से, अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहने से जाति अमर और अजेय होती है।'—सरकार : शिवाजी, पृ० १६०-६१।

अध्याय ६

(१६७६ ई० से १६८० ई० तक)

१६७६ ई०—सम्राट् औरङ्गजेब अब तक अपनी सत्ता को स्थापित करने, कार्यों को व्यवस्थित करने, या उत्तर के विद्रोह का दमन करने में लगा था किन्तु उसने साम्राज्य में पूरे दक्खिन को मिलाने की अपनी पुरानी और प्रिय योजना को कभी ओझल नहीं किया। साम्राज्य के अन्य भागों में उसकी स्वयं की उपस्थिति की आवश्यकता थी और दक्खिन की विजय किसी सहायक को सौंपने में वह जरूरत से अधिक संशयालु था। अतः वह इस व्यवस्थित योजना में लगा था कि दक्षिण के राज्यों को इतना निर्बल और खोखला कर दिया जाय कि जब उसको पर्याप्त अवकाश मिले, वह एक बृहत् सेना का छापा मार कर सभी को अभिभूत करे और वहाँ उसका काम केवल व्यवस्था स्थापित करना रह जाय, न कि दमन ~~करना~~।

खान जहाँ बहादुर इतना योग्य नहीं था कि वह दक्खिन को विजय कर सके। इसके अतिरिक्त, उसकी सेना भी इस काम के लिए बिल्कुल अपर्याप्त थी। अनेक वार मराठे मुगलों की बड़ी २ टुकड़ियों को हरा चुके थे। मुगलों की निर्बलता के कारण उनके विरुद्ध अन्य शक्तियों का एक सङ्घ बन जाने की सम्भावना थी। औरङ्गजेब ने अपनी कूटयुक्ति से बीजापुर और गोलकुण्डा दोनों ही राज्यों में अव्यवस्था बना रखी थी। अतः उसे भय नहीं था कि ऐसा सङ्गठन बनेगा। उसके दूत मुसलमान राजदरबारों के प्रत्येक शक्तिशाली व्यक्ति को उत्कोच देकर तथा आन्तरिक शासनों में दलबन्दी उत्तेजित कर कलह और ईर्ष्या उत्पन्न करने में लगे थे।

यद्यपि शिवाजी की साहसिक लूटमार और अभियानों से अत्यन्त रोष उत्तेजित था किन्तु औरङ्गजेब की दृष्टि में उनकी शक्ति नगण्य थी। अतः उसके विचार से बीजापुर या गोलकुण्डा के विरुद्ध किए गए शिवाजी के विनाशकारी कार्य उसकी योजना के अनुकूल थे। इसीलिए खान जहाँ भी कुछ हद तक ऐसा आचरण करता था। वह काफी समय तक औरङ्गजेब का उतना ही विश्वासपात्र था जितना कि अन्य कोई अधिकारी; यद्यपि सम्राट् को यह अवश्य ही

अच्छी तरह से मालूम रहा होगा कि शिवाजी खान जहाँ की ओर से की गई उपेक्षा और सहिष्णुता बहुधा खरीदते हैं क्योंकि यह बात यूरोपीय बस्तियों में कुख्यात थी।

यद्यपि अब्दुल करीम के परिश्रमों से बीजापुर में अस्थाई शान्ति थी किन्तु उस दल का नेता होने के कारण जिसने खवास खाँ की हत्या कराई थी, मुगलों से उसे कोई आशा न थी। उसके स्वार्थ पूर्णतया राज्य के स्वार्थ थे। और यदि दिलेर खाँ तथा मुगल सेना के अन्य अफगानों से उसका सम्बन्ध न होता, तो यह उसके लिए अधिक स्वाभाविक था कि वह औरङ्गजेब की अपेक्षा शिवाजी का सहायक होता। मुगल पक्ष वाले राजप के शत्रु थे। शान्ति रखने के ढङ्गों को बनाए रखकर सम्राट् ने अपने दूत कश्मीर निवासी मलिक बरखरदार को वहाँ भेजा। अपने दल के बाहर के सामंतों को अपनी ओर करने तथा प्रत्येक प्रत्यक्ष शिष्टता और प्रत्येक दुष्टपूर्ण कपटयुक्ति से राजप को परेशान करने की उसकी वाक्पटुता में औरङ्गजेब को विश्वास था।

गोलकुण्डा में मुगल प्रभाव का बोलबाला था किन्तु अब्दुल कुत्बशाह की मृत्यु से जो १६७२ में हुई थी औरङ्गजेब को वे लाभ नहीं हुए जिसकी उसने कल्पना की हो। भूतपूर्व सुलतान का दामाद और उत्तराधिकारी निकम्मा युवराज अबूहसन जो युवावस्था में अपनी व्यसनासक्ति के लिए कुख्यात था सिंहासनारूढ़ होने पर कुपथ को एकदम त्याग दिया। एक निर्बल युवराज होते हुए भी वह कुछ अवसरों पर अपने उच्च स्थान के गौरव का प्रतिपादन करता था किन्तु वह दो भ्राताओं, मधुना पन्त और अकन्ना पन्त के प्रभाव में था जो यद्यपि, विशेष कर उनमें से प्रथम, योग्य माने जाते थे कूटयुक्ति की सूक्ष्मता की उस प्रकृति से युक्त थे जो ब्राह्मण कूटनीतिज्ञों का मुख्य दोष है। औरङ्गजेब की युक्तियों में बिल्कुल वही विशेषता थी और परिणाम ने भयंकर धूर्तता की न केवल तुच्छता बल्कि गवाँरू उक्ति की सत्यता भी सिद्ध की जिससे कोई भी राजा शिक्षा ले सकता है। सम्राट् ने अपनी प्रणाली के पूरे परिणामों पर विचार नहीं किया और वह विश्वासघात और भ्रष्टता जो इस काल में उत्साहित या सहन की गई उसके शासन के पिछले भाग की असाध्य गड़बड़ी का मुख्य कारण हुई।

संक्षेप में दक्खिन की यह स्थिति थी जब शिवाजी ने कार्णाटक में अभियान का श्रीगणेश किया। पहले पहल इसका सुझाव रघुनाथ नारायण हनमन्ते ने दिया था जो कार्णाटक की शाहजी की जागीर का प्रबन्धक था और अपने पिता नारुपन्त के पद का अनुवर्ती था। रघुनाथ नारायण में विशिष्टगुण थे किन्तु व्यंकोजी शाहजी की मृत्यु के बाद उसके गर्वपूर्ण आचरण से परेशान हुए। दूसरी ओर अपने ही

काम-धाम की देखरेख में व्यंकोजी के हस्तक्षेप से रघुनाथ नारायण बहुत चिढ़ा। पारस्परिक स्वार्थ के कारण उनकी यह बढ़ती हुई घृणा बहुत दिनों तक दबी रही। किन्तु ग्यारह या बारह वर्षों के बाद रघुनाथ नारायण ने कार्णाटक छोड़ कर गोलकुण्डा में अबूहसन के दरबार को प्रस्थान किया और वहाँ जाकर मधुना पन्त से जान पहचान कर उसके विश्वास को प्राप्त करने की युक्ति की। किन्तु यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसने ये कदम उस योजना को सामने रखकर उठाए थे जिसको उसने बाद को कार्यान्वित किया। वह शिवाजी से सम्मिलित होने के लिए आया। अपने पिता का एक पुराना और विशिष्ट सेवक तथा सामंत प्रधान का भाई होने के नाते शिवाजी ने उसकी बड़ी आवभगत की। और रामचन्द्र पन्त को हटाकर जो उनके मन्त्रियों में सब से कनिष्ठ था शिवाजी ने उसके पद पर रघुनाथ पन्त हनमन्ते को बैठाया और उसे अमात्य प्रधान का पद प्रदान किया। जब वर्षा ऋतु में शिवाजी सातारा में बीमार पड़े थे,[१] तब इस विषय पर लगातार मन्त्रणा होती थी कि हिन्दू विधि के अनुसार शाहजी के स्वामित्व में शिवाजी का आधा अधिकार है। और दक्षिण में अधिक विस्तृत उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए इसको एक छद्म के रूप में खड़ा किया जा सकता है।

प्रत्येक दृष्टि से यह काल इस कार्य के लिए अनुकूल था, क्योंकि बीजापुर और मुगलों की सन्धि और विशेषकर राजप और दिलेर खाँ का सम्बन्ध मधुना पन्त की ईर्ष्यालु मति को उत्तेजित करने का एक निश्चित साधन था। गोलकुण्डा के प्रति दिलेर खाँ सदा से ही कृतसंकल्प शत्रुभाव रखता था। इसी तरह यह भी ज्ञात था कि वह शिवाजी के प्रति भी उतना ही वैमनस्य रखता है।

पहला उद्देश्य खान जहाँ के साथ एक समझौता करके सम्पन्न किया गया। जिसमें खान जहाँ को एक बड़ी रकम दी गई। मालूम होता है, रकम का कुछ अंश खुले रूप से और कुछ गुप्त रीति से दिया गया। जो रकम खुले रूप में मिली थी उसको

---

[१] रानाडे के अनुसार शिवाजी मुगलों के संचारण मार्ग को लम्बा कर उनको हराना चाहते थे जिससे कि दिल्ली की सेनाएँ लम्बी दूरी से निर्बल हो जायँ, और वे आवश्यकता पड़ने पर दूर दक्षिण के अपने नए राज्य में शरण भी ले सकें। किन्तु सरकार के मत से केवल सञ्चित धन के शोषण के लिए मद्रासतट के इतनी दूर के प्रदेश पर जो उनकी राजधानी से ७०० मील दूरी पर है शिवाजी कब्जा करना चाहते थे। अपने पिता की जायदाद में उत्तराधिकार का उनका दावा उनके लूट-अभियान का एक बहाना मात्र था। सम्भवतः वे दोनों ही कारणों से प्रेरित हुए थे।

मुगलों ने कर कहा। अपनी स्वतन्त्रता की इस स्थिति पर भी; शिवाजी ने इसकी तुलना दुधारू गाय को दी जाने वाली खली से की और इस तरह अपने को सांत्वना दी।

पूरब ओर के उनके आंचलिक किले जिनको उन्होंने अभी २ पूरा कराया था घाटगे और निम्बालकर के आक्रमणों का प्रतिघात करने के लिए पर्याप्त थे। सीदी के आक्रमणों या पदार्पण से समुद्रतट की रक्षा करने के लिए शिवाजी ने पन्त सचिव अन्नाजी दत्तो के अधीन दृढ़ रक्षकसेना और व्यूह योग्य पदातियों का एक बड़ा दल रखा। कल्याण और पोण्डा के बीच में उनके अनेक २ किले थे। किसी भी आक्रान्त स्थान पर विभिन्न स्थानों से क्षिप्रता से सहायता पहुँच सकती थी। इस रूप में इस भूमिभाग की विशेष देखभाल सचिव को सौंपी गई थी। किन्तु उनको आदेश था कि वह पेशवा मोरो पंत की जिसके हाथ में शिवाजी ने अपनी अनुपस्थिति में मुख्य प्रबन्ध न्यस्त किया था सहायता करे। किन्तु इस शक्ति-विभाजन से इन मंत्रियों में एक दुर्दमनीय ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

१६७७ ई०—शिवाजी ने तीस हजार अश्वारोहियों और चालीस हजार पदातियों को लेकर १६७६ में गोलकुण्डा की ओर प्रयाण किया। सावधानीपूर्वक लूटपाट बचाते हुए, अत्यन्त व्यवस्थापूर्वक यह प्रयाण सम्पन्न हुआ। न्यायाधीश प्रधान का पुत्र प्रह्लाद पंत शिवाजी की पहुँच की सूचना देने के लिए आगे भेजा गया था। इस सूचना से हैदराबाद को आश्चर्य और भय हुआ, यद्यपि मधुना पंत को यह बात पहले से मालूम थी। शिवाजी से मिलने के लिए मधुना पंत कुछ दूर आगे आए। गोलकुण्डा में पहुँचने के दूसरे दिन शिवाजी और कुत्बशाह से कई घन्टे तक मन्त्रणाएँ हुईं। अपनी वाक्पटुता से शिवाजी ने सुलतान को यह विश्वास दिलाया कि उन दोनों के बीच में सन्धि होना आवश्यक ही नहीं बल्कि स्वाभाविक है। इस सन्धि का कोई प्रामाणिक लेख नहीं मिलता। मालूम होता है कि इस समझौते के अनुसार उस भूमिभाग का बटवारा हुआ जिसको शिवाजी ने विजय किया था और जो उनके पिता शाहजी के कब्जे में नहीं था; तथा मुगलों और उनके मित्रदलों के विरुद्ध एक आक्रमणात्मक और प्रतिरक्षात्मक सन्धि हुई। इस सन्धि से बीजापुर को वे सामान्य परिहासात्मक लाभ मिले जो किसी शक्ति को अपने पड़ोसियों के ऐसे सन्धियों से मिलते हैं जिनमें उसका हाथ नहीं होता। इसके पूर्व की, बीजापुर को इस सन्धि के सम्पूर्ण लाभ प्राप्त हों यह आवश्यक था कि कार्णाटक में उसके अधिकृत भूमिभागों को जीता जाय, शिवाजी और कुत्बशाह में बटवारा हो, अब्दुल करीम राजपता से अलग किए जाएँ और उसका स्थान मधुना पंत के भाई को दिया जाय। यह नहीं मालूम किया जा सकता कि विश्वासघात प्रेरित करने के लिए मधुना

पंत को और कौन २ से० प्रलोभन दिए गए, किन्तु शिवाजी बहुत सा द्रव्य और साज-सामान के साथ तोपखाना, जिसकी उनको अत्यन्त आवश्यकता थी, पाने में सफल हुए। सम्भव है कि उन्होंने अन्य सब अधिकबलन को तिलाञ्जलि दी हो। शिवाजी के बिना सुझाव दिए ही अपने आप इस प्रश्न के पैदा होने की सम्भावना थी कि क्या राज्य की प्रतिरक्षा के लिए कुत्वशाह की पूरी सेना रखी जाय।

मार्च—हैदराबाद में एक महीना व्यतीत करने और अपना प्रबन्ध पूरा करने के बाद शिवाजी ने सीधे दक्षिण को प्रस्थान किया और मार्च महीने के लगभग कर्नूल के पच्चीस मील नीचे निवृत्ति संगम[1] पर कृष्णा नदी को पार किया। कडुपा के रास्ते उनकी सेना धीरे २ आगे बढ़ी। किन्तु शिवाजी एक अश्वारोही दल लेकर पर्वत्तम् मन्दिर[2] में दर्शन करने के निमित्त पूरब की ओर मुड़े। वहाँ उन्होंने अनेक तपस्याएँ कीं। वहाँ वे इतने उत्साह में भर गए कि तलवार खींचकर देवी जी के सामने अपने को वलिदान करने के लिए उद्यत हुए। किन्तु, जैसा कि यह कहा किया जाता है, देवी भवानी के प्रत्यक्ष बीच में आ जाने से उनके प्राण बचे। दैवीप्रेरणा से शिवाजी ने इस अवसर पर अपनी अनेक भविष्यवाणियों में से एक भविष्यवाणी यह की कि देवीजी ने उनके द्वारा हिन्दू धर्म की अनेक सेवाएँ कराने के लिए अभी उनके जीवित रहने की आवश्यकता बताई है। देवी जी ने कार्णाटक में शीघ्र ही होने वाली महान् विजयों की घोषणा की।

इस तरह व्यर्थ ही बारह दिन व्यतीत करने के बाद शिवाजी ने अपनी सेना का अनुगमन किया जो दामलचेरी दर्रे से होकर कार्णाटक-पायानघाट में आई। उनके सामने दो उद्देश्य थे। अतः उन्होंने अपनी सेना के भारी भड़कम भाग को सुविधाजनक पड़ाव डालते हुए आने के लिए पीछे छोड़ा और वे स्वयं अश्वारोहियों तथा एक मावले दल को लेकर आगे बढ़े। मई के पहले हफ्ते में वे मद्रास के आगे गए और जिंजी के पड़ोस में पहुँचने पर जो उस समय बीजापुर के कब्जे में था, रघुनाथ नारायण से किए गए समझौते के अनुसार, अम्बर खाँ के पुत्र रूप खाँ और

---

[1] यहाँ कृष्णा और तुङ्गभद्रा का संगम है।

[2] मराठे इसे श्रीशैल कहते हैं। यहाँ पर मल्लिकार्जुन (शिवजी) का मन्दिर है। इनकी गणना द्वादश स्वयंभूलिङ्ग में की जाती है। मन्दिर २५-२६ फुट ऊँची दीवार से घिरा है जिसमें रामायण एवं पुराण आदि के दृश्य बड़ी सुन्दरता से खुदे हुए हैं। विजयनगर के सम्राट् कृष्णदेव राय ने १५१३ में मन्दिर के चारों ओर की दीवार और छत सोने के पत्तरों से मढ़ाई थी।

नजीर मुहम्मद ने जिंजी को अर्पित किया[1]। एक मावला सेनापति रामजी नलगे यहाँ का हवलदार बनाया गया और वही नियमावली यहाँ छः सौ मील दूर द्राविड में शुरू की गई जो महाराष्ट्र में उनके किलों में प्रचलित थी। इसी तरह विठ्ठल पीलदेव गरुड़-कर को जो अधीनस्थ जनपदों का मुख्य प्रभारी था अपनी भूमि-कर प्रणाली को प्रचलित करने की आज्ञा दी गई।

बीजापुर शासन के एक पदाधिकारी शेर खाँ ने जो त्रिनामल्ली जनपद का प्रभारी था पाँच हजार अश्वारोहियों को लेकर शिवाजी का विरोध करने का प्रयास किया किन्तु वह शीघ्र ही घेरा जाकर कैद कर लिया गया, और मराठा विजेताओं के रीति के अनुसार उसके घोड़ों पर अधिकार किया गया। शिवाजी के सौतेले भाई सन्ताजी ने इस घटना के पहले उसका साथ दिया था किन्तु शीघ्र ही उसने अपने कुल की वीरता और योग्यता प्रदर्शित की। इसी अन्तराल में शिवाजी की सेना का शेष भाग जिसको उन्होंने जानबूझ कर पीछे छोड़ दिया था नरहरी बल्लाल नामक एक ब्राह्मण के नेतृत्व में (वेलूर) वेल्लोर के शक्तिशाली किले पर घेरा डाला। समीप के दो पहाड़ियों पर जिसका नाम उन्होंने सजरा और गजरा रखा मुख्य तोपखाना खड़ा किया गया। कुछ अवधि तक इसका घेरा चलता रहा। मराठी हस्तलेखों में इसका विवरण बहुत ही अपूर्ण है। सितम्बर के अन्तिम दिनों में इस किले ने समर्पण किया।[2]

जब वेल्लोर का घेरा चल रहा था, उसी समय शिवाजी तन्जोर पर अपनी युक्तियों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने अपने पिता की सम्पत्ति पर अपने हिस्से के दावे के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए अपने भाई को तिरुवड़ी में[3] मिलने के लिए राजी किया। उनकी अभिलाषाओं को जानकर, पहले तो व्यंकोजी शक्तिद्वारा उनका प्रतिरोध किए होते, किन्तु रघुनाथ नारायण की वाक्पटुता से मदुरा के नायक ने जो सहायता व्यङ्कोजी को देने को कहा था उससे मुख मोड़

[1] कर्नलविल्कस का वर्णन डफ के वर्णन से भिन्न है। सरकार ने मदुरा के एक समसामयिक ईसाई पादरी का पत्र उद्धृत किया है। इस पत्र के अनुसार जिंजी पर कब्जा विश्वासघात या समझौते के द्वारा नहीं बल्कि अचानक आक्रमण द्वारा हुआ था।

[2] सरकार के अनुसार वेल्लोर (वेलूर) का पतन २१ अगस्त १६७८ को हुआ। इसका घेरा २३ मई १६७७ से आरम्भ हुआ था।

[3] यहाँ पर तिरुवड़ी के स्थान पर विरुमलवड़ी होना चाहिये जो तञ्जोर से १० मील दक्षिण है। किन्तु तिरुवड़ी कड्डालोर से १३ मील पश्चिम है।

लिया। अतः व्यंकोजी ने अपने भाई से भेंट करने के विकल्प को अपनाया। शिवाजी ने अनेक प्राकट्य सम्मान दिखाते हुए उसका स्वागत किया किन्तु अपने भाई को सम्पत्ति का आधा भाग देने को राजी न कर सके। पहले तो शिवाजी ने उसको बन्दी बनाने और तन्जोर का, जागीर जनपदों का, तथा द्रव्य और रत्नों का आधा भाग देने के लिए बाध्य करने को सोचा, किन्तु और विचार करने पर, क्योंकि व्यंकोजी स्वेच्छा से उनसे भेंट करने आए थे, 'स्वयं भाई और युवराज' होकर शिवाजी के लिए ऐसा करना असङ्गत था, अतः उन्होंने उसको तन्जोर लौट जाने दिया। यद्यपि उसी समय शिवाजी अन्य जनपदों पर अधिकार करने पर तुले थे, संयोजन का द्वार खुला रखने के लिए, विवादास्पद तन्जोर, अरनी तथा दो एक किले देने और सम्पत्ति का बराबर का बटवारा करने को प्रोत्साहित करने का प्रयास करने के लिए शिवाजी ने व्यंकोजी के पास दूत भेजे। उन्होंने अपने भाई के पास यह भी कहलाया कि वह यह याद रखें कि वे जो चाहते हैं वह मात्र प्रदेश नहीं है। उनके पास भूप्रदेश है और वह इसे प्रभूत मात्रा में प्रदान कर सकते हैं किन्तु वे अपने उत्तराधिकार (वतन) को त्याग नहीं सकते, क्योंकि यह प्रतिष्ठा की बात है।[1]

तिरुवड़ी में भेंट होने के बाद शिवाजी वेल्लोर आए जो पहले ही समर्पण किया जा चुका था। तत्काल पश्चात् कार्णाटकगढ़ और दो अन्य किले जीते गए। वेद भास्कर, एक ब्राह्मण ने जो शाहजी के समय से अरनी का प्राधिकारी था किले की कुञ्जियों को ले आकर शिवाजी को अपनी सेवाएँ अर्पित की। शिवाजी ने उनके कमान्ड की पुष्टि की और उसके दो लड़कों को सेवा में लिया। अगला वर्ष आरम्भ होने के पहले शाहजी की जागीर के जनपदों कोल्हर, बगलौर, आस कोटा बालापुर, और सेरा पर अधिकार किया। उनके अश्वारोहियों ने चौथ और सरदेशमुखी के नामों पर अंशदान वसूल किया और जहाँ लोगों ने अंशदान देना स्वीकार नहीं किया वहाँ उन्होंने लूट की।

खान जहाँ बहादुर ने जो युद्ध विराम सन्धि शिवाजी से की थी, उसकी औरङ्गजेब ने पुष्टि नहीं की। दक्खिन के राज्यों को खोखला करने की सम्राट् की प्रणाली के अनुकूल एक योजना दिलेर खाँ ने भेजी जिसमें अब्दुल करीम और बीजापुर के सैनिकों की सहायता से गोलकुण्डा पर आक्रमण करने का प्रस्ताव था। अतः खान जहाँ वापस बुलाया गया और दिलेर खाँ को अपने प्रस्तावों को कार्यान्वित करने की आज्ञा मिली।

---

[1] शाहजी की मृत्यु के बाद बीजापुर शासन ने व्यङ्कोजी को पूरी जागीर फिर से प्रदान की थी। इस पर हिन्दू उत्तराधिकार-विधि नहीं लागू होती थी।

कुत्बशाह ने शिवाजी से मैत्री कर ली थी। दिलेर खाँ और अब्दुल करीम के इस संयुक्त आक्रमण का यही बहाना था। किन्तु मधुना पन्त को यह भान हो गया था कि तूफान उठने वाला है। अभिभूत करने वाली एक बृहत् सेना ने आक्रमणकारियों का सामना किया और शीघ्र ही उनको पीछे हटने को बाध्य किया। बीजापुर सैनिकों को घोर कठिनाई झेलनी पड़ी। अतः बहुत से सैनिकों ने सेना का साथ छोड़ दिया। शेष सैनिक वेतन न मिलने के कारण इतने अव्यवस्थित और झगड़ालू हो गए थे कि शत्रु के प्रतिरोध में खड़े नहीं किए जा सकते थे। यह व्यापक आपदा तो थी ही, अब्दुल करीम भी बीमार पड़ा। और उसके जीवन की आशा न होने के कारण दिलेर खाँ ने दलों में मेल कराने का प्रयत्न किया। और यह समझौता हुआ कि हबशी मसूद खाँ जो सीदी जौहर का दामाद और अदोनी का जागीरदार था राजप बनाया जाय। अब्दुल करीम की मृत्यु जनवरी १६७८ में हुई। अतः मसूद खाँ उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। उसके चुने जाने का मुख्य कारण उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, विशेषतया क्योंकि उसने दिलेर खाँ के ऋणों तथा सैनिकों का अवशेष वेतन चुकता करने का वचन दिया था। उसने शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने, शिवाजी से किसी प्रकार का भी संचारण न रखने, सब अवसरों पर दिलेर खाँ की सलाह मानने और पादशाह बीबी को मुगल शिविर में भेजने, की खवास खाँ की शर्तों को मानना स्वीकार किया। मसूद खाँ ने पदातियों के अवशेष वेतन का एक भाग चुकता किया। किन्तु बीजापुर लौटने के बाद उसने न तो वेतन ही दिया और न अधिकांश अश्वारोहियों को सेवा में ही रखा। परिणामस्वरूप अश्वारोहियों के बड़े २ दल बन्धनरहित हो गए। मोरो पन्त ने उन्हें शिवाजी की सेवा में ले लिया। शेष अश्वारोही मुगलों से जा मिले। बीजापुर में एक दुःखद असंतोष व्याप्त था। किन्तु बाद को सुलतान की बहिन को मुगलों को देना अस्वीकार करने से राजप काफी लोकप्रिय हुआ।

मसूद खाँ से समझौता करने के तुरन्त ही बाद दिलेर खाँ ने पेडगाँव की ओर प्रस्थान किया। शिवाजी ने वहाँ की परिस्थिति की सूचना पाकर कार्णाटक से प्रयाण किया। उन्होंने अपने सौतेले भाई सन्ताजी को जिंजी तथा इसके अधीनस्थ प्रदेश का प्रभार दिया तथा उसे कार्णाटक के कामधाम के मुख्य प्रबन्ध की देखरेख करने के लिए रघुनाथ नारायण और हम्बीर राव के साथ लगा दिया।

अपनी पिछली उपलब्धियों के एक भाग का भी शिवाजी ने त्याग नहीं किया। अतः सम्भवतः अब गोलकुण्डा के सुलतान को यह भासित हो गया कि शिवाजी ने उसको धोखा दिया है। किन्तु शिवाजी के रायगढ़ लौटने के बाद मैत्री सम्पर्क बना रहा।

जब शिवाजी के सैनिक बेल्लारी के पड़ोस में पहुँचे तो किले के कुछ आदमियों ने खाद्य सामग्री इकठा करने वालों में से कुछ को मार डाला। यह किला एक देसाई की विधवा[1] के स्वामित्व में था उसने क्षतिपूर्ति करना अस्वीकार किया। अतः इस काण्ड की आड़ लेकर इस पर घेरा डाला गया। सत्ताईस दिन के घेरे के बाद यह अधिकार में आया। इसके बाद शिवाजी ने कोपल पर घेरा डालकर अपने अधीन किया। पन्द्रह दिन बाद बहादुर बन्दा ने समर्पण किया और आसपास के प्रदेश पर तुरन्त अधिकार किया गया। जनार्दन पन्त सामंत को जो प्रधानों में से एक थे इन नई उपलब्धियों का प्रबन्ध दिया गया। शिवाजी प्रस्थान करते गए, और तुरगल में आ कर ठहरे। क्योंकि उनके भाई व्यंकोजी ने कार्णाटक में उनके सैनिकों पर हमला किया था। वे पराजित किए गए और उन्होंने पर्याप्त क्षति उठाई। यह सूचना प्राप्त होने पर शिवाजी ने अपने भाई के नाम एक लम्बा पत्र[2] भेजा जिसमें जो कुछ हुआ था उसका सारांश देकर, उस अत्यन्त अविवेकपूर्ण आचरण की ओर उसका ध्यान खींचा जिससे शिवाजी उन जनपदों पर अधिकार करने को बाध्य हुए और उनके अधिकारियों को उसके आक्रमणों का उत्तर देने के लिए हथियार उठाना पड़ा; नीच मुसलमान आक्रमणकारियों का संहार सन्ताप योग्य नहीं है किन्तु मूल्यवान् प्राणों की जो आहुति हुई है उस पर उसको विचार करना चाहिए। शिवाजी ने इस पत्र में एकता की आवश्यकता और शान्ति की उपयुक्तता पर बहुत जोर दिया और लिखा कि शान्ति रखने की उनकी इच्छा है, यदि उन्हें अपने पिता के कार्णाटक में कुल प्रादेशिक स्वामित्व प्राप्त हो। इसके बदले में शिवाजी ने यह वचन दिया कि वे अपने भाई को पन्हाला जनपदों में इसी के मूल्य के प्रदेश को लेने की अनुज्ञा देंगे या अपने मित्र कुत्बशाह से देश के किसी अन्य भाग में एक भूमिभाग का अनुदान उसके लिए प्राप्त करेंगे जिसकी वार्षिक आय तीन लाख पगोडा के बराबर होगी।

यह पत्र पाने पर व्यङ्कोजी ने रघुनाथ नारायण से भेंट करने की प्रार्थना की।

---

[1] बेलगाँव किले के ३० मील दक्षिण-पूरब में बेलवाड़ी गाँव है। उस गाँव की पटेलिन (जमींदारिन) सावित्री बाई नाम की एक कायस्थ विधवा थी जिसने इतने बड़े विजयी वीर और उनकी अगणित सेना के विरुद्ध अदम्य साहस से २७ दिन तक अपने छोटे किले की रक्षा की। इससे शिवाजी की बड़ी भद्द उड़ी।
—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ १४६।

[2] यह पत्र तथा व्यङ्कोजी के नाम शिवाजी के लिखे तीन अन्य पत्र सातारा के राजा के वंशागत चिटनिश के कब्जे में हैं और शिवाजी के चिटनिश बालाजी अवजी की हस्तलिपि में हैं।

किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि अब वह श्री राजा शिवाजी की सेवा में हैं। आज्ञा मिलने पर वे उसकी सेवा में उपस्थित होने में प्रसन्न होंगे। यह अनुज्ञा मिल जाने पर रघुनाथ नारायण ने एक समझौता किया। व्यङ्कोजी ने बहुत सा द्रव्य नकद देना, अपने पिता के रत्नों को बाटना, और प्रदेश के राजस्व का भाग अपने भाई को देना स्वीकार किया। इन शर्तों पर शिवाजी ने उसको तञ्जोर रखने की अनुज्ञा दी और उसको जागीर जनपद लौटाए।

जब शिवाजी तुरगल के समीप थे तब घाटगे और निम्बालकर के एक अश्वारोही दल ने पन्हाला जनपद को लूटा और लूट करते हुए कुरार के आगे गए। नीलाजी कटकर के नेतृत्व में शिवाजी की सेना की एक टुकड़ी ने इसे कुरली में आ घेरा, आक्रमण करके उनको छिन्न-भिन्न किया और बहुत सी मूल्यवान् सम्पत्ति उनसे छीनी। शिवाजी ने बड़ी सत्यता से जनता को उनकी सम्पत्ति वापस की।

बीजापुर के एक अश्वारोही दल से जनार्दन पन्त को डर था। अतः शिवाजी ने उसको अधिकबलन देने के लिए उसके पास अपने कुछ सैनिक भेजे। और स्वयं एक छोटी रक्षक टुकड़ी के साथ वर्षा ऋतु के दक्षिण-पश्चिम मानसून चलने के पहले, अठारह महीने की अनुपस्थिति के बाद रायगढ़ पहुँचे।

व्यङ्कोजी से समझौता सम्पन्न होने के बाद हम्बीर राव ने अत्यन्त वेग से महाराष्ट्र की ओर प्रयाण किया। उसके पहुँच की सूचना पाकर, जनार्दन पन्त ने द्वाब[1] में बीजापुर सैनिकों पर एक संयुक्त-आक्रमण करने को सोचा जो पूर्णतया सफल हुआ और विपक्ष दल का सेनापति, पाँच सौ अश्वारोही, और पाँच हाथी उनके हाथ लगे। तुङ्गभद्रा और कृष्णा के बीच के सम्पूर्ण प्रदेश पर आक्रमण किया गया और कोपल और बेल्लारी के पड़ोस के उपद्रवी देशमुख जो कुछ दिनों से बीजापुर शासन को कोई भी देय नहीं दे रहे थे शिवाजी के सैनिकों को समर्पण करने को बाध्य किए गए। बीजापुर की दुर्वस्था, अश्वारोहियों की कमी, और वर्षा के कारण नदियों की ऊफान से मसूद खाँ ने इन मूल्यवान् जनपदों पर फिर से कब्जा करने का साहस नहीं किया।

शिवाजी की अनुपस्थिति में पेशवा मोरो त्रिमल ने अपनी सामान्य कार्यपटुता और योग्यता से इन प्रदेशों की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। सीदियों से घृणापूर्ण शत्रुता से युद्ध चलता रहा। सीदियों को सूरत स्थिति मुगल वेड़ा से प्रत्येक ऋतु में अधिक-बलन प्राप्त होता था। मराठातट पर अवतरण, दोनों ओर से पोत-युद्ध, सीदी के बेड़े

---

[1] कृष्णा और तुङ्गभद्रा के बीच का प्रदेश।

को जलाने के प्रयत्न,० जंजीरा पर धीमी किन्तु स्थायी गोलाबारी—इस ढङ्ग से युद्ध चालू रहा।[1] सम्राट् ने सीदी सम्भोल का अवक्रम कर सीदी कासिम को उसका पद दिया। नए सरदार को, पूर्व अधिकारी की तरह याकूत खाँ की उपाधि दी गई। मराठे यह स्वीकार करते हैं कि वह एक श्रेष्ठ अधिकारी था।

सम्भवतः मुगलों और बीजापुर के बीच में युद्ध विराम हो जाने के कारण तथा इस आशङ्का से कि दिलेर खाँ पैडगाँव लौटने के बाद युद्ध आरम्भ करेंगे, मोरो पन्त ने बहुत से बीजापुर से निकाले हुए अश्वारोहियों को भरती किया। दिलेर खाँ ने जो समझौता किया था वह औरङ्गजेब को पसन्द नहीं आया। औरङ्गजेब ने उसे सूचित किया कि सामन्तों की जीविका का प्रबन्ध कर, सैनिकों के शेष वेतन को चुकता कर तथा प्रशासन को सम्राट् की रक्षा में लेकर उसे एक अधिक पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिए था। अतः औरङ्गजेब ने उसको समय रहते ही अपनी गलती को सुधारने का प्रयत्न करने, अश्वारोहियों के शेष वेतन को चुकता करने, और अधिक से अधिक अधिकारियों को शक्ति भर अपनी ओर करने का प्रयत्न करने की आज्ञा दी। बीजापुर का अफगान दल सरलता से अलग कर दिया गया। किन्तु उनमें से अनेक उग्र कलहकारी सामन्त यद्यपि वर्तमान प्रशासन के विरोधी थे, मुगलों से इससे भी कहीं अधिक विमुख थे। दूत ने औपचारिक रूप से यह कह कर पादशाह बीबी की माँग की कि तात्कालिक घेरे को रोकने का यही एक मात्र उपाय है। मसूद खाँ ने इस माँग को पूरा करना अस्वीकार किया। इसके विरुद्ध मलिक बरखरदार ने एक दल को उत्तेजित किया। वे सैयिद मखतूम के नेतृत्व में इस प्रार्थना को मनवाने के लिए हथियार ले कर एकत्रित हुए। उस समय राजप तैयार न था। सुलतान की बहिन उस नगर के मध्य में युद्ध न हो इस दृष्टि से स्वयं वहाँ आई और मुगल शिविर में जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की; गर्व और उदारतावश उसने यह कल्पना की कि उसके इस बलिदान से उसके भाई और उसके राज्य की रक्षा होगी। बीजापुर के मुसलमान निवासी इस कथा को तथा अपने अन्तिम और प्रिय राजकुमारी के सम्बन्ध की अनेक परम्परागत दन्त कथाओं को स्नेहपूर्ण वाचालता से दुहराते हैं।

---

[1] ओर्म ने अपनी पुस्तक में इसका पूरा-पूरा रोचक वर्णन किया है। अक्टूबर १६७७ में एक दिन सीदी कासिम और उसके आदमियों की सीदी सम्बल और उसके अनुयायियों से बम्बई द्वीप के पूरब के मजगाँव नामक एक किलेबन्द गाँव में खुल कर लड़ाई हुई।

१६७६ ई०—दिलेर खाँ के शिविर में पादशाह बीबी उस समय पहुँची जब मुगल नगर पर घेरा डालने को बढ़ रहे थे। उसको औरङ्गाबाद ले जाने के लिए एक उपयुक्त रक्षकदल का प्रबन्ध किया गया किन्तु सम्राट् की सेना प्रयाण करती रही। इस दुविधा में मसूद खाँ ने शिवाजी से सहायता माँगी। शिवाजी दिलेर खाँ पर आक्रमण करने को या घिरे हुए लोगों के पक्ष में उसका ध्यान दूसरी ओर खीचने के लिए राजी हुए। इस उद्देश्य से शिवाजी ने पन्हाला में अश्वारोहियों का एक बड़ा दल एकत्रित कर बीजापुर की ओर प्रस्थान किया। किन्तु मुगलों की शक्ति देखकर और पठानों से मुठभेड़ करना न चाह कर जिनकी संख्या दिलेर खाँ की सेना में बहुत थी, उन्होंने आक्रमण करने का मात्र प्रदर्शन किया। धीरे २ प्रस्थान कर जब वे मुगल शिविर के चौबीस मील की दूरी पर रह गए तब वे उत्तर की ओर मुड़े, और क्षिप्रता से भीमा को पार कर मुगलों के अधिकृत प्रदेश पर आक्रमण किया, और शब्दशः अग्नि और तलवार से निवासियों को घर विहीन, और गाँवों को राख किया। दिलेर खाँ ने घेरा नहीं उठाया, और शिवाजी भीमा से गोदावरी तक लूटपाट करते रहे। गोदावरी पार कर उन्होंने जालना पर आक्रमण किया और, यद्यपि सुलतान मुअज्जम औरङ्गाबाद में था, वे इस नगर को आराम से तीन दिन तक लूटते रहे। वे यह बताते जाते थे कि किन घरों और स्थानों पर द्रव्य और मूल्यवान् वस्तुएँ छिपी हैं, जैसा कि वे ऐसे अवसरों पर करते थे। उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा। इस अवसर पर कोई स्थान पवित्र स्थान न था। पीरों या मुसलमान सन्तों के निवासस्थान जिनको शिवाजी अब तक पवित्र मानते थे लूटे गए।[1] लूट के माल के लादे जाने से एक निश्चित संकेत मिला कि शिवाजी रायगढ़ की ओर का कोई रास्ता थामेंगे। राजकुमार की आज्ञा से रनमस्त खाँ के नेतृत्व में विभिन्न भागों से एकत्रित किए गए दस हजार अश्वारोहियों के एक दल ने शिवाजी का पीछा किया, और पत्ता के रास्ते में संगमनेर के निकट आक्रमण किया। मुख्यतया सन्ताजी घोरपडे की जल्दबाजी से उसकी सेना का एक भाग अस्तव्यस्त हुआ, सीदोजी निम्बालकर एक नामी अधिकारी मारा

---

[1] जालना शहर की लूट में कम धन मिलने तथा सैयिद जान मुहम्मद नामक मुसलमान साधु के आश्रम में वहाँ के महाजनों के छिप जाने के कारण मराठे सिपाहियों ने उस आश्रम में घुस कर लूट-पाट एवं शान्ति भंग की। इससे उस महान् शक्तिवान् पुण्यात्मा ने शिवाजी को शाप दिया जिसके कारण, लोगों का कहना था, पाँच महीने के बाद ही शिवाजी की मृत्यु हुई।—सरकार : शिवाजी, पृ० १५८।

गया, किन्तु शिवाजी जान पर खेल कर उन पर टूट पड़े[1]। उनके महत् व्यक्तिगत परिश्रम से मैदान उनके हाथ रहा। मुगल सैनिक छिन्न-भिन्न किए गए और वे अपने रास्ते पर बढ़े। वे दूर नहीं गए थे कि मिर्जा राजा जयसिंह के एक पौत्र किशनसिंह के नेतृत्व में एक बड़ा अधिकबलन मुगलों से संयुक्त हुआ और उन्होंने शिवाजी पर आक्रमण किया। इस सेना ने जिस दर्रे की ओर शिवाजी जा रहे थे वह रास्ता काट दिया। शिवाजी की सेना इस संयुक्त सेना से लड़ने में असमर्थ थी। किन्तु उनके एक जासूस[2] या पथप्रदर्शक की उत्तम बुद्धि ने शिवाजी की इस सङ्कटकाल में रक्षा की। वे एक ऐसे दर्रे से पहाड़ों के उस पार ले जाय गए जिसे मुसलमान नहीं जानते थे और जिससे वह कई घण्टे पहले सुरक्षापूर्वक पट्टा पहुँचे।[3] मुगल सैनिक औरङ्गाबाद लौटे। शिवाजी ने यह फैसला किया कि यह अवसर पत्ता के समीप के सत्ताईसों किलों को जीतने के लिए अनुकूल है। उन्होंने कोंकण से इस काम के लिए एक पदातिदल मोरो पन्त के दल से संयुक्त होने के लिए भेजा जिससे कि वे जितना कम हो सकें कम हो जाँय। इसी तरह अश्वारोहियों का एक बड़ा दल पेशवा के अधीन रखा गया। उस समय शिवजी पत्ता में थे जब मसूद खाँ ने उनके पास एक जरूरी पत्र भेजा कि वे दक्षिण की ओर चले आएँ और नगर को बचाने का प्रयत्न करें। दिलेर खाँ ने शहर की दीवारों तक रास्ते बना लिए हैं और केवल तात्कालिक कार्यवाही से ही उसकी रक्षा हो सकती है। शिवाजी ने फिर बीजापुर को

---

[1] शिवाजी ने अपने भाई को एक पत्र में लिखा कि परिस्थिति ही ऐसी थी कि प्राणों को सङ्कट में डाला जाय।

[2] शिवाजी चारों ओर से घिर गए थे और उनके पकड़े जाने में सन्देह नहीं था किन्तु नए फौज के सरदार केसरी सिंह ने चुपचाप उसी रात को शिवाजी के पास सन्देशा भेजा कि सामने का रास्ता बन्द होने के पहले ही आप सर्वस्व छोड़ कर इसी दम देश भाग जायँ। शिवाजी ने लूट का माल तथा २००० घोड़े आदि छोड़ कर अपने चालाक प्रधान चर बहिरजी नायक द्वारा दिखाए हुए एक अज्ञात रास्ते से तीन दिन तीन रात लगातार कूच कर एक निरापद स्थान में पहुँचे।—सरकार : शिवाजी, पृ० १५६।

[3] लूट का सब माल छोड़ कर केवल ५०० रक्षकों के साथ शिवाजी थके-माँदे २२ नवम्बर को पट्टा दुर्ग में पहुँचे जो नासिक शहर से २० मील पूरब में है। यहाँ कुछ दिन आराम करने के बाद ही वे चलने-फिरने योग्य हुए, इसीलिए पट्टा दुर्ग का नाम 'विश्रामगढ़' रखा गया।—सरकार : शिवाजी, पृ० १५६।

प्रस्थान किया। जब उन्हें सूचना मिली कि उनका पुत्र शम्भाजी भाग कर दिलेर खाँ से मिल गया, तब उन्होंने अपनी सेना को हम्बीर राव के नेतृत्व में उनका पीछा करने का आदेश दिया। शिवाजी शम्भाजी को वापस लाने की तरकीबें सोचने के लिए पन्हाला चले गए। अपने ज्येष्ठ पुत्र की चालचलन से शिवाजी कुछ दिनों से दुःखी और व्यग्र थे और एक ब्राह्मण स्त्री[1] के शरीर को अपवित्र करने का प्रयत्न करने के कारण शम्भाजी को शिवाजी ने पन्हाला में बन्द कर दिया। और जब वह छोड़े गए, शिवाजी ने उनके ऊपर एक कड़ी निगाह रखने का प्रबन्ध किया। इस प्रकार के नियन्त्रण से घबड़ा कर और अपने पिता की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर वह भाग कर दिलेर खाँ के पास गया जिसने उसका बड़े आदर-सत्कार से स्वागत किया।

दिलेर खाँ ने इस घटना का वर्णन सम्राट् के पास भेजा और यह सुझाव रखा कि क्योंकि मराठे बहुत शक्तिशाली हो रहे हैं, शम्भाजी को एक दल का नेतृत्व देकर वह अपने पिता के विरोध में खड़ा किया जाय जिससे कि उनका ध्यान बट जाय और किलों को लेने में आसानी हो। किन्तु सम्राट् ने इस योजना की पुष्टि नहीं की, यद्यपि यह उसी प्रकार की थी जैसी की बीजापुर और गोलकुण्डा के विरुद्ध की जाती थी। इसका कारण यह था कि इससे लूटमार की प्रवृत्ति बढ़ती। यह ध्यान देने योग्य बात है कि शिवाजी के जीवनी लेखक एक मराठा ने इस कारण का उल्लेख किया है। यद्यपि इसका और कोई दूसरा प्रमाण नहीं है किन्तु हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि यदि ऐसे विचार आरम्भ में औरङ्गजेब की कार्यवाहियों का पथप्रदर्शन करते, और यदि ये विचार कुछ थोड़े बहुत विस्तृत किए जाते कि जिससे मुसलमान राज्य बने रहते और मराठों के शिकार न होते, और मराठों की शक्ति न बढ़ती, तो इस सम्राट् की नीति को उन प्रशंसाओं की अपेक्षा जो बहुधा उसकी

---

[1] शिवाजी के ज्येष्ठ लड़के शम्भाजी मानो पिता के पाप के फलस्वरूप जन्मे थे। वे नशेबाज और लम्पट थे। एक सधवा ब्राह्मणी का सतीत्व नष्ट करने के कारण पन्हाला किले में बन्द किए गए। वे अपनी पत्नी येशु बाई के साथ भाग कर १३ दिसम्बर १६७८ को दिलेर खाँ से जा मिले जो ऐसा खुश हुआ मानो उसने सारा दक्खिन जीत लिया हो। युद्ध अभियानों में दिलेर की निष्ठुरता से हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों ने छाती से बच्चों को चिपटा कर कुओं में कूद कर अपना सतीत्व बचाया। उसके अत्याचारों से घबड़ा कर शम्भाजी अपनी पत्नी को पुरुष के वेश में कर केवल दस सवारों के साथ वहाँ से भागे और ४ दिसम्बर १६७९ को पन्हाला पहुँचे।—सरकार : शिवाजी, पृष्ठ १५१-१५८।

दक्खिन की नीति के सम्बन्ध में की गई है कहीं अधिक न्यायपूर्वक प्रशंसात्मक परितोष मिला होता।

दरबार से उत्तर आने के पूर्व पर्याप्त समय नहीं बीता था कि दिलेर खाँ ने जो अपनी योजना को चालू करने पर तुला हुआ था इसको कार्यान्वित करने के लिए पग उठाया। उसने बीजापुर से मराठों के राजा शम्भाजी के साथ सेना की एक टुकड़ी भोपालगढ़ पर घेरा डालने के लिए भेजी और इस पर अधिकार किया। यह शिवाजी के कब्जे के पूर्वी छोर की अन्तिम चौकी थी। हम्बीर राव जिनको शिवाजी ने बीजापुर भेजा था रनमस्त खाँ से भिड़े जिसके पास आठ या नौ हजार अश्वारोही थे। यह वही अधिकारी है जिसको पिछली बार सुलतान मुअज्जम ने शिवाजी के विरुद्ध भेजा था। उसकी इस बार भी घोर पराजय हुई।

मोरो पन्त ने दो सशक्त किले अहिवन्त और नवागढ़ पर अधिकार किया और पूरे खानदेश पर अपनी सेना फैला दी जिसने खूब लूटपाट की। हम्बीर राव दिलेर खाँ की शिविर के आसपास चक्कर काटता रहा किन्तु घिरे हुए सिपाहियों ने मसूद खाँ का उत्साह पाकर बड़ी दृढ़ता से प्रतिरक्षा की। दिलेर खाँ घेरा डाले रहे किन्तु व्यक्तिगत परिश्रम से कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि हर प्रकार की पूर्ति रोक दी गई थी। अन्ततः बाध्य होकर उसको इस पर अधिकार करने की सब आशा त्यागनी पड़ी। उसने वर्षा के बाद खुले प्रदेश पर आक्रमण कर अथनी को लूटा।[1] उसने सुतर स्थान पर कृष्णा को पार कर सेना को विभाजित किया, जब वह कार्णाटक को लूट रहा था, जनार्दन पन्त ने छः हजार अश्वारोहियों के साथ उस दल पर आक्रमण किया जिसका नेतृत्व दिलेर खाँ कर रहा था, उसके छक्के छुड़ा दिया, उसके दलों को रोक लिया, कई दलों को टुकड़े २ कर दिया, और उसको पीछे हटने को बाध्य किया। इसी अन्तराल में सुलतान मुअज्जम को वापस बुलाने, दिलेर खाँ की कार्यवाहियों को नापसन्द करने, तथा खान जहाँ को दक्खिन के और सेना के शासक के रूप में पुनर्स्थापन की आज्ञा सम्राट् ने भेजी। और शम्भाजी को बन्दी बना कर दिल्ली भेजने की भी आज्ञा आई। किन्तु दिलेर खाँ जिसने शिवाजी के दूतों को अपने पास आने जाने की अनुज्ञा दी थी इस समय शम्भाजी के भाग जाने की उपेक्षा की। यद्यपि शिवाजी का शम्भाजी से मेल हो गया तब भी उन्होंने उसे तब तक के लिए पन्हाला किले में बन्द किया जब तक वह अपने सुधार का प्रमाण न दे।

शिवाजी बीजापुर से अपनी मैत्री के मूल्य के रूप में कोपल और बेल्लारी के

---

[1] अथनी बेलगाँव से ७० मील उत्तर-पूरब है।

आसपास का प्रदेश चाहते थे। वे द्राविड के विजित प्रदेश पर, शाहजी के जागीर जनपदों पर, और तंजोर मंडल पर अपनी सार्वभौमिकता चाहते थे। इन शर्तों के मान लिए जाने पर शिवाजी बीजापुर नगर के पड़ोस में पहुँचे और मसूद खाँ से भेंट और गुप्तमंत्रणा की।

शिवाजी को यह प्रभुत्व दिए जाने पर व्यंकोजी ने इसे अपनी स्वतंत्रता पर कुठाराघात समझा। रघुनाथ पन्त का हस्तक्षेप तो था ही, अब उसको योग्य अभिकर्ताओं की सहायता देने के बहाने शिवाजी भी प्रबन्ध में अधिक भाग लेने लगे। व्यंकोजी इस असह्य नियंत्रण से इतने अधिक व्यथित हुए कि वे चिन्ता में डूबे रहने लगे। वे कामधाम के प्रति उदासीन हो गए। वे अपने शरीर की साधारण देखभाल की, और दैनिक धार्मिक कृत्यों की भी उपेक्षा करने लगे। वे समस्त सांसारिक कार्यों से खिंचे हुए और निरपेक्ष हो गए और वे एक सक्रिय सरदार की अपेक्षा जैसा कि अबतक उन्होंने अपने को प्रदर्शित किया था एक भक्त की तरह आचरण करने लगे। इस अवसर पर शिवाजी ने उनके नाम एक उत्साहवर्धक और विवेकपूर्ण पत्र भेजा। यह पत्र उन अन्तिम पत्रों में से था जिनको शिवाजी ने बोलकर लिखाया था।[1] शिवाजी रायगढ़ में बीमार पड़े, उनके घुटनों में पीड़ायुक्त सूजन हुई जो धीरे २ इतनी भयंकर हुई कि उनको तीव्र ज्वर हो आया जिसके आरम्भ होने के सातवें दिन तिरपनवर्ष की अवस्था में ५ अप्रैल[2] १६८० को उन्होंने इह लीला समाप्त की।

---

[1] शिवाजी ने व्यङ्कोजी को उद्बोधन करते हुए राज्यकीय काम-काज तथा सेना के अनुशासन की ओर ध्यान देने, रघुनाथ पन्त से सलाह लेने, अपने पिता के अनुसार कठिनाईयों का सामना करते हुए अपनी दृढ़ता और साहस से महान् कार्य करने, अवसर का लाभ उठाने सांसारिक बातों से मुँह न मोड़ने, और विरागी न होने को लिखा। और किस तरह उन्होंने एक राज्य की स्थापना की है इसकी ओर उसका ध्यान खींचा।

[2] यदुनाथ सरकार के अनुसार २३ मार्च को शिवाजी को ज्वर और रक्तामाशय मालूम हुआ। रविवार चैत्र-पूर्णिमा के दिन (४ अप्रैल १६८० को) प्रातः उनकी चेतना लोप हो गई। मध्याह्न में अचेतनावस्था अनन्त निद्रा में परिणत हो गई। मृत्युसमय शिवाजी की आयु छः दिन कम तिरपन वर्ष की थी।—शिवाजी, पृष्ठ १६०। गोविन्द सखाराम सरदेसाई के अनुसार शिवाजी की मृत्यु दोपहर को, शनिवार चैत्रशुदी १५, शाके १६०२, रौद्र वर्ष (३ अप्रैल १६८०) को हुई।—न्यू हिस्ट्री आव द मराठाज, पृष्ठ २५६।

ऐसा शिवाजी का अन्त हुआ। पिछले पृष्ठों में सीदियों के विरुद्ध किए गए युद्धों के विवरण नहीं दिए गए थे जिनका पुनरवलोकन आवश्यक है। अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की एक श्रृङ्खला हमें आगे खींच लाई है। अब हम उस बिन्दु पर पहुँच गए हैं जहाँ हम समय से कुछ पूर्व गतप्राण व्यक्ति के जीवन पर दृष्टि डालने के लिए स्वतः ठहरते हैं। निश्चय ही शिवाजी एक अत्यन्त विलक्षण व्यक्ति थे। उनके अनेक कार्यों की हम कितने ही न्यायपूर्वक भर्त्सना करें किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि इतिहास के पृष्ठों में वे उच्चपद पाने के योग्य हैं। उनके चरित्र को आँकने के लिए हमको उस समय की परिस्थिति पर विचार करना होगा जब वे अर्धनग्न मावलों के एक दल को एकत्रित कर, प्रकृति की बाधाओं की परवाह न करते हुए, ऋतुओं की अत्यन्त प्रचण्डता का लाभ उठा कर, और अपने अनुयायियों में अडिग उत्साह भर कर उनका नेतृत्व किया और उस वन्य प्रदेश में सर्वप्रथम अपनी जड़ जमाई। हमको उनकी नीति की उन अपूर्व योजनाओं की ओर भी ध्यान देना चाहिए जिनको उन्होंने आरम्भ किया, और जो, हमको स्वीकार करना ही होगा, पूर्णतया अभूतपूर्व थीं, और इस काल में शक्ति प्राप्त करने के लिए नितान्त उपयुक्त थीं। उनके राज्य की नियमावली, उनके प्रायः निरन्तर युद्ध-रत रहते हुए भी उनके ~~प्रत्येक विभाग~~ के प्रबन्ध की महान् प्रगति, और सङ्कट से अपने को निकाल लेने या भाग आने की उनकी सफल युक्तियों की ओर हमें ध्यान देना चाहिए। किसी किले पर अधिकार करने, या किसी दूर देश की विजय करने की योजना बनाने, आक्रमण या अपगमन करने का नेतृत्व करने, सौ अश्वारोहियों के बीच में पालन किए जाने के लिए अनुशासन की व्यवस्था करने एवं किसी प्रदेश के प्रशासन की व्यवस्था करने में उनकी प्रतिभा से हम श्लाघापूर्वक आकृष्ट होते हैं, और उनकी सहजबुद्धि से आश्चर्यचकित होते हैं। जनप्रिय नेता होते हुए भी उनकी मितव्ययिता उनके चरित्र की प्रशंसनीय विशेषता थी। अत्यन्त मूल्यवान् लूट के अवसर पर भी वे विनियोग के अपने नियमों से कभी विचलित नहीं हुए।

शिवाजी धैर्य से विचारपूर्वक अपनी योजनाएँ बनाते थे। और उनको सम्पन्न करने के लिए उत्साह, दृढ़ता और लगन से काम करते थे। किन्तु उनके अनुकूल पक्ष का भी विचार करने में हम देखते हैं कि उनकी योजनाओं में क्षुद्रता और छल ऐसे समाए हुए हैं और उनके कार्यों में इतने साफ २ झलकते हैं कि अधिक निकृष्ट व्यक्ति की दुस्कृति से भी सम्भवतः उतनी ग्लानि न होगी। अन्धविश्वास, निर्दयता और विश्वासघात का दोष न केवल न्यायपूर्वक उन पर मढ़ा जाता है प्रत्युत खुली शक्ति की अपेक्षा वे कपट को वरीयता देते थे, जब वे दोनों ही उनके हाथ में थे। संक्षेप में, उनकी कुशलता, मृदुता और विनम्रता का उनके साहस, दृढ़ता और

उच्चाकांक्षा से, उनकी उत्साह-प्रेरक शक्ति का पूर्णध्यान देकर सफलतापूर्वक हितों को साधने से; अपने पक्ष के समर्थक साहसी योद्धाओं के उत्साह का कूटनीतिज्ञ की व्यवस्था और राजनीति से तुलना करनी चाहिए। और हमें देखना चाहिए उनकी उन योजनाओं की बुद्धिमत्ता जिससे तिरस्कृत हिन्दुओं को सार्वभौमिकता प्राप्त हुई और, जो पंचतत्त्व में उनके विलीन हो जाने के बाद भी, स्वयमेव सिद्ध और सम्पन्न हुईं।

वे अपने राष्ट्र में के प्रशंसकों में एक दैवी अवतार तथा विवेक, सहिष्णुता और दया के आदर्श माने जाते हैं। सर्वसाधारण मराठों के विचार से आवश्यकतावश हत्या न्यायसंगत है तथा राजनीतिक हत्या प्रायः विवेकपूर्ण और उचित होती है। वे स्वीकार करते हैं कि शिवाजी ने जाव्ली के राजा चन्द्रराव का वध करने की स्वीकृति दी थी। किन्तु विरले ही कोई यह मानते हैं कि अफजल खाँ की हत्या की गई। सामान्यजन का विचार है कि खाँ आक्रामक था। इस घटना की चर्चा एक घृणित और विश्वासघातपूर्ण हत्या के रूप में नहीं बल्कि एक श्लाघनीय पराक्रम के रूप में की जाती है।

गार्हस्थ्य जीवन में शिवाजी का व्यवहार अत्यन्त आह्लादकारी था। उनकी वाक्‌चातुरी मनोरम थी। प्रत्यक्षतः वे स्पष्टवादी थे किन्तु यदाकदा ही घनिष्ठ। वे स्वभाव के उग्र किन्तु अनुचरों और सम्बन्धियों के प्रति सदय थे। वे छोटे आकार के कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, यद्यपि उनका शरीरगठन अधिक पुष्ट नहीं था। उनका मुख सुन्दर और श्रीयुक्त था। उनके आकार के अनुपात में उनके बाहु बहुत लम्बे थे जो मराठों[1] में एक सौंदर्य समझा जाता है। उनकी

---

[1] बीजापुर के कवि नसत ने अली आदिल शाह द्वितीय के शासन के सम्बन्ध में अलीनामू नामक एक ऐतिहासिक काव्य लिखा है। इसमें उसने मराठों के बड़े पैरों और लम्बे हाथों की खिल्ली उड़ाई है। ओर्म कृत 'फ्रागमेन्ट्स' नामक पुस्तक में दिया हुआ चित्र, शिवाजी का एकमात्र अनुमानित उपलब्ध चित्र है। इस्केलिअट जो शिवाजी के आक्रमण के समय सूरतस्थित अँग्रेजी कारखाने में था शिवाजी के सम्बन्ध में लिखता है कि उनका आकार मध्यम और अंगसंयोग सुष्ठु था। वे बात करते समय मंदमुस्काते से प्रतीत होते हैं; उनकी दृष्टि द्रुत और तीक्ष्ण थी और वे अपने जाति के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक गोरे थे। अम्बेर राज्य के एक कर्मचारी के शब्दों में जिसने शिवाजी को औरङ्गजेब के दरबार में देखा था, शिवाजी का शरीर दुबला और छोटा, रंग विलक्षण गोरा और बिना जाने, देखने से ही नरेन्द्र

वह तलवार[1] जिनको वे निरन्तर काम में लाते थे, और जिसका नाम उन्होंने अपनी इष्टदेवी के नाम पर रखा था, सातारा के राजा के पास, पूर्ण श्रद्धा से, इस समय भी सुरक्षित है और इसका एक मूर्ति की तरह पूर्ण सम्मान किया जाता है।

पुर्तगाली अधिकृत गोआ, दक्षिणी चौल, शष्ठि और बसई; हवसी अधिकृत जञ्जीरा; तथा बम्बई द्वीप पर अँग्रेजी बस्ती—इन अपवादों को छोड़ कर, शिवाजी का अपनी मृत्यु के समय गण्डवी से पोण्डा तक विस्तृत पूरे कोंकण भाग पर अधिकार था। कारवार, अकोला, तथा तट के अनेक स्थानों पर उनके थाने थे। इन जनपदों में देशमुखों के साथ उनका हिस्सा था। सोन्दा का सरदार उनके आधिपत्य को स्वीकार करता था। और बेदनूर का राना उनको वार्षिक कर देता था। बेल्लारी और कोपल के आसपास का उनका स्वामित्व, द्राविड में उनके जितप्रदेश, तञ्जोर में उनका आधिपत्य तथा भाग, कार्णाटक में उनके पिता के जागीर-जनपद के अतिरिक्त पूना और जुन्नर के बीच का, दक्षिण में हिरण्यकाशी नदी से लेकर उत्तर

मालूम होते हैं। उनका साहस और तेज उनके चेहरे से टपकता है। वे अत्यन्त वीर और उदात्त हृदय के हैं।

[1] राज परिवार के वंशागत इतिहास लेखकों के अनुसार शिवाजी की तलवार सर्वश्रेष्ठ पानी की, उत्कृष्ट जेनोवा फल की है। यह पता नहीं चलता कि इस समय भवानी तलवार कहाँ है। डी० बी० पारस्निस लिखते हैं कि सातारा में जो तलवार इस समय (१९२०) सुरक्षित है और दिखाई जाती है उसके फल की लम्बाई ३ फुट ९ इञ्च और मुठिया की ८ इञ्च है। इस पर मराठी में उत्कीर्ण है, 'श्रीमंत सरकार राजमण्डल राजा शाहू कदीम औव्वल'। इससे स्पष्ट है कि यह तलवार शिवाजी की नहीं वल्कि शाहू की है। सातारा के लोगों का ऐसा विश्वास है कि शिवाजी के छोटे पुत्र राजाराम की पत्नी ताराबाई मूल भवानी तलवार को कोल्हापुर ले गई और वह १८७५ में राजा एडवर्ड को जब वह राजकुमार वेल्स के रूप में भारतवर्ष में भ्रमण करने आए थे, प्रदान की गई और १८७८ में पेरिस की युनिवर्सल एग्जिबिशन की ब्रिटिश इण्डियन शाखा में प्रदर्शित की गई। सर जार्ज बर्डउड की उस शाखा से सम्बन्धित पुस्तिका के पृष्ठ ९८ पर इसका वर्णन मिलता है। ब्रिटेन में इसकी खोज की गई किन्तु इसका पता नहीं चला। जनरल सर डाइटन राजकुमार वेल्स के १८७५-६ के भारत-भ्रमण में साथ था। वह लिखता है कि यदि यह विख्यात तलवार राजकुमार को अर्पण की गई होती तो उसे यह बात अवश्य ही याद रहती। निश्चय ही यह तलवार अब भी भारत में है।

में इन्दुरानी नदी तक के महाराष्ट्र के भूभाग पर उनका कब्जा था। सोपा, बारामट्टी और इन्दापुर जनपदों को वे बहुधा अपने अधिकार में कर लेते थे और अपने पैत्रिक जागीर के रूप में सदा इन पर अपना अधिकार मानते थे। तत्तोरा से पन्हाला तक निर्मित उनके किलों की पंक्ति स्पष्ट रूप से उनके संग्रंथित-प्रदेश की पूर्वी सीमा है। अनेक पृथक स्थान भी उनके अधिकार में थे। महादेव पर्वत के ढाल पर स्थित सिंगनापुर उनका वंशागत इनाम ग्राम था[1]। दामू के समीप, परनीरा किले को मोरोत्रिमल ने पुनर्निर्माण किया था; बुगलाना के एक बड़े भाग में, और खानदेश और संगमनेर के कई दृढ़ स्थानों पर उनके सैन्यदल और थाने थे। उनका निजी धन अपार था और मराठा अभिलेखों की अत्युक्ति में पर्याप्त न्यूनीकरण करने पर भी उनके पास रायगढ़ में निश्चय ही कई मिलयन (१ मिलयन = १०,००,०००) मुद्राएँ थीं।[2]

मुसलमानों की दृष्टि में जो आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया, जिस प्रणाली और आचरण का उन्होंने श्रीगणेश किया, जो साहस उन्होंने प्रायः सम्पूर्ण

---

[1] घाटगे परिवार के एक व्यक्ति ने इसको शाहजी को दिया था।

[2] शिवाजी के कोष में रुपयों के अतिरिक्त, जैसा कि आशा की जा सकती थी, हर प्रकार के सिक्के थे; स्पेन देश के डालर, बेनिस के सीक्वीन्स, हिन्दुस्तान और सूरत की सोने की मोहरें, कार्णाटक के पगोडा तथा अन्य अनेक सिक्के उनके सूचियों में गिनाए गए हैं। सोने और चाँदी के पिण्ड, सोने का कपड़ा आदि-आदि। [इण्डिया आफिस लन्दन के एक फारसी हस्तलेख का अनुवाद सरकार ने दिया है जिससे उस समय के भारतीय राजा के जीवन की अवाप्तियों, उसकी एकत्रित की हुई वस्तुओं के लक्षण तथा उस समय के समाज की अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। —सरकार : हाऊस आव शिवाजी, पृ० १८२-६। मराठी भाषा के 'सभासद बखर' और फारसी इतिहास 'तारीख-ए-शिवाजी' में शिवाजी की मृत्यु के बाद उनके भाण्डार में जो धन-सम्पत्ति मिली उसका विस्तृत वर्णन प्राप्त है। सोने के सिक्कों की संख्या ६ लाख मोहर और प्रायः ५० लाख होंण थी। साढ़े बारह खण्डी भार के सोने के डले थे। चाँदी के सत्तावन लाख रुपये थे और ५० खण्डी भार की चाँदी थी। इनके अतिरिक्त लाखों रुपये मूल्य के रत्न हीरा, मणिमुक्ता आदि थे। (१ खण्डी की तौल कलकत्ते के ६८ मन के बराबर थी)—सरकार : शिवाजी, पृ० १६२-३; हाउस आव शिवाजी, पृ० १८२-६।]

मराठा जाति में भरी वह उनके उपलब्ध प्रदेश और कोषों से कहीं अधिक महान् था।[1]

[1] एल्फिस्टन ने अपने इतिहास में लिखा है : धर्म के प्रति उत्साह जाग्रत कर और उसके द्वारा मराठों में एक राष्ट्रीय भावना उभाड़ कर औरङ्गजेब की त्रुटियों से लाभ उठाने के लिए शिवाजी के सदृश प्रतिभाशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी। इन्हीं भावनाओं के बल पर, अनेक आन्तरिक अव्यवस्थाओं के होने और दुर्बल हाथों में चले जाने पर भी, उनका शासन बना रहा।

सर रिचर्ड टेम्पल ने लिखा है कि शिवाजी केवल एक साहसी व्यक्ति ही नहीं थे बल्कि उनमें दूसरों को अनुप्राणित करने की विशिष्ट शक्ति थी। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उन्होंने एक हीन जाति को अकिंचनता से निकाल कर साम्राज्य-पद पर बैठा दिया। इसके अतिरिक्त शिवाजी एक महान् प्रशासक थे। उन्होंने अनेक संस्थाएँ स्थापित कीं जो एक शताब्दी से अधिक समय तक जीवित रहीं।

एकवर्थ ने लिखा है : आरम्भ से ही शिवाजी ने अपनी दृष्टि हिन्दू पुनर्विजय की विशाल योजना पर गड़ा रखी थी। युद्धनेता के रूप में और कूटनीतिज्ञ के रूप में, इन दोनों में से हर एक में वे उत्कृष्ट रूप से महान् थे। उनके आचरण से प्रकट है कि कार्य और प्रशासन के उन प्रमुख सिद्धान्तों को पालन करने में वे अडिग रहे जिनका पालन करना उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक समझा।

यद्यपि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में कठोर थे किन्तु अकारण निर्दयता के घृणित विकार से एवं क्रोधाग्नि शान्त करने के लिए क्रूरता में आसक्त होने की प्रवृत्ति से वे पूर्णतया मुक्त थे।

शिवाजी का चरित्र उनके शक्तिशाली शत्रु औरङ्गजेब के चरित्र की अपेक्षा बहुत ही ऊँचा था। दोनों में ही धर्म का बोलबाला था किन्तु औरङ्गजेब में धर्म पतित होकर अत्यन्त तुच्छ, अत्यन्त सङ्कीर्ण, और अत्यन्त दुर्दम्य धर्मान्धता की पतितावस्था में था। अपने पिता को कारागार में डालने वाला, अपने भाईयों का हत्यारा, अपने पुत्रों के प्रति संशयालु, भयानक निरंकुश शासक, अपने पर इतना अविश्वासी कि दूसरों में विश्वास न कर सकने या न उत्पन्न करने वाला, उसकी कूटनीतिता धूर्तता मात्र, उसकी शक्ति एक लेखक के तुच्छ परिश्रम में फँसी रहने वाली और एक ऐसे राष्ट्रीय और धार्मिक क्रान्ति का विरोधी, जिसकी कि भारत के इतिहास में बराबरी नहीं है और जो एक ऐसे मेधावी पुरुष द्वारा सञ्चालित थी जिसकी बुद्धि उतनी ही व्यापक और गम्भीर थी जितनी कि उसकी सङ्कीर्ण और छिछली—ऐसा औरङ्गजेब विनाश के लिए जन्मा था। यदि शिवाजी दैवी भावना के अवतार थे

उनके किसी भी उत्तराधिकारी ने उनकी जन्मजात प्रतिभा को उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं किया। किन्तु साम्राज्यों के उत्थान और पतन इतने अगणित प्रकार

जो विशेष रूप से हिन्दू विजय और साम्राज्य की स्थापना करने के लिए विशेष रूप से उत्पन्न किए गए थे, तो औरङ्गजेब भी इसी तरह मुसलमान साम्राज्य को नष्टभ्रष्ट करने के निमित्त मात्र इस संसार में भेजा गया था।

नायक के रूप में शिवाजी की प्रतिभा व्यापक रूप में स्वीकार की जाती है। किन्तु उनकी निर्माणात्मक और प्रशासकीय योग्यताओं तथा विजय और शासन सम्बन्धी उनके विचार के स्थायित्व के प्रति उचित न्याय नहीं किया जाता।

एस० एम० एडवर्डस् लिखता है : ज्ञानेश्वर से श्रीधर (१३००-१७००) तक के मराठी कवियों और सन्तों को वर्ण के पूर्वाग्रहों को दबाने में केवल आंशिक और अस्थायी सफलता मिली। शिवाजी का शक्ति में आना और अपने राजनीतिक और सैनिक प्रशासन में बहुधा ऐसे आदमियों से सतत सम्पर्क रखना जो अ-ब्राह्मण थे बहुत अधिक प्रभावशाली हुआ। सैनिक और असैनिक अधिकारियों के रूप में प्रभुओं के काम करने से, उनके स्थल और समुद्रीय सेनाओं में अधिकांश मराठी और भण्डारियों के होने के, उनसे साहसिक और सङ्कटपूर्ण कार्यों में उनके साथियों के रूप में कोलियों और रामोशिओं के काम करने से, महारों और माँगों के गढ़रक्षक होने से, सर्वसाधारण जनता को समान राष्ट्रीयता और परस्पर वहिष्कार करने वाली वर्ण-व्यवस्था की बुराईयों का निश्चित रूप से एक स्पष्ट और अधिक व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ। वे पूर्णतया अपढ़ थे। तुकाराम और रामदेव आदि सन्तों के अभंगों के उद्धरणों को सार्वजनिक रूप से दुहराने से इतना प्रभाव न पड़ता।—हिस्ट्री आव द महराठाज की भूमिका, पृ० ७४-५।

सूरत के समकालीन अँग्रेज व्यापारियों ने लिखा था : शिवाजी सच्चे मित्र, श्रेष्ठ शत्रु और अत्यन्त चतुर राजकुमार हैं। आश्चर्य की सीमा तक वे विजयी होते रहेंगे। उनको अपने देश से प्रेम था किन्तु वे किसी के प्रति पक्षपात नहीं करते थे। उनकी सेवा में अनेक मुसलमान थे। उनकी नौ-सेना का अध्यक्ष एक मुसलमान था किन्तु उनको अपने हिन्दू भाईयों का मुसलमान या ईसाई धर्म में परिवर्तन किया जाना असह्य था। औरङ्गजेब के प्रति उनके प्रतिशोध का मुख्य कारण उस सम्राट् की धार्मिक नीति थी।

खाफी खाँ ने लिखा है : शिवाजी ने सदैव अपने प्रदेश के लोगों की प्रतिष्ठा की रक्षा करने का प्रयत्न किया। विद्रोह करने, यात्री दलों को लूटने और मनुष्य जाति को कष्ट देने में वे बराबर लगे रहे, किन्तु अन्य अपमानजनक कार्यों से उन्होंने

की परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं कि वे उद्देश्य उन उपकरणों से ही सम्पन्न होते हैं जो बहुधा मानव दूरदर्शिता को किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने में सब से कम सम्भाव्य होते हैं।

शिवाजी की चार पत्नियाँ थीं, साईबाई, निम्बालकर परिवार की; सोयराबाई, शिर्के परिवार की; पुतलीबाई, मोहिते परिवार की और चौथी पत्नी जिसका नाम और परिवार अज्ञात है। इनमें से दो सोयराबाई और पुतलीबाई उनकी मृत्यु के बाद जीवित रहीं। पुतलीबाई ने अपनी आहुति दी किन्तु वह अपने पति के शव के जलाने के कई हफ्ते बाद जलाई गई। शिवाजी की मृत्यु गुप्त रखे जाने के कारण ऐसा हुआ।

शम्भाजी की माता साईबाई की मृत्यु उसके पैदा होने के दो वर्ष बाद १६५६ में हुई थी। सोयराबाई राजाराम की माता थी। वह बहुत चतुर महिला थी। उसका अपने पति पर बड़ा प्रभाव था। कई प्रमुख मन्त्रियों पर विशेष रूप से अन्नाजी दत्तो, पन्त सचिव पर उसकी पर्याप्त प्रभुता थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में शिवाजी ने मोरो पन्त, अन्नाजी दत्तो तथा अन्य लोगों से कहा था कि उनके मरने पर शम्भाजी के कुकृत्य से बहुत अनिष्ट होने की आशङ्का है।[1] सोयराबाई और

अपने को पूर्णतया बचाया और उनके हाथों में मुसलमान महिलाओं और बच्चों के आ जाने पर वे सावधानीपूर्वक उनकी मान-मर्यादा की रक्षा करते थे। इस सम्बन्ध में उनके आदेश बड़े कड़े थे और उनका उल्लंघन होने पर अपराधी को दण्ड दिया जाता था।—सरदेसाई : न्यु हिस्ट्री ग्राव द मराठाज, भाग १, पृ० २८३-६।

[1] उस समय १६७८ में जब कि एक महती सेना लेकर दक्खिन में मुगल सम्राट् के या उसके पुत्रों के आने और मराठों का दमन करने की किंचिन्मात्र सम्भावना न थी, और बीजापुर और गोलकुण्डा मराठा-राजा के मित्र-राष्ट्र थे, शिवाजी ने आठ वर्ष के कोमल बालक राजाराम को ठेठ महाराष्ट्र देने का विचार किया जहाँ चिरकाल से व्यवस्थित शान्ति थी और जो वंशागत राजनिष्ठ प्रधानों और सेनापतियों का निवासस्थान था। नवविजित कर्णाटक प्रदेश (जिंजी-वेल्लोर) के शासन के लिए जिसका दमन पूर्ण रूप से नहीं हुआ था और जिस पर कब्जा बनाए रखने के लिए एक ओजस्वी नवयुवक की आवश्यकता थी राजाराम का नाम अचिंत्य था और शम्भाजी असंदिग्ध रूप से पूर्णतया योग्य थे। भोसलों की पैत्रिक आवासभूमि कनिष्ठ भाई को दिए जाने से और उनको महाराष्ट्र से छः सौ मील दूर, अपरिचित भाषा बोलने वाले अपरिचित लोगों में, स्थानिक दुर्जेय सरदारों से घिरे हुए अर्धदमनकृत प्रदेश में, भयावह और अलाभकर कष्टमय कार्य का भार

उसके दल ने इसका अर्थ लगाया कि यह राजाराम के जो उस समय दस वर्ष का एक बालक था पक्ष में एक इच्छापत्र है। मोरो त्रिमल पेशवा, यद्यपि वह सदा से ही अन्नाजी दत्तो का प्रतिद्वन्द्वी था, राजाराम के नाम पर राजपता के अधीन शासन चलाने की योजना की ओर आरम्भ में खिंच आया। इसी तरह दूसरे प्रधानों ने भी इस व्यवस्था को मान लिया और इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए तत्काल ही कार्यवाही की गई।

शिवाजी की मृत्यु अत्यन्त गोपनीय रखी जाने को थी जब तक कि शम्भाजी का बन्धन और भी पूर्णतया सुरक्षित न किया जाय। परिवार के एक सम्बन्धी, शाहजी भोंसले ने अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की। जनार्दन पन्त सामन्त को जो कार्णाटक में बहुत सक्रिय रहा था, पन्हाला को प्रस्थान करने की आज्ञा दी गई। रायगढ़ का सैन्यदल दृढ़ किया गया। पड़ोस के गाँव पञ्चवर में दस हजार अश्वारोही नियुक्त किए गए। सेनापति हम्बीर राव को एक बड़ी सेना लेकर कुरार को प्रस्थान करने, और एक उचित स्थान पर अपनी सेना ठहराने का आदेश दिया गया। इनमें से किसी भी कार्य के लिए समय अपेक्षित था। अतः हीराजी फरजन्द के पास जिन पर पन्हाला में शम्भाजी का प्रभार था इन प्रबन्धों के सम्बन्ध के पत्र भेजे गए। या तो शम्भाजी को घटना की सूचना मिल गई थी या उनको अपने पिता की मृत्यु का संदेह हो गया था क्योंकि पत्रवाहक के आते ही उसने उसको पकड़ लिया और बंडल न देने पर उसको तुरन्त मार डालने की धमकी दी। पत्र पाते ही उनको सब बातें प्रकट हो गईं। हीराजी फरजन्द कोंकण को भाग गए। शम्भाजी ने किले का कमाण्ड अपने हाथ में लिया और सैन्यदल ने उनकी आज्ञा पालन की। उन्होंने तुरन्त ही दो मुख्य अधिकारियों को मार डाला। यह न जानते हुए कि किले की दीवारों के बाहर किस पर विश्वास किया जाय, उसने इसकी रक्षा करने की तैयारियाँ कीं और घटनाओं की प्रतीक्षा करने का निश्चय किया। यह देखकर कि शम्भाजी

दिए जाने से, जैसा कि स्वाभाविक था, शम्भाजी खिन्न हुए। इस त्रुटि का लाभ उठाकर दिलेर खाँ ने मुगल-शासन की सशस्त्र-शक्ति से उनके देश की पैत्रिक-भूमि उन्हें दिलाने का वचन देते हुए शम्भाजी को गुप्त पत्र लिखे। मुगल-शासन के मैत्री-संश्रय मात्र से यह लाभ उठाने के निमित्त शम्भाजी दिलेर खाँ के पास चले गए, किन्तु बाद को उसके औद्धत्य एवं दिल्ली को अपने भेजे जाने की उसकी युक्ति के कारण शम्भाजी वहाँ से भाग आए।—सरकार: हाउस आव शिवाजी, पृ० १९५-६।

ने किले पर अधिकार कर लिया है, जनार्दन पन्त ने उस पर घेरा डाला। किन्तु कुछ सप्ताह बाद रक्षकों को वहाँ छोड़कर वह कोल्हापुर में आकर रहने लगा।

राजाराम मई में सिंहासन पर बैठाया गया और मन्त्रिगण उसके नाम पर कार्य सञ्चालन करने लगे। छिपी हुई प्रतिद्वन्द्विता सरलता से उत्तेजित होती है अतः पेशवा और सचिव शीघ्र ही एक दूसरे के ईर्ष्यालु हुए। इसी अन्तराल में शम्भाजी ने जनार्दन पन्त के कुछ सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लिया और मावले सैनिकों का एक चुना हुआ दल लेकर और रात्रि में पन्त के पंक्तियों में से होते हुए कोल्हापुर नगर में जाकर उसको पकड़ा और बन्दी रूप में उसको पन्हाला लाए। हम्बीर राव मोहिते इस पराक्रम से जो शिवाजी के पुत्र के बिलकुल योग्य था आनन्द में भर कर तुरन्त ही शम्भाजी के पक्ष में झुका। मोरो पन्त ने जनार्दन पन्त के आपद् की सूचना पाकर रायगढ़ से प्रस्थान किया। उसने गुप्त मन्त्रणा का प्रयास न कर शम्भाजी को अपनी सेवाएँ अर्पण कीं। शम्भाजी ने उसके पेशवा बने रहने की पुष्टि की। किन्तु मोरो पन्त उसका विश्वास कभी भी प्राप्त न कर सका। हम्बीर राव ने आगे बढ़ कर शम्भाजी को अपना सम्मान अर्पण किया। तुरन्त बाद शम्भाजी पन्हाला छोड़ कर रायगढ़ की ओर बढ़े। उनके पहुँचने के पहले ही सैन्यदल ने उनके पक्ष में विद्रोह कर दिया था और सम्भावित विरोधियों को कारागार में डाल रखा था। पञ्चवर में स्थित पूरी सेना उसकी ओर हुई। शम्भाजी ने १६८० के जून के अन्त में रायगढ़ में प्रवेश किया।

अध्याय १०

(१६८० ई० से १६८९ ई० तक)

अपने पिता की मृत्यु के बाद से राजधानी में प्रवेश करने तक शम्भाजी के चरित्र में जो उत्साह और ढंग देखा गया, वह अप्रत्याशित होने से और भी अधिक सन्तोषजनक था। यदि उसने सामान्य समर्पण का लाभ उठाकर क्षमादान की घोषणा की होती तो उसकी पटुता और उत्साह जो उसने प्रदर्शित किए थे उसके पूर्व दोषों की पूरी स्मृति को दबा दिए होते। किन्तु उसके स्वभाव की बर्बरता रायगढ़ के फाटक को पार करते ही उसी क्षण से प्रत्यक्ष हुई। अन्नाजी दत्तो हथकड़ियों और बेड़ियों में जकड़ दिए गए और उनकी सम्पत्ति समपहरण की गई। राजाराम भी बन्दी किए गए। सोयराबाई पकड़ कर शम्भाजी के सामने लाई गई। उन्होंने उसका अत्यन्त भद्दे ढंग से तिरस्कार किया, उस पर शिवाजी को विष देने का लांछन लगाया। गाली के प्रत्येक विशेषण की उस पर बौछार की और निर्दयतापूर्ण और घुलाने वाली मृत्युदण्ड की आज्ञा दी। उसका पक्ष लेने वाले मराठा अधिकारियों के सिर उड़ा दिए गए और एक अधिकारी जो विशेष रूप से अप्रिय था रायगढ़ के चट्टान की चोटी से सिर के बल नीचे फेंका गया। इस कठोरता से जो न्यायतः अनावश्यक और निर्दय मानी गई, सोयराबाई के सम्बन्धी उनके बद्धवैरी हो गए और यह अत्यन्त अशुभ आरम्भ समझा गया। अगस्त के प्रारम्भ में सिंहासन पर उनके बैठने के अवसर पर देश में अनेक अपशकुन हुए।

अपने राज्य प्रदेश को छोड़ कर जब शिवाजी कार्णाटक अभियान पर जाने लगे, तब उन्होंने मुगल राज्यपाल खान जहाँ बहादुर से एक युद्ध-विराम सन्धि की किन्तु इस सन्धि से जञ्जीरा के हबशियों से मेल नहीं हुआ। कोंकण में सीदी और मराठों में एक छोटा-मोटा युद्ध निरन्तर चलता रहा। शम्भाजी के राज्यारूढ़ होने पर विपक्षताएँ अधिक द्वेषपूर्ण हुईं।

शिवाजी ने अन्देरी द्वीप या चट्टान की जो बम्बई बन्दर के मुहाने के समीप है १६७६ में किलेबन्दी की। अँग्रेज इससे चिढ़े और सीदी के साथ शिवाजी को वहाँ से हटाने का असफल प्रयत्न किया। किन्तु दूसरी ऋतु में सीदी ने छल से खानदेरी पर अधिकार कर लिया जो अन्देरी के बगल में है। अतः शम्भाजी ने सर्वप्रथम

सीदी को खदेड़ने का प्रयत्न किया। खानदेरी पर शम्भाजी का अधिकार न हो सका। अँग्रेज उस पर किसी भी दल का कब्जा पसन्द नहीं करते थे।[१] शम्भाजी का बेड़ा और सैनिक इस काम में लगे थे तभी वे सम्भवतः बीजापुर शासन से कुछ समझौता करने के लिए पन्हाला गए।

१६८१ ई०

सम्राट् औरङ्गजेब के चौथे पुत्र सुलतान मुहम्मद अकबर के उनके राज्य में शरण पाने के लिए आने के पूर्व तक वे वहीं थे। राजपूतों ने सुलतान मुहम्मद अकबर को अपनी ओर फोड़ लिया और वह अपने पिता के विपक्ष में एक विद्रोह करने को तैयार हुआ। किन्तु सम्राट् की निपुणता से यह योजना असफल हुई। और राजकुमार शम्भाजी के राज्य में भाग जाने में सफल हुआ, यद्यपि सम्राट् ने रास्ते में पड़ने वाले सभी जनपदों के अधिकारियों को उसके पकड़ने की कड़ी आज्ञा दी थी और उसका तीव्र गति से पीछा किया जा रहा था।

शम्भाजी ने उसका स्वागत करने के लिए एक अधिकारी को भेजा। ददसे ग्राम जिसका नाम उसके अभिनन्दन में पादशाहपुर रखा गया, उसके रहने के लिए निश्चित किया गया। किन्तु किसी कारण से जिसकी चर्चा मराठी अभिलेखों में नहीं है, शम्भाजी पन्हाला में रुके थे और राजकुमार के पहुँचते ही उससे भेंट न कर सके। इसी अन्तराल में शम्भाजी की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर अन्नाजी दत्ता के बेचैन साथियों ने अपने विचारों को प्रगति देने तथा अन्नाजी दत्तो को छुड़ाने के निमित्त राजाराम के पक्ष में सुलतान मुहम्मद अकबर से समझौता करना चाहा। सर्वप्रथम महर के देशपाण्डे दादाजी रघुनाथ ने शम्भाजी को इस नए षड्यन्त्र की सूचना दी। इससे अतिथि के प्रति सन्देह उत्तेजित हुआ किन्तु जब राजकुमार ने स्वयं इस परिस्थिति की सूचना भेजी तो उसके प्रति सन्देह बिल्कुल जाता रहा और शम्भाजी ने बड़ी सहृदयता से उसका स्वागत किया तथा उससे भेंट की।

सोयराबाई की मृत्यु का बदला लेने के निमित्त कोंकण का सम्पूर्ण शिर्के परिवार ने, ऐसा कहा जाता है, अन्नाजी दत्तो के मित्रों की इस षड्यन्त्र में सहायता की। बालाजी अवजी चिटनीस पर जो प्रभु जाति का था और जिस पर शिवाजी की महती कृपा थी[२] और जिसको स्वयं शम्भाजी ने एक गुप्त कार्य से बम्बई भेजा था

---

[१] अँग्रेज इन दोनों ही द्वीपों पर अपना दावा करते थे। लेकिन उस समय तक ये बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं समझे जाते थे।

[२] एक मूल सनद से ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाजी अष्टप्रधान-पदों में

इस अभिप्रेत विश्वासघात का मुख्य प्रेरक होने का अभियोग लगाया गया। यह व्यक्ति, उसका ज्येष्ठ पुत्र, उसका सम्बन्धी शामजी अवजी, हीराजी फरजन्द, शिर्के परिवार के जो व्यक्ति पकड़े जा सके तथा स्वयं अन्नाजी दत्तो हाथियों के पैरों में बाँधे जाकर कुचला कर मारे गए। शिर्के परिवार के मुख्य सदस्य भयभीत होकर भागे और उनमें से अनेकों ने मुगल सेवा स्वीकार की। बालाजी अवजी के विरुद्ध शम्भाजी की कठोरता चाहे न्यायपूर्ण रही हो जो कि संदिग्ध है, अन्नाजी दत्तो के सम्बन्ध में पूर्णतया अनैतिक थी। किसी ब्राह्मण की हत्या करना सदा से भयावह माना गया है। पराक्रमी पन्त सचिव ने शिवाजी के उत्कर्ष काल में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की थीं। प्रत्येक व्यक्ति ने जो उनके मूल्य को समझता था उनको दिए गए इस दण्ड को उग्र और कठोर माना जिससे आज्ञापालन और मतैक्य होने की अपेक्षा भय और फूट उत्तेजित होती है।

इनमें से मोरो पन्त पिंगले पेशवा एक था जो इस हत्या की दुष्कृति और दुर्नीति के विरुद्ध वास्तविक साहस से निन्दा करने में नहीं चूका—अपने प्रतिद्वन्द्वी की मृत्यु से उसका द्वेष शान्त हो ही चुका था। उत्तरी भारत का एक कन्नोजी ब्राह्मण जिसका नाम कलुश[1] था किसी प्रकार शम्भाजी का अनुग्रह प्राप्त करने में सफल हो गया और उनके कार्यों में गुप्त मन्त्रणा देने लगा। उसकी सलाह पर

से एक पद उसको देना चाहते थे किन्तु उसने उस पद को ग्रहण नहीं किया। बालाजी अवजी के हस्तलेख के बहुत से कागज परिरक्षित हैं जिनका मराठा इतिहास बहुत ऋणी है।

[1] कवि कलुश कवि कलश का अपभ्रंश है जिसका अर्थ कवियों का सिरमौर्य, कवियों में श्रेष्ठ है। यह उसकी उपाधि थी किन्तु इसी नाम से वह विख्यात था। बहुत से ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं जिन पर यह मुहर लगी है, 'आज्ञापत्र धर्माभिमान, कर्मकाण्डपरायण, दैवतैकनिष्ठाग्राहिताभिमान, सत्यसंध, समस्तराजकार्यधुरन्धर, विश्वासनिधि, कविकलश, छन्दोगामात्य'। वह तीक्ष्ण बुद्धियुक्त, विद्वान् तथा उत्कृष्ट कवि था। उसने संस्कृत और हिन्दी में ग्रन्थ रचना की। उसका लोकप्रिय अभिधान कविजी या कवजी था। मालूम होता है उसकी कविकलश उपाधि बिगड़ कर कलुश पुकारी जाने लगी, और यह विकृत रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि सम्भवतः इसी कारण से उसकी मुहर में 'कलुश' शब्द आया है। 'विधिरर्थिमनीषाणामवधीर्नय-वर्त्मना शेवधिः सर्वसिद्धीनां मुद्रा कलुशहस्तगा' (कलुश के हाथ से अङ्कित यह मुद्रा प्रार्थी की अभिलाषाओं की पूर्ति तथा नैतिकता का अनुसरण करने वालों को अवसर प्रदान करती है और सब सफल कार्यों का स्रोत है।)

शम्भाजी ने मोरो पन्त को कारावास में डाल दिया और इस अनुभवहीन और अपने ही समान धृष्ट व्यक्ति की सहायता से वे सब राज-काज सञ्चालन करने लगे।

अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पहले स्वामी रामदास ने जो शिवाजी के मित्र और आध्यात्मिक गुरु थे और जिनके जीवन और आचरण के कारण उनके देशवासी उनकी सामान्यरूप से प्रशंसा करते हैं, शम्भाजी को एक उत्कृष्ट और विवेकपूर्ण पत्र लिखा जिसमें उनके भूतपूर्व कार्यों की भर्त्सना करने की अपेक्षा भविष्य के लिए पथप्रदर्शन था। व्यक्तिगत तुलना को सावधानी से बचाते हुए उन्होंने उनके पिता के आदर्श की ओर उनका ध्यान खींचा। इसी अन्तराल में, अपनी अनुपस्थिति में, शासन का प्रभार हरजी राजा महरीक को देकर रघुनाथ नारायण हनुमंते ने कार्णाटक से प्रस्थान किया। रायगढ़ पहुँचने पर एक प्रधान के उपयुक्त उसका बड़ा स्वागत हुआ। वह जनपदों के राजस्व का शेष बचा हुआ भारी कोष अपने साथ लाया था। इस अवसर पर एक प्रधान के तथा इतने प्रख्यात अधिकारी के उपयुक्त पूरा दरबार लगा। इस असाधारण अवसर पर रघुनाथ नारायण ने राजकाज की चर्चा की। और अनुभवी सेवकों की उपेक्षा करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न बुराईयों का तथा शिवाजी द्वारा स्थापित शासन के रूपों का निरूपण किया। उन्होंने यह बताया कि क्या करना चाहिए और अपने तर्कों को देते हुए शम्भाजी के कार्यवाहियों की साहसपूर्ण भर्त्सना की तथा उनके पतन की भविष्यवाणी की।

रघुनाथ नारायण के इस साहस का कारण बताना कठिन मालूम होता है। विशेष रूप से जब कि उसका भाई जनार्दन पन्त कारावास में था। किन्तु सम्भवतः शम्भाजी यह समझते थे कि रघुनाथ नारायण के प्रति कोई भी हिंसा करने से कार्णा-टक उसके चाचा के हाथ में तुरन्त ही चला जायगा। यह ध्यान देने योग्य है कि अत्यन्त उग्र मराठा भी उस आदमी के दृढ़ शब्दों से जिसका वह आदर करता है सामान्यतया भयभीत होता है। शम्भाजी ने मोरो पन्त और जनार्दन पन्त को छोड़ने का वचन दिया और रघुनाथ पन्त को भी अपने शासन को लौट जाने की शिष्टता-पूर्वक अनुज्ञा दी, किन्तु जिंजी पहुँचने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। शम्भाजी ने मोरो पन्त और जनार्दन पन्त को विमुक्त कर अपने वचन को निबाहा, जनार्दन पन्त को उसके भाई की मृत्यु के कारण रिक्त अमात्य-पद पर बैठाया। कार्णाटक के शासन पर हरजी राजा की पुष्टि की और मोरो पन्त के पुत्र नीलु पन्त मोरेश्वर को मुतालिक या राजकाज का मुख्य अभिकर्ता बना कर उसके अधीन रखा। किन्तु यह सुधार अस्थायी था और उनके प्रिय कलुश ने उनके मस्तिष्क को पूर्णतया अपने वश में कर लिया।

शम्भाजी और राजकुमार अकबर के भेंट होने के अवसर पर यह बात बाहर

फैली कि मराठा और राजपूत औरङ्गजेब को राज्यच्युत तथा सुलतान अकबर को सिंहासनारूढ़ करने के उद्देश्य से एक होने वाले हैं। किन्तु सामान्य मनुष्यों में अहंकार और क्रोध उच्चाकांक्षा और वैभव की तुलना में अधिक सक्रिय उत्तेजक होते हैं। इस प्रकार के किसी विचार ने शम्भाजी को जञ्जीरा के आक्रमण के अधिक तुच्छ विचार से अपनी ओर न खींचा। उस जगह को प्राप्त करना जिसको उसका पिता प्राप्त न कर सका था, अपने अनेक गाँवों की लूट का और सीदी की ओर से किए गए प्रतिदिन के अपमानों का बदला लेना उसका एकमात्र उद्देश्य हुआ।

सर्वप्रथम उसने अपने एक पिट्ठू खण्डोजी फरजन्द को जञ्जीरा पलायन करने, सीदी के कुछ आदमियों को भ्रष्ट करने और आक्रमण आसन्न होने पर बारूदखाने को उड़ा देने का प्रयत्न करने की आज्ञा दी। बहुत से सैनिकों को एकत्रित कर अभियान का कमाण्ड दादाजी रघुनाथ देशपाण्डे को सौंपा गया और यह वचन दिया गया कि सफलता पाने पर वह अष्ट प्रधानों में एक प्रधान नियुक्त होगा। किन्तु आक्रमण आरम्भ होने के पहले एक दासी ने खण्डोजी के षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ किया जिससे वह अपने अनेक सहायकों सहित मार डाला गया।

१६८२ ई०—अपने सैनिकों के प्रयासों को उत्तेजित करने के उद्देश्य से शम्भाजी सुलतान अकबर के साथ डण्डा-राजपुरी गए। उन्होंने मिट्टी और पत्थरों के एक बहुत बड़े ढेर से चैनल (स्रोत) पाट कर आक्रमण करने का विचार किया। यह काम वस्तुतः आरम्भ भी किया जा चुका था जब उसको हुसेनअली खाँ के नेतृत्व में एक मुगल अश्वारोही दल का सामना करने के लिए वहाँ से अकस्मात् आना पड़ा। इस दल ने अहमदनगर से चलकर जुन्नर के रास्ते को पकड़ कर और घाटों के नीचे उतर कर पनवल के उत्तर के कल्याण जनपद को लूटा। शम्भाजी ने सामने से आक्रमण कर उसको दक्षिण की ओर बढ़ने से रोका और सब ओर से रसद की पहुँच रोक दी। अतः वर्षा होने के पहले मुगल सेनापति लौट गया।

दादाजी रघुनाथ जञ्जीरा पर घेरा डाले रहे। प्रतिरक्षाओं के ध्वस्त होने पर नावों द्वारा अगस्त के महीने में एक आक्रमण का प्रयत्न किया गया, किन्तु चट्टान पर फिसलन और लहरों के चपेटों के कारण आक्रामक वहाँ पैर नहीं जमा सके। उनके दो सौ आदमी मारे गए और वे खदेड़ दिए गए। यह प्रयास त्याग दिया गया। घेरा उठने तथा आक्रामक सेना के लौट जाने के बाद सीदियों ने निरन्तर आक्रमण किए जिसमें उन्होंने गायों को नष्ट किया, स्त्रियों को उठा ले गये और गाँवों को जलाया। वे महाद तक घुस गए और दादाजी रघुनाथ की स्त्री को पकड़ ले गए। यह अधिकारी कुछ ही समय पहले उनके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए भेजा गया था। इन अपमानों से शम्भाजी को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने

अँग्रेजों और पुर्तगालियों को, जञ्जीरा के प्रति तटस्थ बने रहने के कारण दण्ड देने की धमकी दी और मानसून के अवशिष्ट अवधि में सीदी के बेड़े पर आक्रमण करने के लिए तैयारियाँ कीं। अक्टूबर के महीने में उनके सशस्त्र नावों के कमाण्डर ने सीदी की खोज में नगोतना नदी से प्रस्थान किया। सीदी का बेड़ा बम्बई बन्दर में मजगाँव के सामने लंगर डाले था।[1] मराठों को आते देख कर सीदी ने तुरन्त लङ्गर उठा लिया और तन्ना नदी की ओर चल पड़ा। वहाँ एक उपयुक्त जगह पर मराठों का सामना करने की प्रतीक्षा करने लगा। सीदी सम्भोल का एक सम्बन्धी सीदी मिस्त्री पलायन कर शम्भाजी के पास चला गया था दूसरे अधिकारियों की अच्छी सहायता पाकर वह इस अभियान का नेतृत्व कर रहा था। जञ्जीरा बेड़े का नेतृत्व स्वयं यकूत खाँ कर रहा था। यद्यपि उसके पास केवल पन्द्रह नावें थीं और आक्रमणकारियों के पास तीस, फिर भी उसने पूर्ण विजय प्राप्त की। सीदी मिस्त्री सांघातिक रूप से आहत हुआ। सीदी ने उसकी नाव को और उसी में उसको कैद कर अन्य तीन नावों को अपने अधिकार में किया। कुछ मराठा नावें जो अन्त तक लड़ती रहीं डुबो दी गईं।

इस हार से हतोत्साहित होकर शम्भाजी ने यूरोपियनों के विरुद्ध अपनी धमकियों को कार्यान्वित करना आरम्भ किया। उन्होंने पहले पुर्तगालियों के कुछ गाँवों को लूटा। और अँग्रेजों को तंग करने और मानसून काल में सीदी के नावों को मजगाँव में लङ्गर डालने से रोकने के लिए वे बम्बई बन्दर के एलिफेन्टा द्वीप[2] की किलेबन्दी की तैयारी कर रहे थे कि उन्होंने इस योजना को छोड़ कर, अकस्मात्, यह निश्चय किया कि मुगलों और सीदी के विरुद्ध अँग्रेजों से सन्धि करने का प्रयत्न किया जाय। क्योंकि औरङ्गजेब की बहुत बड़ी तैयारी थी तथा सुलतान मुअज्जम के औरङ्गाबाद पहुँचने की सूचना उसे मिली थी। सम्राट् ने सुलतान मुअज्जम को चौथी बार दक्षिण के चारों सूबों का सूबेदार बना कर भेजा था।

अपनी परिवर्तित राजनीति के अनुसार शम्भाजी ने एक दूत बम्बई भेजा जिसने (अँग्रेजों की) परिषद् को यह सूचित करने का छल किया कि मुगलों ने द्वीप पर अधिकार करने की योजना बनाई है। उसने मुगलों और सीदियों के विरुद्ध मैत्री करने का प्रस्ताव किया। परिषद् ने समझौते की बातों को ध्यान से सुना जिससे

---

[1] मजगाँव सम्भवतः मत्स्यग्राम का अपभ्रंश है।

[2] एलिफेन्टा या धारापुरी बम्बई से छः मील और प्रायद्वीप के तट से चार मील दूर है। यह अपने बृहत् शैव गुफा-मन्दिरों के कारण विख्यात है जो सम्भवतः आठवीं, नवीं, या दसवीं शती में बनाए गए थे।

कि शम्भाजी के अधिकारियों द्वारा चारूमण्डल तट के कारखानों के व्यापार पर लगाए और उगाहे जाते कुछ तट-करों से छुटकारा प्राप्त हो। इस समझौते की बातचीत कुछ दिनों तक चलती रही किन्तु इस समय किसी भी दल की इच्छा पूरी न हुई।[1]

१६८३ ई०—शम्भाजी को एक दूसरा आक्रमण रोकने के लिए आना पड़ा। राजकुमार ने शम्भाजी के विरुद्ध अभियान करने के लिए रोहुल्ला खाँ नाम के एक मुगल अधिकारी को एक टुकड़ी दी कि वह रनमस्त खाँ को कोंकण पर आक्रमण करने में सहायता दे। इन सैनिकों ने कल्याण-भीमरी प्रदेश को लूटा, जैसा कि पिछली ऋतु में किया था किन्तु वर्षा आरम्भ होने के पहले ही तथा कोई उल्लेखनीय कार्य किए बिना ही वे अहमदनगर लौट गए।

पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध-अभियान के सिलसिले में शम्भाजी ने जून के महीने में चौल पर आक्रमण किया[2]। किन्तु नियमित यूरोपीय किलेबन्दी पर इसका कुछ भी प्रभाव न हुआ। गोआ के राज्यपाल ने प्रतिरक्षात्मक-युद्ध तक ही अपनी कार्यवाहियों को सीमित नहीं रखा। अक्टूबर महीने में वह मैदान में उतरा और बारह सौ यूरोपीयनों की एक बड़ी फौज लेकर शम्भाजी के राज्य पर आक्रमण किया। पुर्तगालियों ने अपने युद्ध में, मराठा लुटेरों की अपेक्षा, कहीं अधिक बर्बरता प्रदर्शित की। अरक्षित गाँवों पर, उन्होंने न केवल अग्नि और तलवार का प्रयोग किया बल्कि मन्दिरों को भी नष्ट किया और अपने बन्दियों का कठोरता से धर्मपरिवर्तन किया।[3]

वाइसराय ने शत्रुता करने का कोई उपाय उठा न रखा। वह पहले से ही

---

[1] शम्भाजी के दूत के लौटने के बाद सूरत के राज्यपाल ने हेनरी स्मिथ नाम के एक दूत को शम्भाजी के पास भेजा कि वह मराठा प्रशासन से उनके अधिकृत दक्षिणी प्रदेश में व्यापार करने की अनुज्ञा प्राप्त करे। किन्तु सीदी के अकस्मात् आक्रमण से दूत की यात्रा बीच में ही रुक गई।

[2] चौल बम्बई से तीस मील दक्षिण है।

[3] ओर्म लिखता है कि पुर्तगाली ईसाई धर्म-न्यायालय ने इन बन्दियों को अग्नि में जला कर मार डाला। गोआ में इस न्यायालय ने जो १५६० में स्थापित किया गया था ४,०४६ भारतीयों को मरवा डाला। द कुन्हा तथा ओविंगटन ने इस बात की पुष्टि की है कि पुर्तगाली नास्तिकों और विधर्मियों के अनाथ बच्चों को ईसाई बना लेते थे और उनकी सम्पत्ति गिरजाघर में सम्मिलित कर लेते थे।

समझता था कि शम्भाजी अंजिदिव[1] टापू की किलेबन्दी करेंगे। उसने सशस्त्र नावों को शम्भाजी के बेड़े के विरुद्ध कार्यवाही करने और कारवार के व्यापारियों को विपत्ति में डालने की आज्ञा दी। सेना लेकर स्वयं राज्यपाल ने पोण्डा पर घेरा डाला। शम्भाजी ने अपने पिता का उत्साहपूर्ण साहस उत्तराधिकार में पाया था किन्तु उनका विवेक और प्रतिभा उनमें न थी। एक छोटी सी फौज लेकर वे पोण्डा की ओर बढ़े। पुर्तगालियों की अपेक्षा उनकी सेना कम होने पर भी उन्होंने उनकी सेना के पृष्ठभाग पर आक्रमण किया।

इस अवसर पर किले की दीवार में दरार पड़ गई थी और इस पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया जा सकता था किन्तु राज्यपाल यूरोपीयन विचारों से संयुक्त था और भारतीय संग्राम के ढङ्ग से अपरिचित था। यह सोच कर वह भयभीत हुआ कि कहीं उसका अपगमन रोक न लिया जाय और गोआ संकट में न पड़ जाय, उसने तुरन्त ही पीछे हट जाने का निश्चय किया। इस अपगमन में उसका समस्त शिविर-सामान, भाण्डार, तोपें और साज-सामान वहाँ छूट गया। उसके बारह सौ आदमी मारे गए जिनमें से दो सौ यूरोपीयन थे।

मूलभूमि और गोआ या पंजिम[2] द्वीप के बीच के धारा रहित जल में पहुँचने पर शम्भाजी ने जिन्होंने अभियानों का बारम्बार नेतृत्व किया था भगोड़ों के ऊपर टूट पड़ने के उद्देश्य से फिर अश्वारोहियों को आगे बढ़ाया, किन्तु पुर्तगालियों ने जिनको तरण-स्थल का अधिक अच्छा ज्ञान था और जिनके पास स्थिरीकृत नावें थीं और जिन्होंने दूसरी ओर के तटों पर सैनिकों की पंक्ति खड़ी कर रखी थी इस प्रयास को विफल कर दिया। शम्भाजी ने अपने आदमियों को एकत्रित कर फिर से पार जाने का प्रयत्न किया। यद्यपि शम्भाजी स्वयं सेना का नेतृत्व कर रहे थे और उस समय तक प्रयत्न में भी लगे हुए थे किन्तु जब उनका घोड़ा भाटा के उठने से तैरने लगा तो बाध्य होकर उन्हें रुकना ही पड़ा।

इस अवसर पर शम्भाजी ने विशेष वीरता दिखाई। और अपने पिता की तलवार भवानी को जिसको वे इस अवसर पर काम लाए थे इससे अधिक अच्छा अवसर प्राप्त न होता। किन्तु वे अपने सामान्य दुराग्रह के कारण उस द्वीप में प्रवेश करने की अपनी उद्दण्डतापूर्ण योजना पर न केवल जोर देते रहे बल्कि इस काम के लिए नावों को लाने की भी आज्ञा दी। उनके दो सौ आदमी नावों पर बैठा कर भेजे गए। उतने ही में पुर्तगाली नावों ने उनके अपगमन करने के रास्ते को रोक दिया।

---

[1] अंजिदिव कारवार के ५ मील दक्षिण-पश्चिम है।

[2] पंजिम गोआ नगर के वर्तमान पुर्तगाली प्रशासन का केन्द्र है।

राज्यपाल के क्रुद्ध और पराजित सैनिक उन दो सौ आदमियों पर टूट पड़े, जिनमें से अधिकांश मृत्यु को प्राप्त हुए।

चाउल का घेरा निष्फल चलता रहा किन्तु करंजा पर अधिकार हुआ और लगभग वर्ष भर बना रहा। वसई और दमण के बीच के कई स्थान जो पुर्तगालियों के कब्जे में थे आक्रमण कर नष्ट किए गए। राज्यपाल ने सन्धि की बात चलाई किन्तु यह बात तुरन्त ही भग्न हुई क्योंकि शम्भाजी ने प्रस्तावना रूप में पाँच करोड़ पगोडा की माँग की।

मराठा अश्वारोही जिनमें से एक भाग की ही कोंकण में आवश्यकता होती थी, सामान्यतया अच्छी ऋतु में उत्तरी प्रदेश में लूट तथा निर्वाह करने के निमित्त छोड़ दिए जाते थे। इस वर्ष औरङ्गाबाद से एक टुकड़ी ने उनका असफल पीछा किया। लगभग इस समय से सब घटनाओं में उनका अनुगमन करना या उनके अभियानों का ठीक २ पता लगाना असम्भव-सा तथा अनावश्यक है। मराठों के इतिहास में केवल इतना ही मनोरंजक या उपदेशप्रद है कि हम यह पता लगावें कि लूटमार करने की उनकी शक्ति का कैसे विकास हुआ और किन मुख्य २ घटनाओं के कारण उनका राज्य-विस्तार हुआ जब कि सारे दक्खिन में लड़ाई-झगड़े और अस्तव्यस्तता फैली हुई थी।

मोरोपन्त के कारावास के समय से समस्त शासनकार्य का प्रबन्ध कलुश के हाथों में था। पेशवा की अल्पकालीन स्वतंत्रता से भी, उस थोड़े समय तक जब तक वे, कलुश के हाथों में शक्ति चली जाने के बाद, जीवित रहे कोई परिवर्तन न हुआ। शम्भाजी जब वस्तुतः युद्धक्षेत्र में नहीं होते थे आलस्य और व्यसन में डूबे रहते थे। कलुश के अतिरिक्त उनके पास कोई नहीं जा सकता था और यदि कोई व्यक्ति उनके प्रिय की अनुज्ञा के बिना पहुँचने का साहस करता था तो शम्भाजी की क्रोधाग्नि भड़क उठती थी और वे आगंतुक को दण्ड देते थे। धार्मिकता से सम्पन्न होने के कारण कलुश को अष्टप्रधानों में केवल पण्डित राव का पद दिया जा सकता था। इस सम्मान के अतिरिक्त वह छंदोगामात्य[1] कविकलश की उपाधि से प्रतिष्ठित किया गया था यद्यपि मराठा अभिलेखों में कलुश पर गालियों के अनेक विशेषणों की बौछार की गई है, शम्भाजी के व्यसनों में सहायक होने का आरोप यदाकदा ही लगाया गया है। बल्कि यह स्वीकार किया गया है कि वह एक विद्वान् और शिष्ट व्यक्ति था। कविता में उसकी उत्तम गति थी, किन्तु उच्चपद के लिए उसकी नितांत अनुपयुक्तता के तथा उसकी उपेक्षा और उपायों के विनाशकारी परिणाम के उदाहरण

[1] इसका अर्थ 'वैदिक ज्ञान रखने वाला अमात्य' है।

अत्यन्त स्पष्टता से मराठी लेखों से एकत्रित किए जा सकते हैं। इन लेखों ने तन्त्र को शम्भाजी के मस्तिष्क पर उसके आधिपत्य का कारण माना है, जिसमें, ऐसा विश्वास किया जाता है, कलुश पूर्णतया कुशल था।

शिवाजी द्वारा प्रचलित प्रणाली का वहाँ शीघ्र ही पतन हुआ जहाँ संस्थाओं की कार्य करने की शक्ति अधिशासी अधिकारी की देखरेख और जागरूकता पर निर्भर करती थी। यह बात सर्वप्रथम सेना में प्रत्यक्ष हुई जहाँ शिवाजी के अनुशासन और कठोर नियमों की अवहेलना की गई। युद्धक्षेत्र में भटके हुए लोगों को अश्वारोहियों के साथ रहने की अनुज्ञा दी गई। लूट का माल छिपा कर रखा गया; स्त्रियों को, जिनका साथ रहना मृत्युदण्ड का भय देकर वर्जित किया गया था, न केवल साथ रहने की अनुज्ञा मिली, बल्कि वे शत्रुदेश से लूट की स्वीकृत वस्तु के रूप में भगा लाई जाती और या तो उपपत्नी के रूप में रखी जाती या दासी के रूप में बेची जाती थीं।

अश्वारोहियों के सेनापति जो प्राप्तियाँ लेकर लौटते थे, वे अल्प तथा सैनिकों के वेतन के लिए अपर्याप्त होती थीं। जब वे मैदान में भेजे जाते थे, उनका वेतन बकाया रहता था। अतः शिवाजी द्वारा दिए गए नियमित वेतन के स्थान पर उनको अपनी लूटपाट का एक भाग रखने की अनुज्ञा दी जाती थी। इससे उनकी क्षति की प्रभूत और स्पृहणीय पूर्ति होती थी।

शम्भाजी अपने पिता के कोष को अक्षय समझते थे मुक्तहस्त होकर व्यय करते थे। उनका प्रिय मंत्री भी इस विषय में, इस डर से कि उनका भयानक स्वभाव उत्तेजित न हो जाय, मौन रहता था। रघुनाथ पंत की मृत्यु के बाद से कार्णाटक से राजस्व की प्राप्ति न हुई। उस क्षेत्र के जनपद अपना खर्च स्वयं ही चलाते थे। शिवाजी के समय में अभियानों से प्रभूत कोष एकत्रित हुआ था, किन्तु अब अधिकांश अभियानों में लाभ के स्थान पर हानि ही होती थी। अतः कलुश ने विभिन्न कर निर्धारण द्वारा भूमि-कर में वृद्धि करके कोष को भरने की चेष्टा की, किन्तु राजस्व एकत्रित करते समय उसको मालूम हुआ कि शिवाजी के समय की अपेक्षा आय उतनी ही घट गई है जितनी कि उसने कर-निर्धारण द्वारा नाम मात्र की वृद्धि की थी।

जनपदों के संचालक हटा दिए गए क्योंकि वे प्रत्यक्षतः मूसते थे। राजस्व का ठीका दिया गया, बहुत से रैयत गाँव छोड़कर भाग गए। शम्भाजी के राज्य में विनाश का संकट शीघ्र उपस्थित हुआ, यद्यपि औरङ्गजेब वहाँ नहीं पहुँचा था। दक्खिन की अपनी योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए औरङ्गजेब एक बड़ी विशाल सेना लेकर बुर्हानपुर पहुँचा।

सम्राट् के प्रत्यक्ष साधनों की तुलना में उसकी योजनाओं की प्रकट बाधाएँ अत्यंत तुच्छ थीं। हैदराबाद राज्य, व्यक्ति और द्रव्य की दृष्टि से, अत्यन्त शक्तिशाली था और वहाँ के सुलतान अबू हसन के पास रत्नों के रूप में अतिशय निजी धन था। उसके प्रशासन का संचालन प्रधानतया मधुना पंत के हाथ में था और वह हिन्दू प्रजाजनों में जिनका बहुत बड़ा अनुपात था लोकप्रिय था। किन्तु अनेक प्रमुख मुसलमान अधिकारी अपने राजकुमार और देश पर एक ब्राह्मण के प्रभाव से उद्विग्न थे। औरङ्गजेब के गुप्त दूतों ने इस विद्वेष को प्रज्वलित किया। किन्तु अबूहसन ने जो अपने मंत्री का मूल्य समझता था उसका विश्वास और अवलम्ब नहीं त्यागा।

औरङ्गजेब का दूत मलिक बरखुरदार बीजापुर राजधानी में निवास करता था। उसने अनेक प्रमुख अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया और उनको या तो वृत्ति दी या अपनी सेवा में ले लिया। उसके प्रभाव के कारण ही मसूद खाँ की शक्ति का पतन हुआ। राजप के विरोधी दल का नेता एक साधारण उमरा सैयिद मखतूम था किन्तु बीजापुर सेना का एक मात्र श्रेष्ठ अधिकारी शिर्जा खाँ मधुना पंत का सहायक था। शिर्जा खाँ, मसूद खाँ के प्रति शत्रुता रखता था, क्योंकि मसूद खाँ पदातियों का पक्षपात करता था, जो शिर्जा खाँ के लाभ और विवेक के विपरीत पड़ता था। शिर्जा खाँ के अधीनस्थ अनेक उत्कृष्ट अश्वारोही नौकरी से हटाए गए। मसूद खाँ ने विवश होकर शिवाजी की सहायता ली और इसके बदले में राज्य के कुछ सर्वश्रेष्ठ जनपद उन्हें सत्तांरित किया। इस दलबन्दी के कारण मसूद खाँ बीजापुर छोड़कर अदोनी चला गया। सम्भवतः शिवाजी की मृत्यु के लगभग एक वर्ष बाद ऐसा हुआ। नए प्रशासन का किसने संचालन किया यह अनिश्चित है। औरङ्गजेब का दूत सदा ही इस ओर ध्यान आकर्षित करता था कि मराठों से की हुई सन्धि से सम्राट् बहुत ही असंतुष्ट है। अतः मसूद खाँ के हटने पर सर्वप्रथम किए गए कार्यों में एक कार्य यह था कि कृष्णा के तटों के समीप के कुछ उपजाऊ प्रदेश जिनपर शिवाजी का कब्जा हो चुका था, छीनने का अविवेकपूर्ण प्रयास किया गया। मेरिच (मिराज) पर फिर अधिकार हुआ किन्तु इससे शम्भाजी और बीजापुर शासन में जो मनमुटाव हुआ, मालूम होता है, दूर न किया जा सका। इस अवसर पर मुसलमान राज्यों से एका कर लेने में शम्भाजी का हित था। मधुनापंत ने एक संघ बनाने के लिए कुछ प्रयत्न किया। किन्तु इतने दल और स्वार्थ थे, इतनी ईर्षा और अस्थिरता थी कि कोई भी राज्य अपने ही साधनों का उपयोग न कर पाता था, किसी विशाल प्रयास में सबों का एक होना तो दूर रहा। औरङ्गजेब के दूत हैदराबाद के और बीजापुर के राजदरबारों में यह छद्म करते थे कि सम्राट् उसकी

विशेष रक्षा और उस पर विशेष कृपा करना चाहता है। राज्य के कुछ सदस्य इतने निर्बल थे कि इस प्रकार के प्रत्यक्षभ्रमों में पड़ गए। अनेक सामंत विश्वासघाती थे। इन शासनों के प्रधान अधिकारी, अपने इर्दगिर्द किसी पर भी विश्वास नहीं करते थे, और ऐसी कार्यवाहियों का संकेत देने में हिचकते थे जिससे अपनी ही हत्या हो जाय, या जो सम्राट् की शत्रुता को उभाड़ दे। जब मसूद खाँ सेना को कम करने को वाध्य हुआ उसके पास मराठा मनसबदारों के अतिरिक्त, अश्वारोहियों की एक अच्छी छोटी टुकड़ी थी। मराठा मनसबदार इस डर से कि कहीं उन्हें अपनी जागीर, इनाम और वंशागत अधिकार से हाथ न धोना पड़े, अपने को अब भी बीजापुर राज्य के सेवक स्वीकार करते रहे। किन्तु विभिन्न परिवारों के जो सदस्य शिवाजी की सेना में भरती हो गए थे अब शम्भाजी के झण्डे के नीचे बने रहे।

इसी तरह मराठा मनसबदार जो पहले निजामशाही राज्य में थे मुगलों की आज्ञा बजाते थे किन्तु उनके बहुत से सम्बन्धी शम्भाजी की सेना में थे। जब कभी वंशागत अधिकारों के सम्बन्ध में झगड़े उठते थे, जैसा कि सामान्यतया ग्राम और जनपद अधिकारियों के बीच में, और इनामदारों, जागीरदारों, सब हिन्दू परिवारों में होता है, वह दल जिसके पास स्वमित्व नहीं होता था और जैसे २ देश अधिकाधिक अशांत होता जाता था, अपने २ स्वार्थ-भावना से, और इस आशा से से कि उनको अपने विरोधी से बदला लेने के कुछ अवसर प्राप्त होंगे, ईर्ष्या और निजी शत्रुता के भावों से और भी अधिक प्रेरित होकर सदा आक्रामक शत्रु से जा मिलता था। यदि आक्रामक सफल हो जाता, तो अधिभोक्ता बहुधा हटा दिया जाता था। तब वह अपने पुर्नस्थापन के लिए वही ढङ्ग अपनाता था। यदि सामयिक समर्पण कर वह सन्धि करने में सफल हो जाता था, तो दूसरा दल दूसरे अवसर की ताक में रहता था।

औरङ्गजेब ने इन आपसी झगड़ों से लाभ उठाया। वे पाठक जिनको हिन्दू चरित की जरा भी जानकारी है समझ सकते है कि कितने तीखे द्वेष से वे झगड़ों में लगे रहते हैं। ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं कि एक दल अपने विपक्षी का विनाश करने, और प्रतिकार को संतुष्ट करने के निमित्त, मुसलमान हुआ। मुसलमान राज्यों के अधीन हिन्दू मनसबदारों की सेवाएँ उस समय के शासन द्वारा दिए गए दण्ड या पुरस्कार के ठीक अनुपात में हुईं।

शम्भाजी के राज्यारोहण के प्रथम वर्ष से लेकर बीजापुर और गोलकुण्डा के पतन तक यह स्थिति बनी रही। उसके बाद उपद्रव और उथल पुथल के अनेक कारण भी हुए। स्वयं औरङ्गजेब द्वारा संचालित दक्खिन के युद्धों का विवरण देने के पहले हम पाठकों का ध्यान एक असाधारण घटना की ओर आकर्षित करते हैं, जो

अंग्रेजों के बीच में, पश्चिम भारत के उस समय के उनके छोटे प्रतिष्ठान में हुई। उस समय सूरत राज्यपाल का या परिषद् के सभापतिका निवासस्थान था जिसकी देखरेख में तट पर स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारखाने संचालित होते थे। दिसम्बर १६८३ में बम्बई के सैनिकों ने जिसके प्रमुख केप्टन कीग्विन[1] थे सूरत के राज्यपाल के सहायक को बन्द किया और घोषित किया कि वे राजा की ओर से द्वीप पर अधिकार किए हुए हैं। और वे किसी अन्य प्राधिकारी को समर्पण नहीं करेंगें। यह विद्रोह-कार्य एक छोटे पृथक स्थान तक ही सीमित था, और इसका प्रेरक कीग्विन एक दृढ़, पक्के निश्चय का व्यक्ति था, जो अपने अधीनस्थ लोगों में व्यवस्था बनाए रखे था। यद्यपि उसने एक अनिष्टकारी उदाहरण सामने रखा था किन्तु इसका विनाशकारी परिणाम की जिसकी कि बहुत आशंका थी, भाग्यवश रोक-थाम हुई। सर टामस ग्रंथम ने क्षमाप्रदान का वचन दिया जिसको सूरतस्थित परिषद् समेत प्रधान ने राजा से प्राप्त एक सामान्य आज्ञा के अधीन काम करने को खड़ा किया। पूरे द्वीप के समर्पण करने पर ११ नवम्बर १६८४ को वहाँ वैध शासन पुनः स्थापित हुआ। इङ्गलैण्ड के दलों की स्थिति का इन कार्यवाहियों के होने में उतना ही प्रभाव था, जितना कि उसके प्रत्यक्ष कारण का। व्यापारिक साहसिक व्यक्तियों और उनके प्रतिद्वन्द्वी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ टकराने से कम्पनी की बुराई में विभिन्न प्रकार की अफवाहों और विचारों का प्रचार हुआ। इससे उसका मान अपने ही कर्मचारियों की दृष्टि में कम हुआ। यह प्रतिष्ठा उसके अधिकार को बनाए रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी।

निर्देशकों ने अपने व्यय घटाने की दृष्टि से सेना के भत्ते में कमी करने के लिए यह समय चुना। सूरतस्थित परिषद् समेत प्रधान ने इस आज्ञा को मनमानी ढंग और कुछ कड़ाई से कार्यान्वित किया जो सर जॉन चाइल्ड के प्रशासन की विशेषता मालूम होती है। इन विभिन्न कारणों से जोशीले उदण्ड व्यक्तियों में ऐसी भावना-स्थिति उत्पन्न हुई जिसमें विद्रोह होना, वह कितना भी अक्षम्य हो, आश्चर्य-जनक नहीं था।

भाग्यवश प्रधान के पास अपनी आज्ञा तत्काल पालन कराने के साधन नहीं थे, नहीं तो सम्भव है, विद्रोही इस द्वीप को मुगलों या मराठों के हाथ में सौंप देने

---

[1] यह विद्रोह कुछ अंश तक जोसिया चाइल्ड की अप्रियता के कारण था और कुछ अंश तक आत्मरक्षण की स्वाभाविक भावना के कारण था। अंग्रेज अपने को मुगल और मराठा सैनिकों की दया पर नहीं छोड़ना चाहते थे। दोनों ही दृष्टि से जोसिया चाइल्ड की निरंकुशता का दोष था।

की बुराई अपने सिर पर लेते। फिर भी कीग्विन का प्रबन्ध कई अर्थों में श्लाघनीय था, विशेष रूप से शम्भाजी से उन सन्धियों के अनुच्छेदों की पुष्टि कराने में, जिसकी शिवाजी ने सहमति दी थी, तथा कड्डालोर और थेविनापट्टम में कारखानों के स्थापित के लिए एक पट्टा प्राप्त करने में, कार्णाटक के तट-कर से छुटकारा पाने में, और विभिन्न स्थानों की जिनको मराठों ने पहले लूटा था (अंग्रेजों की) क्षतिपूर्ति का बकाया प्राप्त करने में कीग्विन की प्रबन्ध प्रशंसनीय थे।

१६८४ ई०—अब हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शिशु-संस्थान से अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण देते हैं, जिनका सम्बन्ध हमारे विषय से है, तथा उन कारणों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, जिन कारणों से ब्रिटिश राष्ट्र ने विश्व के इतने दूरस्थ भूमि-भाग पर इतनी विशाल सत्ता प्राप्त की है।

वित्त के विभिन्न विभागों को नियमित करने तथा आगे की योजनाओं का प्रबन्ध करने के लिए सम्राट् कई महीने तक बुर्हानपुर में ठहरा। उसने सुलतान मुअज्जम को शाह आलम की उपाधि देकर अपनी पूरी सेना सहित अहमदनगर से प्रस्थान करने और शम्भाजी के दक्षिणी प्रदेश पर अधिकार करने को भेजा। सम्राट् ने सुलतान अजीम को खानदेश, बुगलाना और संगमनेर के आसपास के शम्भाजी के उत्तरी किलों को वश में करने की, तथा सल्हेर के महत्त्वपूर्ण किले पर घेरा डालने की आज्ञा दी। मोरोपन्त ने इस किले को प्राप्त किया था। इससे खानदेश में मराठा अभियानों को अत्यन्त सरलता हुई थी। सुलतान मुअज्जम नासिक के समीप अम्बा दर्रा घाट से कोंकण में उतरा और कल्याण जनपद होता हुआ, जिसका पहले ही विनाश किया जा चुका था, दक्षिण की ओर बढ़ा और रायगढ़ से विनगोरला तक के प्रदेश को लूटा और जलाया। सुलतान अजीम ने सल्हेर की ओर प्रस्थान किया, जहाँ अधिक प्रतिरोध की सम्भावना थी। किन्तु सुल्हेर के मुगल किलेदार नेकनाम खाँ ने मराठा हवलदार से सेना के आते ही सल्हेर को समर्पण कर देने का वचन पहले से ही ले लिया था। नेकनाम खाँ ने इस बात को सम्राट् के अतिरिक्त किसी से नहीं बताया था, क्योंकि ऐसी बातें संदिग्ध हुआ करती हैं। किन्तु किला खाली कर दिया गया, इसके विजय का यश न प्राप्त होने से राजकुमार अत्यन्त अप्रसन्न हुआ। सम्राट् ने उसको बीजापुर अभियानों में लगाने का वचन दिया। शिहाबुद्दीन खाँ को शेष किलों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी गई। रामसीजी के हवलदार ने इसको बारम्बार पछाड़ा। उसके बाद खान जहाँ बहादुर के अनेक अहंकार भरे प्रयत्न असफल हुए और वह भी अपना मुँह काला कर लौटने को बाध्य हुआ।

सुलतान मुअज्जम की सेना ने यद्यपि कोंकण के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया था किन्तु फिर भी किले और सशक्त स्थान शम्भाजी के हाथ में बने रहे।

इस अभियान की अवधि में शम्भाजी ने अपने अश्वारोहियों को ऊपर के प्रदेश में निर्वाह करने के लिए भेजा, और वह स्वयं सुलतान अकबर के साथ विशालगढ़ गया। आक्रामक सेना के लूटपाट से हुई आपदाएँ आक्रामकों पर घूम पड़ीं। शिविर में अभाव व्याप्त हुआ। इस विनाश का लाभ उठा कर शम्भाजी ने अपने अश्वारोहियों को विभिन्न किलों के सैन्यदलों की सहायता से सड़कों का अवरोध करने, पूर्ति को रोकने, अनियमित आक्रमणों द्वारा उनको परेशान करने, सामान एकत्रित करने वालों तथा बिछुड़े हुओं को नष्ट करने की आज्ञा दी। मराठा अश्वारोहियों ने किलों में रखी सुरक्षित घास और अनाज से निर्वाह किया, किन्तु मुगल बड़ी विपदा में पड़े और उनके हजारों अनुयायी, अश्वारोही और पशु मरे।

सम्राट् ने अपनी लाज बचाने के लिए शाहबुद्दीन खाँ को संचार चालू करने के हेतु आगे बढ़ने की आज्ञा दी। और सूरतस्थित मुगल राज्यपाल को डण्डा-राजपुरी और विंगोरला को नौका द्वारा रसद पहुँचाने की आज्ञा भेजी। अत्यावश्यक माँग के कारण नावें बिना रक्षकों के भेजी गईं। शम्भाजी की रक्षकनौकाओं ने इनका अधिकांश भाग लूट लिया। इतनी न्यून पूर्ति पहुँची कि जीवित रहना सम्भव न था। अन्त में सुलतान मुअज्जम अम्बा घाट पहाड़ पर चढ़ने को बाध्य हुआ। उसने वर्षाऋतु में वाल्व के समीप कृष्णा नदी के तट पर विश्राम किया।

राजकुमार की सहायता के लिए शाहबुद्दीन रायगढ़ के समीप निजामपुर पहुँचा, वहाँ पर शम्भाजी ने उसका प्रतिरोध कर सम्भवतः एक अपूर्ण संग्राम में उसको पराजित किया। असफल अभियानों में प्राप्त अल्प लाभ भी बहुत बड़ा समझा जाता है। सम्राट् ने शाहबुद्दीन को गाजीउद्दीन की उपाधि दी।[1] उसे वह निजी रूप से चाहता था और वह अपने देशवासी तुरानी मुगलों का नेता था, जिनको संतुष्ट करने की सम्राट् की अभिलाषा थी। इस तरह रामसीजी की उसकी असफलता साभिप्राय मिटाई गई। निजाम-उल-मुल्क जो बाद को इतिहास में इतना विख्यात हुआ के परिवार के पूर्वजों का यह इतिहास है।

सम्राट् बुर्हानपुर से औरङ्गाबाद पहुँचा। उसने दक्खिन निवासी मुसलमानेतर जनता से कठोरतापूर्वक जजिया[2] कर वसूल करने की आज्ञा प्रसारित की। बुद्धिमान

---

[1] गाजी का 'अर्थ विधर्मी की हत्या करने वाला' है।

[2] औरङ्गजेब ने २ अप्रैल १६७९ को हिन्दुओं की प्रति २,००० रुपये मूल्य की सम्पत्ति पर तेरह रुपये वार्षिक 'जजिया कर' लगाने की आज्ञा दी। 'बादशाह के इस नए और अन्यायपूर्ण प्रजापीड़न' के प्रतिवाद में शिवाजी ने औरङ्गजेब को एक पत्र लिखा था जिसका सारांश इस पुस्तक के पृष्ठ १४७-८ के पाद-टिप्पणी में दिया

होते हुए भी औरङ्गजेब की बुद्धि कट्टरता के कारण दूषित थी। सम्भवतः यह सोच-कर कि ऐसा करने से उसको दैवी अनुग्रह प्राप्त होगा, उसने जनता पर धर्मपरिवर्तन

गया है। डा० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी ने 'आदि तुर्क कालीन भारत' में मूल अर्बी और फारसी पुस्तकों का अनुवाद अपनी भूमिका और टिप्पणी के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ० रिजवी अपनी एक टिप्पणी में लिखते हैं (पृ० १०६) कि जजिया एक प्रकार का कर था जो इस्लामी राज्य में उन लोगों से वसूल किया जाता था जो इस्लाम धर्म को स्वीकार नहीं करते थे। इसका कारण यह बताया गया है कि मुसलमानों को ऐसे बहुत से कर देने पड़ते थे जो अन्य धर्मों को मानने वालों से वसूल नहीं किए जाते थे, अतः उनसे कोई न कोई कर लिया जाना आवश्यक था। डॉ० रिजवी 'तारीखे फिरोजशाही' के अनुवाद की भूमिका में लिखते हैं कि कुछ इस्लामी धर्म-नीति के लेखकों ने लिखा है कि जजिया इस्लाम को न मानने वालों को अपमानित करने के उद्देश्य से लिया जाता था। जियाउद्दीन बरनी का भी यही विचार था। उसने 'सहीफ़े नाते मुहम्मदी' (जिसकी एक हस्तलिखित प्रति उत्तरप्रदेश के रामपुर नगर के रजा पुस्तकालय में है) के पाँचवे अध्याय के तीसरे खण्ड में सुलतान इल्तुतमिश की एक परामर्श-गोष्ठी की चर्चा की है जिसके अनुसार कुछ प्रतिष्ठित विद्वानों ने सुलतान के सम्मुख बड़े विस्तार से निवेदन किया कि मुस्तफा अलैहिस्सलाम के धर्म में यह लिखा है कि हिन्दुओं की हत्या की जाय, उनकी धन-सम्पत्ति, उन्हें अपमानित और तिरस्कृत करके, छीनी जाय। दीने हनीफी का यह आदेश न तो यहूदियों के लिए है, न ईसाईयों के सम्बन्ध में है। हिन्दू ब्राह्मणों के लिए उपर्युक्त आदेश पहले दिया जा चुका है। प्रत्येक स्थान के हिन्दू, चाहे वे विरोधी हों और चाहे आज्ञाकारी हों, मुस्तफा अलैहिस्सलाम के सबसे बड़े शत्रु हैं। या तो हिन्दुओं की हत्या करा दी जाय, या उन्हें इस्लाम स्वीकार करने पर विवश किया जाय। हिन्दुओं से खिराज (भूमि-कर) तथा जजिया लेकर सन्तुष्ट न हो जाना चाहिए। इसके उत्तर में वजीर ने कहा, 'इसमें सन्देह नहीं कि विद्वानों ने जो कुछ कहा है वह ठीक है। हिन्दुओं का या तो वध करा दिया जाय, या उन्हें इस्लाम स्वीकार करने पर विवश किया जाय...किन्तु हिन्दुस्तान अभी २ अधिकार में आया है, हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में है, मुसलमान उनके मध्य में दाल में नमक के समान हैं...जब राजधानी के भिन्न २ प्रदेश और कसबे मुसलमानों से भर जायँगे और बहुत बड़ी सेना एकत्र हो जायगी, उस समय हम हिन्दुओं की हत्या करने, या उन्हें इस्लाम स्वीकार करने को विवश करने की आज्ञा दे सकेंगे।' अन्त में बादशाह ने यह स्वीकार किया कि हिन्दुओं का दरबार और राजभवन में आदर सम्मान न हो, हिन्दुओं को

करने या कर देने का विकल्प लगाया। इस धर्माज्ञा का कोई राजनीतिक कारण नहीं हो सकता यद्यपि उसकी सफाई देने वाले यह तुच्छ कारण कह सकते हैं कि साधारण मुसलमानों को संतुष्ट करने, और जैसा कि उसके दूतों ने बीजापुर और गोलकुण्डा में कपटजाल रच रखा था कि मूर्त्तिपूजा को दबाने, और मुसलमान सत्ता को इतना मजबूत बनाने के लिए कि वह भविष्य में इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को बनाए रख सके, वह दक्खिन में प्रवेश कर रहा है।

दिलेर खाँ की मृत्यु से सम्राट् सेवा की बड़ी क्षति हुई। अपने समय के अधिकांश अधिकारियों की अपेक्षा, दक्खिन युद्ध का उसे बहुत बड़ा अनुभव था, और उसने अनेक अवसरों पर ख्याति प्राप्ति की थी। छब्बीस वर्ष तक लड़ाईयाँ लड़ते रहने पर भी सम्राट् उसके प्रति संशयालु था। वह अपनी वृद्धावस्था में उपेक्षित रहा। उदार, विश्वासी, और अभागा दारा का पक्षपाती होकर चालाक औरङ्गजेब से मिल जाने का उसे न्यायपूर्ण प्रतिफल मिला।

शम्भाजी पुर्तगालियों से युद्ध कर रहा था जिन्होंने सोंदा के राजा और कारवार के देसाई परिवार को शम्भाजी के विरुद्ध विद्रोह करने को प्रेरित किया। वर्षाऋतु के समाप्त होते २ शम्भाजी ने अपने कुछ सैनिकों को उत्तरी कोंकण में भेजा जिन्होंने पुर्तगालियों के कब्जे के अरक्षित प्रदेश को लूटा। सुलतान मुअज्जम की सेना की गति का निरीक्षण करने के लिए शम्भाजी स्वयं पन्हाला आए।

अच्छी ऋतु आरम्भ होने पर, खान जहाँ को औरङ्गाबाद में छोड़ कर सम्राट् ने असाधारण तड़कभड़क से अपनी विशाल शिविर के साथ अहमदनगर की ओर प्रस्थान किया। औरङ्गजेब के सैनिकों की कितनी संख्या थी यह किसी भी मुगल इतिहास लेखक ने नहीं लिखा है और मराठों का अनुमान नितान्त अविश्वसनीय है। दक्खिन में औरङ्गजेब के प्रयाण द्वारा प्रस्तुत शक्ति-प्रदर्शन विशाल और अत्यन्त भव्य था जिसकी उत्कृष्टता का अतिक्रमण कदाचित् ही हुआ हो। विदेशियों के अतिरिक्त, काबुल, कंधार, मुल्तान, लाहौर, राजपूताना और उसके विशाल साम्राज्य के विस्तृत प्रदेशों से एकत्रित अश्वारोहीदल उसकी सेना के उत्कृष्ट भव्य भाग थे। पूर्णतया सशस्त्र और सुसज्जित विशालकाय सैनिकों और घोड़ों की

मुसलमानों के बीच में न बसने दिया जाय, और मुसलमानों की राजधानी, प्रदेशों, और कसबों में मूर्त्तिपूजा तथा कुफ्र के आदेशों का पालन न होने दिया जाय। डॉ० रिजवी ने लिखा है कि यह परामर्श-गोष्ठी 'भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है'।—डॉ० रिजवी : आदि कालीन भारत, पृ० १०६-८।

भव्य पंक्तियाँ थीं। "उनकी तुलना में यह कल्पना की जा सकती है कि साधारण शस्त्र लिए हुए, दुबले-पतले दक्खिन निवासी कठिनता से प्रतिरोध करने का साहस कर सकते थे। उसके पदाति की संख्या भी बहुत अधिक थी जिसमें सुसज्जित बन्दूकची, तोपची और धानुष्य सम्मिलित थे। उनके अतिरिक्त इसमें दृढ़ शरीर वाले बुन्देला और पहाड़ों में लूटमार का युद्ध करने में अभ्यस्त मेवाती भी थे जो मराठा मावलों का अच्छा मुकाबला कर सकते थे। उनके अतिरिक्त इसमें कार्णाटक में भरती किए हुए हजारों पदाति भी थे। शाही शिविरों के साथ बहुत सी बन्दूकें रहती थीं। इनके अतिरिक्त कई सौ तोपें थी जिनको यूरोपीय तोपचियों की देखरेख में भारतीय चलाते थे। तोपखाने में बहुत से सुरङ्ग लगाने वाले तथा अन्य प्रत्येक प्रकार के कारीगर थे। युद्ध-गजों की एक लम्बी पंक्ति के पीछे सम्राट् के निजी संस्थान के बहुत से हाथी चलते थे जो उसके अन्तःपुर की महिलाओं को या उन बहुत बड़े खेमों को, जो ऊटों पर नहीं ले जाए जा सकते थे, ले जाने के काम में आते थे। वैभवपूर्ण ढङ्ग से अलंकृत सम्राट् के अश्वशाला के बहुसंख्यक अश्व थे जो सम्राट् के चढ़ने के काम आते थे। शिविर के साथ एक पशुपक्षिसंग्रह भी चलता था। उसके संरक्षक विश्व के दुर्लभ पशुओं का सम्राट् तथा उसके दरबार के सामने बहुधा खेल दिखाते थे। बाज, शिकारी कुत्ते, शिकारी चीते, प्रशिक्षित हाथी और मैदान के खेल के हर प्रकार के साज और साधन, इस अद्भुत परिचर्र की शोभा बढ़ाते थे। शाही शिवरों के कनवस की बड़ी दीवारों का घेरा १२०० गज था, और इनमें अत्यन्त विशाल राजमहल में पाए जाने वाले हर प्रकार के कमरे थे। शासकीय परिषदों और गुप्त सभाओं, समस्त दरबारों और मंत्रिपरिषदों के लिए विस्तृत कमरे थे; हर एक बड़े कमरे अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण ढङ्ग से सज्जित थे। इसमें एक ऊँचा उठा हुआ स्थान या सिंहासन था जो स्वर्णमण्डित स्तम्भों से घिरा हुआ था, और इसमें मखमली चँदवे लगे थे, जिनके छोर मूल्यवान् चीजों से सजे थे। और इन पर उत्कृष्ट ढङ्ग से बेल-बूटे बने थे। मस्जिदों और व्याख्यानों के लिए पृथक २ कमरे थे। सार्वजनिक परिषदों के लिए अलग २ शिविर थे। स्नानगृह और शराभ्यास तथा व्यायामखेल के लिए मंच थे। इसमें एक अन्तःपुर था जो दिल्ली के अन्तःपुर की तरह विलास एक प्रच्छन्नता के लिए विख्यात तथा आकर्षक था। फारस की दरियाँ और बेल-बूटेदार कपड़े और चित्रित पर्दे; यूरोपीय मखमली कपड़े, साटन, बनात, हर प्रकार के चीनी सिल्क, भारतीय मलमल और स्वर्णवस्त्र का उपयोग सब शिविरों में अत्यन्त प्रचुरता और प्रभावयुक्त ढंग से किया गया था। स्वर्णमण्डित गेंदे और गुम्बद शाही शिविरों की चोटियों की शोभा बढ़ाते थे। शिविरों का बाहरी रूप और कनवस के पर्दे विभिन्न मनमोहक रंगों के थे और वे इस प्रकार सजाए गए थे कि इनके पूर्ण

वैभव की शोभा और भी बढ़ जाती थी। एक विशाल सिंहद्वार से होकर शाही घेरे का प्रवेशद्वार था। इसके पार्श्व में दो ललित मण्डप थे जिनके दोनों ओर से तोपों की पंक्तियाँ आरम्भ होती थीं जिससे एक सुन्दर मार्ग बन जाता था और जिसके छोर पर एक बृहद् शिविर था जिसमें महान् राजकीय नगाड़े और शाही बाजे थे। थोड़ा सा हटकर इसके सामने प्रधान रक्षक के पहरा देने का स्थान था। प्रतिदिन इसका कमान-अधिकारी एक घुड़सवार सामन्त होता था। इस बड़े घेरे की दूसरी ओर सम्राट् के शस्त्रागार, साज-सामान आदि के लिए अलग डेरे थे। उनमें से एक डेरा कलमी-शोरे से ठंढ़ा किए हुए जल के लिए, एक फल के लिए, एक मिठाइयों के लिए, एक पान के लिए, इसी तरह और अन्य डेरे भी थे जिनमें बहुसंख्यक पाकशालाएँ, अस्तबलें आदि थीं। किसी शिविर में ऐसी विलासिता की कठिनाई से कल्पना की जायगी। इसके अतिरिक्त हर एक खेमे का यथार्थ द्विरूप होता था जो सम्राट् की पहुँच के पहले से ही आगे भेज दिया जाता था। उसका प्रयाण एक शोभायात्रा थी और जब वह अपने मण्डपों में प्रवेश करता था, तो उसके अभिवादन में पचास या साठ तोपें छूटती थीं। उसके स्थायी निवास के शाही दरबार के प्रत्येक रूप और विधि का ग्रहण और पालन होता था।

ऐसे वैभव का दृश्य ज्वलन्त रूप से सम्राट् के साधारण एवं कठोर व्यक्तिगत आचरणों के विपरीत था। इस तरह अपने वैभव के प्रदर्शन से प्रजा को प्रभावित कर वह अपनी शक्ति को दृढ़ करना चाहता था। उसके सामंत भी इस वैभव का अनुकरण करते थे। यह वैभव उसकी सेना के प्रयाण में बोझ स्वरूप हुआ। इससे उसकी आर्थिक स्थिति पर भी चोट हुई और शीघ्र ही उसको अत्यावश्यक सैनिक और राजनीतिक व्यवस्थाओं में भी काट-छांट करनी पड़ी।

सभी मुगल शिविरों में कुछ इस प्रकार का वैभव था और सुलतान मुअज्जम को अवश्य ही इसके कारण अपने कोंकण अभियान में असुविधा हुई होगी। जब वह पश्चिमी घाटों के ऊपर वाल्वा में ठहरा हुआ था, सम्राट् के नाम पर वह जितना भी प्रदेश अपने अधिकार में कर सकता था उसने किया और बीजापुर शासन द्वारा दिए गए पिछले भूमि पट्टों की अपने ही नाम से पुष्टि की। इस प्रकार के विलेख अब भी मिलते हैं। अक्टूबर के महीने में उसके शिविर में मारी फैली जिसने उसके अनेक आदमियों को साफ कर दिया और उसकी सैन्य शक्ति को काफी धक्का पहुँचाया। सम्राट् की यह आज्ञा पाकर कि घाट के ऊपर के दक्षिण-पश्चिम के उन जनपदों को विजय किया जाय, जिसको पहले शिवाजी ने बीजापुर से छीन लिया था, वह बिना हिचक के, इस काम को सम्पन्न करने के लिए आगे बढ़ा। अजीमशाह को,

बीजापुर-अभियान में उत्साहवर्धक सफलता नहीं मिली थी, उसने अब उत्तर की ओर अभियान आरम्भ किया और शोलापुर पर घेरा डाला।

१६८५ ई०—इस समय कोंकण में शम्भाजी के सैनिक हम्बीर राव के अधीन थे। उसको खानदेश के अरक्षित दशा में होने की सूचना मिली। गुप्त रूप से कई टुकड़ियों का अधिकबलन मिलने पर उसने उत्तर की ओर प्रयाण किया और बुर्हानपुर के धन और सम्पत्ति को कई दिनों तक लूटने के बाद अपने भारी बोझों को लिए हुए और बुर्हानपुर से नासिक तक के अपने रास्ते में पड़ने वाले पूरे प्रदेश में आग लगाते हुए वह तेजी से वापस गया।

इस आक्रमण की सूचना पाकर उसका पीछा करने के लिए खानजहाँ औरङ्गाबाद से चला। किन्तु उसके लौटते समय उनको चन्दोर या अंकाइ तंकाइ[1] में न घेरकर उसने अजन्ता (दर्रा और घाट) के पहाड़ियों की श्रेणी को पार किया और बाईं ओर चक्रवत घूमा। किन्तु वह मराठों से पाँच पड़ाव से कम दूर कभी नहीं रहा। जब वह दक्षिण की ओर बहुत दूर तक उनका पीछा कर चुका, तो उसको जुन्नर और सिंहगढ़ के बीच में थानों की स्थापना करने की आज्ञा प्राप्त हुई। इसी समय युवराज कामबख्श बुर्हानपुर की रक्षा करने को भेजा गया।

खानजहाँ ने पूना और उसके आसपास के प्रदेश पर अधिकार कर लिया और खाकर खाँ को वहाँ का फौजदार बनाकर सम्राट् की आज्ञा से अजीमशाह की सहायता करने के लिए आगे बढ़ा। किन्तु अजीमशाह शोलापुर पर अधिकार करने के बाद बीजापुर की ओर प्रयाण कर रहा था कि उसको मालूम हुआ कि वह शिर्जा खाँ का मुकाबला नहीं कर सकता। अतः वह भीमा के उस पार लौट गया और खान जहाँ को उससे सम्मिलित होने की आवश्यकता न रही।

इसी बीच सुलतान मुअज्जम ने नाम मात्र के विरोध के बाद गोकाक, हुबली और धारवार पर सफलतापूर्वक अधिकार कर लिया किन्तु अकाल, मारी, और नवप्राप्त स्थानों में रक्षार्थ सैनिकों को छोड़ने के कारण उसकी सेना में सिपाहियों की कमी हो जाने से उसका सैनिक-बल और सैनिक-क्षमता इतनी कम हो गई थी कि एक छोटी सी बीजापुरी टुकड़ी के आक्रमण से वह कठिनता से अपनी रक्षा कर सका। उसकी सहायता के लिए रोहुल्ला खाँ के साथ तुरन्त ही एक सैनिक दल भेजा गया और खान जहाँ को यह आज्ञा हुई कि वह रोहुल्ला खाँ की रक्षा करता रहे। जब तक यह रक्षा दल नहीं पहुँचा, राजकुमार की सेना लगातार तंग की जाती रही। बहुत से घोड़ों के मर जाने से सामन्तों और सैनिकों को आवश्यकतावश पैदल ही प्रयाण और

---

[1] अंकाइ-तंकाइ नासिक जनपद में एक पहाड़ी किला है।

युद्ध करना पड़ा जिससे एक साधारण सा अश्वारोही भी अपमानजनक समझता है। इस सुन्दर सेना का नष्ट-भ्रष्ट भाग अहमदनगर लौट आया। इसकी सैन्य-शक्ति इतनी कम हो गई थी जितनी अनेक युद्धों में पराजित होने के बाद भी न होती।

खानजहाँ और रोहुल्ला खाँ सुलतान मुअज्जम को सुरक्षापूर्वक सीमा तक पहुँचा कर लौट आए और उनको बीजापुर प्रदेश के हुलमली स्थान पर घेरा डालने की आज्ञा मिली।

औरङ्गजेब बीजापुर को विजय करने पर तुला था, फिर भी औरङ्गजेब के विरुद्ध एकता स्थापित करने में मधुना पन्त के प्रयास असफल रहे। शम्भाजी ने बीजापुर की सहायता करने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने अबुहुसेन से एक लाख पगोडा का उपदान पाकर गोलकुण्डा को सहायता करने का वचन दिया। जब सम्राट् को इस सन्धि का पता चला तो उसने खानजहाँ को बकाया कर उगाहने के बहाने हैदराबाद प्रदेश में प्रवेश करने की आज्ञा दी। दूत के रूप में सआदत खाँ भी इस सेना के साथ चला। उसको ये गुप्त आदेश दिए गए कि वह शम्भाजी से सन्धि किए जाने के बदले में तुष्टि की माँग करे और हैदराबाद से झगड़ा करने का कोई उपयुक्त कारण निकाले।

सम्राट् ने अहमदनगर से शोलापुर की ओर प्रयाण किया तथा गाजीउद्दीन के अधीन जो सेना जुन्नर में ठहरी थी उसे अहमदनगर की ओर प्रयाण करने का आदेश दिया। इस अवसर का लाभ उठाकर उसने उत्तर की ओर क्षिप्र प्रयाण किया और ताप्ती और नर्मदा को पार कर कुछ ही घण्टों में भड़ौच पर अधिकार किया। सम्भवतः सुलतान अकबर इस अभियान का नेता या प्रेरक था। कोंकण के अभियान में वह अपने भाई के विरुद्ध सक्रिय था और इस अवसर पर वह सम्राट् घोषित किया गया। उसके मराठे साथियों ने जितनी हो सकी उतनी लूटपाट की। किन्तु गुजरात के राज्यपाल और उसकी सेना के आने पर वे लौट गए।[1]

औरङ्गजेब के सैनिकप्रबन्ध की कमी के कारण बुर्हानपुर और भड़ौच की लूट हुई। वह मुसलमान राज्यों के विरुद्ध अपनी योजनाओं को चलाने में संलग्न था। उसने मराठों के सहज गुणों की ओर ध्यान न दिया, बल्कि उनको घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा जिससे कि वे प्रबल एवं उसके साम्राज्य के घातक हुए।

---

[1] स्काट कृत डक्कन में लिखा है कि मराठों ने सुलतान मुहम्मद अकबर की सहायता की जब वह उत्तर भारत को प्रयाण करने का प्रयास कर रहा था और चाकन के समीप पराजित किया गया था। किन्तु मुहम्मद अकबर ने जो पत्र कवि कलुश को लिखे थे उनसे पता चलता है कि वह उस समय कोंकण में था।

१६८६ ई०—लगभग वर्ष के अन्त में सुलतान अजीम एक बड़ी सेना लेकर बीजापुर की राजधानी के समीप पहुँचा। इसके पूर्व बीजापुर के अधिकारियों ने मुगल सेहना पर सफलता प्राप्त की थी। किन्तु इस अवसर पर वे पीछे हट गए। यह कार्य विवेकपूर्ण था क्योंकि वर्षा के अभाव से वहाँ अकाल पड़ा था और पास पड़ोस में जो कुछ भी उपज हुई थी वह किले के अन्दर एकत्रित कर ली गई थी। उत्तर की ओर औरङ्गाबाद के सूबे में प्रचुर उपज हुई थी। किन्तु शोलापुर के विशाल शिविर में अनाज उत्तर की ओर से आता था और अत्यन्त मंहगा था। अतः सम्राट् की शिविर के पड़ोस में अजीमशाह पर आक्रमण करने में लाभ नहीं था। अतः उन्होंने उसे नगर के समीप आने में रुकावट नहीं डाली। बाद को उन्होंने उसके और शोलापुर शिविर के बीच के सञ्चार को तथा रसद को रोक दिया। खाद्य सामग्री पहुँचाने वालों को नष्ट किया और झूठे आक्रमणों और मुठभेड़ों से पीड़ित किया जिससे बहुत ही थोड़े समय में अजीमशा अत्यन्त सङ्कट में पड़ा। सम्राट् की अपनी ही शिविर में खाद्य सामग्री की कमी थी। अतः वह शोलापुर को रसद न भेज सका। अतः गाजीउद्दीन खाँ को अहमदनगर से बीस हजार बैलों पर अनाज लाद कर अजीमशाह की सेना में पहुँचाने की आज्ञा हुई। शाही सेना की एक टुकड़ी दलपत खाँ के नेतृत्व में अधिकबलन के लिए भेजी गई। गाजीउद्दीन ने यह कार्य अत्यन्त उत्साह से किया। बीजापुर सैनिकों ने इस खाद्य सामग्री को प्राणपण से लूटने का प्रयत्न किया किन्तु वे असफल रहे। खाद्य सामग्री के देरी से पहुँचने के कारण युवराज के सैनिकों की अप्रतिष्ठा तथा विनाश हुआ होता, यदि खाद्यसामग्री की रक्षा में सफल युद्ध न किया गया होता और यदि अजीमशाह की पत्नी जानीबेगम इस अवसर पर हाथी पर चढ़ कर और युद्धक्षेत्र में पहुँच कर सैनिकों को उत्साहित न करती। औरङ्गजेब ने गाजीउद्दीन के प्रति इतनी कृतज्ञता कभी नहीं प्रकट की थी जितनी कि उसने युवराज के सङ्कट को दूर करने के अवसर पर प्रकट की।

आज्ञा पाकर खानजहाँ ने हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। किन्तु मधुना पन्त ने अप्रत्याशित तैयारी कर रखी थी। उसके तथाकथित मित्र इब्राहिम खाँ ने सत्तर हजार आदमियों की एक सेना लेकर मलखेड़ में मुगलों का सामना किया। इतनी बड़ी सेना का सामना करने का साहस खानजहाँ में नहीं था और पीछे हटना भी अत्यन्त सङ्कटपूर्ण था। अतः उसने खाईयाँ खोद लीं और सम्राट् को स्थिति की सूचना दी। उसके सङ्कट को दूर करने के लिए सुलतान मुअज्जम ने एक सेना लेकर तुरन्त प्रस्थान किया। इब्राहिम खाँ के पास एक अच्छी सेना होने पर भी उसने खान जहाँ पर जो पूर्णतया उसकी मुट्ठी में था आक्रमण न किया। सुलतान मुअज्जम

के आगे बढ़ने पर उसका प्रयास इतना निर्बल और उसका आचरण इतना विश्वासघातपूर्ण था कि मुगल बिना किसी विशेष विरोध के हैदराबाद तक बढ़ते गए। मधुना पन्त के प्रतिवाद करने पर भी सुलतान ने गोलकुण्डा के किले में शरण ली। इब्राहिम खाँ ने विश्वासघात किया और मुगल की ओर मिल गया। हैदराबाद शहर पर कब्जा किया गया और सुलतान मुअज्जम की आज्ञा के विपरीत सैनिकों ने उसे लूटा। सार्वजनिक विपत्ति के समय सर्वाधिक बुद्धिमान् मन्त्री निंद्य होता है। सुलतान की सास तथा मुगलों के कुछ पक्षपाती विश्वासघाती दलबन्दी के लोगों से उसकाए जाने पर मधुना पन्त के शत्रुओं ने जनता की त्राहि २ का लाभ उठा कर उसका वध कर डाला। अबुहुसेन में अनेक प्रिय गुण थे किन्तु उसमें वह दृढ़ता और निर्णय का अभाव था मात्र जिससे उसकी सुरक्षा थी। अब उसके पास कोई सलाहकार भी नहीं था अतः उसने सन्धि करने का प्रस्ताव किया। हैदराबाद में अपनी कल्पना से कहीं अधिक सेना, सम्पत्ति और तैयारियाँ देख कर तथा बीजापुर का सम्भाव्य अधिक प्रतिरोध देखकर औरङ्गजेब सन्धि करने को सहमत हुआ जिसके अनुसार उसे दो करोड़ रुपए का कोष और सामान दिए जाने का वचन मिला। इसे एकत्रित करने के लिए औरङ्गजेब ने सुलतान मुअज्जम को वहाँ छोड़ा। हैदराबाद की लूट को प्राप्त करने में असफल होने के कारण औरङ्गजेब राजकुमार और खान जहाँ से असन्तुष्ट हुआ। यह स्मरण कर कि उसने १६५५ में कितना विशाल कोष प्राप्त किया था, वह उस सम्पत्ति के प्रति ईर्ष्यालु हुआ जो उसकी कल्पना में इन लोगों ने सम्भवतः उसी निमित्त छिपा रखा था जिस निमित्त उसने पूर्व में छिपाया था। अतः उसने खान जहाँ को लाहौर प्रस्थान करने की आज्ञा दी और यद्यपि कुछ वर्षों बाद वह फिर सम्राट् के साथ रहा किन्तु सम्राट् ने उसे फिर युद्ध पर नहीं भेजा।

सम्राट् ने बीजापुर को प्रस्थान किया। इस नगर की दीवारों का विस्तार अत्यधिक लम्बा था। इसके किले का घेरा छः मील था। अतः इस किले पर घेरा डालने के लिए एक विशाल सेना की आवश्यकता थी। तोड़फोड़ करने वाली अनेक बैटरियाँ खड़ी की गईं। मुख्य बैटरी तर्बीयत खाँ की देखरेख दक्षिण मुख पर थी।

युवराज सिकन्दर के अधीन शिर्जा खाँ, अब्दुल रौफ और जालिम और जमशेद सीदी किले की प्रतिरक्षा कर रहे थे रक्षकसैन्य बहुसंख्यक नहीं थे और यद्यपि उनको वेतन कम मिलता था और वहाँ खाद्यपदार्थ की कमी थी किन्तु उनमें अब भी पठान शौर्य के कुछ अंश थे और वे दृढ़ता से लड़े। यह जानकर कि उनका समर्पण करना अवश्यम्भावी है और शीघ्रता करने की आवश्यकता भी नहीं है, तोड़-फोड़ शक्य होने पर भी उसने आक्रमण को बुद्धिमत्ता पूर्वक स्थगित रखा। ऐसे आदमियों पर आक्रमण करने की अपेक्षा जो इन परिस्थितियों में प्राणपण से लड़ते, और अपने

हाथों में तलवारों को लिए हुए मरने के अवसर पर प्रसन्नता अनुभव करते, सम्राट् ने उनको अपनी विपन्नावस्था का चिंतन करने को छोड़ना अधिक अच्छा समझा।

औरङ्गजेब को निराश नहीं होना पड़ा क्योंकि, यद्यपि बाहरी प्रतिरक्षात्मक निर्माणों की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ एक भीतरी किला अब भी उनके हाथ में था, खाद्य पदार्थों के अभाव से सैनिक इतने पीड़ित थे कि वे १५ अक्तूबर १६८६ को या उसके लगभग समर्पण करने को विवश हुए। गाजीउद्दीन के द्वारा शिर्ज़ा ने शर्तें निश्चित कीं। अतः सम्राट् ने उस समय के चलन के अनुरूप जब कभी किसी अधिकारी द्वारा इस प्रकार के प्रस्ताव प्राप्त होते थे उसने इस विजय का सांकेतिक सेहरा गाजी-उद्दीन के सिर बाँधा।

मुख्य अधिकारी शाही सेवा में लिए गए और शिर्ज़ा खाँ को सात हजार घोड़े का एक मनसब और रुस्तम खाँ की उपाधि प्रदान की गई। युवराज सिकन्दर आदिल शाह मुगल शिविर में अत्यन्त कड़ाई में बन्दी बना कर रखा गया। वहाँ अकस्मात् उसकी मृत्यु हुई। औरङ्गजेब द्वारा विष दिए जाने का सन्देह किया गया।[1]

अब बीजापुर राजधानी न रहा और शीघ्र ही सूना हो गया। इसकी दीवारें जो सुडौल कटे हुए पत्थरों की और बहुत ऊँची हैं आज भी समूची खड़ी हैं। सार्व-जनिक भवनों के गुम्बद और मीनारें ऊँची उठी हुई दिखाई पड़ती हैं और दर्शक को बाहर से वह आज भी एक सम्पन्न नगर प्रतीत होता है किन्तु भीतर पूर्ण एकांतता, निस्तब्धता, और निर्जनता है। गहरी खाई, दुहरा परकोटा, और किले के वैभवपूर्ण प्रासादों के अवशेष राज्यसभा की पूर्व विभूतियों के साक्ष्य हैं। बड़ी मस्जिद एक विशाल भवन है और इब्राहिम आदिल शाह की कब्र, जैसा पहले लिखा जा चुका है अपनी सुचारु और सौन्दर्यपूर्ण स्थापत्य के लिए विख्यात है। किन्तु इस दृश्य में मुख्य आकर्षक वस्तु मुहम्मद आदिलशाह का रौजा है जिसकी गुम्बद[2] हर एक

---

[1] कहा जाता है कि उसके पक्ष में जनता में कुछ हलचल हुई थी जिसके परिणामस्वरूप उसकी हत्या की गई। डॉ० वी० ए० स्मिथ के अनुसार सिकन्दर की मृत्यु बीजापुर के पतन के पन्द्रह वर्ष बाद १७०१ में कारावास में हुई। कौसेन (आर-किअलोजीकल सर्वे आव इण्डिया, जिल्द ३८, इम्पिरियल सिरीज, १९१६) लिखते हैं कि उसको १६९९ में विष दिया गया।

[2] नवीनतम और शुद्ध माप के अनुसार गुम्बद का बहिर्व्यास १४४ फीट, और अन्तर्व्यास १२४ फीट ५ इञ्च है। बिना किसी भी प्रकार के सहारों की रुकावट के गुम्बद का कुल क्षेत्र १८,१०९, ३५ वर्ग फुट है। संसार की कोई भी एक

दृष्टि से आँख में समा जाती है और यद्यपि यह स्वयं पूर्णतया अलंकारविहीन है, इसके विशालकाय परिमाप और इसके कठोर सादेपन से इसमें विषादपूर्ण वैभव का वातावरण व्याप्त हो गया है और इस तरह इसके चारों ओर फैली हुई विनाशलीला और निर्जनता से इसकी समरसता प्रतीत होती है। बीजापुर की जलवायु में क्षय की प्रगति अत्यन्त तीव्र है। कुछ समय के पूर्व तक इसके विनाशकारी प्रभाव को रोकने का कोई उपाय नहीं किया गया था। वर्तमान दशा में मात्र खण्डहर के रूप में ये अत्यन्त विशाल हैं। योरोप में इस प्रकार की कोई भी वस्तु इसके सम्पूर्ण रूप के वृहदाकार की तुलना में नहीं ठहर सकती।[1]

बीजापुर विजय करने के पश्चात् औरङ्गजेब ने गोलकुण्डा पर आक्रमण करने की तैयारियाँ तुरन्त कीं। किन्तु सुलतान मुअज्जम द्वारा की हुई सन्धि को तोड़ने के पूर्व औरङ्गजेब ने विश्वासघातता के साथ नीचता का भी परिचय दिया। उसने सआदत खाँ को, उस निर्बल युवराज की आशाओं और शंकाओं को प्रभावित कर, अधिकाधिक कोष तथा अबुहुसेन के रत्नों को ऐंठने का आदेश दिया।

बीजापुर में एक मुगल फौजदार की नियुक्ति की गई और एक दूसरा मुगल फौजदार कासिम खाँ[2] एक टुकड़ी के साथ कृष्णा के उस पार अधिकाधिक प्रदेश पर कब्जा करने के लिए, तथा जमींदारों को शाही प्राधिकार स्वीकार करने को प्रलोभित करने के लिए भेजा गया। बीजापुर का शिर्जा खाँ शम्भाजी के जनपदों पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। उसने सातारा की ओर प्रयाण किया।

१६८७ ई०—एक विख्यात सन्त[3] की क़ब्र के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पण करने के बहाने सम्राट् ने कुलबर्गा की ओर प्रस्थान किया और गोलकुण्डा की

अकेली गुम्बद इतना बड़ा स्थान नहीं घेरे है। गोल गुम्बद की एक आश्चर्यजनक विशेषता इसकी आवाज करने वाली गैलरी है।—ए० एस० आई०, ३८, पृ० ९८-१०६।

[1] आधुनिक भवनों और बाजारों, सुविस्तृत सड़कों, फैक्टरियों और व्यस्त जीवन के हल्ले-गुल्ले से पूर्ण आधुनिक बीजापुर ने एक नया रूप ग्रहण कर लिया है।—कौसेन; ए० एस० आई०, ३८, पृ० २१।

[2] स्काट कृत डक्कन, जिल्द २, पृ० ७५ से प्रतीत होता है कि गोलकुण्डा की विजय के पश्चात् कासिम खाँ फौजदार नियुक्त किया गया। किन्तु प्रतीत होता है कि यह भ्रम इसलिए हुआ कि उसको उस समय हैदराबाद से अधिकबलन भेजा गया था।

[3] ख्वाजा बन्दा नवाज जो १४१३ में गुलबर्गा (कुलबर्गा) आए।

सहायता के लिए सागर, अदोनी या कार्णाटक के किसी भी हिस्से से आते हुए अधिकबलनों को सम्भवतः बीच ही में रोकने के लिए गाजीउद्दीन को बीजापुर के पूर्वी और कुछ २ दक्षिणी दिशा में प्रयाण करने की आज्ञा दी गई। औरङ्गजेब के दूत हैदराबाद के सैनिकों को उत्कोच और वचनों द्वारा भ्रष्ट करने में व्यस्त थे। अनेक अधिकारी भ्रष्ट किए गए और दूत सम्रादत खाँ ने नीचतम कपट द्वारा रत्नों पर कब्जा प्राप्त किया, यहाँ तक कि राजा ने स्त्रियों तक के भूषणों को उतरवा कर सम्राट् को सन्तुष्ट करने या उसकी अनुवेदना को उत्तेजित करने की व्यर्थ आशा में इस पतनोन्मुखी आज्ञा का पालन किया। किन्तु औरङ्गजेब के आचरण में दयाभाव का कभी भी स्थान नहीं था। उसने अबुहुसेन के विरुद्ध एक आविपत्र द्वारा युद्ध घोषित किया जिसमें दुश्चरित्रता के सामान्य अभियोग के साथ उसके ऊपर यह मुख्य दोषारोपण किया गया था कि उसका मन्त्री एक ब्राह्मण है और मूर्तिपूजक शम्भाजी के साथ उसकी मैत्री है। इस निर्दय आततायी द्वारा इस प्रकार पीड़ित किए जाने पर तथा अपने ही सेवकों से त्यागे जाने पर उसका रोष उत्तेजित हुआ और वह कुछ एक साहसी सैनिकों और अधिकारियों के साथ जो अब तक निष्ठावान् थे गोलकुण्डा के किले में चला गया। वीरतापूर्वक किले की प्रतिरक्षा, उसके कुछ अनुयायियों की शौर्यपूर्ण निष्ठा, और अन्त तक अपनी गरिमापूर्ण आत्मशान्ति बनाए रखने के कारण महाराष्ट्र की परम्परा में उसकी स्मृति वीर और सद्गुणी तानाशाह के रूप में अब तक स्थिर है। उसका यह नाम इसलिए पड़ा कि इसके उत्कर्ष के पूर्व तानाशाह नामक एक फकीर से उसकी घनिष्ठता थी।

सात महीने के घेरे के बाद गोलकुण्डा का किला विश्वासघात द्वारा १६८६ के सितम्बर[1] के अन्त में विजय किया गया। हैदराबाद अब भी एक घना बसा हुआ नगर है और दक्खिन के राज्यपाल की राजधानी है। बीजापुर से बहुत निकृष्ट होने पर भी इसमें राजनिवास के चिह्न हैं। विशेष रूप से इसकी बड़ी मस्जिद एक सुन्दर भवन है और कुत्बशाही राजाओं की कब्रें उनके चमचमाते हुए गुम्बद और उनकी पृष्ठभूमि में गोलकुण्डा का किला एक अत्यन्त आकर्षक दृश्य प्रस्तुत करते हैं।[2]

गोलकुण्डा के स्मरणीय घेरे के समय सम्राट् ने अन्यायपूर्ण शंकावश राजकुमार मुअज्जम को कारावास में रखा। छः वर्षों तक अपने पिता की शिविर में इसी

[1] यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि इसका पतन सितम्बर १६८७ में हुआ।

[2] बीजापुर और उत्तरी भारत की शिल्पशैलियों से गोलकुण्डा की शिल्पशैली भिन्न है। ये इमारतें ग्रेनाइट (कसौटी) पत्थरों की बनी हुई हैं।

स्थिति में रहने के बाद उसको मुक्ति मिली और वह कावुल का राज्यपाल नियुक्त किया गया। उसका एकमात्र दोष यह था कि उसने सम्राट् की अन्यायपूर्ण शत्रुता से एक पीड़ित व्यक्ति की ओर से एक महाप्रतिवाद किया था। यह प्रतिवाद विवेकपूर्ण होने की अपेक्षा अधिक उदार एवं सम्मानार्ह था, क्योंकि इसका प्रभाव उसके लिए तथा अभागे अवुहुसेन[1] के लिए जो दौलताबाद के किले में आजीवन बन्द रहा प्रतिकूल हुआ।

अब नए विजित प्रदेशों को सुरक्षित रखने और बीजापुर और गोलकुण्डा के अधीन सम्पूर्ण प्रदेशों को जीतने का प्रश्न सामने था। अतः कार्णाटक में कासिम खाँ के पास अधिकबलन भेजे गए। इसकी कार्यवाहियों का जो मराठा प्रगति से सम्बन्धित है हम अभी उल्लेख करेगें।

खानजाद खाँ कुलवर्गा और बीजापुर के बीच में पड़ने वाले सागर किले को विजय करने के लिए भेजा गया। यह किला बीदर[2] जनजाति के एक सरदार के कब्जे में था। कार्णाटक की यह जनजाति महाराष्ट्र के रामोसियों के बिलकुल समरूप है। यह सरदार एक पालेगार था और उसके पास मुख्यतया उसकी अपनी ही जनजाति के १२,००० पदाति थे। उसका किला एक दुर्गम स्थान में पहाड़ियों और जंगलों से घिरा था किन्तु मुगलों के नाम से डरकर उसने समर्पण किया। जो लोग बिना विरोध के औरङ्गजेब के प्राधिकार को स्वीकार करते थे, सम्राट् उनको अनिवार्य रूप से बहुत सम्मान प्रदान करता था। सम्राट् ने दरबारियों के अत्यन्त मनोरंजन स्वरूप इस रामोसी नायक को मुगल साम्राज्य में पंचहजारी मनसबदार के पद पर प्रतिष्ठित किया। इस सम्मान के बाद वह कुछेक दिन ही जीवित रहा। उसका पुत्र पेमनायक अपनी नवीन स्थिति के वैभव को असुविधाजनक समझकर जंगल को लौट गया और अपनी जनजाति के एक दल को एकत्रित कर सागर के समीप वाकिनकेरा नामक एक परकोटायुक्त ग्राम में अड्डा जमाया और लूट और डकैतियों से उसने धीरे २ अपनी संख्या बढ़ा ली और बीस वर्ष से कम समय के अन्दर हम आगे

---

[1] एक कहानी प्रचलित है कि सम्राट् की शिविर में अपनी बन्दी अवस्था में उसने औरङ्गजेब से कह कर शाही बैन्ड के एक गायक को एक लाख रुपया दिलाया। कुछ हिन्दुस्तानी गाने सुन्दर होते हैं। मेजर टाड कुछ प्राचीन राजपूत संगीत के कुछ नमूने प्रकाशित करने वाले हैं जिससे यह कहानी सम्भवतः अधिक समझ में आएगी।

[2] बीदर का अर्थ है शिकारी। यह गठीले, काले, शरीर वाले आदिवासियों की एक जाति है।

चलकर देखेंगे कि शक्तिशाली औरङ्गजेब का व्यक्तिगत प्रयास वाकिनकेरा के इस बेदर नायक को दमन करने में लगा हुआ है।

उसी समय जब दूसरी टुकड़ियाँ भेजी गई थीं अजीमशाह और गाजीउद्दीन ने अदोनी पर धावा बोला जो उस समय भी बीजापुर के भूतपूर्व राजप मसौद खाँ के कब्जे में था। प्रतिरोध करना पूर्णतया व्यर्थ समझ कर मसौद खाँ ने अपने कब्जे को त्यागा। किन्तु शाही सेवा में प्रवेश करना अस्वीकार कर सम्मानार्ह अज्ञातावस्था में मरा।

गोलकुण्डा के पूर्वी क्षेत्र की उपेक्षा नहीं की गई। राजमन्द्री तथा मसुलीपटम और गंजम बन्दरगाहों पर कब्जा किया गया। टुकड़ियों को सभी क्षेत्रों में सफलता मिली। कुड्डापा, कंजीवरम और पूनमली के राज्यपालों ने समर्पण किया।

बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों के अधीन कार्णाटक और द्राविड के प्रदेशों को मुगल अविवेकपूर्वक कार्णाटक कहते थे। वे बीजापुर के अधीन कार्णाटक के जनपदों को बीजापुर-कार्णाटक और हैदराबाद के अधीन कार्णाटक के जनपदों को हैदराबाद-कार्णाटक कहते थे। बीजापुर-कार्णाटक ऊपर के प्रदेश या ठेठ कार्णाटक में था और हैदराबाद-कार्णाटक चारुमण्डल समुद्रतट के किनारे गण्टूर से लेकर दक्षिण में कोलरून तक फैला हुआ था। इसमें मराठा कब्जे के प्रदेशों के भाग भी मिले हुए थे। पायान घाट का कोई भी भाग बीजापुर के कब्जे में नहीं था क्योंकि शिवाजी ने इस क्षेत्र के बीजापुर के कब्जे के सभी प्रदेशों को जीत लिया था। किन्तु बालाघाट या ठेठ कार्णाटक के कई स्थान अब भी हैदराबाद-कार्णाटक में गिने जाते थे जिनमें अदोनी के समीप गूटी तथा गरमकोण्डा, गण्डीकोटा और सिधौट जनपद गिनाए जा सकते हैं।

गोलकुण्डा के पतन के बाद विशाल शिविर का प्रयाण बीजापुर की ओर हुआ। किन्तु टुकड़ियाँ हर ओर प्रदेशों पर कब्जा और व्यवस्था स्थापित करने में लगी थीं। मुगल किस प्रकार किसी जनपद का प्रशासन करते थे उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

एक जनपद में दो अधिकारी, फौजदार और खालसा दीवान नियुक्त किए जाते थे। फौजदार एक सैनिक अधिकारी था, उसके कमान में सैनिकों का एक दल रहता था। और उस पर अपने क्षेत्र की रक्षा और आरक्षकों की देखभाल का प्रभार था। परिस्थिति के अनुसार उसकी न्यूनाधिक शक्ति होती थी। नियमित रकम जो उसके जनपद के संस्थान के निर्वाह के लिए दी जाती थी वह सरकारी उगाही का २५% होता था। दीवान के कर्तव्य पूर्णतया असैनिक रूप के थे। उसको जागीरदारी

और राजकोष सम्बन्धी राजस्व की उगाही का काम सौंपा जाता था। हैदराबाद और बीजापुर के नव-प्राप्त प्रदेशों में मुगलों को जो जागीरें दी गई थीं वे विरले ही स्थायी रूप में उन पट्टों के अनुरूप दी जाती थीं जिनके अनुसार मराठे मनसबदारों का कब्जा उनके भूमि पर स्थायी था। उनके सैनिकों के निर्वाह के लिए उनको निर्दिष्ट जनपदों में कुछ वर्षों के लिए अर्पण प्रदान करने की सामान्य प्रथा थी। इस तरह फौजदारों का पद जागीरदारों की अपेक्षा सैनिक-सेवकों से अधिक मिलता-जुलता था। फौजदार और दीवान मिल कर देशमुखों या देसाइयों को जनपदों को ठीके पर देते थे। रकम वसूली का काम दीवान का था। प्रत्येक प्रदेश में साधारणतया कई फौजदार होते थे। बीजापुर और गोलकुण्डा के प्राप्त हो जाने से अब दक्षिण में मुगलों के छः सूबे हो गए।

औरङ्गजेब के विजयों की तीव्र प्रगति की अवधि में शम्भाजी की व्यक्तिगत अकर्मण्यता, मराठा लेखकों के अनुसार, कलुश के मन्त्रों के प्रभाव के कारण थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शम्भाजी के आचरण परवश हो गए थे। उनकी इन्द्रियों की पाशविक उत्तेजना के कारण वे साधारणतया जड़िमा या मनोविकृति अवस्था में रहते थे। उनमें अब भी अस्थायी क्रियाशीलता उत्तेजित की जा सकती थी। यद्यपि उनके पिता के अनेक पदाधिकारी उन कुछ एक के अतिरिक्त जो नौकर रखे गए थे, इस सङ्कटकाल में अच्छी सहायता कर सकते थे किन्तु वे अपने स्वामी की हिंसा अथवा कलुश की ईर्ष्या से ऐसा करने में हिचकते थे।

मराठा मंसबदारों ने जो बीजापुर की सेवा में थे राजधानी के पतन के बाद सम्राट् के पास अपनी निष्ठा प्रकट की, किन्तु उन्होंने उसके झण्डे के नीचे एकत्रित होने की सन्नद्धता नहीं दिखाई। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, शिर्जा खाँ शम्भाजी के कब्जे के क्षेत्रों पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया था और पूर्व निर्दिष्ट मंसबदारों को सहयोग देने की आज्ञा दी गई थी। किन्तु यह पता नहीं चलता कि उन्होंने उसका साथ दिया। जब शिर्जा खाँ वइ तक प्रवेश कर चुका, सेनापति हम्बीर राव ने उस पर आक्रमण कर उसको पराजित किया। किन्तु यह विजय हम्बीर राव के लिए अत्यन्त महँगी पड़ी क्योंकि इस अवसर पर उसके सांघातिक रूप से आहत होने के कारण उसकी मृत्यु हुई। यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण होने पर भी मराठों ने प्राप्य लाभ की उपेक्षा नहीं थी। उनकी कई टुकड़ियाँ आगे बढ़ कर बीजापुर के ओर के अधिकांश अरक्षित क्षेत्र पर कब्जा किया। गोलकुण्डा के घेरे के समय मराठा अश्वारोहियों के दल वहाँ पर आए। किन्तु उन्होंने सोत्साह कार्य नहीं किया जिससे सैनिक कार्रवाईयों में कठिनता से कोई रुकावट पड़ी। सबसे महत्त्वपूर्ण विकर्षण का प्रयास जो शम्भाजी ने किया वह यह था कि उन्होंने भूतपूर्व

पेशवा के भ्राता केशव पन्त पिंगले की आज्ञा में जिसके सहायक सन्ताजी घोरपड़े थे कार्णाटक में एक टुकड़ी भेजी।[1]

पूर्व नियोजित योजना हर्जी राजा महादीक से संयुक्त होने की थी और उनका अन्तिम लक्ष्य उत्तरी कार्णाटक के उन जनपदों पर कब्जा करने का था जो शाहजी की जागीर थीं और अब भी व्यङ्कोजी के कब्जे में थीं। वहाँ से शम्भाजी को राज्यारोहण के समय से न हिस्सा और न कर मिला था। जब सेना जिंजी पहुँची तो केशव पन्त और उसके भतीजे नीलु पन्त में झगड़े और ईर्ष्याएँ उत्पन्न हुईं। यह कल्पना की गई या सम्भवतः नीलु पन्त द्वारा यह बात उड़ाई गई कि केशव पन्त के पास हर्जी राजा को शासन से हटाने के लिए कुछ गुप्त आदेश हैं।

चाहे उसको इस अभियान की जानकारी हुई हो या वह यह ताड़ कर कि अपनी पैतृक जागीर की रक्षा करना उसकी शक्ति के बाहर है, व्यङ्कोजी इस समय मैसूर के राजा चिक्कादेव राजा से बङ्गलोर बेचने की वार्ता चला रहे थे। इस वार्ता की प्रसिद्धि हो गई थी अतः वे मराठे जो जिंजी में थे इसका हस्तांतरण होने के पूर्व इस पर कब्जा करने पर तुले हुए थे और मुगल भी मराठों के पूर्व ही इस पर कब्जा करना चाहते थे। किन्तु मराठों को वहाँ जाने में देर हुई उन झगड़ों के कारण जो उस समय जिंजी में चल रहे थे और जो सभी अवस्थाओं में सैनिक-सेवा के अभिशाप हैं। कासिम खाँ ने पहले पहुँच कर बिना विरोध के बङ्गलोर पर कब्जा किया और कुछेक दिनों के बाद उसे चिक्कादेव राजा के हाथ तीन लाख रुपये पर बेचा। यही रकम मैसूर का राजा व्यङ्कोजी को देने को सहमत हुआ था।

बङ्गलोर पर कब्जा न कर सकने पर केशव पन्त और सन्ताजी घोरपड़े मैसूर प्रदेश में प्रवेश कर और वहाँ कई महीने रह कर अंशदान उगाहा किन्तु स्थायी रूप से कोई प्रदेश नहीं जीता। गोलकुण्डा के पतन और मुगलों की वेगयुक्त प्रगति की सूचना पाकर वे वर्ष के अन्त में जिंजी लौटे।

१६८८—मुगलों की पहुँच से और आसपास के अधिकारियों के समर्पण से डर कर अन्त में हर्जी राजा केशव पन्त से संयुक्त हुआ। वे अनेक स्थानों पर कब्जा करने में सफल हुए, किन्तु पड़ोस में मुगल सैनिकों के एक बड़े दल के आ जाने से और मराठों में सौहार्दपूर्ण एकता न होने से वे इन नए कब्जों को छोड़ने को, तथा पलिअर के दोनों ओर के अपने किलों में शरण लेने को विवश हुए।

कार्णाटक में ओसकोट्टा पर भी मराठों का सबसे पुराना कब्जा था। मैसूर के

---

[1] सम्भवतः चारुमण्डल समुद्रतट पर केशव पन्त पिंगले का उच्चारण केशव पन्तोलो किया जाता है। यह नाम ओर्म की पुस्तक में आया है।

राजा ने व्यङ्कोजी से इस वर्ष इसे छीन लिया। शम्भाजी के सैनिकों की सहायता से यह सुगमता से रोका जा सकता था किन्तु मराठे अपने वंशागत झगड़ों को अपने सामान्य हितों के निमित्त भी विरले ही तिलाञ्जलि देने को तैयार होते हैं।

कार्णाटक में उनकी शक्ति वेग से पतनोन्मुख थी और यदि महाराष्ट्र में उनकी शक्ति किसी सङ्गठित या नियमित वस्तु से एकदम भिन्न कारणों पर आश्रित न हुई होती, तो औरङ्गजेब की उन प्रदेशों को जीतने की योजनाएँ काल्पनिक न प्रमाणित होतीं और मराठा नाम अवश्य ही वेग से अपने भूतपूर्व अन्धकारता में विलीन हो गया होता।

शम्भाजी समस्त सामान्य कामकाज के प्रति पूर्णतया असावधान हो गए थे। वे अपना समय पन्हाला और विशालगढ़ में या सङ्गमेश्वर[1] के अपने प्रियगृह और उद्यान में व्यतीत करते थे। मानसिक दुर्बलता की वर्तमान अवस्था में एक मात्र योजना जिस पर उनका ध्यान विशेष रूप से जमा हुआ था उनकी प्रारम्भिक सफलता से सम्बन्धित थी। अपने स्वस्थ अन्तरालों में वे गोआ पर कब्जा करने का आयोजन करते थे। किन्तु असफलता उनके सभी कपटयोगों के साथ थी। सम्पूर्ण शक्ति कलुश के हाथों में थी किन्तु इस मन्त्री का समय महत्त्वपूर्ण राजकाम देखने की अपेक्षा अपने स्वामी के मन को रखने में अधिक व्यतीत होता था। राजकुमार मुहम्मद अकबर जिसकी मन्त्रणा और बुद्धि शम्भाजी के लिए उपयोगी हुई थी अपनी स्थिति से ग्लानि अनुभव कर और बीजापुर के पतन के बाद कहीं भी आशा न देख कर और भारत में अधिक दिन रहने में भय अनुभव कर, शम्भाजी की अनुज्ञा प्राप्त की राजापुर से एक अँग्रेज के कमान में एक जहाज किराए पर ले कर फारस के दरबार में शरण ली। वह वहाँ बीस वर्ष तक रहा। उसकी मृत्यु १७०६ में स्पहन में हुई।

शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा सेना के अनुशासन में जिस ढिलाई का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, इधर कुछ वर्षों में और अधिक बढ़ी और यद्यपि एक सङ्गठित राज्य के प्रमुख होने के नाते शम्भाजी के साधनों के लिए यह अत्यन्त अहितकर था, लुटेरी शक्ति का विस्तार करने में इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ, क्योंकि हर एक विधि-विरोधी व्यक्ति और प्रत्येक विघटित सैन्य का सेनानी, मुसलमान हो या मराठा, जो एक घोड़ा और भाला रख सकता था मराठा दल में सम्मिलित हुआ और ऐसे साहसिक व्यक्ति बहुधा एक ही दिन की लूट से धनी हो जाते थे।

---

[1] सङ्गमेश्वर रत्नागिरि जनपद में शास्त्री नदी पर समुद्रतट से लगभग बीस मील अन्दर है।

पेशवा के भ्राता केशव पन्त पिंगले की आज्ञा में जिसके सहायक सन्ताजी घोरपड़े थे कार्णाटक में एक टुकड़ी भेजी।[1]

पूर्व नियोजित योजना हर्जी राजा महादीक से संयुक्त होने की थी और उनका अन्तिम लक्ष्य उत्तरी कार्णाटक के उन जनपदों पर कब्जा करने का था जो शाहजी की जागीर थीं और अब भी व्यङ्कोजी के कब्जे में थीं। वहाँ से शम्भाजी को राज्यारोहण के समय से न हिस्सा और न कर मिला था। जब सेना जिंजी पहुँची तो केशव पन्त और उसके भतीजे नीलु पन्त में झगड़े और ईर्ष्याएँ उत्पन्न हुई। यह कल्पना की गई या सम्भवतः नीलु पन्त द्वारा यह बात उड़ाई गई कि केशव पन्त के पास हर्जी राजा को शासन से हटाने के लिए कुछ गुप्त आदेश हैं।

चाहे उसको इस अभियान की जानकारी हुई हो या वह यह ताड़ कर कि अपनी पैतृक जागीर की रक्षा करना उसकी शक्ति के बाहर है, व्यङ्कोजी इस समय मैसूर के राजा चिक्कादेव राजा से बङ्गलोर बेचने की वार्ता चला रहे थे। इस वार्ता की प्रसिद्धि हो गई थी अतः वे मराठे जो जिंजी में थे इसका हस्तांतरण होने के पूर्व इस पर कब्जा करने पर तुले हुए थे और मुगल भी मराठों के पूर्व ही इस पर कब्जा करना चाहते थे। किन्तु मराठों को वहाँ जाने में देर हुई उन झगड़ों के कारण जो उस समय जिंजी में चल रहे थे और जो सभी अवस्थाओं में सैनिक-सेवा के अभिशाप हैं। कासिम खाँ ने पहले पहुँच कर बिना विरोध के बङ्गलोर पर कब्जा किया और कुछेक दिनों के बाद उसे चिक्कादेव राजा के हाथ तीन लाख रुपये पर बेचा। यही रकम मैसूर का राजा व्यङ्कोजी को देने को सहमत हुआ था।

बङ्गलोर पर कब्जा न कर सकने पर केशव पन्त और सन्ताजी घोरपड़े मैसूर प्रदेश में प्रवेश कर और वहाँ कई महीने रह कर अंशदान उगाहा किन्तु स्थायी रूप से कोई प्रदेश नहीं जीता। गोलकुण्डा के पतन और मुगलों की वेगयुक्त प्रगति की सूचना पाकर वे वर्ष के अन्त में जिंजी लौटे।

१६८८—मुगलों की पहुँच से और आसपास के अधिकारियों के समर्पण से डर कर अन्त में हर्जी राजा केशव पन्त से संयुक्त हुआ। वे अनेक स्थानों पर कब्जा करने में सफल हुए, किन्तु पड़ोस में मुगल सैनिकों के एक बड़े दल के आ जाने से और मराठों में सौहार्दपूर्ण एकता न होने से वे इन नए कब्जों को छोड़ने को, तथा पलिअर के दोनों ओर के अपने किलों में शरण लेने को विवश हुए।

कार्णाटक में ओसकोट्टा पर भी मराठों का सबसे पुराना कब्जा था। मैसूर के

---

[1] सम्भवतः चारुमण्डल समुद्रतट पर केशव पन्त पिंगले का उच्चारण केशव पन्तोलो किया जाता है। यह नाम ओर्म की पुस्तक में आया है।

राजा ने व्यङ्कोजी से इस वर्ष इसे छीन लिया। शम्भाजी के सैनिकों की सहायता से यह सुगमता से रोका जा सकता था किन्तु मराठे अपने वंशागत झगड़ों को अपने सामान्य हितों के निमित्त भी विरले ही तिलाञ्जलि देने को तैयार होते हैं।

कार्णाटक में उनकी शक्ति वेग से पतनोन्मुख थी और यदि महाराष्ट्र में उनकी शक्ति किसी सङ्गठित या नियमित वस्तु से एकदम भिन्न कारणों पर आश्रित न हुई होती, तो औरङ्गजेब की उन प्रदेशों को जीतने की योजनाएँ काल्पनिक न प्रमाणित होतीं और मराठा नाम अवश्य ही वेग से अपने भूतपूर्व अन्धकारता में विलीन हो गया होता।

शम्भाजी समस्त सामान्य कामकाज के प्रति पूर्णतया असावधान हो गए थे। वे अपना समय पन्हाला और विशालगढ़ में या सङ्गमेश्वर[1] के अपने प्रियगृह और उद्यान में व्यतीत करते थे। मानसिक दुर्बलता की वर्तमान अवस्था में एक मात्र योजना जिस पर उनका ध्यान विशेष रूप से जमा हुआ था उनकी प्रारम्भिक सफलता से सम्बन्धित थी। अपने स्वस्थ अन्तरालों में वे गोआ पर कब्जा करने का आयोजन करते थे। किन्तु असफलता उनके सभी कपटयोगों के साथ थी। सम्पूर्ण शक्ति कलुश के हाथों में थी किन्तु इस मन्त्री का समय महत्त्वपूर्ण राजकाम देखने की अपेक्षा अपने स्वामी के मन को रखने में अधिक व्यतीत होता था। राजकुमार मुहम्मद अकबर जिसकी मन्त्रणा और बुद्धि शम्भाजी के लिए उपयोगी हुई थी अपनी स्थिति से ग्लानि अनुभव कर और बीजापुर के पतन के बाद कहीं भी आशा न देख कर और भारत में अधिक दिन रहने में भय अनुभव कर, शम्भाजी की अनुज्ञा प्राप्त की राजापुर से एक अँग्रेज के कमान में एक जहाज किराए पर ले कर फारस के दरबार में शरण ली। वह वहाँ बीस वर्ष तक रहा। उसकी मृत्यु १७०६ में स्पहन में हुई।

शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा सेना के अनुशासन में जिस ढिलाई का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, इधर कुछ वर्षों में और अधिक बढ़ी और यद्यपि एक सङ्गठित राज्य के प्रमुख होने के नाते शम्भाजी के साधनों के लिए यह अत्यन्त अहितकर था, लुटेरी शक्ति का विस्तार करने में इसका आश्चर्यजनक प्रभाव हुआ, क्योंकि हर एक विधि-विरोधी व्यक्ति और प्रत्येक विघटित सैन्य का सेनानी, मुसलमान हो या मराठा, जो एक घोड़ा और भाला रख सकता था मराठा दल में सम्मिलित हुआ और ऐसे साहसिक व्यक्ति बहुधा एक ही दिन की लूट से धनी हो जाते थे।

---

[1] सङ्गमेश्वर रत्नागिरि जनपद में शास्त्री नदी पर समुद्रतट से लगभग बीस मील अन्दर है।

प्रत्येक अन्य कारण के अतिरिक्त लुटेरे स्वभाव वाले और धन के लालची जाति के लोगों में इस तरह जो भावना उत्तेजित होती थी उसका सरलता से अनुमान किया जा सकता है। भूतपूर्व युद्धों में पले हुए बहुसंख्यक अश्वारोही एक नियमित राज्य के असह्यनीय भार थे ही, कोई भी साधन उनका निर्वाह नहीं कर सकता था। यदि मराठा जाति में कोई भावना उत्तेजित न की गई होती, तो औरङ्गजेब शाही सेना के चुने हुए सैनिकों की सहायता से उन अव्यवस्थाओं को सम्भवतः दमन करने में सफल होता जो भारतीय प्रदेशों के जीतने के बाद साधारणतया उत्पन्न होती हैं। शिवाजी की विजयों में गौरव, किलों की शक्ति में विश्वास, अनेक मराठा नेताओं की कुशलता और शौर्य, अनेक ब्राह्मणों की योग्यता और प्रभाव, और अन्त में घृणित अनिवार्य कर की सूचनाओं से मार्मिक बातों पर तीव्र सावधान होने को उत्तेजित हिन्दू जनता के मस्तिष्क ने उन बातों के अतिरिक्त जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, एक ऐसा तहलका मचाया जिसके शान्त करने के लिए न केवल विशाल साधनों की बल्कि उपायों के पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता थी।

औरङ्गजेब के पास विशाल सैनिक शक्ति और अपार धन था। उसको पर्याप्त स्थानिक ज्ञान था और उसको आरम्भ से वंशागत अधिकारों की पुष्टि करने या न करने का वही अधिकार था जो इसके भूतपूर्व विजेताओं को था। उसने अन्य भूतपूर्व विजेता की अपेक्षा अधिक उपाधियाँ, मंसबें, और जागीरें प्रदान कीं तथा देने की प्रतिज्ञाएँ कीं; किन्तु प्रकल्पना, ईर्ष्या और अंधानुयायिता के कारण वह शीघ्र ही अनेक सुलाभों से वंचित हुआ। उसको लुटेरी शक्ति की प्रकृति या शक्ति की पूरी जानकारी नहीं थी। सुस्थापित शासनों की सहायता से इसको कुचलने के स्थान पर उसने उन विधिसम्मत सत्ताओं को, और उनके बदले अन्य सत्ताएँ खड़ी न कर, उखाड़ दिया; उसने अपने को चारों ओर के शत्रुओं से फँसा रखा। उसने उन राज्यों के सैन्यदलों को भंग किया और इस तरह से सेनाओं को अपने ही विरुद्ध मैदान में उतारा, क्योंकि वह अपने ही सैनिकों के अतिरिक्त उन सैनिकों को रखने में असमर्थ था। वह समझता था कि वह नवविजित प्रदेश के आवश्यक व्यवस्थापक विवरणों से भलीभाँति परिचित है, और न केवल भलीभाँति परिचित है बल्कि उनकी देखरेख करने में भी समर्थ है। उसने अपने अभिकर्त्ताओं का नाममात्र विश्वास किया और उसने सभी पदों पर मुसलमानों को नौकर रखा, यद्यपि अनेक दृष्टान्तों में नीति और मानवता दोनों ही दृष्टि से हिन्दुओं के चुनाव की अनिवार्य आवश्यकता थी। इसके फलस्वरूप जो अव्यवस्थाएँ और सम्भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं, उनका शमन सम्राट् की कल्पनागत बुद्धिमत्ता और उसके राजसभा और देशवासियों की श्लाघाओं और चाटुकारिता से नहीं हो सकता था। मराठों, विशेष रूप से ब्राह्मणों की जाति ऐसी

नहीं हैं जो मुसलमानों की तरह सरलता से चकाचौंध में आ जाय। और बहुत ही थोड़े समय में उनको मुगलों की निर्बलता का पता लगने लगा।

बीजापुर के घेरे के समय जब तक कि राजधानी का पतन न हुआ सशक्त मानकरी, डफले, घाटगे, माने, निम्बालकर आदि शाही शिविर के आसपास चक्कर लगाते रहे। राजधानी के पतन के बाद वे अपनी जागीरों को लौट गए। और कभी वे स्वयं उपस्थित होते थे या कभी अपने वकीलों द्वारा कर्तव्य का विनम्र दिखावा करते थे। किन्तु इस समय से वे या तो अपने ही देशवासियों के लुटेरे दलों में सम्मिलित होते या मुगलों की अधीनता स्वीकार करते थे, जैसा परिस्थितियाँ उनको प्रलोभित या विवश करती थीं। प्रायः सभी लुटेरे शम्भाजी के दलों, या किसी मानकरी[1] के साथ रहते थे, क्योंकि फौजदार के सैनिक सामान्य लुटेरों के लिए सदा काफी शक्तिशाली थे। कुछ पिण्डारी[2] क्योंकि जो लोग मराठा दलों में नहीं होते थे, वे पिण्डारी कहे जाते थे, बीदर के आस-पास आए किन्तु उनका शीघ्र ही दमन किया गया, या मराठा झण्डे के नीचे एकत्रित होने को खदेड़ दिए गए। इस प्रकार के किसी कच्चे सैनिकों को वेतन नहीं मिलता था। किन्तु वे बहुधा किसी मराठा सरदार की रक्षा में ले लिए जाते थे और उनको इस शर्त पर उसके शिविर के समीप ठहरने की अनुज्ञा

---

[1] मानकरी का शब्दिक अर्थ है महान् व्यक्ति। आरम्भ में यह प्रतिष्ठित नाम उन मराठों को दिया जाता था जो दक्खिन में पुराने मुसलमान राजाओं के अधीन मंसबदार थे। बाद को हर एक वतनदार मराठा ने जिसके पास एक अश्वारोही दल था इस नाम को धारण कर लिया। हर एक वतनदार मान-पान या अधिकारों और विशेषाधिकारों का बहुत अधिक ध्यान रखता है, मानो ये उसके जीवन या कम से कम उसकी स्वतन्त्रता से सम्बन्धित हैं।

[2] महाराष्ट्र और कार्णाटक की सीमाओं पर बहुत से पिण्डारी रहते, शान्तिकाल में खेती करते और देश में अव्यवस्था होने पर लूट-मार करते हैं कुछ सौ वर्ष से वे वहाँ रहते हैं। उनमें से बहुत से पिण्डारी हिन्दुस्तानी बोलते और अपने को राजपूत कहते हैं। प्रतीत होता है कि पिण्डारी एक मराठी शब्द है जिसका भिन्न २ अर्थ लगाया जाता है, पिण्डा या 'किण्वित-पान पीनेवाला', या पेंढा 'डंठल का एक बोझ' चोरी करनेवाला, या बुर्हानपुर के समीप नर्मदा तट पर स्थित 'पण्ढार में रहने वाला'। इस समय पिण्डारी नासिक, खानदेश और दक्षिणी मराठा जनपदों में पाए जाते हैं। ये मराठा सेनाओं के पीछे २ चलने वाले लुटेरों के वंशज हैं और आरम्भ में मराठा, पठान, जाट आदि जातियों से भरती किए गए थे। पिण्डारियों में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के मानने वाले हैं।

मिलती थी कि वे बहुधा नजर या दूसरे शब्दों में अपनी लूट का एक अंश अर्पण करेंगे।

एक ओर मानकरियों के दूत औरङ्गजेब के प्रति चिरंतन आज्ञापालन और राजनिष्ठा दिखाते हुए शाही शिविर में थे और दूसरी ओर उनके दल बहुधा मुगल जनपदों को लूटते थे। जब कभी इस लूट का पता चल जाता था तो उनका ब्राह्मण वकील जो दरबार के किसी न किसी बड़े आदमी का उत्कोचा द्वारा प्रश्रय प्राप्त किए होता था अपने स्वामी के अनुयायियों के अनियमित आचरण की सफाई देने या अपराध का मार्जन करने को प्रस्तुत रहता था। मुगल फौजदारों को मराठा सरदारों को मना लेने के आदेश थे, यदि वे निष्ठापूर्वक सेवा करने को सहमत हों। सरदार फौजदार से समझौते की वार्ता करते रहते थे; उनके वकील सुरक्षित थे; और उनके अनुयायी, मराठों के सामान्य नाम पर, देश के किसी दूसरे भाग में लूटमार करते रहते थे।

वे मुगल अधिकारी जिनकी जागीरें दक्खिन में थीं नाममात्र राजस्व उगाह पाते थे। निर्धनता के कारण उनकी भ्रष्टता बढ़ी और वे अपराधी जो आरम्भ में फौजदारों की उपेक्षा प्राप्त कर उनके जनपदों को लूटते थे, अपनी लूट का एक भाग देकर राजसभा के जागीरदारों को भ्रष्ट करने लगे।

शासन करने में वंशागत अधिकारों और पारिवारिक कलहों का लाभ उठाया जाता था किन्तु इस काल के सामान्य गड़बड़ में ये अधिकार और कलह बढ़ती हुई अव्यवस्था के महान् कारण हुए। कुछ विवादास्पद वंशागत दावे इतने पेचीदे ढंग के होते थे, और ब्राह्मण प्रबन्धकों की विदग्धता हर एक वाद को ऐसा सत्याभास रूप देती थी कि शासन के अधिकारियों को अनेक घोर अन्यायपूर्ण कृत्यों को क्षमा करने या कम से कम उनको हलका करने में कठिनाई नहीं होती थी और इस तरह वे उन अपराधों में परिवाद रूप से हाथ बटाते थे। अतः न्यायपूर्ण स्वामियों के पास परिवाद करने के लिए बहुधा पर्याप्त कारण होते थे। सैनिकों के साथ वे चले जाते थे, लुटेरों के साथ सम्मिलित होते थे, और जब वे आने के लिए प्रलोभित या विवश किए जाते थे, तो जो अन्याय उनके प्रति हुआ था उसके बल पर वे अपने आचरण को धृष्ठतापूर्वक न्यायपूर्ण ठहराते थे।

किसी वंशागत पद के जब्त किए जाने या किसी प्रकार रिक्त होने पर मुगल शासन एक उम्मीदवार को चुनकर उसको यह पद प्रदान करता था; किन्तु राजकोष का सिब्बन्दी-नजराना साढ़े छः वर्ष की खरीद से अधिक था; अथवा एक वर्ष की उपलब्धियों का ठीक ६५१% था, जिसका चौथाई विलेखों के प्रदान करते समय देना होता था और शेष किश्तों द्वारा देय था। किन्तु इस कर के अतिरिक्त, लिपिक

अनगिनती शुल्क और उपलब्धियाँ आहरण करते थे। इन सब के कारणज ब्तियाँ और नई नियुक्तियों को प्रोत्साहन मिलता था। आयु बढ़ते ही सम्राट् काम-काज के कोरे विवरण की उपेक्षा कर अधिक महत्त्वपूर्ण चिन्ताओं में शीघ्र ही डूब जाता था। इसी प्रकार उसके सचिव और उनके अनुजीवी प्रमादी और भ्रष्ट थे और विलेखों और कागजों के तैयार होने के पश्चात् भी उनमें लिखित आदेशों का वर्षों बाद पालन करते थे। इन टिप्पणियों में हमने घटनाओं का उल्लेख किया है तथा कुछ अंश में आने वाली घटनाओं के परिणामों का अनुमान लगाया है। किन्तु बीजापुर और गोलकुण्डा के पतन के बाद के बारह वर्षों से अधिक समय का यह एक समुचित चित्र है। इस काल के अन्त में उपर्युक्त कारणों और परिणाम की लगातार बढ़ती से मुगल की शक्ति पूर्णतया क्षीण हुई और निर्माण के अयोग्य, आसन्न विनाशोन्मुख प्राचीन वैभवपूर्ण भवन की तरह विशीर्ण हुई।

सम्राट् ने एक वर्ष से अधिक समय बीजापुर में व्यतीत किया। इस अवधि में उसके शस्त्रों को प्रत्येक दिशा में सफलता मिली और दुर्जय किलों को छोड़ कर शम्भाजी के सम्पूर्ण उत्तरी प्रदेश ने अधीनता स्वीकार की। तथवाड़[1] पर तथा तथवाड़ और पन्हाला के बीच के किलों पर जिनको शिवाजी ने निर्माण कराया था मुगल सैनिकों का अधिकार हुआ। अब औरङ्गजेब ने समस्त किलों के दमन करने की एक स्थायी योजना बनाई। उसके विचार से चिरमनोवाँछित विजय को पूर्ण करने के लिए इतना ही करना शेष रह गया था। उसी समय उसके शिविर में एक रोग फैला जिससे कुछ अंश तक उसकी योजना में रुकावट पड़ी तथा उसके बहुत से सैनिकों की मृत्यु हुई। किन्तु नीरा तट पर स्थित औक्लूज पहुँचने पर यह बीमारी रुक गई।[2]

१६८६ ई०

इस काल के लगभग सम्राट् का ध्यान अँग्रेजों की ओर आकर्षित हुआ। व्यक्तियों द्वारा समुद्री डाके डालने के फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कम्पनी की कई

---

[1] तथवाड़ फल्टन के दस मील दक्षिण-पूरब में है।

[2] औरङ्गजेब के शिविर में फैलने के कुछ वर्ष पूर्व से यह महामारी दक्खिन और गुजरात में फैली हुई थी। इसमें गिलटी निकल आती थी। खाफी खाँ के अनुसार इस बीमारी में भुजाओं के नीचे, कानों के पीछे, और ऊरुसन्धि में सूजन होती थी और आँखों की पुतलियों के चारों ओर ललाई छिटक जाती थी जैसा कि ज्वर या महामारी में होता है। कुछ ही घन्टों में मृत्यु हो जाती थी और जो लोग अच्छे हो जाते थे वे पूर्णतया या आंशिक रूप में अन्धे या बहरे हो जाते थे।

फैक्टरियों पर कब्जा किया गया।[1] जब कभी कोई भी मुगल जहाज इस तरह लूटे जाते थे, सामान्यरूप से औरङ्गजेब यही उपाय करता था और उसने एक से अधिक सूरत के अध्यक्षों को कारावास में डाला। इस अवसर पर सीदी को उनको बम्बई से खदेड़ देने की आज्ञा हुई। याकूत खाँ ने द्वीप पर आक्रमण कर मजगाँव, सियन और महीम पर अधिकार किया। यह आक्रमण होता रहा जब तक कि अँग्रेजों ने दरबारियों को घूस देने के सामान्य उपाय से तथा अत्यन्त विनम्र समर्पण द्वारा औरङ्गजेब को शान्त नहीं किया। सीदी ने लगभग यहाँ एक वर्ष ठहरने के बाद द्वीप छोड़ा।[2]

सम्राट् को औक्लूज पहुँचने के बाद लुटेरे मराठा दलों के सम्बन्ध में सूचनाएँ मिलती रहीं। सम्राट् को नासिक के समीप एक बहुत बड़े दल के पहुँचने की सूचना मिली। इसके पड़ोस में इतने मुगल सैनिक नहीं थे कि वे उनका सामना कर सकें। एक टुकड़ी के साथ राजकुमार अजीमशाह भेजा गया। औरङ्गजेब के मुख्यमंत्री यतीद खाँ के पुत्र आसद खाँ को एक बड़ी सेना के साथ कोंकण पर आक्रमण करने की आज्ञा दी गई। अभागे अबुहुसेन का एक प्रख्यात अधिकारी तकर्रिब खाँ जो एक सक्रिय पक्षपाती था एक टुकड़ी के साथ कोल्हापुर जनपद में भेजा गया और वहाँ का फौजदार नियुक्त किया गया। उस ओर का खुला मैदान मुगल सैनिकों के कब्जे में था। किन्तु पन्हाला पर जहाँ एक दृढ़ रक्षकदल था मराठों का अब भी अधिकार था। यहाँ पहुँचने पर तकर्रिब खाँ ने पास पड़ोस के सम्बन्ध की सूचनाएँ एकत्रित कीं और यह सूचना पाकर कि शम्भाजी असावधान होकर संगमेश्वर में ठहरे हुए हैं उसने उनको पकड़ने की एक साहसिक योजना की कल्पना की।

---

[1] इसी काल के लगभग अँग्रेजों ने अपने फैक्टरियों की किलेबन्दी करने के अधिकार का दावा किया और १६८० के लगभग कई अन्य प्रतिद्वन्द्वी कम्पनियाँ भी पूर्वी देशों से व्यापार करने लगीं और जान अवेरी प्रभृति अँग्रेज समुद्री डाकू डाके डालने में रत थे। मुगल इन लोगों में भेद नहीं कर पाते थे या नहीं करना चाहते थे।

[2] कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के नाम दिनांक २५ जनवरी १६६८ को जो पत्र बम्बई से भेजा गया था उसके अनुसार सीदी के २०,००० सैनिक वहाँ उतरे थे और अँग्रेजों द्वारा हर्जाने के रूप में डेढ़ लाख रुपये समाट् को समर्पण करने और अपराधी चाइल्ड को निकाल देने का वादा करने पर सम्राट् ने कम्पनी को एक नया फर्मान प्रदान किया था। लगभग डेढ़ साल वहाँ ठहरने के बाद सीदी ने ८ जून १८६० को बम्बई से अन्तिम रूप में प्रस्थान किया।

उसने वहाँ की ठीक २ सूचनाएँ प्राप्त कीं और अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसने अपने पुत्र इखलास खाँ के साथ कोल्हापुर को प्रस्थान किया और साथ में घाटों तथा चक्करदार मार्गों के अच्छे जानकार पथप्रदर्शकों तथा कुछ चुने हुए क्रियाशील पदातियों और एक छोटा आश्वारोही दल लिया। वह संगमेश्वर के समीप पहुँच गया था, जब यह भेद खुला। और अन्त में जब शम्भाजी के गुप्तचर उनके पास यह सूचना लेकर पहुँचे वे नशे में थे और उन्होंने उनकी नाक काट लेने की धमकी दी, यदि वे मुसलमानों के पहुँच की इस प्रकार की अपमानजनक कहानियाँ कहने की धृष्टता करेंगे।

इखलास खाँ ने उनको इतना भी समय न दिया कि वे सावधान हो सकें। फाटक बन्द किए जाने के पूर्व उसने एक छोटे दल के साथ झपट कर फाटक के अन्दर प्रवेश किया और सब सामना करने वालों को काट डाला और अपने पिता का प्रवेश सुगम किया।

शम्भाजी के अधिकांश अनुयायियों ने तेजी से भागकर अपने प्राणों की रक्षा की और कुछ एक जो वहाँ बचे कलुश के नेतृत्व में अपने स्वामी की रक्षा करने में लगे। किन्तु एक बाण से कलुश के घायल हो जाने पर वे तेजी से वश में किए गए, और शम्भाजी यद्यपि उन्होंने अपने रूप को बदलने का प्रयत्न किया, कुछ मूल्यवान् रत्नों के कारण जिनको वे धारण किए हुए थे और जिनको वे समय की कमी या घबड़ाहट के कारण उतार नहीं सके थे पहिचान लिये गए। उनके साथ कलुश के अतिरिक्त चौबीस व्यक्ति पकड़े गए।

तकर्रिब खाँ अपने बन्दियों को सुरक्षापूर्वक कोल्हापुर लाया और अपनी सफलता की सूचना भेजने पर उसको शम्भाजी को एक दृढ़ दल की रक्षा में शाही शिविर में लाने का आदेश मिला। इस समय तक शाही-शिविर भीमा नदी तक पहुँच कर इन्दुरानी नदी के संगम पर तुलापुर[1] में ठहरा हुआ था जो पूना के सोलह मील उत्तर-पूरब है।

शम्भाजी को छुड़ा लेने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। अपने दुराचार तथा कलुश की कार्रवाईयों के कारण वे दोनों अपनी प्रजा की जनसमुदाय की दृष्टि में

[1] इसका मूल नाम नगरगाँव था। इसका नाम तुलापुर इसलिए पड़ा कि यहाँ शाहजी ने मुरार पन्त के हाथी को एक नाव पर खड़ा कर पानी के दबाव का चिह्न लगाकर, फिर हाथी के स्थान पर पत्थर के टुकड़ों को रखा और बाद को उनको तौला। शम्भाजी के सम्बन्ध के हर एक मराठी विवरण में यह कथा दी हुई है, और इसको कर्नल विल्क्स ने भी लिखा है।

ठीक ही घृणा के पात्र थे और यदि उनकी सेना उनके पक्ष में कोई साहसिक कदम उठाने को तैयार हुई होती तो वह अपनी असंगठित और अव्यवस्थित दशा के कारण इस प्रयत्न में असफल होती।

शाही शिविर के पड़ोस में इन बन्दियों के पहुँचने पर वे बाँधे जा कर ऊँटों पर ऊँचाई पर बैठाए गए। शम्भाजी के सिर से उनकी पगड़ी हटा दी गई थी, नगाड़े और शोर करने वाले हर प्रकार के बाजे उनके सामने बजा रहे थे। शिविर में उनके प्रवेश का दृश्य देखने के लिए अगणित सहस्त्रों व्यक्तियों के समूह सब ओर एकत्रित हुए।

औरङ्गजेब के समक्ष इन बन्दियों का प्रदर्शन किए जाने के पश्चात् यह आज्ञा हुई कि अन्तिम निर्णय होने तक, ये बन्धन में रखे जाँय। कुछ मुगल सामन्तों ने यह सुझाव दिया कि शम्भाजी को जीवनदान देकर उनके सैनिकों को किलों को समर्पण करने का प्रलोभन दिया जाय। संभवतः औरङ्गजेब भी उनको इस शर्त पर जीवनदान देना चाहता था, किन्तु शम्भाजी अपनी परिस्थिति से उत्तेजित तथा लज्जा और दुःख से पीड़ित होकर मृत्यु के अतिरिक्त किसी चीज की आकाँक्षा और आशा नहीं करते थे और हर प्रकार की गालियाँ बकते थे जिससे कि कोई उद्दण्ड सिपाही उनकी हत्या कर दे। जब वे इस मनस्थिति में थे, औरङ्गजेब ने उनके पास यह संदेश भेजा कि मुसलमान हो जाने पर उनके प्राण नहीं लिए जायेंगे। शम्भाजी ने उत्तर भेजा कि यदि सम्राट् उन्हें अपनी कन्या दे तो वे मुसलमान हो जाएँगे और उन्होंने पैगमबर को गालियाँ दीं।

मुसलमान के लिए इससे अधिक अपमान जनक बात नहीं होती। क्रोध से आग बबूला होकर सम्राट् ने उनको एक भयानक उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करने का निश्चय किया। उसने उनकी आखों में एक लाल गर्म लोहा फेरने की, उनकी जिह्वा काट लेने की और उनके शिरश्छेदन की आज्ञा दी।

इस आज्ञा के पूर्णतया अनुरूप १६८९ के अगस्त के लगभग आरम्भ में तुलापुर के शिविर बाजार में सार्वजनिक रूप से उनको तथा उनके प्रिय कलुश को फाँसी दी गई। मुसलमानों ने अपने स्वभाव के अनुरुप और कुछ मराठों के प्रति घृणास्वरूप एक कहानी गढ़ कर अन्यायपूर्वक उनके ब्राह्मण मन्त्री के प्रति यह अभियोग लगाया है कि उसने अपने स्वामी के प्रति विश्वासघात करने की एक योजना बनाई थी।

शम्भाजी का चरित्र पर्याप्त रूप से चित्रित किया जा चुका है और इसके संक्षिप्तीकरण की आवश्यकता नहीं है। उनमें कुछ वंशागत सैनिक गुण थे और साधारण योग्यता की उनमें कमी नहीं थी किन्तु दुर्व्यसनता, दुर्गुणता, उद्दंडता और

निर्दयता ने जो कुछ भी उनके अच्छे गुण थे उनको पूर्णतया अभिभूत कर रखा था और पूर्ण सम्भावना यही है कि उनके अधिक जीवन से उनके अपराधों की सूची बहुत अधिक बढ़ गई होती। किन्तु मराठा जाति को जो पिछले तीन वर्षों से उनसे बहुत विमुख रही थी, शिवाजी के पुत्र की हत्या से रोष हुआ और इस निर्दय फाँसी से जो उनके नेताओं को आतंकित करने के लिए दी गई थी उनके आशंकाओं को चेतावनी देने के विपरीत उनके प्रतिशोध को भड़काया।[1]

[1] रानाडे का यह लिखना कि जिस आप्लावन को रोकने के लिए शाहजी और शिवाजी साठ वर्ष से अधिक समय तक संघर्ष करते रहे वह सारे देश पर निरवरोध फैल गया और सम्भवतः सम्भाव्य प्रतिरोध के कोई चिह्न न बचे थे ठीक नहीं प्रतीत होता। जिस निर्भीकता से शम्भाजी ने मृत्यु का आलिंगन किया उससे मराठा राष्ट्र में ऐक्य तथा वीरभावना उत्तेजित हुई।

अध्याय ११

(१६८९ ई० से १७०७ ई० तक)

शम्भाजी ने शिवाजी की विधवा सोयराबाई की हत्या के समय से अपने सौतेले भाई राजाराम को रायगढ़ किले में बन्दी कर रखा था। किन्तु सुरक्षा के हित जितनी कड़ाई की जरूरत थी, उससे अधिक उन पर कड़ाई नहीं की जाती थी। राजाराम किले का निर्विघ्न उपयोग करते थे और उनकी पहली पत्नी के मरने पर शम्भाजी ने उनका दो और स्त्रियों से, ताराबाई और राजिस बाई से विवाह करा दिया। ताराबाई, मोहिते परिवार की थी और राजिसबाई, कागल के घाटगे की एक पुत्री थी। उसी किले में शम्भाजी की वैध पत्नी यशोबाई अपने पुत्र शिवाजी के साथ रहती थी। राजाराम का इनसे मैत्री भाव था।

१६८६ ई०—शम्भाजी के मरने पर प्रमुख मराठे सरदार रायगढ़ आए और यशोबाई की राय से यह निश्चय हुआ कि शिवाजी की जो बाद को शाहू के नाम से विख्यात हुए, और जो उस समय अपने छठवें वर्ष की आयु में प्रवेश कर रहे थे, अल्पवयस्कता में राजाराम राजप घोषित होंगे। इस मन्त्रणा में उपरोक्त व्यक्तियों के अतिरिक्त जनार्दन पन्त हनमन्ते, प्रह्लाद नीराजी, भूतपूर्व न्यायाधीशप्रधान के पुत्र रामचन्द्र पन्त बौरीकर, खण्डूबुलाल चिटनीस, माहादजी नायक पान्सम्बल, सन्ताजी घोरपडे, धनाजी जाधव और खण्डी राव दाभाडे भी उपस्थित थे।

प्रह्लाद नीराजी ने, उसी प्राबल्य से जो उत्कृष्ट मस्तिष्क वास्तविक सङ्कटकाल में प्राप्त करते हैं, इस महत्त्वपूर्ण सभा के मन्त्रणाओं में नेतृत्व किया। उन्होंने बुद्धिमत्ता, ऐक्यमतता और दृढ़ता से अपने उपायों की योजना बनाई। उन्होंने औरङ्गजेब की शक्ति और तैयारियों का पूर्ण अवलोकन किया। उन्होंने अवरोध के अपने साधनों को आँका; और बिना घबड़ाए हुए, खाली राजकोष, समूचे अनुशासन में ढिलाई, किलों की अरक्षित अवस्था और उनके छिन जाने की भी सम्भावना का आलोचन किया। अतः उनके सर्वप्रथम प्रयास किलों में सामग्री एकत्रित करने और रक्षक-सैनिकों की यथासम्भव पूर्ण संख्या रखने की ओर हुए। इस अवसर पर शिवाजी का नियम, जिससे किले के सैनिकों को किलों के अधीन भूमि से चिरस्थायी और वंशागत निर्वाह मिलता था असीम महत्त्व का था। इन व्यवस्थाओं को सावधानी से सुरक्षित

रखने के लिए तुरन्त आज्ञाएँ प्रसारित की गई, और किलें के कमाण्डरों को अधिक से अधिक अनाज इकट्ठा करने के अतिरिक्त किलों के अधीन गोचर भूमि की घास को काटने और सञ्चय करने के नियमों का विशेषरूप से पालन करने का आदेश दिया गया, जिससे कि जब खाद्यसामग्री अधिक सुलभ स्थानों से प्राप्य न हो सके, घोड़ों के निर्वाह के लिए वह सुरक्षित रहे। शिवाजी के इस पूर्वोपाय की उपयोगिता शम्भाजी के राजत्वकाल में प्रमाणित हो चुकी थी।

यह निश्चय किया गया कि राजाराम रायगढ़ से विशालगढ़ तक के दुर्गपंक्ति पर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते रहें। मुगलों को भ्रम में डालने के निमित्त किसी एक को अपना स्थायी निवास न बनाएँ। यह निश्चय किया गया कि यदि उनका महाराष्ट्र में रहना सुरक्षित न हो, तो वह देश छोड़ कर चारुमण्डलतट पर स्थित जिंजी चले जाँय।

यशोबाई और उसका पुत्र रायगढ़ में रहें। राजाराम का परिवार विशालगढ़ गया। मराठे सरदारों को परिस्थिति के अनुसार काम करने और इस समय अपने अधिकांश अश्वारोहियों को स्वयं राजाराम से अधिक दूर न रखने का आदेश मिला।

१६६० ई०—यतीकद खाँ के नेतृत्व में घेरा डालने वाली मुग़ल सेना जो कोंकण के लिए निर्दिष्ट थी निर्मल ऋतु के पहले उस देश में प्रवेश न कर सकी। सर्वप्रथम रायगढ़ पर आक्रमण किया गया किन्तु सीदी के सहायता देने पर भी, मुगल कई महीने में रंचमात्र बढ़े। जब सूर्याजी पीसल नामक एक असंतुष्ट मराठा जो शिवाजी की सेना में काम कर चुका था यतीकद खाँ से मिला और इस शर्त पर चुने हुए मावलों के एक दल को लाने का वचन दिया कि उनका कमान उसके हाथ में रहे और वइ की वंशागत देशमुवी स्वत्वों को, जिस पर वह अपना स्वत्व जनाता था, प्राप्त करने में खाँ उसकी सहायता करे। इन शर्तों के स्वीकार हो जाने पर पीसल ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और किले का शीघ्र समर्पण विशेष रुप से उसके प्रयासों के कारण समझा गया। पीसल यतीकद खाँ के साथ गया और सीदी को उसके कई प्राचीन अधिकृत स्थान प्राप्त हुए।

शम्भाजी की विधवा और उनका पुत्र शिवाजी, यतीकद खाँ के हाथों पड़े और वे शिविर में लाए गए। इससे जहान खाँ को विशेष सत्कार मिला और वह जूलफिकर खाँ की उपाधि से प्रतिष्ठित किया गया। यशोबाई और उसके पुत्र ने औरङ्गजेब की पुत्री बेगमसाहिब के रूप में एक मित्र पाया। स्वयं सम्राट् उस बालक के आनुकूल्य हुआ और उनका नाम साहू रखा। शिवाजी ने इस अभिदान को, पुकारने में शाब, बाद को हमेशा धारण करना पसन्द किया।

रायगढ़ पर अधिकार हो जाने के बाद, विशाल सेना में से टुकड़ियाँ मरिच और पन्हाला भेजी गईं और उन पर कब्जा किया गया। अब इसके पहले कि उनके वहाँ जाने की योजना का सन्देह हो, राजाराम को शीघ्रातिशीघ्र जिंजी चले जाने की राय दी गई। प्रारम्भिक प्रबन्ध के रूप में उन्होंने प्रह्लाद नीराजी की सलाह से, नीलु पन्त मोरेश्वर को उसके पिता के पेशवा पद पर नियुक्त करने की सावधानी बरती। इस उपाय से, जिंजी उनके पक्ष में सुरक्षित हुई। प्राचीन प्रदेशों के शासन की पूरी और सम्पूर्ण शक्तियों के साथ विशालगढ़, रङ्गना तथा समस्त किलों का कमॉन रामचन्द्र पन्त बौरीकर को, हुकूमत-पनह की उपाधि देकर सौंपा गया। उसके अधीन एक ब्राह्मण परशुराम त्रिम्बक रखा गया जो किन्नइ के वंशागत कुलकर्णी के तुच्छ पद पर था। उसने बुद्धिमत्ता और साहस का परिचय दिया और नाम कमाया। सीदोजी गूजर को जो सरखेल (मुख्य सेना कमांडेंट) की पदवी से सुशोभित था बेड़ा का मुख्य कमॉन, समुद्रीतटों की देखरेख का और तट के प्रतिरक्षा का काम सौंपा गया। उसका सहायक कमॉन कान्होजी अंग्रिया था जिसका पिता तुकाजी अंग्रिया[1] था जिसने शिवाजी की बेड़ा-सेवा में नाम पैदा किया था। प्रह्लाद नीराजी की दूरदर्शिता से समस्त प्रमुख मानकरियों से पत्रव्यवहार आरम्भ हुआ जिससे कि बाद को उन लोगों का सामान्य रूप से मुगलों के विपक्ष में झुकाव हुआ।

एक वृद्ध व्यक्ति माहादजी नायक पान्सम्बल जिसका देश के सिलाहदारों पर बड़ा प्रभाव था सेनापति नियुक्त किया गया और महाराष्ट्र में रहने दिया गया। उसके संस्तुति पर विभिन्न नेताओं ने अपने अश्वारोहियों को गाँवों में फैला दिया और उनको आदेश दिया कि वे ऐसे स्थान पर और ऐसे संकेत पर जो सेनापति द्वारा बाद को निर्दिष्ट किए जाँय, इकट्ठा हों तथा उनके समस्त मित्र, भाई और सम्बन्धी जहाँ कहीं भी भगवा झण्डे दिखाई पड़ें, एकत्रित हों।[2]

विभिन्न किलों में अपने को दिखाने के बाद राजाराम भागने की तैयारी करने के लिए सन्नद्ध होकर अपने विश्वस्त मित्रों से आकर रङ्गना में मिले। लिंगायत[3] बनियों का वेष बदल कर उन्होंने सोण्डा को प्रस्थान किया और वहाँ से देश पार

---

[1] वह रत्नागिरि जनपद के अंग खाडी ग्राम का रहने वाला था इसलिए उसका नाम अंग्रिया पड़ा। वह एक मराठा सरदार तुकोजी अंग्रिया का पुत्र था।

[2] भगवा झण्डा के सम्बन्ध में इस पुस्तक के पृष्ठ १६६ की पाद टिप्पणी देखिए।

[3] लिंगायत शैव संप्रदाय के अनुयायी जो दक्षिण में बहुत हैं शिवजी के अनन्य उपासक हैं। ये शिवजी को सोने या चाँदी के सम्पुट में रखकर बाहु या गले

करके विपरीत तट की ओर गए। इस अवसर पर राजाराम के दल में पच्चीस व्यक्ति थे जिनमें प्रह्लाद नीराजी, सन्ताजी घोरपडे, धनाजी जाधव और खण्डी राव धाभाडे थे। यद्यपि यह योजना सुघटित थी, फिर भी औरङ्गजेब ने राजा के भागने की सूचना प्राप्त की और उनको पकड़ने के लिए, बीजापुर-कार्णाटक के फौजदार कासिम खाँ के पास तुरन्त आज्ञा भेजी गई। कासिम खाँ ने इसी प्रकार की आज्ञाएँ अपने मित्रों को भेजी। बंगलोर के पड़ोस में राजाराम बड़े संशय में पड़ गए, क्योंकि एक नौकर से अपने पैरों को धुलाने के जरा से कारण से, (लोगों) का सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित हुआ। खण्डू बुल्लाल की चौकन्नी दृष्टि ने भाँपा की पूरे दल को पकड़ने की योजना है। इस योजना को निष्फल करने के लिए खण्डू बुलाल और दल के अधिकांश सदस्य अपने भोजन पकाने में लगे रहे, और राजाराम, सन्ताजी घोरपडे, और धनाजी जाधव एक रास्ते से निकल गए और प्रह्लाद नीराजी और खण्डे राव धाभाडे ने दूसरे रास्ते से यात्रा की।

खण्डू बल्लाल और उसके साथी जैसा कि पहले ही समझ लिया गया था पकड़े गए। उनसे पूँछताछ हुई, वे बन्दी रखे गए, अपराध स्वीकार करने के लिए पीटे गए किन्तु पूर्व सुघटित कहानी पर दृढ़ता से डटे रहने तथा महाराष्ट्र के किसी भी भगोड़े के सम्बन्ध की कोई भी जानकारी स्वीकार न करने से छोड़े गए और अन्त में राजाराम से जा मिले। वे तथा अन्य लोग कुशलतापूर्वक जिंजी पहुँच गए थे।

सर्वप्रथम सेनापति माहादजी नायक की मृत्यु का महाराष्ट्र से संदेश मिला। यद्यपि इससे उस समय उनके उपायों में बाधा पड़ी, किन्तु यह मराठा-पक्ष के लिए कल्याणकारी था, क्योंकि इससे प्रत्यक्षशक्ति घोरपडे के हाथ में आई जो कहीं अधिक योग्य और साहसी अधिकारी था।[1]

में धारण किए रहते है। ये जंगम भी कहलाते हैं। इनके आचार-विचार अन्य लोगों के आचार-विचार से पृथक हैं—हिन्दी शब्दसागर पृ० ३०४२।

[1] सन्ताजी घोरपडे का सैनिक जीवन अत्यन्त ज्वलन्त है। उसके नाम से सेनापति से लेकर सैनिक तक सारी मुगल सेना कांपती थी। उसके नाम का यह भयंकर भय उसका सर्वश्रेष्ठ स्मृतिचिह्न है। औरङ्गजेब का सब से बड़ा सेनापति फिरोज जंग का मुख पीला पड़ गया और वह अपने अधिकारियों को धोखा देकर बीजापुर भागा, जब उसने सुना कि सन्ताजी वहाँ से सोलह या अठारह मील की दूरी पर आ गया है। शिष्टता, उदारता और दया उसे छू नहीं गई थी। उसमें प्रतिशोध की मात्रा अत्यधिक थी और उसकी भावनाएँ उसके नियन्त्रण में नहीं थीं। राष्ट्र की आवश्य-

राजाराम अपने पिता की योजना के अनुसार सर्वप्रथम एक न्यायालय स्थापित करना चाहते थे। यद्यपि आरम्भ में यह नाम मात्र का था, किन्तु इससे उनके दल का बहुत महत्त्व बढ़ा।

इस समय निम्नलिखित प्रधान नियुक्त किए गए—१. नीलुपंत मोरेश्वर, पेशवा; २. जनार्दन पंत हनमन्ते, अमात्य; ३. शंकराजी मल्हार, सचिव; ४. रामचन्द्र त्रिम्बक पुण्डे, मंत्री; ५. सन्ताजी घोरपडे, सेनापति, ६. माहादजी गदाधर, सामन्त; नीराजी रावजी, न्यायाधीश; ८. श्री कराचार्य्य, पण्डित राव।

पेशवा के पद पर पहले से नियुक्ति हो जाने पर प्रह्लाद नीराजी के लिए जो उनके पक्ष की आत्मा थे, एक नया पद प्रतिनिधि निर्मित हुआ। यह पद अष्ट प्रधानों के ऊपर था। इसका अर्थ है सादृश्य, स्वयं राजा का प्रतिरूप, स्थानापन्न व्यक्ति। प्रह्लाद नीराजी उपाधियों और दिखावट के शौकीन थे। उनकी यह रूचि सम्भवतः उस समय उत्पन्न हुई जब वह गोलकुण्डा दरबार में शिवाजी के दूत थे, किन्तु यह प्रतिष्ठा जो उनको प्रदान की गई, पूर्णतया आयाचित थी। सन्ताजी घोरपडे इस समय काप्सी परिवार में सब से अधिक वृद्ध था। सेनापति के पद के अतिरिक्त उसके वंशागत उपाधियों में कुछ वृद्धि की गई और वह हिन्दूराव ममलाकट मदार की उपाधि से विभूषित हुआ। उसको जरीपताका (सोने के कपड़े का सुनहला झण्डा) नाम का एक नया झण्डा सौंपा गया। सबसे ऊँचे पद के शाही अधिकारियों के अनुकरण में उसे नौबत या नगाड़ा बजाने का तथा विभिन्न अन्य चिह्नों को धारण करने का अधिकार मिला। धनाजी जाधव को जयसिंह राव की उपाधि मिली। और माहादजी नायक की मृत्यु के पश्चात् सन्ताजी और धनाजी दोनों व्यक्ति सैनिकों की भरती करने तथा मुगलों को लूटने के लिए महाराष्ट्र को भेजे गए।

औपचारिक रूप से राजाराम सिंहासनारूढ़ किए गए[१] और नया दरबार

कता, देश के हित को नहीं, बल्कि अपनी इच्छा को वह सर्वोपरि मानता था। मुगल सेना पर अचानक धावा करने और उसको लूटने (गनीमी-कावा) में वह सिद्धहस्त था। उसकी किसी से नहीं पटती थी। एक देदीप्यमान उल्का की तरह वह आकाश में दिखाई पड़ा और राजनीति पर बिना कोई स्थायी प्रभाव छोड़े मरा। किन्तु उसके मृत्यु से मराठा सेना की आर्थिक दशा पर कुप्रभाव पड़ा। सरदेसाई न्यू हिस्ट्री आव द मराठाज, भाग १, पृ० ३३८-४०; सरकार: हाउस आव शिवाजी, पृ० २५०-२७०।

[१] कुछ मराठे उन्हें साहू का राजप मात्र मानते थे जो मुगल शिविर में बन्दी थे।

शासन के सम्पूर्ण रूपों का संचालन करने लगा। सोने की चूड़ियाँ, वस्त्र, दुशाले, और इस वृत्त की सूचना देने के लिए गुप्त रीति से पत्र भेजे गए, और सम्पूर्ण महाराष्ट्र के समस्त प्रमुख हिन्दुओं को साडम्बर प्रदान किए गए। सब से उल्लेखनीय बात यह है कि मराठा देश में स्थित इनामें, जागीरें आदि जो उस समय मुगलों के वास्तविक कब्जे में थीं, तथा वे स्थान जो कभी भी उनके पूर्वजों के अधिकार में न थे, प्रचुरता से मराठों को प्रदान किए गए। किन्तु उनमें से कुछ एक की ही राजाराम या शाहू ने पुष्टि की, जब वे प्रदेश राजाराम या शाहू के हाथ में आए। ये वितरण अयथार्थ थे, फिर भी वे उसके पक्ष को दृढ़ करने, उसमें रुचि बनाए रखने और बहुसंख्यक व्यक्तियों को जिंजी की ओर आकर्षित करने में सफल हुए।

१६६१ ई०—इन कार्यवाहियों की सूचना पाते ही औरङ्गजेब ने जूलफिकर खाँ को एक बड़ी सेना देकर कार्णाटक में भेजा। व्यर्थ ही उसने मराठा शक्ति के इस अन्तिम शासक का अन्त करने की अपेक्षा की। किन्तु इस सर्प की जिसके अनेक सिर काट लिए जाने पर फिर से निकल आते थे, कोई भी शक्ति क्षीण नहीं हुई थी। मराठा नाम के दल, चाहे वे बीजापुर और गोलकुण्डा से निकाले हुए अश्वारोही हों, इस ऋतु में एक ही समय में नासिक, भीर और बेदर में लूट कर रहे थे। और हजारों अश्वारोही, जिन्होंने शिवाजी के अभियानों में भाग लिया था, अपने सबसे पुराने और सबसे अधिक जनप्रिय नेता सन्ताजी घोरपडे और धनाजी जाधव के पास एकत्रित हो रहे थे। पुरानी व्यवस्था के अनुसार सेना को सङ्गठित करने के प्रयास में सन्ताजी ने धन की अत्यन्त कमी अनुभव की। अतः वह सेना को पूर्णतया सङ्गठित न कर सका। किन्तु रामचन्द्र पन्त ने उसको अपनी शक्ति भर हर प्रकार की सहायता दी।

पायानघाट अरक्षित स्थिति में था, अतः प्रह्लाद नीराजी के विचार से सन्ताजी और धनाजी महाराष्ट्र में रह कर जिंजी को अधिक सक्षम सहायता दे सकते हैं। उसने एक मुसलमान अधिकारी को जो पहले बीजापुर की सेवा में था, मुगलों का विरोध करने के लिए रखा। विरोध किया भी गया, किन्तु असफलतापूर्वक; और बाद को उपरोक्त अधिकारी मुगलों से जा मिला।

जूलफिकर खाँ की सेना में अश्व तथा पदाति दोनों में बहुत से मराठे थे। पदाति में मावलियों का वही दल था जिसने रायगढ़[1] पर अधिकार करने में सहायता की थी, और अश्वारोहियों में राजाराम के दो सम्बन्धी, गन्नाजी और रानोजी शिर्के

---

[1] मावली सेनापति पीसल गिंजी अभियान के समय राजाराम की ओर आ गया था किन्तु उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण न होने पर वह औरङ्गजेब की ओर चला गया और अपना काम बनाने के लिए मुसलमान हो गया।

थे जो अन्नाजी दत्तो की हत्या होने पर भाग कर मुगलों की ओर चले गए और वहाँ कमान प्राप्त किए और प्रतिष्ठित योग्य अधिकारी हुए। इस सेना में जूलफिकर खाँ का सहायक कुछ ख्यातिप्राप्त एक दक्खिनी अधिकारी दाउद खाँ पन्नी था जो शराब पीने का अत्यन्त व्यसनी था। जिंजी किले में कई आसपास की पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं। इसकी किलेबन्दी दृढ़ है और यह कई मील के घेरे में है। मुगल समझते थे कि कोई भी सेना इस पर नियमित घेरा नहीं डाल सकती, जब तक कि इतनी बड़ी न हो कि इसको चारों ओर से घेर ले और इसके संवाहन को पूर्णतया रोक दे। जूलफिकर खाँ, यह देखकर कि उसकी सेना इस कार्य के लिए अपर्याप्त है, कुछ रक्षात्मक कार्य करने के बाद वह यह बात सामने लाया कि अधिकबलन की आवश्यकता है, और उसके पहुँचने के अन्तराल में जिंजी में एक टुकड़ी छोड़ कर उसने दक्षिण की ओर प्रयाण किया और तञ्जोर के और त्रिचनापल्ली के राजाओं से अंशदान उगाहा।

किन्तु तुरन्त ही सैनिक नहीं भेजे गए। दक्खिन इस स्थिति में था कि औरंगजेब अधिकबलन वहाँ से बचा कर नहीं भेज सकता था, क्योंकि ऐसा करने से पूरे दक्खिन में विद्रोह होने का भय था। वाकिनकेरा के नायक की लूट इतनी कष्टदायी हो गई थी कि कुमार कामबख्श और रोहुल्ला के अधीनस्थ सेना को उसके नगर को नष्ट कर देने की आज्ञा दी गई। किन्तु वहाँ प्रतिरक्षा इतनी दृढ़ता से की गई थी कि इस पर घेरा डालने के अतिरिक्त वे कुछ न कर सके।

१६६२ ई०—महाराष्ट्र में रामचन्द्र पन्त उतना ही उपयोगी था जितना कि प्रतिनिधि जिंजी में। उसके योग्य सहयोगी परशुराम त्रिम्बक ने किलों के प्रबन्ध ठीक करने, और सैनिकों में वीरता और उत्साह के भाव भरने में महान् प्रयास किया। उसका मुख्य वासस्थान सातारा था, किन्तु वह स्थान २ घूमता रहता था किन्तु उसने अपना मुख्य निवासस्थान सातारा को ही बनाया और अपने प्रमुख कारकुन शङ्कराजी नारायण गादेकर की सहायता से प्रत्येक सैनिक प्रबन्ध की देखरेख की, और राजस्व की व्यवस्था और देश में सुस्थिति स्थापित की। उसने अपनी ओर से सैनिकों की भरती की और सन्ताजी और धनाजी के लौटने के पहले मुगलों के कई भटकते दलों को रोक लिया। और सन्ताजी और धनाजी के लौटने पर वइ के फौजदार पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई। इससे सन्ताजी बहुत प्रसन्न हुआ और फौजदार को उसकी पूरी सेना के सहित बन्दी कर वहाँ एक मराठा थाना स्थापित किया। सन्ताजी और धनाजी की उपस्थिति से अनुयायियों में जोश आया। रामचन्द्र ने अपने कमाँनों को उनका अनुकरण करने के लिए कहा। उन्होंने उनको मुगल क्षेत्र से अपने नियमित करों, चौथ और सरदेशमुखी, को उगाहने के लिए भेजा। सफलता

मिलने से उत्साहित होकर उनके अधिकारियों ने एक तीसरा अंशदान, घास-दाना या खाद्य-द्रव्य उन करों में जोड़ दिया। इस तरह से पवार, थोरटे और अथवले के प्रमुख नेतृत्व में एक पृथक सेना तैयार हुई। दरबार ने इन सेनापतियों को सम्मानसूचक उपहार और पुरस्कार दिया। पवार को विश्वास राव की उपाधि, थोरट को दिनकर राव की और अथवले को शामशेर बहादुर की उपाधि दी गई। रामचन्द्र का मराठा धंगर[1] या गड़ेरियों के प्रति विशेष स्नेह था जिनकी संख्या उसकी सेना में पर्याप्त थी, और उनमें उन सरदारों के भी पूर्वज थे जो बाद को साम्राज्य में विख्यात हुए।

शङ्कराजी नारायण को, कारकुन के रूप में जिनकी ख्याति थी, वह जनपद का प्रभार मिला और उन्होंने मुगलों से रायगढ़ छीना। परशुराम त्रिम्बक ने पन्हाला पर पुनः अधिकार कर एक महत्त्वपूर्ण सेवा की।

सन्ताजी ने मरिच के निकट स्थित मुगल अधिकारी पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया। रामचन्द्र ने उसको मरिच की देशमुखी प्रदान की। सन्ताजी और धनाजी सैनिकों को एकत्रित कर जिंजी की ओर शत्रु का ध्यान आकृष्ट करने के लिए गोदावरी के तट पर आए। यह एकमात्र ऐसा क्षेत्र था जो अभाव ग्रस्त नहीं था। यहाँ उन्होंने लूटपाट की और हर चीजों को नष्ट किया और हिन्दुस्तान (उत्तर भारत) से आने वाले कई मुगल सार्थ को रोका। उनको दबाने के लिए कई दल भेजे गए किन्तु वे भागे नहीं बल्कि उन्होंने उनमें से तीन को बारी २ से पराजित किया, और प्रत्येक बार उनके सेनापति को बन्दी किया। सन्ताजी के एक अनिवार्य नियम के अनुसार एक भारी मुक्तिधन देने पर ही वे छोड़े गए। यह प्रणाली शिवाजी के नियमानुसार थी। किन्तु शिवाजी बड़े आदमियों को ऐसे ही छोड़ देने में गर्व करते थे और मध्यम श्रेणी से जितना वसूल कर सकते थे करते थे। सन्ताजी जहाँ तक व्यवहार्य था शिवाजी के अनुशासन-नियम का पालन करता था और अपने अनुयायियों की अच्छी चालचलन की प्रतिभू लेने में चूकता नहीं था। इस काम के लिए वह दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा, मराठा वतनदार को पसन्द करता था। धनाजी जाधव सन्ताजी की तरह न उतनी कड़ाई करता था, न उतना अच्छा अधिकारी था, किन्तु वह एक जनप्रिय नेता थे।

१६६३ ई०—जिस समय मराठे उत्तर में अपनी लूटमार का क्षेत्र बढ़ा रहे थे, औरङ्गजेब ने भीमा के तटों पर अपना डेरा डाला। प्रत्यक्षतः वह अपने भविष्य के कार्यवाहियों के सम्बन्ध में अनिश्चित था। किन्तु अन्ततः उसने जूलफिकर खाँ को

---

[1] इन्दौर के महाराजा होल्कर धंगर थे।

सहायता देने और जिंजी को विजय करने का निश्चय किया। आसद खाँ के नेतृत्व में राजकुमार कामबख्श को वाकिंकेरा से रोहुल्ला खाँ के पास जिंजी जाने की आज्ञा मिली। वहाँ आसद खाँ एक बड़ी सेना लेकर आ मिला। पायान घाट के समीप पहुँचने पर अश्वारोही दलों ने उनके बढ़ने में बाधा डाली किन्तु अन्त में उन्होंने घेरा डाल कर जिंजी पर अधिकार किया।

१६६४ ई०—राजकुमार को कमान मिलने से जूलफिकर खाँ दुःखी हुआ। इस अवक्रमण से आसद खाँ भी असन्तुष्ट था, विशेष रूप से इस कारण कि राजकुमार की माता, औरङ्गजेब की प्रिय पत्नी, जोधपुरी के प्रभाव से ऐसा हुआ था।[1]

सब ब्राह्मणों की तरह जो ऐसे अवसरों की ताक में सदा रहते हैं मराठा प्रधानों ने भी शीघ्रता से इस ईर्ष्या का लाभ उठाया। वे दोनों ही से मिले और सर्वप्रथम जूलफिकर खाँ से एक गुप्त समझौता करने में सफल हुए। राजकुमार की कार्यवाहियों को रोकने के लिए जूलफिकर खाँ और राजाराम के बीच एक गुप्त समझौता हुआ जिसके अनुसार जूलफिकर खाँ राजकुमार की योजनाओं में अड़चन डालता था या घिरे हुए सैनिकों को पूर्व योजना की सूचना देता था।

सम्भवतः मराठों को दक्षिण की ओर आकृषित करने के लिए सम्राट् गलगला पहुँचा। किन्तु घोरपडे फिर भी उत्तर की ही ओर रहा और रामचन्द्र के दल पूरब में शोलापुर तक अंशदान ग्रहण करते थे। औरङ्गजेब का छल न चला। अतः वह अपनी भारी भड़कम सेना लेकर पुरन्दर के नीचे भीमा नदी पर ब्रह्मापुरी लौटा। उसने वहाँ एक छावनी बनवाई जिसमें वह अपना दरबार लगाता था। कई वर्षों तक वह इस स्थान से राजकाज तथा सैनिक कार्यवाहियाँ करता रहा।

१६६५ ई०—इस समय के लगभग पुर्तगालियों से औरङ्गजेब के असन्तुष्ट हो जाने पर उनके प्रत्येक उपनिवेश पर आक्रमण किया गया। उत्तरी कोंकण[2] में उनके अरक्षित प्रजाजनों पर भयङ्कर क्रूरताएँ की गईं। बहुत से निवासियों ने दामण और बसई के किलों में शरण ली। अन्त में गोआ में स्थित राजप्रतिनिधि ने मुगल

---

[1] उसका नाम उदयपुरी था जैसा कि कामबख्श को लिखे गए औरङ्गजेब के एक पत्र से स्पष्ट है।—(बिलिमोरिया : लेटर्स आव औरङ्गजेब)। डॉ० वी० ए० स्मिथ लिखता है कि मनूची के अनुसार वह जन्मतः जिआरजिअन थी और दारा शिकोह के महल में थी। उसका नाम उदयपुरी इसलिए पड़ा कि वह औरङ्गजेब को उदयपुर में मिली थी या वहाँ औरङ्गजेब ने उससे विवाह किया था।

[2] कोंकण का वह भाग जो बम्बई के उत्तर में है।

दरबारियों को घूस दे कर इस बात पर जोर दिलाया कि मराठा किलों को विजय करने के लिए तथा पुर्तगालियों से तोपें प्राप्त करने के लिए पुर्तगालियों से सन्धि करना उपादेय है। सम्राट् की प्रत्यक्ष आयु और क्षीण शक्ति के कारण मायावी औरङ्गजेब भी उस घृणित छल और युक्ति का शिकार हुआ जिसको उसने आजीवन किया था। इसी प्रकार से अँग्रेजों के प्रति भी उसकी भावना शान्त की गई। समुद्री दस्युओं की लूट होती रही। मुगल यही सोचते थे कि ये लूटमार एक या दोनों अँग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी कर रही हैं। यद्यपि उनके व्यापार से सम्राट् को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था, उन्होंने उनको तट से खदेड़ दिया होता यदि वे तोपों से आरक्षित, अतः अजेय, बम्बई के किले से सुरक्षित न होते। गंज सवइ[1] नामक सबसे बड़े मुगल जहाज के पकड़े जाने से जो बहुत से तीर्थयात्रियों को लेकर सूरत से मोचा जा रहा था, औरङ्गजेब बहुत असन्तुष्ट हुआ और सूरत स्थित कई अँग्रेज और उनके नेता पकड़े गए और जब तक निबटारा नहीं हुआ बहुत दिनों तक जेल में रखे गए। जिंजी को वश में करने के प्रयत्न में कई वर्ष नष्ट हुए। सन्ताजी घोरपडे ने भयङ्कर संहार करने और अपने विपक्षियों को हराने या चकमा देने के बाद अपने दो सक्रिय अधिकारियों परशोजी भोसले[2] और हैबतराव निम्बाल्कर को जिन्होंने शिवाजी के अधीन काम किया था मराठों को उत्साह देने के लिए गंगथडी और बरार में रहने दिया गया। बीस हजार अश्वारोहियों को लेकर सन्ताजी विशाल शिविर के पश्चिम की सातारा सड़क से कार्णाटक की ओर बढ़े। जिंजी के समीप पहुँचने पर तिहाई सेना धनाजी जाधव के नेतृत्व में तेजी से आगे गई और उस किले के पड़ोस के मुगल चौकियों पर आक्रमण किया। मुगलों के छोटे दलों को दाहिने और बाएँ पार्श्वों पर एकत्रित होने की आज्ञा प्रसारित की गई, किन्तु वे आज्ञापालन करने में सदा ही ढीले थे। उन्हें मराठा अश्वारोहियों की जो उन पर आक्रमण कर रहे थे, कार्यवाहियों का पता न था। धनाजी सैनिकों की सहायता और किले से संकेत पाकर उन पर अकस्मात् टूट पड़ा और उनकी व्यूहरचना होने के पहले ही उनका भयङ्कर संहार किया।

---

[1] समुद्री डाकू अवरी के साथ गंग सवइ जहाज को लूटने वालों में से लगभग बीस आदमियों पर आयरलैण्ड में मुकदमा चला और उनको फाँसी दी गई। यदि सूरत का राज्यपाल सूरत स्थित अध्यक्ष तथा अन्य अँग्रेजों को पकड़ कर कारावास में बन्द न कर दिए होता, तो क्रुद्ध भीड़ उनको मार डालती।

[2] पहले वह एक साधारण सिलाहदार और पूना के समीप के देओर ग्राम का वतनदार था। नागपुर के राजा की उपाधि देओर के राजा थी।

मराठों की मुख्य सेना लेकर सन्ताजी घोरपडे कवरे पाक पहुँचा। फौजदार अलीमर्दान खाँ ने एक बड़ी सेना लेकर उसका प्रतिरोध किया। किन्तु तेजी से उसकी पराजय हुई और उसकी समस्त सामग्री और शिविर साज-सामान लूटा गया। जब वह जिंजी स्थित शिविर की ओर भागा जा रहा था, वह पकड़ा गया और छुटकारे की एक भारी रकम देकर छूटा।

विजयी मराठों ने जैसा वे ऐसे अवसरों पर करते थे, प्रत्येक दिशा में मुगल चौकियों पर अधिकार किया और खाद्य संग्राहियों को तथा उनके सञ्चार-साधनों को ऐसा नष्ट किया कि मुगलों को न तो सूचना और न खाद्य-सामग्री ही मिल पाती थी। मराठों ने सम्राट् की बीमारी और मृत्यु की सूचनाएँ सोद्योग प्रसारित कीं। कामबख्श को सम्राट् बनाने का प्रस्ताव रखा। या तो मराठों के प्रस्तावों को कामबख्श ने ध्यान से सुना या आसद खाँ या उसके लड़के ने यह बहाना किया कि वह प्रस्तावों पर विचार कर रहा है। वे कामबख्श पर रोक-थाम लगाने पर तुले थे। यह सूचना पाकर तथा मुगल शिविर की हलचल और कलह का लाभ उठा कर मराठों ने अधिक तीव्रता से मुगलों को परेशान किया। कामबख्श की निजी सेना ने युद्ध करना अस्वीकार किया। चारों ओर भय और कोलाहल व्याप्त था। अन्त में मुगलों ने अपनी तोपों को खण्डित कर अपने तोपखानों को वहीं छोड़ा। और मराठों ने उन्हें घेर लिया।

इस परिस्थिति में तथा खाद्य सामग्री के अभाव में सम्भवतः मुगलों की ओर से एक सन्धि का प्रस्ताव किया गया। आसद खाँ और सन्ताजी के बीच एक समझौता हुआ। मुगलों को सुरक्षापूर्वक वन्देवश को लौट जाने और सम्राट् का उत्तर आने तक वहाँ ठहरने की अनुज्ञा मिली। यह प्रतिज्ञा की गई कि आसद खाँ सम्राट् की आज्ञा आने पर उसका पालन करेंगे।

औरङ्गजेब ने इस अनुचित कार्यवाही के परिणामों को सोचकर आसद खाँ और राजकुमार को अपने सामने उपस्थित होने की आज्ञा भेजी। उसने अपने विशाल शिविर के साथ बीजापुर को प्रस्थान किया और जूलफिकर खाँ को युद्ध चलाते रहने की आज्ञा दी।

किन्तु जिंजी पर तुरन्त ही घेरा नहीं डाला गया। मराठों पर समझौते का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया। मराठों ने खाद्यसामग्री के एक सार्थ को जो कार्णाटक के फौजदार, की रक्षा में बीजापुर जा रहा था रोका। शीघ्रता से कवरेपाक में जाकर फौजदार ने इसकी रक्षा की। परमाकोइल तथा कुछ अन्य किलों पर उन्होंने फिर अधिकार किया। यह अनुचित था। इन स्थानों पर पुनः अधिकार करने तथा इस समझौते को भंग करने का दण्ड देने के लिए जूलफिकर खाँ ने दक्षिण

की ओर प्रयाण किया, और उन किलों पर फिर अधिकार कर लिया और आगे बढ़ कर त्रिचनापल्ली के राजा से सन्धि की और तंजोर के राजा को जो व्यङ्कोजी का एक पुत्र था उन स्थानों को त्रिचनापल्ली के राजा को लौटाने को बाध्य किया जो उसने उससे छीना था; तथा अपने लिए उससे बहुत बड़ा अंशदान लिया। यह प्रबन्ध करने के बाद जूलफिकर खाँ ने कोलरून को पुनः पार किया और जिंजी पर फिर घेरा डाला।

राजाराम से अब भी गुप्त सम्पर्क चल रहा था और जूलफिकर खाँ घेरे में ढिलाई कर कर रहा था। सम्भवतः सम्राट् की मृत्यु के बाद वह कार्णाटक में एक स्वतन्त्र शासक होना चाहता था।

जूलफिकर खाँ की अनुपस्थिति में सन्ताजी घोरपडे ने बीजापुर अधिकृत कार्णाटक को लूटा। विभिन्न नेताओं के अधीन एक बड़ी फौज बीजापुर से भेजी गई, और इस प्रदेश के फौजदार कासिम खाँ की सेना भी इसमें आकर मिली। उनके खेमे ठीक से गड़ भी न पाए थे कि मराठों ने उनपर आक्रमण कर उनके रक्षकों को नष्ट किया। हर ओर से आ आकर मराठे मुख्य सेना पर आक्रमण करने लगे। बड़े आदमियों को इतना समय भी न मिला कि वे अपने हाथियों को सजा कर उन पर चढ़ते।

कासिम खाँ का अधिकार केवल अपने सैनिकों पर था। दूसरे नेता जो उद्दंड थे और जिनके पास साधन भी नहीं थे अपनी ही योजनाओं पर चलते थे। प्रत्येक दल अलग २ लड़ता और अपनी रक्षा करता था। उनके इस कलह का लाभ उठाकर मराठे दिनको उन पर आक्रमण कर तथा गोली चला कर और रात को अग्निवर्षा कर उनको परेशान करते थे। अन्त में तीसरे दिन मुगलों को दोदेरी गढ़ी में शरण लेनी पड़ी। वहाँ खाद्यसामग्री बहुत कम थी। किले की दीवार की चोटी पर से वे बनियों से सामग्रियाँ खरीदते थे किन्तु ये सामग्रियाँ भी वहाँ शीघ्र समाप्त हो गईं। यह स्थिति असह्य थी। वे हारे हुए थे और उनकी रक्षा करने वाला कोई अच्छा नेता भी न था। उनके उद्धार करने का प्रयत्न किया गया। उनके उद्धार करने के लिए एक टुकड़ी आरही थी, जब वह दूर पर ही थी सन्ताजी ने उसको खदेड़ दिया। हतोत्साहित सैनिकों को इसकी खबर न मिली। इस स्थिति में मुगलों ने समर्पण किया। कासिम खाँ ख्यातिप्राप्त अधिकारी था, उसको यह अपमान असह्य था। उसने विष खाकर अपनी जान दे दी। अन्य अधिकारियों से सब कुछ छीन लिया गया और उन्हें अपने छुटकारे के लिए अधिक छुड़ाई देनी पड़ी। शाही शिविर में पहुँचने पर उनके सब अधिकार छीन लिए गए। और वे दूर प्रदेश में तथा छोटे २ पदों पर नियुक्त किए गए। हिम्मत खाँ जो दोदेरी को घेरे से छुटकारा दिलाने में

असफल हुआ था और खान जहाँ बहादुर का पुत्र, अपने ही आवेदन पर, सम्राट शिविर से अधिकबलन प्राप्त होने पर सन्ताजी की खोज में निकले और मराठों पर उग्र आक्रमण किया। मराठा भागे और हिम्मत खाँ ने उनका पीछा किया। अपने सामान्य चलन के अनुसार मराठे उन्हें कठिन और ऊबड़खाबड़ भूमि पर ले गए और अपने सामान्य और अस्थिर ढङ्ग से उन पर हमला किया, हिम्मत खाँ को मार डाला और उसकी सेना को पूर्णतया पराजित कर उसके सामान को लूट लिया।

जूलफिकर खाँ ने सन्ताजी पर हमला किया जो जिंजी की ओर जा रहा था। और बहुत दूर तक उसका पीछा किया। जब जूलफिकर खाँ घेरा डालने के लिए पीछे मुड़ा, सन्ताजी ने उसकी सेना के पिछले भाग पर आकर आक्रमण किया। मराठों का इस तरह पैतरा बदलना एक सामान्य चाल है। सम्भवतः यह पीछा करना केवल एक छल था, क्योंकि जूलफिकर खाँ और सन्ताजी में घनिष्ठता थी।

१६६७ ई०—जिंजी में भी इसी ढिलाई से घेरा चलता रहा और सम्भवतः घेरा रक्तरहित होता यदि जूलफिकर खाँ का सहायक दाउद खाँ नशे के उन्माद में अपने सैनिकों को किले पर धावा करने और विधर्मियों को मिटाने के लिए बाहर न करता। इससे कभी २ मुठभेड़ हो जाती थी। इससे सम्राट् को सन्देह हुआ। खाँ के मित्रों ने उसे गुप्तरूप से चेतावनी दी कि यदि वह जिंजी पर अधिकार नहीं करता और प्रमुख आदमियों को बन्दी नहीं बनाता तो उसे अपमान और पतन से कोई रोक नहीं सकता। मुगल सेनापति ने यह सूचना राजाराम को भेजी और जानबूझ कर उनके भाग जाने की उपेक्षा की। राजाराम के सम्बन्धी शिर्के परिवार वालों ने उन्हें सुरक्षापूर्वक विशाल गढ़ तक पहुँचाने, उनके परिवार का प्रभार लेने और शीघ्र से शीघ्र प्रथम अवसर मिलते ही उनसे मिल जाने को सहमत हुए, इस शर्त पर कि उनको कुछ वंशागत अधिकार तथा कोंकण में दाभोल नगर इनाम में मिलेगा। ये सब शर्तें तय हो जाने पर राजाराम शिर्के परिवार की सहायता से मुगल सैनिकों के बीच से होकर निकल गए और वेल्लोर पहुँचे। वहाँ के कमांडेन्ट मन्नाजी मोरे ने उनकी सहायता की।

१६६८ ई०—कुछ समय तक वहाँ रहने के बाद उन्होंने अपने साथियों के साथ विशालगढ़ की ओर प्रस्थान किया और वे वहाँ सुरक्षापूर्वक दिसम्बर में पहुँच गए। जनवरी के आरम्भ में जिंजी पर सीढ़ी द्वारा अधिकार किया गया और राजाराम की पत्नियाँ और परिवार के लोग जो समुद्र द्वारा राजापुर आए थे पूर्वयोजना के अनुसार उनके सम्बन्धी शिर्के परिवार के लोगों को दे दिए गए। शिर्के ने सार्वजनिक रूप से इस बात पर जोर दिया था कि उनके महिला सम्बन्धियों को बिना परदे के ले

जाने तथा दूसरे जाति के लोगों के प्रभार में रखे जाने में उनकी अप्रतिष्ठा होगी। थोड़े दिनों बाद वे महाराष्ट्र पहुँचा दिए गए।

जूलफिकर खाँ ने राजाराम के कई आदमियों को चिरस्थाई बन्धन में रखा। राजाराम ने यह छल अपने विश्वासघात को छिपाने के लिए किया था। उनमें से कई डाकू और विद्रोही के रूप में मारे गए। इनमें से प्रह्लाद नीराजी के लड़के नारु प्रह्लाद को विद्रोही होने का दण्ड मिला। जिंजी के पतन होने के पहले ही प्रतिनिधि का देहान्त हो चुका था।

अगले वर्ष मराठों ने अपने शत्रुओं को बहुत कम क्षति पहुँचाई क्योंकि सन्ताजी और धनाजी के बीच में मनमुटाव था। किन्तु प्रतिनिधि की विवेकपूर्ण राय से राजा उनकी कलह में तटस्थ थे इस लिए खुलम-खुल्ला कलह नहीं हुई। किन्तु प्रह्लाद नीराजी की मृत्यु के बाद राजाराम के पास कोई ऐसा विवेकशील पथप्रदर्शक नहीं था। कुछ समय तक उन्होंने सन्ताजी घोरपडे के प्रति अपनी ईर्ष्या को दबा रखा किन्तु नियन्त्रण न होने से तथा दूसरों का प्रभाव पड़ने से उन्होंने सन्ताजी के विरुद्ध एक प्रबल दल बनाने में धनाजी जाधव को उत्साहित किया। औरङ्गजेब इस मनमुटाव का लाभ उठाने में चूक नहीं सकता था। उसने उनकी ईर्ष्याओं को उत्तेजित करने के लिए मराठों के बीच में दूत भेजे जिनके द्वारा जो कुछ वहाँ होता था उसकी उसको सूचना मिलती थी।

सन्ताजी की सेना भ्रष्ट की गई और उसके कुछ सैनिकों ने तथा धनाजी जाधव के सैनिकों ने मिल कर सन्ताजी पर एक संयुक्त आक्रमण किया। अपने कुछ साथियों के साथ बच कर निकल जाने में उसको नाम मात्र का समय मिला। यह विद्रोह बीजापुर के समीप हुआ था। सन्ताजी का पीछा करने के लिए दल भेजे गए। मराठों की मुख्य सेना का आधा भाग धनाजी जाधव के साथ कार्णाटक को गया क्योंकि वहाँ जूलफिकर खाँ कुछ समय से मराठों की छोटी २ टुकड़ियों को परास्त कर रहा था और वह वेल्लोर पर अधिकार करने को बहुत उत्सुक था जिससे कि उस क्षेत्र में मराठों की शक्ति टूट जाय। मराठों की सेना का दूसरा आधा भाग सातारा गया जहाँ शासन का केन्द्र था और जहाँ राजा रहते थे।

जनार्दन पन्त के मरने पर अमात्य का पद रामचन्द्र पन्त को दिया गया। शिवाजी ने १६७६ में उनको अमात्य के पद से हटा कर उस पद पर रघुनाथ पन्त हनमन्ते को बैठा दिया था। उनकी पिछली सेवाएँ ऊँचे पद और उपहार पाने के योग्य थीं। उसका मुख्य कारकुन शंकराजी नारायण गादेकर को सचिव का पद दिया गया। वह पद शंकराजी मल्हार के सेवा निवृत्त हो जाने पर और बनारस चले जाने पर रिक्त हो गया था। इस पद पर नए सचिव के आने से परशुराम त्रिम्बक

असन्तुष्ट हुए। क्योंकि वह इस पद पर शंकराजी नारायण से अधिक अपना दावा समझते थे।

जनार्दन पन्त के पुत्र तिमोजी रघुनाथ हनमन्ते बड़ी कुशलता से जिंजी के कारावास से भाग कर राजाराम से आ मिले और अपने परिवार के दावे और तथा-कथित गुणों के आधार पर प्रतिनिधि पद पर प्रतिष्ठित किए गए।

इसी अवधि के लगभग सीदोजी गूजर की मृत्यु हुई। वह सीदियों से लगातार कम या अधिक सफलतापूर्वक युद्ध करता रहा। कान्होजी आंग्रिया की सक्रियता से मराठा बेड़े को अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुईं। सब राष्ट्रों के नावों पर हमला किया गया और तट पर बारम्बार आक्रमण किए गए। ट्रावनकोर से बम्बई तक शायद ही कोई अरक्षित व्यापारी नगर इन लूटों से बचा हो। अधिकांश किलों पर मराठों का अधिकार बना रहा। सुवर्णदुर्ग और विजयदुर्ग में उनके सामरिक भाण्डार थे। किन्तु उनका मुख्य मिलनस्थान कोलाबा बना रहा जैसा कि शिवाजी के समय में था। वरी के देशमुख सावन्त परिवार ने राजाराम का साथ दिया। किन्तु कारवार के देसाई स्वतन्त्र बने रहे। और जैसा कि ऐसी परिस्थितियों में होता है राजा की उपाधि धारण की।

अब तक सन्ताजी घोरपडे अपने पीछा करने वाले शत्रुओं को चकमा देते रहे किन्तु मस्वर के देशमुख नागोजी माने अपने निजी बदले की भावना से प्रेरित होकर कठोरता से उनका पीछा करते रहे। जब वह एक छोटी सी धारा में स्नान कर रहे थे और थके-मांदे अरक्षित और अकेले थे, हत्यारा उन पर टूट पड़ा और उसी जगह उनको मार डाला। उनके शिर को काट कर वह शाही शिविर के समीप आया और उसको औरङ्गजेब के पास भेजा। कुछ ही समय बाद नागोजी ने शाही सेना में पुनः भरती होने का एक आवेदन पत्र भेजा। इस समय सब वंशागत अधिकारी और मानकरी इसी तरह शाही सेना में भरती होते और उसे छोड़ देते थे। उसको तुरन्त ही बिना शर्त क्षमादान, अत्यन्त प्रशंसा तथा और भी अनेक मान दिए गए। इससे उसके हत्या का महत्त्व प्रमाणित होता है। मराठा इतिहास में सन्ताजी घोरपडे एक बहुत ही प्रतिष्ठित अधिकारी था और इसकी प्रशंसा इसी से हो जाती है कि उसकी प्रशसा का सर्वोत्तम उल्लेख इन शब्दों में है कि सात वर्षों तक मुगल टुकड़ियाँ उसके नाम से काँपती थीं।

सन्ताजी की मृत्यु और इस कृति की नृशंसता से उसके अनेक अनुयायियों को अपनी अकृतज्ञता के प्रति खिन्नता हुई। उसके पुत्र रानोजी और पीराजी तथा उसके भतीजे सीदोजी के जो धनाजी के डर से सेना छोड़ कर भाग गया था झण्डे के नीचे

सन्ताजी के बहुत से अनुयायी एकत्रित हुए। उन्होंने इसके आधार पर अपना पारिवारिक झगड़ा खड़ा किया और मुगल क्षेत्र को लूटना आरम्भ किया।

१६६६ ई०—कुछ दिन सातारा में ठहरने के बाद राजाराम ने एक सेना लेकर उत्तर की ओर प्रयाण किया। परसोजी भोसले, हैबतराव निम्बाल्कर, नीमाजी सिंधिया, अथवले शमशेर बहादुर और दूसरे सेनापति जो कुछ दिनों तक खानदेश, और गंगथडी और बरार को लूट रहे थे उनसे आकर मिले। शिवाजी के नेतृत्व में इतनी बड़ी सेना कभी नहीं थी। राजाराम के नेतृत्व में इस सम्मिलित सेना ने गंगथडी में प्रवेश कर चौथ और सरदेशमुखी उगाही। जिन लोगों ने इन माँगों को पूरा किया उनकी रक्षा हुई तथा जो मुगल सैनिक चुपचाप रहे वे तंग नहीं किए गए, किन्तु जिन्होंने असफल विरोध किया वे तलवार के घाट उतारे गए। इस अवसर पर पहले की अपेक्षा मराठों ने व्यवस्थितरूप से कर वसूली की और जहाँ वे नकद रुपया नहीं पा सके पटेलों से रुक्का लिखा लिया, जैसा कि शिवाजी ने आरम्भ किया था। इस तरह यह सेना नन्देर, बरार, और खानदेश में घूमी।

अपनी यात्रा समाप्तप्राय होने पर राजाराम ने बकाया रकम इकट्ठा करने के लिए खण्डीराव धाभाडे को बागलान में, नीराजी सिन्धिया को खानदेश में, परसोजी भोसले को बरार में और हैबतराव निम्बाल्कर को गंगथडी में छोड़ दिया। इस अवसर पर परसोजी भोसले को सेना साहिब सूबा का पद और हैबतराव निम्बाल्कर को सर-लश्कर की उपाधि तथा जरीपताका भी दी गई। लौटने पर राजाराम ने जाल्ना पर आक्रमण किया। वे इसको लूट ही रहे थे कि मुगल सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया और इतने उत्साह और लगन से उनको खदेड़ा जैसा कि इसने कुछ दिनों से नहीं किया था।

धनाजी जाधव के अधीन कार्णाटक में राज-काज उन्नति पर नहीं था। यद्यपि जूलफिकर खाँ भ्रष्ट और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था फिर भी वह एक सक्रिय सेनापति, और इस समय मुगलों का एक मात्र अधिकारी था जिससे मराठा डरते थे। उसने बारम्बार धनाजी को परास्त किया था। राजाराम के प्रयाण की सूचना पाकर सम्राट् ने जूलफिकरखाँ को तुरन्त ब्रह्मपुरी की छावनी में आने की आज्ञा भेजी। आसद खाँ तथा अन्य मुख्य अधिकारियों ने मराठों से लड़ने की एक नई योजना बनाई कि एक सेना मराठों पर युद्धक्षेत्र में आक्रमण करे और दूसरी उनके किलों पर अधिकार करे। किलों पर अधिकार करने का काम सम्राट् ने अपने हाथ में रखा और पीछा करने वाली सेना का कमाँन अजीम शाह के पुत्र राजकुमार बेदर बख्त को सौंपा। जूलफिकरखाँ को उसका सहायक बनाया। उसको सर्वप्रथम राजाराम की सेना पर आक्रमण और पीछा करने की आज्ञा दी गई।

सम्राट् की तैयारियाँ पूरी हो जाने पर ब्रह्मापुरी की छावनी खाली की गई। इससे आलसी मुगल अधिकारियों को बहुत दुःख हुआ क्योंकि वहाँ बहुतों ने बहुत सुन्दर भवन बनवा लिए थे। छावनी के समीप स्थित मचनूर गढ़ी की रक्षा में एक भाण्डागार बनाया गया और इसकी रक्षा के लिए प्रबल रक्षकदल वहाँ रखा गया। औरङ्गजेब का प्रयाण लगभग पश्चिम की ओर था। भीमा से प्रस्थान करने के बीसवें दिन वह वसंतगढ़ किले के नीचे ठहरा। तोपखाने खड़े किए गए और तीन दिन में सैनिकों ने समर्पण कर दिया। सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ और उसने किले का नाम कलीद-इ-फतह या विजय की कुँजी रखा। कुछ वर्ष पहले सुलतान मुअज्जम का पुत्र मोइज उद्दीन ने पन्हाला पर एक असफल घेरा डाला था। अतः मराठों ने इसकी प्रतिरक्षा की पूरी तैयारी की। किन्तु औरङ्गजेब ने सातारा के लिए प्रस्थान किया। इस प्रस्थान की जरा भी आशा नहीं थी और इन किलों में दो महीने से अधिक की खाद्यसामग्री नहीं थी। यह उपेक्षा बड़ी अभागी समझी गई और यह सन्देह हुआ कि रामचन्द्र ने जानबूझ कर खाद्यसामग्री एकत्रित नहीं की थी। बाद को इस सन्देह का औरङ्गजेब ने लाभ उठाया और उसी अवधि में जब यह घेरा चल रहा था और रामचन्द्र राजाराम की बीमारी के कारण सिंहगढ़ गए हुए थे, औरङ्गजेब ने एक पत्र लिखा जो परशुराम त्रिम्बक के हाथ में पड़ा। इससे परशुराम और रामचन्द्र पंत के बीच का मनमुटाव और तीव्र हुआ।

सातारा में पहुँचने पर औरङ्गजेब ने किले के उत्तरी ओर अपना खेमा गड़वाया जहाँ आजकल करिंजा गाँव है। अजीम शाह पश्चिम की ओर एक गाँव में ठहराए गए जिसका नाम उस समय से शाहपुर पड़ गया। शिरजाँ खाँ ने दक्षिण की ओर, और तर्बियत खाँ ने पूरब की ओर घेरा डाला। दोनों शिविरों के बीच की चौकियों की शृङ्खलाओं से प्रबल घेरा बना। सातारा का किला एक मध्यम ऊँचाई की किन्तु अत्यन्त ढालू पहाड़ी की चोटी पर है। चालीस फीट से अधिक लम्बे काले चट्टान के एक कगार से इसकी प्रतिरक्षा होती है। इसकी चोटी पर एक पत्थर की दीवार है। शिवाजी की सेवा में पोषित हवलदार प्रयागजी प्रभु ने इसकी प्रतिरक्षा की। उसने मुगलों का बड़ी उग्रता से प्रतिरोध किया और जैसे २ उनकी अग्रिम चौकियाँ आगे बढ़ीं उसने एक-एक फुट जमीन के लिए लड़ाई लड़ी और जब पहाड़ी के एक हिस्से में उनके पैर जमने लगे उसने अपने सैनिकों को किले में कर लिया और विशाल पत्थरों को ऊपर की चट्टानों से लुढ़काया। इससे बड़ा संहार हुआ और जब तक मुगल अपनी रक्षा नहीं कर सके तोपों की तरह इनकी विनाशलीला होती रही। किन्तु घेरा पूरा पड़ चुका था और देश से संवाद संपर्क टूट गया था। अनाज का छोटा सा भण्डार समाप्त हो चुका था। घिरे हुए सिपाही समर्पण होने को विवश थे।

किन्तु परशुराम त्रिम्बकने जो परली के किले में था, अजीमशाह की उपेक्षा खरीद ली और घिरे हुए सिपाहियों के पास खाद्यसामग्री पहुँचाई।

पश्चिम और दक्षिण के पार्श्वों की सैन्य टुकड़ियों ने तोपखाने खड़े किए, लेकिन मुख्य हमला उत्तर-पूर्व के कोण पर किया गया जो करीब २ एक बुर्ज के आकार का सा मालूम होता है और जो सब से प्रबल नोंकों में से एक है। इसकी चट्टान ४२ फीट ऊँची है और इसकी चोटी पर की बुर्ज में २५ फुट ऊँची चिनाई है। इसके ऊँचाई का कुल योग ६७ फुट है।

१७०० ई०—इस कोण पर तर्बीयत खाँ ने सुरङ्ग लगाने की जिम्मेदारी ली और साढ़े चार महीने में वह दो सुरङ्ग बनाने में सफल हुआ। मुगलों को सफल होने का इतना विश्वास था कि तुरन्त एक आक्रामक दल तैयार किया गया और जहाँ तक सम्भव था पहाड़ी के आगे निकले हुए भाग के नीचे छिप गया। औरङ्गजेब इस दृश्य को देखने के लिए निमन्त्रित किया गया और एक ऐसी युक्ति की गई जिससे कि सब रक्षकदल बुर्ज की ओर खिंच आवें। उसी ओर से सम्राट् का एक विशाल जुलूस निकाला गया। इस वैभवपूर्ण कर्मचारीवर्ग से आकर्षित होकर सैकड़ों मराठे जिसमें प्रयागजी सेनापति भी था, परकोटा पर इकट्ठे हुए। पहली सुरङ्ग में आग लगा दी गई जिससे चट्टान कई जगहों पर फट गई और इतना तीव्र कम्पन हुआ कि चिनाई का बहुत बड़ा भाग भीतर की ओर गिरा और बहुत से रक्षकसैनिक उसके मलबे के नीचे दब गए। आक्रमण करने वाला दल अपने उत्साह में आगे बढ़ गया। इसी समय दूसरे तथा अधिक बड़े सुरङ्ग में आग लगाई गई। किन्तु बनाने में कुछ खराबी होने के कारण यह बाहर की ओर भयानक धड़ाके के साथ फूटी जिससे दो हजार से अधिक मुगल उसी जगह विनष्ट हुए। पहले धड़ाके के मलबे में माता भवानी के मन्दिर के पास ही मराठा सरदार प्रयागजी दबा हुआ था और बाद को जीवित निकाला गया। इसकी रक्षा एक शुभ शकुन माना गया। और दूसरी परिस्थितियों में हिन्दू रक्षकदलों को प्रतिरक्षा बनाए रखने के लिए उत्साहित करने के काम में आया। किन्तु अजीमशाह किले में अनाज ले जाने की अधिक उपेक्षा न कर सका। अतः उसके द्वारा समर्पण करने के प्रस्ताव भेजे गए। अतः इसको अधिकृत करने का श्रेय जिसके लिए वह पूर्णतया अयोग्य था उसको दिया गया और इस किले का नाम सम्राट् ने अजीम तारा रखा।

सातारा का समर्पण लगभग अप्रैल के मध्य में हुआ। उसके तुरन्त बाद परली पर घेरा डाला गया। जून के आरम्भ में कड़ाई से प्रतिरोध करने के बाद रक्षकसैनिकों ने इसको खाली कर दिया। दक्षिण-पश्चिम मानसून का सामान्य प्रकोप होने पर मुगल सेना को बहुत कष्ट और दुःख उठाना पड़ा। सामान और प्राणों की

हानि हुई। हानि उठाकर सेना, कोवासपुर पहुँची जो मान नदी पर स्थित है और जहाँ अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है।

सातारा के पतन के एक महीने पहले लगभग मार्च के मध्य में राजाराम की सिंहगढ़ के किले में मृत्यु हुई। इसका कारण यह था कि जूलफिकर खाँ द्वारा पीछा किए जाने पर इनको एक लम्बी और परिश्रमशील भागाभाग करनी पड़ी। इससे उनके फेफड़े सूज गए और मुँह से रक्त गिरने लगा। तीस दिन की बीमारी के बाद उनका देहावसान हुआ।

सन्ताजी घोरपडे के विनाश का अपराध राजाराम के नाम पर एक मात्र कलंक है। किन्तु यह अकेला ही गुरु है। यदि हम यह सफाई दें कि सन्ताजी के शत्रुओं से प्रभावित होकर उसने ऐसा किया तो उसकी निर्बलता उसके गुणों का अपकर्ष है। उसमें उसके पिता के सैनिक साहस का कुछ गुण था। किन्तु असैनिक शासन के लिए वह अयोग्य था। प्रह्लाद नीराजी बड़ी योग्यता से कार्यसंचालन करते थे। मालूम होता है कि वह एक बहुत ही असाधारण व्यक्ति थे। अपने स्वार्थ की पूर्ण उपेक्षा का ब्राह्मण कूटनीतिज्ञों में उनका प्रायः अकेला उदाहरण है। राजाराम का स्वभाव नम्र, व्यसन रहित, और अपने अनुयायियों के प्रति असाधारण रूप से उदार था।

राजाराम की मृत्यु से सम्राट् की शिविर में खुशी की लहर दौड़ गई, किन्तु मराठों के दबाने में इसका कोई अनुकूल प्रभाव न हुआ। इसकी मृत्यु के समय उसकी स्त्री ताराबाई मोहिते से शिवाजी नामक एक दस वर्ष का बालक था, और राजिशबाई घाटगे से शम्भाजी नाम का एक छोटा बालक था, जिसकी आयु का तीसरा वर्ष चल रहा था।

रामचन्द्र पन्त अमात्य, शङ्कराजी नारायण और धनाजी जाधव सेनापति की सहायता से ताराबाई ने फौरन ही शासन की बागडोर सम्हाली और उसका पुत्र शिवाजी गद्दी पर बैठाया गया। सब की राय से राजिशबाई बन्धन में रखी गई।

तिमोजी रघुनाथ अपने पद के लिए अयोग्य समझा गया। ताराबाई ने परशुराम त्रिम्बक को प्रतिनिधि बनाकर सब किलों का मुख्य प्रभारी नियुक्त किया। इस पदोत्कर्ष से रामचन्द्र पन्त को बहुत ईर्ष्या हुई। प्रतीत होता है कि वह यह नहीं जानता था कि उसकी निष्ठा के प्रति सन्देह थे। किन्तु ताराबाई के निश्चित भाव और आचरण से वह विवश हुआ। ताराबाई ने किसी एक किले को अपना निवासस्थान नहीं बनाया। परिस्थिति के अनुसार वह घूमती रहती थी। धनाजी जाधव ने खुले मैदान को अपनी सैनिक कार्रवाई का क्षेत्र बनाया। उसने अपने सैनिकों को हर दिशा में फैला कर अनेक यशस्वी कार्य किए। इसी तरह निम्बाल्कर,

भोसले और धाभाडे ने भी उत्कृष्ट कार्य किए। थोराट, चौवान, सिंधिया, पवार, अथवले तथा अन्य अनेक सरदारों ने विभिन्न दिशाओं में बड़ी २ सेनाएँ ले जाकर चौथ सरदेशमुखी और घासदाना कर उगाहा। साधारणतया घास-दाना कर सरदार की निजी परिलब्धि समझी जाती थी। मुगल शिविर के वैभव के विपरीत इन लुटेरों का झुण्ड इस प्रकार का था : शिवाजी के संगठित दलों से भिन्न किन्तु उनसे भी अधिक विनाशकारी, पूर्व चिंतित समझौते के अनुसार देश के किसी एकान्त स्थान में एकत्रित, कई हजार अश्वारोहियों का एक अव्यवस्थित समूह। नाम मात्र की सामग्री, जीन पर एक कम्बल को छोड़ कर बिना कोई सामान के, फालतू घोड़ों के अतिरिक्त बिना किसी पशु के, लूट का माल भरने के लिए थैले लेकर वे प्रस्थान करते थे जैसा कि आधुनिक काल के पिण्डारी करते हैं। यदि वे रात को कुछ समय के लिए ठहरते थे, तो वे घोड़ों की लगाम अपने हाथों में लेकर सोते थे। यदि वे दिन में ठहरते थे, तो जब तक उनके घोड़े खाते और थकान मिटाते थे, वे झुलसाने वाली गर्मी से नाम मात्र के, वा बिना किसी बचाव के विश्राम करते थे। कभी २ उनको किसी झाड़ी या पेड़ के नीचे कुछ छाया मिल जाती थी। वे अपनी तलवारों को अपने बगल में रख कर विश्राम करते थे, और वे अपने भाले सामान्यतया अपने घोड़ों के सिर के पास जमीन में गाड़ देते थे। जब वे किसी मैदान में ठहरते थे, तो वे चार या पाँच के समूहों में खाली जमीन पर घोर निद्रा में डूबे हुए दिखाई पड़ते थे। उनके शरीर पर मध्याह्न की धूप पड़ती थी और भालों की नोंक पर फैले हुए घोड़े के ओढ़ाने के फटे कपड़े या काले कम्बल की अस्थिर छाया में उनके शिर एक समूह में तथा शरीर खुली मध्याह्न की धूप में रहते थे। लूट करना ही उनका प्रधान उद्देश्य था। वे और उनके नेता सामान्यतया अपनी लूट का एक अंश राज्य के प्रमुख को समर्पण करते थे किन्तु अपनी उगाही का अधिकांश उड़ा देते थे या गबन करते थे।

मानकरी घराने के लोग शिवाजी के वंशज की आज्ञा पालन करने का दम भरने लगे और वे कभी कभी उसकी सेना में भी भरती हो जाते थे। लेकिन जब कभी अवसर मिलता तो वे अपनी ओर से लूट-पाट करते थे। घोरपडे परिवार के लोगों ने महाराष्ट्र की पूर्वी सीमाओं के किनारे २, गोदावरी से कृष्णा तक लोगों को बुरी तरह से उजाड़ दिया। दक्खिन से सम्राट् को मिलने वाला राजस्व बहुत ही कम हो गया था। अपनी सेना का निर्वाह करने, और दरबार के वैभव को बनाए रखने के लिए, उसको हिन्दुस्तान से विशाल कोष मँगाना पड़ता था। अनेक कारवाँ दल दक्खिन में भेजे जाते थे। बहुधा मराठे उनको रोक लेते थे और बहुत से अवसरों पर शाही सैनिकों ने अत्यन्त कायरता प्रदर्शित की।

जूलफिकर खाँ के प्रयाणों और विजयों का जो वर्णन फारसी हस्तलेखों में दिया हुआ है, वह कठिनता से विश्वास योग्य है। किन्तु अपने शत्रुओं के साक्ष्य पर यह न्यायपूर्वक कहा जा सकता है कि वह अथक परिश्रमी था जब कि इने गिने मुगल अधिकारियों में नाममात्र प्रतिभा या उत्साह था। उनमें कोई सार्वजनिक गुण नहीं था और वे भ्रष्ट, आलसी और उदासीन थे। इस व्यापक पतन का कारण सम्राट् की बुढ़ाई और निरन्तर बढ़ती हुई कमजोरी और उसके लड़कों का चरित्र था। स्थिति सङ्कटमय थी और एक नया युग आरम्भ हो रहा था, और बहुत ही उथल पुथल थी। और लोग अनन्त युद्ध में भाग लेने की अपेक्षा आने वाले संघर्ष के लिए अपनी शक्ति सुरक्षित रखने की ओर झुके रहते थे।

१७०१ ई०—औरङ्गजेब का शासन सबों की आशा के विपरीत दीर्घकालीन हुआ, और वह वृद्ध सम्राट् मराठा स्वतन्त्रता का गला घोटने के निष्फल प्रयास में अपने अन्तिम क्षण तक लगा रहा। उसके अगले चार साल पूर्णतया प्रायः किलों पर घेरा डालने में व्यतीत हुए। इस अवधि में उसने पन्हाला, विशालगढ़, सिंहगढ़, पुरन्दर, राजगढ़ और तोरण पर सफल आक्रमण किया। उसके अधिकारियों ने चन्दन बन्दन, और पाण्डवगढ़ जीते। किन्तु इसी अवधि में मराठों की संख्या कई गुनी हुई। १७०२ में उन्होंने सूरत और बुर्हानपुर से अंशदान उगाहा और वे प्रतिवर्ष अपनी कार्रवाई बढ़ाते रहे। जहाँ कहीं उनको माँग करते ही चौथ और सरदेशमुखी मिल जाती थी वे लूटमार में हाथ नहीं लगाते थे। १७०५ ई० में सम्राट् को सूचना मिली कि मराठों ने बड़ी संख्या में नर्मदा पार किया है और मध्य मालवा तक लूट मार कर रहे हैं। सम्पूर्ण खानदेश और बरार पर छा गये हैं, १५००० मराठों ने गुजरात में प्रवेश कर एकत्रित फौजदारों की सेना को पराजित किया है और युद्ध में मारे गये सैनिकों, गृह विहीन रैयतों और लुटे हुए या जलते हुए पके खेत के अतिरिक्त कुछ नहीं दृष्टिगोचर होता।

१७०२ ई०

१७०५ ई०

यह सूचना पाकर बड़ी तैयारियाँ की गईं। जूलफिकर खाँ मालवा में, गाजी-उद्दीन सूबेदार नियुक्त किए जाकर बरार में और अजीमशाह गुजरात शासन का प्रभार लेने के लिए अहमदाबाद भेजे गए। हर एक के साथ एक बड़ी सेना थी, और सेनापतियों के महत्त्व को देखते हुए यह आशा की गई थी कि इन प्रदेशों से मराठे शीघ्र ही खदेड़ दिए जायेंगे।

ये प्रयास प्रत्यक्षतः उग्र किन्तु प्रभावहीन थे। गति और हलचल थी, किन्तु उत्साह और क्षमताहीन। साम्राज्य भारी भड़कम था, इसकी व्यवस्था ढीली थी, और

इसके अधिकारी भ्रष्टता का अतिक्रमण कर गये थे। भीतर से यह जर्जर था और टुकड़े २ होकर गिरने ही वाला था, न केवल अपनी दुःसाध्य निर्बलता से वल्कि उन मराठों की विनाशकारी शक्ति से भी जो इन मुसलमान युद्धों से प्रशिक्षित हो गए थे, और जिनकी मन्द बुद्धि लुटेरे जीवन की ओर आकर्षित हुई थी, जिसके प्रति महाराष्ट्र निवासी उन्मुख रहते हैं। इस समय तक यह लुटेरे मराठे समूह यह नहीं समझते थे कि वे विजेता हैं। महाराष्ट्र देश के समस्त हिन्दू निवासियों में एक सामान्य भाव व्याप्त था। किन्तु यह भाव इतनी सक्रियता से उत्तेजित नहीं था कि विदेशी जुआ को फेंक देने का और अपने नागरिक और धार्मिक स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने के लिए एक व्यापक एकता उत्पन्न कर सके। उनमें एक सामान्य सहानुभूति थी, किन्तु सामान्य प्रयास नहीं था। उनका सैनिक उत्साह देशभक्ति से नहीं, बल्कि लूटमार से उत्तेजित था। और वे लोग उत्सुक थे कि युद्ध चलता रहे। जो मराठे लड़ाई के परिणामस्वरूप अधिक लाभ में थे वे अपने देश में स्वतन्त्रता स्थापित हो जाने की अपेक्षा उत्सुकतापूर्वक चाहते थे कि युद्ध चलता रहे।

कितने ही मुगल अधिकारी, जो जनपदों के प्रभारी थे, दोनों ही पक्षों से वेतन पाते थे और चाहते थे कि वर्तमान हलचल बनी रहे। मराठों के दल जो मुगलों की सेवा में थे, अपने देशवासियों से मिलते, और उनके साथ उत्सव मनाते और दावतें उड़ाते, और विदा होते समय या एक दूसरों के समीप से जाते समय मुसलमानों की खिल्ली उड़ाने के लिए अल्हाम्द-उल-इल्लाह (सब का श्रेय ईश्वर को है) का उच्चारण करते या वैभवयुक्त आलमगीर के दीर्घायु की कामना करते थे।

राजगढ़ और तोरण के विजय किए जाने पर और कुछ महीने जुन्नर के समीप ठहरने के बाद उसने पूना के जिसका नाम उसने मुहीआबाद रखा था, पड़ोस को छोड़कर, बीजापुर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ मुगल अधिकारी शान्ति का प्रस्ताव करने को उत्सुक थे और सम्राट् के प्रियपुत्र कामबख्श ने धनाजी जाधव से समझौते की बात चलाने के लिए सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त करने की युक्ति की। उसकी आरम्भ से ही बीजापुर में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजनाएँ थीं, और उसके मन में मराठों के कुछ दावों को स्वीकार करने की कुछ न कुछ योजना सदा ही बनी रहती थी।

समझौते की बात सर्वप्रथम शम्भाजी के पुत्र शाहू को छोड़ने का प्रस्ताव रखकर चलाई गई। बातचीत चलती रही और औरङ्गजेब कुछ दो चार दिनों के बाद इस बात के लिए राजी किया गया कि दक्खिन के छहों सूबों के राजस्व का दशांश सरदेशमुखी के रूप में मराठों को दिया जाय जिसके बदले में मराठे

अपने एक अश्वारोही दल से शान्ति बनाए रखेगें। इस सुविधा की सूचना पाकर मराठे धनाजी के शिविर में बड़ी संख्या में एकत्रित हुए। क्योंकि मराठे लुटेरे स्वभाव के होने पर भी सदा ही अपने हर एक अधिकार को औपचारिक रूप से स्वीकार कराए जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे। एकत्रित समूह से उनकी आशाएँ बढ़ीं, किन्तु उनकी बढ़ती हुई धृष्टता, उनके स्वर में सविनय प्रार्थना से माँग के रूप में परिवर्तन, शिविर के समीप उनकी उपस्थिति तथा अपने सत्तर मुख्य अधिकारियों के लिए सम्माननीय पोशाक की बातचीत चलाने से जिसके कि वे हकदार थे, औरङ्गजेब को विश्वासघात एवं अपमान का सन्देह हुआ। अतः सम्राट् ने समझौते की बातचीत रोक दी और अपने दूत को वापस बुला लिया। मराठा शिविर छोड़ने के तुरन्त बाद ही दूत पर आक्रमण हुआ जिससे सम्राट् के विचार की तुरन्त पुष्टि हुई। इस आशंका से कि महाराष्ट्र में जो अव्यवस्था फैली हुई है, कार्णाटक और तेलंगाना में भी उसके फैल जाने की सम्भावना है, औरङ्गजेब ने सम्भवतः पूरब की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि एक क्षेत्र में पिंडारियों ने और दूसरे में बेदरों ने कुछ २ उपद्रव किए, किन्तु इन क्षेत्रों के निवासी, मराठों से पूर्णतया भिन्न जाति के थे। और उनका झुकाव लूट मारकी उन प्रवृत्तियों की ओर नहीं था, जिसके लिए महाराष्ट्र निवासी बहुत काल से कुख्यात थे। कार्णाटक के निवासी असैनिक नहीं हैं। शारीरिक गठन में कम से कम वे मराठों की तरह बलिष्ट हैं, और इस समय सम्राट् की पदाति सेना में अधिकांश सैनिक वहीं के थे। विभिन्न भागों में लूट-मार आरम्भ हुई, और उनके सरदार इतने साहसी थे कि वे गिरोह द्वारा लूटे हुए माल को खुलमखुल्ला बेचते थे। स्वतन्त्र मराठे सरदार विशेषकर घोरपडे घराने के, कुछ वर्षों से बीजापुर, कुलबर्गा और बेदर के आस-पास निरन्तर लूटमार कर रहे थे। यद्यपि शाही सेनापतियों ने बारम्बार वाकिनकेरा के नायक पेमनायक को लम्बे-लम्बे अर्थदण्ड देने को विवश किया था, किन्तु मुगल सैनिकों के कुछ दूर वापस जाते ही वह हर एक प्रकार की लूट आरम्भ कर देता था। मराठों का इस सरदार से अच्छा मेल था और जिस समय सम्राट् सह्याद्रि पर्वतों के दुर्ग पर घेरा डाल रहा था, धनाजी ने अपने परिवार को वाकिंनकेरा में रखा था क्योंकि दूसरे स्थानों की अपेक्षा वहाँ अधिक सुरक्षा थी। नायक की शक्ति इतनी भयङ्कर हो चुकी थी कि सम्राट् ने जब वह बीजापुर पहुँचा उसके विरुद्ध स्वयं ही प्रस्थान करना आवश्यक समझा।

वाकिंनकेरा एक किलाबन्द नगर मात्र था। किन्तु इस पर कई महीने घेरा रहा। पेमनायक ने दृढ़ता से अपनी प्रतिरक्षा की। मुगलों की अग्रिम चौकियों को पीछे ढकेल दिया, और धनाजी जाधव उनके शिविर को निरन्तर परेशान करते

अपने एक अश्वारोही दल से शान्ति बनाए रखेंगे। इस सुविधा की सूचना पाकर मराठे धनाजी के शिविर में बड़ी संख्या में एकत्रित हुए। क्योंकि मराठे लुटेरे स्वभाव के होने पर भी सदा ही अपने हर एक अधिकार को औपचारिक रूप से स्वीकार कराए जाने के लिए अत्यन्त उत्सुक रहते थे। एकत्रित समूह से उनकी आशाएँ बढ़ीं, किन्तु उनकी बढ़ती हुई धृष्टता, उनके स्वर में सविनय प्रार्थना से माँग के रूप में परिवर्तन, शिविर के समीप उनकी उपस्थिति तथा अपने सत्तर मुख्य अधिकारियों के लिए सम्माननीय पोशाक की बातचीत चलाने से जिसके कि वे हकदार थे, औरङ्गजेब को विश्वासघात एवं अपमान का सन्देह हुआ। अतः सम्राट् ने समझौते की बातचीत रोक दी और अपने दूत को वापस बुला लिया। मराठा शिविर छोड़ने के तुरन्त बाद ही दूत पर आक्रमण हुआ जिससे सम्राट् के विचार की तुरन्त पुष्टि हुई। इस आशंका से कि महाराष्ट्र में जो अव्यवस्था फैली हुई है, कार्णाटक और तेलंगाना में भी उसके फैल जाने की सम्भावना है, औरङ्गजेब ने सम्भवतः पूरब की ओर प्रस्थान किया। यद्यपि एक क्षेत्र में पिंडारियों ने और दूसरे में बेदरों ने कुछ २ उपद्रव किए, किन्तु इन दोनों के निवासी, मराठों से पूर्णतया भिन्न जाति के थे। और उनका झुकाव लूट मारकी उन प्रवृत्तियों की ओर नहीं था, जिसके लिए महाराष्ट्र निवासी बहुत काल से कुख्यात थे। कार्णाटक के निवासी असैनिक नहीं हैं। शारीरिक गठन में कम से कम वे मराठों की तरह बलिष्ट हैं, और इस समय सम्राट् की पदाति सेना में अधिकांश सैनिक वहीं के थे। विभिन्न भागों में लूट-मार आरम्भ हुई, और उनके सरदार इतने साहसी थे कि वे गिरोह द्वारा लूटे हुए माल को खुलमखुल्ला बेचते थे। स्वतन्त्र मराठे सरदार विशेषकर घोरपडे घराने के, कुछ वर्षों से बीजापुर, कुलबर्गा और बेदर के आस-पास निरन्तर लूटमार कर रहे थे। यद्यपि शाही सेनापतियों ने बारम्बार वाकिनकेरा के नायक पेमनायक को लम्बे-लम्बे अर्थदण्ड देने को विवश किया था, किन्तु मुगल सैनिकों के कुछ दूर वापस जाते ही वह हर एक प्रकार की लूट आरम्भ कर देता था। मराठों का इस सरदार से अच्छा मेल था और जिस समय सम्राट् सह्याद्रि पर्वतों के दुर्ग पर घेरा डाल रहा था, धनाजी ने अपने परिवार को वाकिंनकेरा में रखा था क्योंकि दूसरे स्थानों की अपेक्षा वहाँ अधिक सुरक्षा थी। नायक की शक्ति इतनी भयङ्कर हो चुकी थी कि सम्राट् ने जब वह बीजापुर पहुँचा उसके विरुद्ध स्वयं ही प्रस्थान करना आवश्यक समझा।

वाकिंनकेरा एक किलाबन्द नगर मात्र था। किन्तु इस पर कई महीने घेरा रहा। पेमनायक ने दृढ़ता से अपनी प्रतिरक्षा की। मुगलों की अग्रिम चौकियों को पीछे ढकेल दिया, और धनाजी जाधव उनके शिविर को निरन्तर परेशान करते

रहे। शाही अधिकारी इतने कायर हो चुके थे और सैनिक इतने निर्लज्ज कि धनाजी के अश्वारोहियों के आते ही वे भाग खड़े होते थे।[1]

उत्कृष्ट अधिकारी दूर थे। जूलफिकर खाँ और दाउद खाँ को जो कार्णाटक में था वापस आने की आज्ञा हुई। मालवा से नीमाजी सिंधिया को भगाने के बाद, जूलफिकर खाँ औरङ्गाबाद आ चुका था। मराठे विशेषतया उत्तर की ओर अपनी कार्रवाई कर रहे थे। अतः कई वर्षों से कार्णाटक पर बड़े-बड़े अभियान नहीं हुए। मानाजी मोरे ने १७०४ ई० में दाउद खाँ को वेल्लोर का महत्त्वपूर्ण किला समर्पित किया। इसके बदले में सम्राट् ने उसको एक मनसब देने की प्रतिज्ञा की। किन्तु वह इसे माँगने के लिए कभी न आया, और महाराष्ट्र लौटने पर अपने देशवासियों से जा मिला। सआदतुल्ला खाँ को दोनों कार्णाटकों में अपना नायक या सहायक बना कर दाउद खाँ लौटा और जूलफिकर खाँ के थोड़ी ही देर बाद सम्राट् के शिविर में पहुँचा। ये दोनों ही अधिकारी साहसी और अनुभवी थे। वे दृढ़ता से आक्रमण करते थे। उपनगरों को अपने अधिकार में करने के बाद वाकिनकेरा नगर पर से घेरा उठा लिया गया। किन्तु दोनों ही ओर भारी क्षति हुई।

इसी बीच में मराठे चारों ओर अरक्षित इलाकों को लूट रहे थे। रामचन्द्र पन्त अमात्य ने सीढ़ी लगा कर पन्हाला और पवनगढ़ पर पुनः अधिकार किया। ताराबाई ने पन्हाला पर रहने का निश्चय किया, और रामचन्द्र पन्त को बहुत अधिक शक्ति दी। परशुराम त्रिम्बक प्रतिनिधि ने वसन्तगढ़ और सातारा को फिर अपने कब्जे में किया। एक ब्राह्मण अन्नाजी पन्त की युक्ति से सातारा पर अधिकार किया गया। इस व्यक्ति ने जिंजी के कारावास से भागकर एक भिक्षुक भक्त का वेष धारण किया था। मुगल पदाति की एक टुकड़ी के साथ वह हो लिया जो सातारा के गेरिशन की सहायता करने जा रही थी। वह उनका कहानियों और गीतों से मनोरञ्जन करता था और उनसे भिक्षा लेता था और उन सबों से इतना हिल-मिल गया कि वे उसको अपने साथ लाए और किले में रखा। इसके पूर्व अन्नाजी पन्त मावले पदाति का कारकुन रह चुका था। उसने शीघ्र ही यह समझ लिया कि अपने कुछ पुराने साथियों की सहायता से इस पर अधिकार किया जा सकता है। धैर्य से वह इस अवसर की ताक में रहा, परशुराम त्रिम्बक को अपने युक्ति की सूचना दी और मावलों के एक

---

[1] श्री स्कॉट वेरिंग लिखते हैं कि, जैसा कि मराठे कहते हैं, मुगलों में यह एक सामान्य परिहास था कि जब उनका घोड़ा पानी पीने से इन्कार करता तो वे कहते थे कि क्या पानी में धनाजी दिखाई पड़े।

दल को किले में बुला कर इस साहसी किन्तु निर्दयी ब्राह्मण ने गेरिशन के प्रत्येक आदमी को तलवार के घाट उतारा।

शङ्कराजी नारायण सचिव निष्क्रिय नहीं रहे। उस क्षेत्र से जहाँ का वह मुख्य सञ्चालक था, मुगल सैनिकों के हटते ही उसने सिंहगढ़, राजगढ़, रोहिरा तथा अन्य स्थानों पर पुनः अधिकार किया। मुगल गेरिशन में अधिकांश कार्णाटिक-पदाति थे। मावलों के आक्रमण का सामना करने को ये तैयार न हुए।

इन किलों के, विशेष रूप से सिंहगढ़ और पन्हाला के निकल जाने से, औरङ्गजेब को बड़ी उद्विग्नता हुई, और उसकी बीमारी बढ़ गई जिससे उसको अत्यन्त मन्द गति से छुटकारा मिल रहा था।

सम्राट् ने जूलफिकर खाँ को सिंहगढ़ पर कब्जा करने के लिए भेजा, और साथ ही शाहू को उसके प्रभार में रखा। जूलफिकर खाँ, कामबख्श से घृणा तो करता ही था, अतः उसने इस सन्धि की उग्र रूप से भर्त्सना की। औरङ्गजेब भी इस गलती को मानता था, फिर भी उसने कुछ शाहू को छोड़ने की युक्ति से, एक अर्ध-उपाय का अवलम्बन किया। उसने शाहू से वैध राजकुमार के रूप में मराठों को इस आशय के पत्र लिखवाए कि वे समर्पण कर दें। यदि वह उसको उसी समय छोड़ दिया होता तो सम्भवतः मराठों में दलबन्दी हो गई होती। किसी भी परिस्थिति में दूसरा उपाय बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था। विशेष रूप से औरङ्गजेब से इसका सामञ्जस्य नहीं था, क्योंकि ऐसा करने से, परिणामतः, शिवाजी के शासन की वैधता स्वीकार करना था और तदर्थ शम्भाजी की हत्या का अन्यायपूर्ण होना अङ्गीकार करना था। जैसा कि आशा की जा सकती थी, इसका परिणाम कुछ न हुआ।

जूलफिकर खाँ रसदकी कमी से सिंहगढ़ पर कब्जा करने में सफल हुआ। किन्तु उसके लौटते ही उसी कारण से शंकराजी नारायण ने तुरन्त उसको अपने अधिकार में कर लिया। जब विशाल सेना अहमदनगर की ओर प्रयाण कर रही थी, मराठों ने उस पर आक्रमण किया और उसके अधिकांश भाग को परास्त किया। यदि मराठे इस सफलता को जो उन्होंने प्राप्त किया था, आगे बढ़ाते तो वे मुगल सम्राट् अपने बद्धबैरी औरङ्गजेब को कैद कर लिए होते। यह एक अनोखी बात है कि मुगल लेखक अनजाने में इस अवसर पर अपने ही अपमान का वर्णन करते हैं, और अपने को बधाई देते हैं कि भाग्यवश सम्राट् कैद होने से बच गया। शाही सेना का मान कुछ अंश में इस बात से रह गया कि खाँ आलम ने जो एक बहादुर अधिकारी था, और जो इखलाश खाँ के नाम से शम्भाजी को पकड़ने में इतना सक्रिय था वीरतापूर्वक आक्रमण किया था।

१७०७ ई०—औरङ्गजेब अहमदनगर पहुँचा, और उसी स्थान पर खेमा गाड़ा

जिस स्थान पर उसने २१ वर्ष पहले खेमा गाँड़ा था। उसने यह भविष्यवाणी की कि उसका अन्त समीप है और वह इन अभियानों को आज समाप्त करता है और उसकी सांसारिक यात्रा पूरी हो चुकी है। इस पूर्व और वर्तमान परिस्थितियों में अत्यन्त वैषम्य है। जब हम बीच की घटनाओं पर विचार करते हैं तो लुटेरी शक्ति के विकास का तथा इसके पुष्टि के साधनों का एक आश्चर्यमय चित्र ही नहीं बल्कि एक अनोखा इतिहास भी सामने आता है। औरङ्गजेब के केवल तीन पुत्र जीवित थे। सुलतान मुअज्जम या शाह आलम जो काबुल का सूबेदार था, अजीमशाह और कामबख्श। इस समय अजीमशाह अपने पिता से आकर मिला। वह मालवा का सूबेदार बनाया गया और कामबख्श बीजापुर का सूबेदार बनाया गया। और वह तुरन्त ही नए शासन का प्रभार लेने के लिए भेजा गया।

इसी बीच में जूलफिकर खाँ जो मराठों का पीछा तथा आक्रमण करता रहा था अपने पुराने शत्रु सन्ताजी घोरपडे के पुत्र और भतीजे की सहायया करने के लिए कृष्णा नदी को पार किया। उन पर धनाजी जाधव ने आक्रमण किया था, क्योंकि उन्होंने तारा बाई के कुछ जनपदों की लूट की थी। जूलफिकर खाँ ने घोरपडे परिवार की सहायता की और धनाजी को खदेड़ दिया। उसी समय उन्हें यह सूचना मिली कि २१ फरवरी १७०७ ई० को सम्राट् की मृत्यु हो गई। अतः उसने तुरन्त कार्रवाई स्थगित कर दी और दक्खिनी सेना से मिलने के लिए शीघ्रातिशीघ्र प्रयाण किया। यह सेना राजकुमार अजीमशाह के कमॉन्ड में हुई, क्योंकि विशाल शिविर के सब से समीप वही था।

जहाँ तक औरङ्गजेब के चरित्र का सम्बन्ध है, मराठों के उत्कर्ष से सम्बन्धित घटनाएँ पर्याप्तरूप से प्रमाणित करती हैं कि अनधिकारपूर्वक राज्यसिंहासन हड़पने के बाद से उसके चरित्र में कोई भी ऐसी बात नहीं पाई गई, जिससे कि उसकी उतनी प्रशंसा की जाय जितनी की उसके प्रतिभाओं और शासन के सम्बन्ध में की गई है। अपने राज्यारोहण के पूर्व उसने प्रभूत योग्यता, साथ ही प्रायः अप्रतिम दुष्टता का परिचय दिया। उसकी असीम उच्चाभिलाषा, उसकी गूढ़ माया में छिपी थी। वह जितना साहसी था, उतना ही कपटी भी। प्रबल प्रतिद्वंद्वियों का दमन कर, हिन्दुस्तान के मुकुट को अपने सिर पर रखने में उसकी सफलता, उसका साहित्यिक अर्जन, राज-काज की ओर उसका ध्यान, ऐसे दरबार के बीच में जो अपने वैभव और शान-शौकत के लिए इतना प्रसिद्ध था उसकी निजी आदतों की सादगी ने उसके सम-कालीन लोगों के सामान्य विचार में ऐसा भाव भरा कि बाद को उसके द्वारा किए गए कुकृत्य और कुशासन उसको पूर्णतया विनष्ट न कर सके। उसकी आकांक्षा थी कि वह बुद्धिमान गिना जाए। उसकी घृणित धूर्तता और निंद्यनीति कुछ हद तक इसी

दुर्बलता के कारण थीं। लुटेरी शक्ति का दमन करने में अपने साधनों का उपयोग न कर वह बीजापुर और गोलकुण्डा को विनष्ट करने में लगा था। यही उसकी सब से बड़ी राजनीतिक भूल थी। उसकी संशयात्मकता और कट्टरता, उसका अहंकार और दुराग्रह, सभी ने उस उथल-पुथल को शान्त करने में बाधा डाली, जो मुख्यतया उसकी अपनी ही कार्रवाइयों से उत्पन्न हुई थी। उसकी शान-शौकत से उसकी सेनाओं की क्षमता एवं उसके राज्य के आर्थिक साधन क्षीण हुए जिससे कि उसके युद्ध चलते रहते।[1]

---

[1] औरङ्गजेब के पूरे पच्चीस वर्ष तक दक्खिन में निरन्तर युद्ध करते रहने से साम्राज्य और देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ गई। शाही सेना में १,७०,००० सैनिक थे और सम्भवतः पड़ाव के समय नौकरों की संख्या दसगुनी हो जाती थी। जहाँ कहीं भी यह सेना पहुँचती वहाँ कोई भी हरियाली बाकी न बचती। जो कुछ वे साथ न ले जा सकते थे मराठे लूट लेते थे और पीछे छोड़ी जाने वाली सम्पत्ति को जला देते थे। मनुची ने लिखा है कि जब १७०५ में औरङ्गजेब वापस लौटा तब 'उन प्रान्तों के खेतों में न तो फसलें रहीं थीं और न कोई वृक्ष ही, वहाँ सब ओर मनुष्यों और ढोरों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं।' दक्खिन की लड़ाईयों के कारण प्रतिवर्ष एक लाख मनुष्य और तीन लाख जानवर मरते रहते थे। गोलकुण्डा के घेरे के समय १६८७ में अकाल पड़ा 'सतहत्तर कोसों तक मुर्दों के ढेर ही देख पड़ते थे। कुछ महीनों के बाद वर्षा के अन्त में ढेर दूर से हिमाच्छादित पहाड़ियों के समान दिखाई पड़ते थे।' एक पीढ़ी तक युद्ध की यह परिस्थिति चलते रहने के फलस्वरूप जन-साधारण के पास कोई सम्पत्ति नहीं बची। किसान राह चलतों को लूटने, डाके डालने और संगठित दल बनाने लगे। नर्मदा के दक्षिण में शक्तिशाली सशस्त्र सैनिक दलों के बिना काफिले आगे नहीं बढ़ सकते थे। एक बार पाँच महीने तक सम्राट् के लिए भेजे जाने वाले फलों के टोकरे नर्मदा के उत्तरी तीर पर रुके रहे। औरङ्गजेब के 'घूमते हुए तम्बुओं के नगर' के पीछे चलने वाले दल किसानों को निर्दयतापूर्वक पीटते और लूटते और उनकी खड़ी फसलों को ढोरों को चरा देते थे। औरङ्गजेब के शासनकाल की एकत्रित बचत, १६७६ में हिन्दुओं पर लगाए गए जजिया कर की आमदनी, और आगरा और दिल्ली के तलघरों में पीढ़ियों से संचित सारी सम्पत्ति कुछ ही वर्षों में सम्राट् ने इन युद्धों में स्वाहा कर दी। शासकीय सत्ता का दिवाला निकलना अनिवार्य हो गया, सैनिकों और अधिकारियों के तीन-तीन वर्ष के वेतन चुकाए न जा सके। औरङ्गजेब ने मुअज्जम को लिखा था 'रेगिस्तान और जंगलों में मेरे साथ घूमते रहने के कारण मेरे अधिकारी चाहते हैं कि मेरी मृत्यु हो जाय।'—सरकार : औरङ्गजेब, पृष्ठ ५६८-६२१।

अध्याय १२

(१७०७ ई० से १७२० ई० तक)

१७०७ ई०—रायगढ़ के पतन के बाद शम्भाजी की विधवा और पुत्र वन्दी वना कर शाही शिविर में ले जाए गए, और शाही खेमों के घेरे में रखे गए। सम्राट् की पुत्री बेगम साहिब[1] की प्रार्थना पर उनको उसके समीप ही एक स्थान दिया गया। कई वर्षों तक वे उसके समीप ही रहे, और उसने उनके प्रति एक अविस्मरणीय सहृदयता बरती। आरम्भ में उसका पुत्र निरन्तर उसके साथ रहा। औरङ्गजेब जब अपनी पुत्री से मिलने आता था, तो शाहू का बड़ा ध्यान रखता था। शिवाजी उसका मूल नाम था, किन्तु औरङ्गजेब ने उसका नाम साव रखा। अपने बाबा का विश्रुत नाम रखने की अपेक्षा शाहू ने अपना यही नाम रखना पसन्द किया। उन परिचरों को जो इस परिवार के बन्दी किए जाने पर साथ आए थे, मुगल सेना के मराठों से सम्पर्क करने की अनुज्ञा थी। किन्तु यह सुविधा शाहू, उसकी माता और शम्भाजी के अवैध पुत्र मदन सिंह को नहीं थी। किन्तु विद्रोही मराठों से कोई भी परिवार या उनके परिचारक किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं कर सकते थे।

येसुबाई बड़ी बुद्धिमान् महिला थी और सावधानीपूर्वक कपटयोग से बचती थी। जब औरङ्गजेब ने शाहू को छोड़ने की योजना पर विचार करना आरम्भ किया, तो उसने शाही-सेवा के दो अत्यन्त प्रख्यात मराठों की कन्याओं से उसका विवाह करने का और उन पर अधिक अनुग्रह कर अपने हित में लाने का प्रस्ताव किया। उनमें से एक सिन्दखेड़ का जाधव था, जिसको सम्राट् ने रुस्तम राव की उपाधि दी थी और दूसरा कन्नेरखेड़ का पटेल, सिंधिया था जिसकी अवैध सन्तति का एक मराठा-

---

[1] [इसका नाम जिनत-उन-निसा बेगम था। वह एक बुद्धिमती, सावधान और सहृदया महिला थी। वह अविवाहित थी। इस समय उसकी आयु ४७ वर्ष की थी। अनुमानतः यह वही महिला है जिसने १६६६ में जब शिवाजी आगरे में थे उनकी प्राण-रक्षा के लिए अभ्युक्ति की थी और जिसके साथ शम्भाजी ने अपने वध के ठीक पहले विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी।—सर देसाई।]

राज्य के प्रधान के रूप में भारत के आधुनिक विवादों को तय कराने में काफी हाथ था। शाहू अपनी माता के पक्ष से जाधव से सम्बन्धित था। यह प्रस्ताव सब पक्षों को पसन्द था। विवाह संस्कार सम्मान्य ढङ्ग से किन्तु बिना धूमधाम के हुआ। जाधव और सिंधिया पर अनुग्रह करने के अतिरिक्त सम्राट् ने शाहू को अक्कलकोट, इन्दापुर, सोपा और नेवासा जनपदों को जागीर रूप में प्रदान की। इस अवसर पर और उपहारों के साथ औरङ्गजेब ने शाहू को एक तलवार दी जिसको वह स्वयं कभी २ धारण करता था, और उन दो तलवारों को लौटा दिया जिसको प्राप्त करने के लिए उसके परिचर सदा शाहू को प्रेरित करते थे। उनमें से एक शिवाजी की विख्यात भवानी तलवार थी, और दूसरी तलवार अफजल खाँ की थी जो बीजापुर का सेनापति था और मार डाला गया था। ये दोनों तलवारें रायगढ़ में कब्जे में ली गई थीं।

औरङ्गजेब अपनी इस योजना को कार्यान्वित करने का निर्णय न कर सका और उसकी मृत्यु के बाद जब अजीमशाह ने सुलतान मुअज्जम से जो लाहौर से आ रहा था राजसिंहासन के लिए संघर्ष करने को नर्मदा पार किया तो वह शाहू को अपने साथ लेता गया।

ताराबाई और उसके प्रधानों ने मुख्य मुगल सेना की अनुपस्थिति का लाभ उठाया। धनाजी जाधव ने पूना के फौजदार लोदी खाँ को पराजित किया। चाकन पर कब्जा किया और मराठे तेजी से देश को लूटने और उस पर अधिकार करने में लगे थे। अतः जूलफिकर खाँ की राय से शाहू को छोड़ने और उनकी माता, भाई और परिवार को उनके सद् आचरण के लिए बन्धक के रूप में रखने का निश्चय किया, और यह वचन दिया कि यदि शाहू अपना अधिकार स्थापित करने में सफल होगा और राज्य के प्रति निष्ठावान् बना रहेगा, तो उनको बीजापुर का वह क्षेत्र जिनको उनके बाबा ने विजय किया था, तथा भीमा और गोदावरी के बीच का एक और प्रदेश उनको मिलेगा।

उस समय परसोजी भोसले और चिमाजी दामोदर बरार और खानदेश में कुछ मराठा सैन्यदलों का नेतृत्व कर रहे थे। शाहू ने अपने एक अनुयायी को जो इन दोनों को जानता था, उनकी सहायता की याचना करने को भेजा। उन दोनों ने तुरन्त ही शाहू का साथ दिया और हैबतराव निम्बाल्कर, नीमाजी सिंधिया तथा अन्य सरदारों ने उनका अनुगमन किया। पत्रों द्वारा शाहू ने अपने आने की सूचना ताराबाई के पास भेजी। किन्तु वह उस अधिकार को जो इतने दिनों से भोग रही थी, तथा अपने लड़के की प्रभुसत्ता के दावे को छोड़ना नहीं चाहती थी। अतः उसने यह विश्वास करने का छद्म किया कि वह (शाहू) धूर्त है और अपने समस्त प्रधानों को एकत्रित कर इस छद्मवेषी का सामना करने का अपने

इरादे को घोषित किया और समस्त प्रमुख अधिकारियों को बुला कर अपने पुत्र के पक्ष में निष्ठावान् बने रहने की सत्यनिष्ठ शपथ दिलाई। रामचन्द्र पन्त और नीलु पन्त को उसने अपना सलाहकार नियुक्त किया। धनाजी जाधव और परशुराम त्रिम्बक को युद्ध क्षेत्र का कमॉन दिया। शङ्कराजी नारायण को घाट-माथा की प्रतिरक्षा का कार्य और कान्होजी अंग्रिया सरखेल को जिसको राजाराम ने सीदोजी गूजर के मरने के बाद बेड़े का कमॉन दिया था, तट का प्रभार सौंपा। वरी के फोण्ड सावंत ने भी ताराबाई को अपनी राजनिष्ठा का आश्वासन दिया।

इन सब कार्रवाइयों की सूचना पाकर शाहू गोदावरी के तट पर इस आशा से ठहरे कि वे अपने छद्मवेषी होने के सन्देह को मिटा सकें। किन्तु उनकी सेना में पन्द्रह हजार आदमी हो जाने पर तथा परसोजी भोसले की सलाह से उन्होंने अविलम्ब आगे बढ़ने का निश्चय किया। धनाजी जाधव और प्रतिनिधि उनका विरोध करने के लिए आगे बढ़े। देश के लोग प्रत्यक्षतः ताराबाई के पक्ष में थे, और एक गाँव ने उनके सैनिकों पर गोली चलाने की धृष्टता की, जिससे उनके आदमी मरे। इस गाँव पर हमला करके अपराधियों को उदाहरणात्मक दंड दिया गया। इस आक्रमण के समय एक महिला एक बच्चे को अपनी गोद में लिए हुए शाहू की ओर दौड़ कर आई, और यह चिल्लाती हुई कि उसने बच्चे को राजा की सेवा में अर्पित किया है, बच्चे को वहीं रख दिया। शाहू ने उसको ग्रहण कर, अपनी प्रथम सफलता के स्मृति में उसका नाम फतहसिंह[1] रखा और बाद को अपना कुल-नाम भोसले उसके नाम में जोड़ दिया, और वे सदा उसको अपने पुत्र की तरह मानते थे। अक्कलकोट के राजाओं की ऐसी असाधारण उत्पत्ति थी।

धनाजी जाधव ताराबाई के पक्ष को छोड़ें इसके सफल उपाय किए गए। पूना के बाईस मील उत्तर में खेड गाँव में[2] एक मुठभेड़ हुई जिसमें धनाजी की टुकड़ी ने उसको सहायता नहीं दी। वह सातारा भाग गए और अपने विपक्षियों के परिवार वालों को कैद किया। धनाजी के आ मिलने पर शाहू ने चन्दन-वन्दन पर अधिकार किया। पंत सचिव शंकराजी नारायण को पुरन्दर समर्पण करने का आह्वान किया तथा परशुराम त्रिम्बक को सातारा समर्पण करने की आज्ञा भेजी। किन्तु इन दोनों में से किसी ने उनकी बात न मानी। एक मुसलमान अधिकारी शेख मीरा ने परशुराम त्रिम्बक को कैद कर सातारा किले को समर्पित किया।

१७०८ ई०—सातारा पर अधिकार हो जाने पर १७०८ के मार्च महीने

[1] इस बालक के पिता का नाम लोखण्डे था।

[2] आधुनिक खेड पूना से २६ मील उत्तर भीमा के बाएँ तट पर है।

में शाहू औपचारिक रूप से गद्दी पर बैठे। गदाधर प्रह्लाद प्रतिनिधि और बहिरो पंत पिंगले पेशवा नियुक्त किए गए। बहिरो पंत के भाई नीलु पंत मोरेश्वर की जो अब भी ताराबाई का पक्ष ग्रहण किए हुए था, कुछ ही दिनों बाद रंगना में मृत्यु हुई। धनाजी जाधव की सेनापति के पद पर पुष्टि की गई और उसे कई जनपदों में राजस्व संग्रह करने का अधिकार सौंपा गया। इस समय इतनी गड़बड़ी थी कि राजस्व किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं उगाहा जाता था, बल्कि अवसर के अनुसार अंशदान के रूप में लिया जाता था। धनाजी के ये राजस्व-कामकाज के प्रमुख कारकुन थे : आबाजी पुरन्दरे जो पूना के समीप सास्वद का कुलकर्णी था; और चौल जनपद में स्थित श्रीवर्द्धन का एक ब्राह्मण कुलकर्णी था। अपने शत्रु अंग्रिया के कुछ षड्यंत्र के कारण सीदी इस गाँव से सास्वद को भाग गया था और आबाजी पुरन्दरे और परशुराम त्रिंबक ने धनाजी से इसकी अनुशंसा की थी। अब सीदी इस पर अपने अधिकार का दावा करता था। श्रीवर्धन के कुलकर्णी का नाम बालाजी विश्वनाथ भट्ट था, जो बाद को पेशवा शक्ति का संस्थापक होने के नाते अत्यन्त विख्यात हुआ।

इसी बीच में औरङ्गजेब के दो ज्येष्ठ पुत्रों, सुलतान मुअज्जम और अजीमशाह के बीच में आगरे के समीप एक घमासान युद्ध हुआ। जिसमें सुलतान मुअज्जम विजयी हुआ। हठी राजकुमार के दुराग्रह के कारण दक्खिनी सेना जिसका नेतृत्व अजीमशाह कर रहा था, अत्यन्त अलाभकर स्थिति में थी। सैनिकों की व्यूह रचना की उपेक्षा तथा तैयारी के अभाव से पराजय और भी शीघ्र हुई। अपने हठ के कारण राजकुमार को अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा। उसके साथ ही उसके दोनों पुत्र तथा तर्बीयत खाँ, दलपत राव बुन्देला, रामसिंह हाडा, वीर पुरुष खाँ आलम और मराठा युद्ध के अनुभवी और नाम कमाए हुए अधिकांश अधिकारी इस युद्ध में काम आए।

अपने मरने के एक दो दिन पूर्व औरंगजेब ने कामबख्श को बीजापुर भेजा था। अपने पिता की मृत्यु होने पर उसने राजचिह्न धारण कर अपने को सम्राट् घोषित किया। आरंभ में लोगों ने उसके अधिकार को माना किन्तु उसमें चरित्र की स्थिरता न होने से, उसके अधिकांश सैनिकों ने उसका साथ छोड़ दिया। पहले उसने मराठे मानकरियों को तुष्ट करने का प्रयास किया, और उन्होंने भी उसकी प्रार्थना की ओर कुछ ध्यान न दिया। किन्तु वे शीघ्र ही उसकी धृष्टता और मूर्खता से खिन्न हुए। सुलतान मुअज्जम ने अपनी विजय का नम्रतापूर्वक उपयोग किया था और इस समय वह दक्खिन की ओर प्रयाण कर रहा था। उसने कामबख्श को हैदराबाद और बीजापुर राज्यों को उदारतापूर्वक अर्पित किया किन्तु कामबख्श ने हिन्दुस्तान की सम्पूर्ण सेना का सामना करने का नैराश्यपूर्ण अवसर पसन्द किया और अपने पुराने बद्धवैरी

जूलफिकर खाँ द्वारा मारा गया। इसी समय शाहू ने उसके पास नीमाजी शिंधिया के नेतृत्व में मराठों की एक टुकड़ी भेजी।

कामबख्श की कार्रवाई इतनी हतोत्साहित करने वाली समझी गई कि जब उसने सुलतान मुअज्जम के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, तो यह ख्याल हुआ कि वह अपने चाचा सुलतान मुहम्मद अकबर के उदाहरण का अनुगमन कर फारस जाने का इरादा करता है। उसको रोकने के लिए सब बन्दरगाहों को आदेश भेजे गए। जूलफिकर खाँ ने मद्रास के गवर्नर (राज्यपाल) श्री पिट को भगोड़े के पकड़ने पर दो लाख रुपये तथा कम्पनी के विशेषाधिकार में वृद्धि का वचन दिया। श्री पिट ने ऐसा करना स्वीकार किया किन्तु उपहार लेना अंगीकार नहीं किया।

आगरा के युद्ध में जूलफिकर खाँ अजीमशाह की सेना में था और उसने अधिकारी के रूप में अच्छा काम किया था और युद्ध क्षेत्र से बचकर निकल गया था। अपने योग्य मन्त्री मुनैम खाँ की राय से सुलतान मुअज्जम ने उसको क्षमा कर ऊँचा पद दिया और दक्खिन का सूबेदार बना कर उसको अमीर-उल-उमरा की उपाधि दी। जूलफिकर खाँ के प्रतिवेदन पर आरम्भ में सुलतान मुअज्जम ने शाहू के पक्ष को सहारा दिया जिससे उसके देशवासियों में राजा का महत्त्व बढ़ा और उसे औपचारिक रूप में सरदेशमुखी भी प्रदान की गई होती, किन्तु ताराबाई के वकीलों ने मुनैम खाँ को जो ब्राह्मण-युक्ति से अपरिचित था, यह समझाया कि ताराबाई का पुत्र शिवाजी मराठों के वैध राजा हैं। इन झूठे दावों को सुनते २ ऊबकर जूल-फिकर खाँ ने कुछ ऐसा आवेश प्रकट किया जिसको मन्त्री ने नापसंद किया। सुलतान मुअज्जम, मुनैम खाँ की बात को काटना नहीं चाहता था। किन्तु इस सुविधा को स्थगित करने का बहाना पाकर अप्रसन्न नहीं हुआ, प्रत्यक्षतः शिवाजी के पक्ष में मन्त्री के प्रस्ताव से सहमत हुआ, और यह इच्छा की कि सरदेशमुखी के लिए उसके नाम विलेख तैयार किया जाय। किन्तु सुपुर्दगी तब तक के लिए स्थगित कर दी जब तक कि मराठा-प्रभुसत्ता के दावा का निर्णय न हो जाय जिसके लिये उस समय प्रतिद्वंद्वियों में संघर्ष चल रहा था।

वर्षा ऋतु में शाहू की सेना ने सातारा के पड़ोस के चन्दन वन्दन में विश्राम किया। किन्तु अपने प्रतिद्वंद्वी को हराने की कोई तैयारी उठा न रखी। अन्य उपायों के अतिरिक्त उसने बम्बई के राज्यपाल सर निकोलयवेट को तोप, बारूद, यूरोपीय सैनिक, और द्रव्य की रसद के लिए एक असफल आवेदन पत्र भेजा। दशहरा मनाने के बाद स्वच्छ ऋतु आरम्भ होने पर ताराबाई के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने की तैयारियाँ की गईं। पन्हाला पर बड़े जोरों से घेरा डाला गया। वहाँ के हवलदार ने अपने पद की पुष्टि किए जाने की शर्त पर समर्पण किया। यह प्रस्ताव तुरन्त

स्वीकार किया गया। परशुराम त्रिम्बक के अभिकर्त्ता ने इसी शर्त पर विशालगढ़ समर्पित किया। उसके बाद शाहू ने रंगना की ओर प्रस्थान किया। सेना का आगमन सुनकर ताराबाई रंगना को छोड़कर मालवाँ चली गईं। रंगना के हवलदार ने दृढ़ता से घेरा डालने वालों का विरोध किया। एक प्रहार किया गया लेकिन पीछे हटना पड़ा। वर्षा आ जाने से शाहू ने घेरा उठा लिया और कोल्हापुर को लौट गए। और वहाँ उनकी सेना ने विश्राम किया।

स्वच्छ ऋतु आरम्भ हो जाने पर लड़ाई चलाने का विचार हुआ, किन्तु इसी समय के लगभग मुगलों से एक समझौता हुआ जिससे शाहू ने वंशागत अधिकार का बड़ा प्रश्न त्यागा, और ताराबाई को जीतने की बात से उनका मन उचाट हुआ। हिन्दुस्तान वापस जाने पर जूलफिकर खाँ सुलतान मुअज्जम के दरबार में उपस्थित रहता था। उसने दाउद खाँ पन्नी को दक्खिन के छहों सूबों का अपना सहायक बनाया और उसके दूसरे पदों के अतिरिक्त उसके लिए बुर्हानपुर का शासन प्राप्त किया। दाउद खाँ ने ऐसे मराठा सरदारों से समझौता किया जो शाहू के अधिकार को स्वीकार करते थे। उसने उनको चौथाई राजस्व दिए जाने की अनुज्ञा दी। किन्तु राजस्व को उगाहने और चुकता करने का काम अपने अधिकर्त्ताओं के हाथों में सुरक्षित रखा। दाउद खाँ की अधिकांश मराठा सरदारों से घनिष्ठता थी। जूलफिकर के साथ दाउद के सम्बन्ध से, और जूलफिकर खाँ और शाहू के बीच में मित्रता के भाव से शाहू का आधिपत्य बना रहा और सन्धि की शर्तों का ठीक २ पालन हुआ केवल उन स्थानों को छोड़कर जहाँ यदा कदा स्वतन्त्र लुटेरे दल दिखाई पड़ते थे।

वर्ष के अन्त में शाहू सातारा को लौटे और दो स्त्रियों से विवाह किया। एक मोहिते कुल की थी और दूसरी शिर्के। उनकी अन्य दो पत्नियाँ अब भी उनकी माता के साथ थीं जहाँ उनमें से एक जो सिंधिया की पुत्री थी, थोड़े दिनों बाद मर गई। धनाजी जाधव के पैर का पुराना घाव फट गया जिससे वे एक लम्बी बीमारी के बाद जब वे कोल्हापुर से जा रहे थे रास्ते में वर्ना के तट पर मरे। उस समय उनका कारकुन बालाजी विश्वनाथ उनके साथ था जो उनकी बीमारी की अवधि में उनके कामकाज का संचालन करता था जिससे धनाजी के पुत्र चन्दर सिंह जाधव में तथा कई ब्राह्मणों में जो उनकी सेवा में थे एक अदम्य ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

सातारा को फौज लौटी ही थी कि पन्हाला के हवलदार से उत्साहित की जाकर ताराबाई ने फोण्ड सावंत की सेना का अतिरिक्त बलन पाकर उस ओर प्रस्थान किया और उसको तुरन्त ही अपने कब्जे में कर लिया। उसके दल को श्रेय देने के लिए और एक बढ़ते हुए पक्ष को एक रूप देने के लिए यह निश्चय किया गया कि

वह किला और उसके पड़ोस का कोल्हापुर नगर उसके दरबार की आगामी निवास स्थान हो। रामचन्द्र पन्त अपने दल की भलाई में दृढ़ता से लगा रहा और शंकराजी नारायण भी उसी तरह उसके पक्ष को बनाए रहा। शंकराजी नारायण का क्षेत्र साम्राज्य के नींव का पत्थर माना गया क्योंकि शिवाजी ने इसी स्थान पर सर्वप्रथम अपने को स्थापित किया था। पन्हाला पर आक्रमण न कर शाहू ने सचिव को वश में करने की ठानी। इस समय के लगभग शाहू ने अपनी राजधानी अहमदनगर ले जाने की युक्ति की। इससे जूलफिकर खाँ असंतुष्ट हुआ इसलिए शाहू ने स्वेच्छा से अपना विचार बदल दिया।

एक सेना पूना की ओर बढ़ी, और राजगढ़ का स्वामित्व प्राप्त करने में सफल हुई। किन्तु सचिव के अधिकांश किले अजेय समझे गए क्योंकि नउमें पर्याप्त खाद्य सामग्री और अनुभवी मावले थे। अतः शाहू को यह सुन कर बहुत प्रसन्नत हुई कि उसने अपनी इहि लीला को समाप्त कर दी है। कहा जाता है कि यह कृत्या उसने खिन्न होकर किया क्योंकि उसने एक सत्यनिष्ठ शपथ ली थी कि वह वैध राजकुमार के विरुद्ध ताराबाई का पक्ष ग्रहण करेगा।

१७१२ ई०—ठीक इसी समय जनवरी के महीने में ताराबाई के पुत्र शिवाजी की चेचक से मृत्यु हुई। यह राजकुमार मन्दबुद्धि का था, किन्तु उसकी मृत्यु से कोल्हापुर में काफी परिवर्तन हुआ। रामचन्द्र पन्त ने प्रशासन से ताराबाई को हटा दिया और इसके स्थान पर राजाराम की युवा विधवा राजिशबाई के पुत्र शम्भाजी को बैठाया। यह कार्रवाई हिन्दू प्रथा के अनुसार थी। अतः इसे सामान्य स्वीकृति प्राप्त थी। ताराबाई और उसके पुत्र की विधवा भवानीबाई जो अपने पति की मृत्यु के समय गर्भवती कही जाती थी बन्धन में रखी गईं और रामचन्द्र पन्त ने ताराबाई से स्वतन्त्र होकर नए जोश से काम करना आरम्भ किया।

जब तक दाउद खाँ का शासन बना रहा शाहू का उत्कर्ष सुरक्षित था। उनके पास अनुभवी मन्त्री थे और उनमें वह निर्दयता और अत्याचार तथा अन्य अनेक व्यसन जो, उनके शत्रुओं के अनुसार उन्हें उत्तराधिकार में मिले थे, उनमें नहीं थे। शंकराजी नारायण की मृत्यु से विरोधी दल को गहरा धक्का लगा। तुष्टिकरण की भावना से, जिसके लिए शाहू की ठीक ही प्रशंसा की जाती है, उन्होंने वैध अधिकार की पुष्टि से प्राप्त होने वाले लाभ को ग्रहण किया, और तुरन्त ही मृत सचिव के पुत्र नारु शंकर के पास जो उस समय दो वर्ष का शिशु था, अभिषेक के वस्त्र भेजे और साथ ही उसके मुतालिक या मुख्य अभिकर्ता की उस पद पर पुष्टि की। इस कार्रवाई से तुरन्त ही उन्हें उस दल की सेवाएँ अर्पित हुईं और बाद को कभी भी

सचिव अपनी निष्ठा से विचलित न हुआ। प्रतिनिधि परिवार के सब सदस्यों को अपने पक्ष में करने में शाहू पूर्णतया सफल न हुए।

१७१३ ई०—उन्होंने परशुराम त्रिम्बक को मुक्त कर उस सम्मानपद पर बैठाया जो गदाधर प्रह्लाद के हटने से रिक्त हुआ था। उन्होंने उसके विशालगढ़ और उसके अधीनस्थ क्षेत्रों के औपचारिक प्रभार की पुष्टि की। प्रतिनिधि ने अपने ज्येष्ठ पुत्र कृष्णाजी भास्कर को किला तथा जनपद का प्रबन्ध अपने हाथ में लेने के लिए भेजा। किन्तु उसका स्वामित्व प्राप्त करते ही उसने विद्रोह किया और अपनी सेवाएँ शम्भाजी को अर्पित कीं जिन्होंने उसे कोल्हापुर में प्रतिनिधि नियुक्त किया। इस धृष्टता पर परशुराम त्रिम्बक फिर बन्धन में डाले गए, इस विश्वास पर कि उसने उस विद्रोह को प्रेरित किया था। शाहू उसे तलवार के घाट उतारना चाहते थे किन्तु उन्हें ऐसा करने से मना किया गया, क्योंकि इस कृत्य की, चाहे न्यायपूर्ण ही हो, देश भर में निंदा होती।

शाही दरबार में कुछ परिवर्तन होने के फलस्वरूप दाउद खाँ का गुजरात शासन में स्थानान्तरण हुआ और मुगलों और मराठों के बीच में जो समझौता था, उसका अन्त हुआ।

अपने पिता की मृत्यु के बाद चन्द्रसेन जाधव सेनापति नियुक्त किया गया। एक बड़ी सेना लेकर सातारा से प्रस्थान करने और मुगल जनपदों से चौथ, सरदेशमुखी और घास दाना उगाहने की आज्ञा उसे दी गई। इस अवसर पर उसके पिता का कारकुन बालाजी विश्वनाथ भी उसके साथ था जिसको इस समय राजा के लिए राजस्व का एक भाग एकत्रित और विनियोग करने का प्रभार सौंपा गया था। किसी भी परिस्थिति में यह संभव नहीं था कि सेनापति इसे अपने अनुकूल समझे। पहले की ईर्ष्या ने दसगुना रूप धारण किया और एक रंचमात्र कारण पर, बालाजी के एक अश्वारोही द्वारा एक हिरण के पकड़ लेने पर, एक विवाद खड़ा हुआ। दबी हुई शत्रुता, हिंसा का प्रयास करने के रूप में फूट पड़ी। बालाजी अपनी जान लेकर भागने को विवश हुआ, पहले सास्वद को, जहाँ सचिव के अभिकर्ता ने जो पुरन्दर में था उसकी रक्षा करना विवेकयुक्त नहीं समझा, यद्यपि उसने उस किले में शरण पाने की बहुत ही विनती की। उसका पीछा करने वाले अश्वारोही दृष्टिगोचर थे, किन्तु किले का कमॉन कठोर बना रहा। अपने कुछ साथियों के साथ जिसमें कि उसके लड़के बाजीराव और चिमनाजी भी थे बालाजी विश्वनाथ ने दूसरी ओर के पाण्डवगढ़ किले में जाने का प्रयास किया जो दूसरी ओर की घाटी में था। किन्तु जाधव के अश्वारोही उसके रास्ते में आ गए थे और हर एक स्थान पर उसको ढूँढ़ रहे थे। इस सङ्कटपूर्ण विवशता में कुछ एक दिनों के लिए

उसने अपने को छिपा लेने की युक्ति की। तब तक दो मराठों ने जिसमें एक का नाम पीलाजी जाधव था और दूसरे का कुल-नाम धूमल था, और जो उस समय उसकी सेवा में साधारण सिलाहदार थे, अपने सम्बन्धियों पर दबाव डाल कर थोड़े से अश्वारोही एकत्रित किए और उस रात को उसको और उसके पुत्रों को पाण्डवगढ़ के मार्ग में ले जाने का या अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देने का वचन दिया।

बालाजी विश्वनाथ, जैसा कि हस्तलेखों में लिखा है, घोड़े की सवारी करने की कला में विशेष निपुण नहीं था। किन्तु सिलाहदारों ने, एक मुठभेड़ हो जाने पर भी अपने वचन को निवाहा और किले के कमान ने शाहू की आज्ञा से उसकी रक्षा की। चन्द्रसेन जाधव ने तुरन्त ही उसको उसके हवाले किए जाने की माँग की। और माँग पूरी न किए जाने पर सदा के लिए अपनी राजनिष्ठा त्यागने की धमकी दी। शाहू इस धृष्टतापूर्ण माँग करने के कारण उसको दण्ड देने को तैयार नहीं थे, किन्तु उन्होंने बालाजी को देना अस्वीकार किया और हैबतराव निम्बाल्कर, सरलशकर को जो उस समय अहमदनगर के समीप था, तुरन्त ही सातारा को प्रस्थान करने की आज्ञा भेजी। इसी बीच में सेनापति की सेना ने बालाजी विश्वनाथ को चारों ओर से घेर लिया, और वह पाण्डवगढ़ में फँस गया। सेनापति न बनाए जाने के कारण हैबतराव निम्बाल्कर जाधव से चिढ़ता था, इसलिए उसने अत्यन्त वेग से प्रस्थान किया। जाधव ने यह सूचना पाकर कि वह फल्टन में पहुँच गया है, पाण्डवगढ़ को छोड़कर देवूर को प्रस्थान किया। दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। जाधव की सेना पराजित हो जाने पर वह घाटगे शिर्जी राव के साथ कोल्हापुर को चला गया। शम्भाजी ने घाटगे शिर्जी राव के कागल के उसके वंशागत स्वामित्व की पुष्टि की और दोनों जाधव और घाटगे चीनकिलिच खाँ (निजाम-उल-मुल्क) से मिलने गए जो अभी ही प्रथम बार दक्खिन का सूबेदार बनाया गया था। उसने जाधव को बेदर के पच्चीस मील पूरब, वलकी के पड़ोस में उसकी सेना के निर्वाह के लिए एक बड़ा क्षेत्र जागीर के रूप में दिया।

सुलतान मुअज्जम की १७१२ में मृत्यु होने के बाद, मुगल सम्राट् के पुत्रों के सामान्य संघर्ष के कारण व्याप्त सनसनी, उसके पौत्र फर्रुखसीयर के लिए की गई बाद की क्रांति, तथा जूलफिकर खाँ के नृशंस बध के पश्चात् दक्खिन के शासन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। गाजीउद्दीन के पुत्र चीनकिलिच खाँ की नियुक्ति एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था। इससे दाउद खाँ शासन से स्थानान्तरित किया गया और एक ऐसा व्यक्ति सूबेदार हुआ जिसका कि बाद को दक्खिन के मामलों में महत्त्वपूर्ण योग हुआ। उसका मूल नाम मीर कमर उद्दीन था। अपनी प्रारम्भिक युवावस्था में जब वह बीजापुर प्रदेश का सूबेदार था, औरङ्गजेब ने उसको चीनकिलिच खाँ की

उपाधि तथा पाँच हजारी मनसब प्रदान किया। अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ दोनों सैयदों की सफलता में इसका बहुत बड़ा हाथ था। इन दोनों सैयदों की बहादुरी, कुशलता और प्रयासों से फरुखसीयर राजसिंहासन पर बैठा। दरबारियों में तथा राज्यों में बहुधा सामान्य शत्रुता तथा सामान्य लाभ के कारण मित्रता होती है। जूलफिकर खाँ का तथाकथित शत्रु चीनकिलिच खाँ, मन्त्री के मरने के बाद दक्खिन का सूबेदार बनाया गया और दाउद खाँ गुजरात के शासन को स्थानान्तरित किया गया। यह उसी समय की बात है जब असंतुष्ट सेनापति निजामुल्मुल्क की ओर चला गया था। वहाँ उसका अच्छा आवभगत किया गया और वह पुरस्कृत हुआ। उसके साथ कागल के घाटगे शिर्जी राव तथा एक अधिकारी रम्भाजी निम्बाल्कर थे। निम्बाल्कर का मुगल सेवा में नाम हुआ और उसको राव रम्भा की उपाधि मिली जो उसके वंशजों में चलती रही। औरङ्गाबाद आने पर निजामुल्मुल्क शम्भाजी के पक्ष में झुका हुआ मालूम हुआ। ऐसा जिस भी उद्देश्य से किया गया हो, किन्तु उस समय यह सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण नीति थी जो मुगल अपना सकते थे। जाधव ने जो बदला लेने के लिए उत्सुक था और निजामुल्मुल्क जो शाहू के अधिकारियों की लूटों का दमन करना चाहता था, सरलशकर के विरुद्ध एक सेना भेजी। वह गोदावरी से भीमा चला गया। उसकी सहायता के निमित्त शाहू ने बालाजी विश्वनाथ के नेतृत्व में जिसको उसने अब सेनाकर्त या सेना का प्रभारी अभिकर्ता की उपाधि से प्रतिष्ठित किया था एक सैनिक टुकड़ी के साथ आगे भेजा। बालाजी हैबतराव निम्बाल्कर से मिले और मोर्चा लेने के लिए वे दोनों पीछे हट कर पुरन्दर के पड़ोस में आए। एक युद्ध हुआ जिसमें मराठे जिस लाभ का दावा करते हैं उसका बाद को सल्पीघाट को उनके लौट जाने से खण्डन हो जाता है। रम्भाजी निम्बाल्कर के नेतृत्व में मुगल सेना की एक मराठा टुकड़ी ने पूना जनपद पर अधिकार किया और उसी के पड़ोस में रम्भाजी को एक जागीर दी गई। अन्त में एक समझौता हुआ जिसकी शर्तें मालूम नहीं है किन्तु संघर्ष बन्द हुए और मुगल औरङ्गाबाद को लौट गए। निर्मल ऋतु भर निजामुल्मुल्क की सेनाएँ प्रयाण करती रहीं। किन्तु वर्षा ऋतु में उनके शिविरस्थ होने पर विभिन्न सरदारों के नेतृत्व में मराठों ने अपनी लूट मार आरम्भ कर दी।

महाराष्ट्र के मुगल जनपदों में समस्त देशमुखों और देशपाण्डेयों ने अपनी रक्षा करने के बहाने अपने गाँवों की किलेबन्दी की। किन्तु वे बहुधा अपने देश-वासियों से मिलते या उनकी सहायता करते थे। वह चाहे जिस भी दल का हो, भागने, रक्षा करने या छिपाने में सहायता करते या उनसे मिल जाते थे। मुहम्मद इब्राहिम तब्रीजी के अधीनस्थ एक बड़ी टुकड़ी द्वारा रक्षित कोष के एक बहुत ही मूल्यवान्

कारवाँ पर सूरत और औरङ्गाबाद के रास्ते में आक्रमण किया। सेनाएँ पूर्णतया नष्ट की गईं और सामान ले जाया गया। यह लूट सम्भवतः खण्डी राव दाभडे ने की थी। कई वर्षों तक उस अधिकारी ने गुजरात और काठियावाड़ में कर वसूल कर अपने अनुयायियों का निर्वाह किया था। वह शाहू को अपना प्रमुख मानता था और जब दाउद खाँ की गुजरात में नियुक्ति की गई तो वह अहमदाबाद के पड़ोस को छोड़ कर नान्दोद और राजपीपली के आसपास के दुर्धर्ष प्रदेश में जा डटा। आक्रमण की प्रकृति से मालूम होता है कि अवरोधकों पर यह उसका पहला वेगवान् आक्रमण था।

निजामुल्मुल्क कोल्हापुर दल का पक्ष ग्रहण किए हुए था। इससे शम्भाजी का प्रभाव बढ़ा और शाहू का घटा। बहिरजी का पुत्र विख्यात संताजी का भतीजा, गूटी का प्रथम मुरार राव का भाई, सीदोजी घोरपडे शम्भाजी के पक्ष में होने को प्रलोभित किया गया। उसने उसको सेनापति की उपाधि से प्रतिष्ठित किया। घोरपडे घराने के काप्सी और मुधोल दोनों के, कई व्यक्ति, कोल्हापुर दल में सम्मिलित हुए। किन्तु सीदोजी और उसके मित्र सावनूर के पाटन नवाब कार्णाटक से नहीं लौटे और विजय और लूट की अपनी योजनाओं में ही लगे रहे। इसी समय के लगभग सीदोजी ने संदूर पर कब्जा प्राप्त कर एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि की। सन्दूर किला बेल्लारी के समीप एक बलवान् घाटी में स्थित है।

किशन राव कुट्टावकर नामक एक ब्राह्मण, जिसका उत्कर्ष मुगलों ने किया था, महादेव पहाड़ियों के समीप के क्षेत्र में आ डटा। वह किसी भी दल में सम्मिलित न हुआ, और अपने ही लिए जनपदों को लूटता था। पूना के चालीस मील पूरब में पटस के समीप हिंधी गाँव या हिंगन गाँव की एक गढ़ी को दमाजी थोराट ने दृढ़ किया और ३० मील के घेरे में अंशदान उगाहा। वह कोल्हापुर दल का था और अपने पुराने संरक्षक रामचन्द्र पंत के अतिरिक्त किसी को सरदार नहीं मानता था। सर्वप्रथम उनके ही कारण वह बना था और उनसे ही उसको जिंजी के घेरे के समय सोपा और पटस की जागीरें मिली थीं। मराठों की दृष्टि में भी वह एक आततायी था। रामचन्द्र के एक दूसरे अधिकारी उदाजी चवान ने जो हट्नी का निवासी था बत्तीस सरला की गढ़ी पर कब्जा किया और थोड़े ही समय में इतना शक्तिशाली हो गया कि शाहू को उससे समझौता करना पड़ा जिसके अनुसार सरला और कुरार की चौथ उसे प्रदान की गई जिसको वह निजी भत्ता के रूप में बहुत दिनों तक पाता रहा। और अन्य अनेक छोटे लुटेरे भी शम्भाजी की ओर हुए जिनमें से सबसे शक्तिशाली कान्होजी आंग्रिया था जिसके स्वामित्व में सावन्तवाडी से बम्बई तक का समुद्रतट था। वह कोंकण कल्याणी क्षेत्र में अपने आधिपत्य का विस्तार कर रहा था।

अराजकता की ऐसी स्थिति थी कि अकस्मात् भाग्य पलटे बिना तथा शाहू के शासन में अधिक कार्यकुशलता हुए बिना महाराष्ट्र में उसके शासन की धाक अवश्य ही जाती रहती। बालाजी विश्वनाथ ने उसके परामर्शदाताओं में जोश भरा और राजकाज में नेतृत्व करने लगा। उसने दमाजी थोराट का दमन करने का प्रस्ताव रखा और उस निमित्त से रवाना हुआ। एक सभा में भाग लेने को वह प्रलोभित किया गया और अपने मित्र आबाजी पुरन्दरी, अपने दोनों पुत्र बाजी राव और चिमनाजी तथा अपने लोगों के कई निजी आश्रितों के साथ विश्वासघात पूर्वक पकड़ा जाकर वह कारावास में डाला गया।

थोराट ने उनको धमकी दी कि यदि उसको छुड़ाई की एक बड़ी रकम न मिलेगी तो राख से भरे हुए घोड़ों के तोबड़े उनके मुँहों पर बाँधकर उनकी हत्या की जायगी। अनेक बेइज्जती सहने के बाद अन्त में उनकी छुड़ाई की रकम तय हुई जिसको शाहू ने चुकता किया। शाहू ने थोराट का दमन करने के लिए सचिव को आज्ञा दी। तदनुसार सचिव ने उस पर आक्रमण किया किन्तु उसके सैनिक परास्त हुए और सचिव और उसके मुतालिक (अभिकर्त्ता) पकड़े जाकर हिंगनगाँव में बन्दी रखे गए।

इसी समय सातारा में दो और अभियानों की तैयारी की गई। पहला, कोंकण की रक्षा और आंग्रिया को खदेड़ने के लिए बहिरो पन्त पिंगले पेशवा के अधीन; और दूसरा किशन राव कुट्टावकर का दमन करने के लिए बालाजी विश्वनाथ के कमान में। यह ब्राह्मण इतना धृष्ट और संशयरहित था कि उसने शाहू के सैनिकों का मुकाबला करने के लिए औंध को कूच किया किन्तु मुख्यरूप से श्रीपतिराव के साहस से उसकी पूर्ण पराजय हुई। वह परशुराम त्रिम्बक प्रतिनिधि का द्वितीय पुत्र था। उसने अपने पुत्र को कुछ ऐसा कार्य करने के लिए प्रेरित किया था जिससे कि उसके ज्येष्ठ भाई का कदाचार धुल जाय और उसके पिता की कारावास से मुक्ति हो। तदनुकूल शाहू ने फिर एक बार प्रतिनिधि को कारावास से मुक्त कर उसको पुनः प्रतिनिधि पद पर सुशोभित किया। पूर्ण अधीनता स्वीकार कर लेने पर किशन राव को क्षमा किया गया तथा इनाम में उसको कुट्टाव गाँव मिला जिसका एक अंश अब भी उसके वंशजों के पास है।

यह सफलता बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी किन्तु पेशवा के अभियान को उतनी सफलता न मिली। आंग्रिया ने बहिरों पंत को पराजित कर बन्दी कर लिया। उसने लोगढ़ पर अधिकार कर लिया, राजमाँची ने समर्पण किया, और यह सूचना मिली कि आंग्रिया सातारा को कूच करने वाला है। जितनी भी अतिरिक्त सैन्यशक्ति थी वह बालाजी विश्वनाथ के अधीन एकत्रित की गई। आंग्रिया से उसका पूर्व सम्बन्ध था।

अतः उसने इस आशा से कमान लिया कि शक्तिशाली पड़ोसी से लम्बे युद्ध के फलस्वरूप होने वाले समायोजन की अपेक्षा वह एक अधिक वांच्छनीय समायोजन कर सकेगा। बालाजी यह जानता था कि अंग्रिया बहुत ही साहसी और योग्य नेता है और उसके साधन उसके स्वामित्व के जनपदों के विस्तार तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि साहसिक और विस्तृत लूटमार पर मुख्यतया आधारित हैं। बालाजी के प्रयास सफल हुए और इस शर्त पर अंग्रिया शम्भाजी के पक्ष को त्यागने, पेशवा को मुक्त करने, राजमाँची को छोड़कर उसके समस्त भूभागों को लौटा देने तथा शाहू का पक्ष ग्रहण करने को तैयार हुआ कि उसे दस किले और सोलह किलेबन्दी किए हुए कम शक्ति के स्थान की, उनके अधीन गावों के साथ प्राप्ति की और उसके बेड़े के कमान की और उसकी सरखेल उपाधि की पुष्टि होगी।

इस समझौते से सीदी के हाथ से कुछ ऐसे स्थान निकल गए जहाँ का राजस्व वह बीस वर्षों से ले रहा था। इसके परिणामस्वरूप सीदी और अंग्रिया में तुरन्त ही मनमुटाव हुआ। अंग्रिया का पक्ष लेकर बालाजी विश्वनाथ ने सीदी के भू प्रदेश पर आक्रमण किया। सीदी को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

१७१४ ई०—बालाजी के इस कार्य से शाहू को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। बालाजी के सातारा लौटने पर शाहू ने उसकी बहुत आवभगत की। बहिरो पन्त पिंगले अपने कार्य में असफल था। अतः वह मुख्य प्रधान के पद से हटा दिया गया और उसके स्थान पर बालाजी विश्वनाथ नियुक्त किया गया और उसका मित्र आबाजी पुरन्दरी उसके मुतालिक के रूप में और रमाजी पंत भानू की फड़नवीस के पद पर पुष्टि की गई।

चन्द्रसेन जाधव के भाग जाने पर मन्नाजी मोरे को सेनापति के मान-वस्त्र दिए गए थे। किन्तु उन्होंने वे सेवाएँ नहीं कीं जिनकी उनसे आशा की जाती थी। अब उनको आज्ञा दी गई कि दमाजी थोराट का दमन करने के लिए वह और हैबतराव निम्बाल्कर बालाजी के साथ पूना जनपद को जाँय। बालाजी को यह डर था कि उस स्थान पर आक्रमण होने पर कहीं सचिव जो उस समय हिंगनगाँव में बन्दी था मार न डाला जाय। पंत सचिव की माता यशोबाई ने बालाजी पर दबाव डाला कि प्रकट युद्ध होने के पहले उसके पुत्र को छुड़ाने की कोशिश की जाय। तदनुसार ऐसा किया गया। यशोबाई ने अपने पुत्र की रक्षा किए जाने की कृतज्ञतावश पेशवा को सचिव के उन अधिकारों को उसे हस्तांतरित किया जो पूना जनपद में थे, तथा उसको पुरन्दर का किला भी दिया, जिससे कि उसके परिवार को जो उस समय ससौद में रह रहा था, एक शरण स्थान मिले। इसी बहाने से बालाजी ने शाहू से इसका एक पट्टा प्राप्त किया। इस रियायत को देकर

शाहू ने अपनी शृङ्खला की पहली कड़ी निर्माण की जिससे बाद को उसकी निजी शक्ति बँध गई और उसके उत्तराधिकारी ब्राह्मण-नीति के दिखावटी मूर्ति मात्र हुए।

पूना जनपद में जो सैन्यबल इकट्ठा किया गया वह थोराट के लिए अति शक्तिशाली था। उसने हिंगन गांव की गढ़ी में शरण ली। इस पर हमला किया गया। यह गढ़ी नष्ट कर दी गई और दमाजी थोराट बन्दी किया गया।

१७१५ ई०—राजा ने सरलशकर को सेनापति नहीं बनाया। अतः सरलशकर अप्रसन्न होकर गोदावरी को लौट गया और उसकी मैत्री फिर कभी नहीं हुई। पेशवा ने पूना जनपद के प्रभारी मुगल अभिकर्ता से सर्वोच्च अधिकार प्राप्त करने के लिए उसे राजी किया, इस शर्त पर कि रम्भाजी निम्बालकर के जागीर पर आँच न आने पाएगी। उसने तुरन्त ही एक स्थानीय लुटेरे दल का दमन किया, गाँवों में व्यवस्था स्थापित करने की ओर ध्यान दिया, राजस्व का ठीके पर दिया जाना रोक दिया और बहुत ही निम्न और धीरे २ बढ़ने वाले कर-निर्धारण के सामान्य ढङ्ग से खेतीबारी को प्रोत्साहन दिया।

सभी क्षेत्रों में मराठों के कामकाज अधिक अनुकूल मालूम होने लगे। इस उथलपुथल, निर्बलता, और पूर्ण अराजकता के बाद जिसका वर्णन अभी किया जा चुका है, शाहू के आधिपत्य में मराठों की शक्ति की इतनी तेजी से उत्कर्ष किसी भी दृष्टि से बहुत प्रशंसनीय है। और आरम्भ में जब तक कि कारण का पता न लगाया जाय बिल्कुल अविश्वसनीय मालूम होता है। इस राजकुमार का उत्कर्ष किस परिस्थितियों में हुआ, संतोषजनक रूप में समझाया जायगा। मराठों में जो घरेलू अशांति थी, उसका कारण, उनके लुटेरूपन की प्रतिक्रिया थी। उनका वर्तमान राज्य एक बाढ़ के रूप में था जिसकी कि कई धाराएँ पूर्णतया अवरुद्ध थीं।

बालाजी विश्वनाथ का प्रभाव बढ़ता गया और उनकी राय के बिना राजकाज का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया जाता था। सामनीति शाहू के अनुकूल थी और बालाजी की सब कार्यवाहियों में इसकी छाप थी। उनके सारे प्रबन्धों की नींव शिवाजी की प्रणाली थी किन्तु शम्भाजी ने अपने आधिपत्य को बनाए रखने के लिए उन प्रदेशों के अधिकार की पुष्टि के विलेख दिए जिन पर मराठे सरदार भविष्य में कब्जा करें। यह प्रणाली उनके राष्ट्र-सङ्गठन तथा साधनों दोनों ही के लिए विनाशकारी थी। उस प्रकार का कर जिसको शिवाजी की प्रतिभा ने स्थापित किया था अनन्त विभाजन की दवा का सुझाव था। नए प्रदेश पर कब्जा किए जाने पर ऐसे विभाजन होने की सम्भावना रहती है। जो उपाय किया गया उस पर अवश्य ही पर्याप्त समय तक विचार हुआ होगा। उपयुक्त स्थान पर इस पर विचार

किया जायगा। यद्यपि इससे अस्थायी रूप से उसके उद्देश्य की पूर्ति हुई, यह ब्राह्मण नीति की अत्यन्त चतुरतापूर्ण एवं अत्यन्त गहन युक्ति है। उनके धार्मिक प्रणाली से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जहाँ तक व्यवहार्य था इस मन्त्रिमण्डल में पूर्व नियुक्त अनुयायी रखे गए। उन लोगों के पद जो कोल्हापुर दल के पक्ष में थे, उनके निकट सम्बन्धियों को दिए गए।

इस समय जो मन्त्रिमण्डल बना उसमें निम्नलिखित व्यक्ति थे :

प्रतिनिधि—परशुराम त्रिम्बक

अष्ट प्रधान

१. पेशवा या मुख्य प्रधान—बालाजी विश्वनाथ
२. अमात्य—अम्बा राव बापू राव हनुमन्ते
३. सचिव—नारु शङ्कर
४. मन्त्री—नारु राम शेनवी
५. सेनापति—मानसिंह मोरे
६. सामन्त—आनन्द राव
७. न्यायाधीश—होनाजी अनन्त
८. पण्डित राव—मूदकल भट्ट उपाध्याय

लगभग इसी समय परसोजी भोसले और हैबत राव निम्बालकर की मृत्यु हुई। शाहू ने परसोजी भोसले के पुत्र कान्होजी भोसले की उसके पिता के समस्त स्वामित्व में पुष्टि की और उसको सेना साहब सूबा की उपाधि दी गई। किन्तु सरलशकर का पद उसके सम्पूर्ण अधिकार और प्रतिष्ठा के साथ दबलसी सोमवंशी को प्रदान किया गया। हैबतराव के पुत्र को उसका उत्तराधिकार नहीं दिया गया। अतः वह शाहू के पक्ष को छोड़ कर चन्द्रसेन जाधव से जा मिला, और बाद को उसे निजा-मुल्मुल्क से बरसी तथा अन्य जनपद जागीर में मिले।

शाहू में साधारण योग्यता की कमी नहीं थी : स्वभाव से वह उदार और समस्त धार्मिक संस्थाओं के प्रति मुक्तहस्त, हिन्दू धर्म के नियमों का पालन करने वाला और ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से दानशील। घाट माथा और ऊबड़खाबड़ कोंकण उसका जन्मसिद्ध अधिकार था, किन्तु अपने दृढ़ बाबा के समान वह घाटों पर चढ़ने का तथा पर्वतीय-जङ्गलों के घने भागों में भ्रमण करने और रहने का अभ्यस्त नहीं था। उसकी बाल्यावस्था शाही अन्तःपुर के घेरे में बीती थी। यह अचम्भे की बात नहीं है कि उस पर वहाँ की तड़कभड़क और विलासिता का प्रभाव पड़ने से उसकी आदतें एक मुसलमान की तरह बनी रही हों। कभी-कभी मराठा स्वभाव

की सम्पूर्ण हिंसा उसमें झलकती थी और थोड़े समय के लिए उसका क्रोध उसके अकर्मण्यता पर हावी हो जाता था। किन्तु साधारणतया उसके स्वयं के प्रति किए गए आदर और निष्ठा से, तथा उसकी आज्ञाओं के प्रति उसके मन्त्रियों द्वारा प्रदर्शित की हुई आज्ञापालन के दिखावे से वह सन्तुष्ट हो जाता था। राजकाज के नित्य परिश्रम से छुटकारा पाने और बाज द्वारा शिकार करने, मछली फँसाने और आखेट करने के अपने प्रिय मनोरंजन करने में उसको प्रसन्नता होती थी। वह यह नहीं समझ सका कि वह उस शक्ति को दूसरे के हाथों में सौंप रहा है जो उसकी निजी शक्ति का अतिक्रमण करेगा। मराठों का वैध शासक होने के नाते मुगलों द्वारा उसका आवभगत किए जाने से उस राष्ट्र का महत्त्व बढ़ा। उसके पद के कारण जो प्रतिष्ठा और अधिकार उसको प्रदान किए गए उससे शाहू का नाम प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली हुआ जो दूसरी परिस्थितियों में वह कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता था। शिवाजी के दोनों ही पुत्रों ने उसके तख्त पर बैठने के बाद से अपने पिता के आदर्श का अनुगमन किया और अपने को सदा स्वतन्त्र बनाए रहे। किन्तु शाहू यह मानता था कि वह दिल्ली तख्त का वशवर्ती है। अपने को हिन्दुओं का राजा कहने पर भी मुगलों से किए गए अपने पत्र-व्यवहारों में वह सदा यही दिखाता था कि वह साम्राज्य का एक जमींदार या प्रधान देशमुख मात्र है।

अपने राज्यारोहण के शीघ्र ही बाद सल्पीघाट के प्रकट युद्ध के समाप्त होने पर फर्रुखसीयर ने शाहू को दस हजारी पद पर नियुक्त किया और सत्रह महीनों तक अथवा निजामुल्मुल्क के प्रथम शासनकाल में उस सूबेदार की नीति और ओज ने मराठों को काफी दबा रखा था।

आरम्भ से ही फर्रुखसीयर सैयदों के प्रति ईर्ष्यालु था, जिनके कारण उसने अपने पद को प्राप्त किया था। पारस्परिक अविश्वास बढ़ा। वह छोटे सैयद, हुसेनअली खाँ को दक्खिन का सूबेदार बनाने को सहमत हुआ, इस आशा से कि दोनों भाईयों के पृथक हो जाने से उनकी शक्ति कमजोर हो जायगी और वह उनका विनाश कर सकेगा। हुसेनअली खाँ, जूलफिकर खाँ के उदाहरण का अनुगमन कर अपने प्रतिनियुक्त द्वारा शासन करना चाहता था। किन्तु सम्राट् के आश्वासनों का विश्वास कर वह दक्खिन को प्रस्थान करने के लिए सहमत हुआ। किन्तु उसने खुल्लमखुल्ला यह घोषित किया कि यदि उसके भाई के विरुद्ध कुछ भी सोचा-विचारा जायगा तो वह बीस दिन के अन्दर राजधानी में उपस्थित होगा। फर्रुखसीयर की आज्ञा से दाउद खाँ गुजरात को स्थानान्तरित किया गया था। किन्तु अब उसने उस अधिकारी के पास नए सूबेदार का विरोध करने के लिए गुप्त आदेश भेजे और यह वचन दिया कि सफल होने पर वह सैयद के स्थान पर दक्खिन के छहों सूबों का सूबेदार नियुक्त

किया जायगा। दाउद खाँ का मराठों पर प्रभाव होने तथा अन्य कारणों से इस काम को करने के लिए वह विशेष रूप से उपयुक्त माना गया। इसने तुरन्त ही इस कार्य को स्वीकार किया। नीमाजी सिंधिया एक अकेला मराठा था जिसने उसका साथ दिया। यह वही मराठा था जो मराठों में कलह होने पर उस समय के मुगल सूबेदार जूलफिकर खाँ से मिल गया था और औरङ्गाबाद के समीप एक जागीर मिलने ही से सन्तुष्ट हुआ था। इस मौके पर भी उसने वही अवसरवादी नीति अपनाई; और जब हुसेनअली खाँ और दाउद खाँ में युद्ध आरम्भ हुआ तो युद्ध के परिणाम की प्रतीक्षा में, नीमाजी सिंधिया, दूर ही घोड़ा दौड़ाता रहा। दाउद खाँ के मरने पर जब उसने देखा कि हुसेनअली विजयी हुआ है तो वह विजेता को बधाई देते हुए उसकी सेना में आ मिला।

१७१६ ई०

अपनी विश्वासघातक युक्ति में असफल होने पर भी वह सैयद भ्राताओं का विनाश करने पर तुला हुआ था। अतः वह सौहार्द का अत्यन्त दिखावा कर, अपने राजभृत्यों को तथा मराठों को सूबेदार के शासन के प्रति गुप्त रूप से उत्तेजित करता था। यह तुच्छ और मूर्खतापूर्ण नीति का अन्त में उपयुक्त प्रतिफल होना ही था।

खण्डी राव दाभाडे ने सूरत और बुर्हानपुर के बीच में चौकियों की एक श्रृङ्खला स्थापित कर रखी थी। जो यात्री उसके पारपत्र को नहीं खरीदते थे, उनके सामान का चौथाई वह आहरण करता था। अतः हुसेनअली खाँ ने प्रथम अभियान इस मराठा के लूट मार का दमन करने तथा सूरत और बुर्हानपुर के बीच में सञ्चार व्यवस्था बनाए रखने के विरुद्ध आरम्भ किया। जूलफिकर बेग के अधीन आठ हजार सैनिक इस लुटेरे को नष्ट करने के लिए भेजे गए। इस प्रयाण की सूचना पाकर दाभाडे उनके रास्ते में आ गया और सामान्य रूप से अपना पीछा किया जाने दिया। जब मुगल तितर बितर हो गये, चक्कर लगा कर वह फिर उसी स्थान पर आ गया और उनकी सेना को पूर्ण रूप से पराजित कर, उनके सेनापति को मार डाला और सैनिकों के कपड़े तक छीन लिए।

इस अपमानजनक पराजय का बदला लेने के लिए चन्द्रसेन जाधव को साथ लेकर महुकुब सिंह ने जो हुसेनअली खाँ का दीवान था, प्रस्थान किया। खण्डी राव ने सरलशकर के सैनिकों से एक संयुक्त मोर्चा बनाया और अहमदनगर के समीप मुगलों से युद्ध किया। एक घमासान युद्ध हुआ जिसमें दोनों दल अपनी जीत बताते हैं, किन्तु मुगल औरङ्गाबाद को लौट गए। खण्डी राव दाभाडे दरबार में बहुत दिनों से अनुपस्थित था, इन सफलताओं के बाद वह सातारा आया, शाहू के प्रति अपना सम्मान सूचित किया और वह साम्राज्य के सेनापति के पद पर सुशोभित किया गया।

मन्नाजी मोरे अपनी अयोग्यता और कदाचार के कारण इस पद से हटाए जा चुके थे। फरुखसीयर के गुप्त समझौते की बातचीत चलाने और अपनी सफलता से प्रोत्साहित होकर मराठा अधिकारियों ने अपने को समर्पण किया और अपनी सब माँगों के बदले चौथ लेना स्वीकार किया था। किन्तु अब वे सब स्थानों पर देशमुखी उगाहने लगे।

उस समय हुसेनअली खाँ एक ओर मराठा लुटेरों से परेशान था, और दूसरी ओर दरबार के षड्यन्त्रों से। उसने शाहू से समझौता किया। राजाराम ने शङ्कराजी मल्हार जो पहले शिवाजी के अधीन एक कारकुन रह चुका था, और जिसको राजाराम ने जब वह जिंजी में थे, सचिव नियुक्त किया था, जिंजी पर आक्रमण होने पर सेवा से निवृत्त होकर बनारस चला गया था। किन्तु वहाँ का जीवन उसके पूर्व आदतों के अनुरूप नहीं था। अतः अत्यन्त वृद्ध होने पर भी उसने हुसेनअली खाँ की सेवा स्वीकार कर ली। जब वह दक्खिन में सूबेदार होकर आया, वह शीघ्र ही अपने स्वामी का विश्वासपात्र हुआ और आरम्भ से ही सातारा स्थित पुराने मित्रों से पत्र-व्यवहार करने लगा। उसने सूबेदार को यह समझाया कि यदि मराठों के दावों को मान्यता दी जाय तो वे देश की समृद्धि में रुचि लेंगे। शान्ति स्थापित करने का तथा शक्तिशाली मित्रों को प्राप्त करने का यही निश्चित एकमात्र तरीका है जिसकी सहायता से वह वर्तमान षड्यन्त्रों से सुरक्षित होकर अन्त में सम्राट् के बद्धवैर की अवज्ञा कर सकता है।

इस बात की पुष्टि मुहम्मद अनवर खाँ ने भी की जो बुर्हानपुर का राज्यपाल था और जिस पर हुसेनअली खाँ का बहुत विश्वास था। अतः मुगलों और मराठों में एक समझौता तथा मित्रता कराने के उद्देश्य से शंकराजी मल्हार सातारा भेजे गए।

इस मिशन से उच्चाकांक्षी बालाजी विश्वनाथ को बड़ी आशाएँ हुईं। दक्खिन के छः सूबों की जिसमें बीजापुर तथा हैदराबाद अधीनस्थ कार्णाटक और मैसूर, त्रिचनापल्ली और तञ्जोर करद राज्यों समेत सम्मिलित थे। चौथ और सरदेशमुखी के अतिरिक्त, शाहू ने महाराष्ट्र के उस समूचे भूभाग की माँग की जो शिवाजी के स्वामित्व में थी। खानदेश में जो भूभाग उसके स्वामित्व में था उसको उसने छोड़ दिया किन्तु इसके बदले में पुराने जनपदों से लगे हुए पूरब में पण्ढरपुर तक के भूभाग की उसने माँग की। यह भी माँग की गई कि शिवनेर का किला खाली किया जाय और त्रिम्बक का किला लौटा दिया जाय। कार्णाटक के पुराने जनपदों की भी माँग की गई और गोंडवाना तथा बरार में सेना साहब सूबा, कान्होजी भोसले द्वारा हाल

ही में विजित कुछ प्रदेशों की पुष्टि तथा शाहू की माता और परिवार को जितना शीघ्र सम्भाव्य हो दिल्ली से वापस आने की माँग की गई।

इन शर्तों पर शाहू ने शाही कोष को यह कर देने की प्रतिज्ञा की : पुराने प्रदेश के लिए दस लाख रुपये का पेशकस; पूरे राजस्व के दसमांश या सरदेशमुखी के बदले उसने देश की रक्षा करने, हरेक प्रकार की लूट का दमन करने, चोरों को दण्ड दिलाने, या चोरी गई राशि को लौटाने और वार्षिक आय पर छ सौ इक्यावन प्रतिशत की फीस चुकता करने; चौथ के बदले में शाहू पन्द्रह हज़ार अश्वारोहियों का एक दल रखने को सहमत हुआ जो विभिन्न सूबों के अधिकारियों तथा सूबेदार और फौजदार के अधीन रखे जाते; किन्तु चौथ के पट्टे के बदले में कोई फीस नहीं देना था। शम्भाजी के अनुयायी कार्णाटक और बीजापुर और हैदराबाद के सूबों को लूटते थे। सन्धि के अन्तिम रूप से तय हो जाने के दिनांक से शाहू ने लुटेरों को वहाँ से साफ करने तथा उन प्रान्तों के निवासियों को भी हर एक क्षति की पूर्ति करने का वचन दिया।

१७१७ ई०--शङ्कराजी मल्हार अपने देशवासियों को लाभ पहुँचाने की अपनी इच्छा को पर्याप्त रूप से प्रमाणित कर चुका था जिसको शाहू ने उन शर्तों को तय करने के लिए नियुक्त किया जिनको उपर्युक्त प्रस्थापनाओं के अनुसार, कुछ अपवादों को छोड़ कर, हुसेनअली खाँ ने स्वीकृत किया था। वे प्रदेश और किले जो सूबेदार के नियन्त्रण में नहीं थे, शाहू को उनको सुभीते से, या जिस भी प्रकार से वह उपयुक्त समझे प्राप्त करना था। इसी बीच में दस हजार अश्वारोहियों का एक दल सूबेदार की सेवा में भेजा गया। सन्ताजी और परसोजी भोसले जो सेना साहब सूबा के सम्बन्धी थे, उदाजी पवार, विश्वास राव तथा अन्य अनेक सेनापति के प्रभार में मराठा सैनिक रखे गए। जनपदों की दशा का पता लगाने तथा राजस्व के विस्तृत अंश को जो अब उनको दिए गए थे एकत्रित करने के लिए अभिकर्ता भेजे गए। उधर ब्राह्मण मन्त्रिगण अपने पेचीदे अधिकारों की पूर्ति करने के लिए एक ढङ्ग निकालने की युक्ति कर रहे थे। क्योंकि उनके लाभ या उद्देश्य की पूर्ति इसको सरल करने में नहीं थी।

१७१८ ई०—सम्राट् ने उस सन्धि को जिसका कि आदान प्रादान हो चुका था, अनुसमर्थन करना अस्वीकार किया। एक अयोग्य मुँहलगा उसको सैयद भ्राताओं के विनाश करने के षड्यन्त्र में बहुत उत्साहित करता था, अतः वह अपने उपायों में कम सावधान रहने लगा और एक खुल्लमखुल्ला मनमुटाव अनिवार्य मालूम होने लगा। अतः हुसेनअली खाँ ने दिल्ली को प्रयाण करने की तैयारी की और इसमें शाहू की सहायता माँगी गई। इस अवसर की उपेक्षा नहीं की गई। बालाजी विश्व-

नाथ और खण्डी राव दाभाडे ने सूबेदार से संयुक्त होने के लिए एक बड़ी सेना लेकर प्रस्थान किया, जिसके लिए सूबेदार ने उनको नर्मदा पार करने की तारीख से उनके लौटने तक प्रतिदिन एक निश्चित रकम देने को सहमत हुआ। इसके अतिरिक्त हुसेन-अली खाँ ने यह प्रतिज्ञा की कि सन्धि की पुष्टि की जाय और शाहू का परिवार मुक्त किया जाकर उसके अधिकारियों को सौंपा जाय। शाहू ने बालाजी विश्वनाथ को जब वह प्रस्थान करने वाले थे यही आदेश दिया कि यदि सम्भव हो सके तो दौलता-बाद और चान्दह के किलों को प्राप्त करने और गुजरात और मालवा में उस कर को उगहने का जिसको कुछ दिनों से मराठों ने लगा रखा था प्रयत्न किया जाय। जिस बहाने से इन करों के उगाहने की यह असाधारण न्यायपूर्ण मांगें की गई थीं, वह यह था कि वे सरदार जो अब तक इन प्रान्तों में अंशदान उगाहते थे, टूट पड़ेंगे तथा लूटेंगे, जब तक कि शाहू को ऐसा अधिकार न दे दिया जाय जिससे कि ये सरदार अपने प्रचलित अंशदानों के लिए उसके अनुगृहीत हों और वह इन शर्तों पर उन प्रदेशों की उन्नति और रक्षा के लिए उत्तरदायी होगा।

संयुक्त सेना ने दिल्ली को प्रयाण किया जहाँ अभागा फर्रुखसीयर जो अपने कामों में उतना ही अस्थिर था जितना कि षड्यन्त्रों में धृष्ट कोई तदनुकूल कार्य करने के लिए राजी न किया जा सका। वह जितना ही दब्बू था उतना ही कपटी। वे मित्र जो उसका साथ देते थे वे हटाए जाने दिए गए और अन्त में कुछ उथल-पुथल के बाद सैयद भ्राताओं ने उसको बंदी किया और बाद को वह मार डाला गया। शाही घराने के दो राजकुमार, एक दूसरे के बाद गद्दी पर बैठे और सात महीने के अन्दर उनकी मृत्यु हुई।

१७१६ ई०—इसके बाद सुलतान मुअज्जम के प्रपौत्र जहांदर शाह के पुत्र रोशन इख्तियार को मुहम्मद शाह की उपाधि से शाही गरिमा प्रदान की गई किन्तु दोनों सैयद भ्राता जिनके द्वारा ये सब परिवर्तन होते थे, सम्पूर्ण प्रभुता से तथा हड़पने वालों की सामान्य सावधानपूर्ण ईर्ष्या से साम्राज्य के राजकाज को सञ्चालित करते थे। बड़ी कड़ाई से वे शासन की बागडोर थामे हुए थे। किन्तु वे जैसा कि आशा की जा सकती थी ऐसे अनुभवी और योग्य सामन्तों की सेवाओं को बनाए रखने के लिए उत्सुक थे, जो उनके दल के विरोधी नहीं समझे जाते थे। निजामुल्मुल्क ऐसे ही सामन्तों में था। किन्तु यह अधिकारी उनकी शक्ति का गुप्त रीति से विरोधी था। हुसेनअली खाँ को जगह देने के लिए वह दक्खिन के शासन से हटा दिया गया था। और दक्खिन से हटाया जाकर वह मुरादाबाद में नियुक्त किया गया, जहाँ उसने कुछ विद्रोही जमींदारों का दमन करने में नाम कमाया। सम्राट् ने उसको दरबार में बुला लिया और वह कुछ दिन तक दिल्ली में खाली बैठने के बाद अन्त में ज्येष्ठ सैयद

की सिफारिश पर मालवा का राज्यपाल बना कर भेजा गया। साहसी और उच्चाकांक्षी होते हुए भी वह अपने पिता की तरह अवसरवादी था। फर्रुखसीयर के कैद होने के बाद उसने दिखावटी सम्राट् के प्रति निष्ठावान् होने का बहाना किया जिसको सैयद भ्राताओं ने सिंहासनारूढ़ किया था। वह मालवा में शासन करता रहा किन्तु यह देख कर कि कुछ संकट और उथलपुथल होने वाली है, अपना विवर्धन करने के लिए वह अनुकूल अवसर की ताक में रहा।

१७२० ई०—मुहम्मद शाह के आरोहण तक बालाजी विश्वनाथ और उनके मराठे दिल्ली में रहे। फर्रुखसीयर के कैद होने के पहले जो उथल-पुथल हुई उसमें सन्ताजी भोसले और पन्द्रह सौ उसके आदमी दिल्ली की सड़कों पर जनता द्वारा मारे गए। समझौते के अनुसार सैयद भ्राताओं ने सेना का वेतन चुकता किया और शाहू की माता और परिवार को बालाजी विश्वनाथ को सौंपा। पेशवा और सेनापति दोनों ही दक्खिन लौटने को उत्सुक थे। उनको जाने की अनुज्ञा दी गई और हुसेन अली खाँ से की गई सन्धि के अनुसार चौथ, सरदेशमुखी और स्वराज्य के लिए उन्हें तीन शाही पट्टे[1] मिले : चौथ[2] या दक्खिन के छहों सूबों के कुल राजस्व का चौथाई। इसमें हैदराबाद और बीजापुर दोनों कार्णाटिक, और तन्जोर, त्रिचनापल्ली और मैसूर के करदराज्य भी सम्मिलित थे; सरदेशमुखी[3] या चौथ के अतिरिक्त दस

---

[1] मूल पट्टे सातारा के राजा के पास हैं जो १७१९ में मुहम्मद शाह के नाम से दिए गए थे। सम्राट् मुहम्मद शाह का राज्यारोहण १७२० तक नहीं हुआ था। गद्दी पर उसके बैठने और फर्रुखसीयर के राज्यारोहण के बीच में दो राजकुमार गद्दी पर बैठे थे किन्तु अभिलेखों से उनके नाम निकाल दिए गए हैं।

[2] एक विलेख द्वारा दक्खिन के छहों सूबों के कुल राजस्व का चौथाई शाहू को इस शर्त पर दिया गया कि वह फौजदार (सैनिक अधिकारी) को प्रदेश में व्यवस्था रखने में सहायता देने के लिए पन्द्रह हजार अश्वारोहियों की एक टुकड़ी रखेगा।

[3] सर देशमुखी के पट्टे में यह उल्लेख नहीं है कि यह वंशागत अधिकार के रूप में दिया गया है किन्तु ऐसे अवसर पर लगने वाला शुल्क करण के पीछे लिखा हुआ है। इससे दक्खिन के छहों सूबों के अनुमानित राजस्व का पता चलता है। जनपदों की जनसंख्या कम हो जाने के कारण अनुमानित शुल्क कम करके रुपया ११७,१९,३६० कर दिया गया था।

	रु०	आ०	पै०
औरङ्गाबाद सूबा	१२३,७६,०४२	११	३
बरार सूबा	११५,२३,५०८	१४	३

प्रतिशत; स्वराज्य[४] यह वे जनपद जो शिवाजी की मृत्यु के समय उनके स्वामित्व में थे और जो शाहू को प्रदान किए गए थे। खानदेश के छिटपुट अधिकृत भूक्षेत्र, निकटस्थ जनपद सहित त्रिम्बक का किला, और वर्धा और तुङ्गभद्रा नदियों के दक्षिण के वे विजित प्रदेश जो प्रदान नहीं किए गए थे, सम्मिलित नहीं थे। उन प्रदेशों पर के दावे के बदले में जो भीमा नदी के उत्तर में थे, तत्तेरा से मचिन्द्रगढ़ तक के किलों की पंक्ति के पार पूरब में पण्डरपुर तक के जनपद पूर्णतया शाहू को दिए गए। इसमें वे जनपद भी सम्मिलित किए गए जिनको औरङ्गजेब ने शाहू को देने को कहा था, जब उसका विवाह सम्राट् के शिविर में हुआ था। चैरला, मान और नीरा नदियों से सिंचित प्रदेश जो अच्छे घोड़ों और दृढ़ सैनिकों के लिए विख्यात थे और जिसमें महाराष्ट्र के कुछ अत्यन्त प्राचीन वंश रहते थे जिन्होंने शिवाजी के वंशज को औपचारिक रूप से अब तक स्वीकार नहीं किया था, इस अर्पण से शाहू के अधीन हुए।

मराठे यह दावा करते हैं कि परसोजी और कान्होजी भोसले द्वारा विजित प्रदेश तथा गुजरात और मालवा में उगाहने के उनके अधिकार की भी पुष्टि इसी समय की गई, चाहे कुछ अत्यन्त अनिश्चित, मौखिक वचन ही दिए गए हों, और जैसा कि अभिकथन किया जाता है कि बालाजी विश्वनाथ ने इस काम के लिए देवराव हिंगनी नामक एक वकील को वहाँ छोड़ा था। फिर भी बाद की घटनाएँ इस दृढ़ोक्ति की झुठाई प्रमाणित करती हैं। शाही विलेखों से इसकी कोई पुष्टि नहीं होती। सरदेशमुखी के पट्टे के पीठ पर वंशागत अधिन्यास पर लगने वाले सामान्य शुल्क का उल्लेख है। किन्तु इन तीनों में से एक भी चिरस्थायी अन्य संक्रामण के रूप में नहीं दिए गए थे।

बीदर सूबा	७४,६१,८७६	१२	३
बीजापुर सूबा	७८५,०८,५६०	१४	१
हैदराबाद सूबा	६४८,६७,४८३	०	०
खानदेश सूबा	५७,४६,८१६	०	३
रुपया	१८०५१,१७,२६४	६	१
अनुमानित सरदेशमुखी, रुपयों में	१८०,५१,७३०	०	०
पेशकश या वंशागत अधिकारों के प्रदान किए जाने पर निर्धारित शुल्क ६५१%	११७५,१६,७६२	०	०
विलेख दिए जाने पर ¼ की तुरन्त अदायगी	२९३,७८,१९०	८	०
किश्तों में देय	८८१,३७,५७१	८	०

[४] स्वराज्य के पट्टे में निम्नलिखित सोलह जनपदों की एक सूची दी हुई है।

दिल्ली को प्रस्थान करते समय बालाजी विश्वनाथ ने अपने दीवान आबाजी पुरन्दरी को अपना मुतालिक या प्रतिनियुक्त तथा अपने पद की मुहर का प्रभारी बनाया। मराठा दरबार में पेशवा के सरकारी काम बालाजी के नाम से होते रहे। जब वह शाही विलेखों को लेकर सातारा लौटे तो राजस्व को एकत्रित और विभाजन करने की योजना की जाँच की गई, जिसको जैसा सब स्वीकार करते है, उसने चालू की थी। इस प्रणाली का पहले उल्लेख हो चुका है। यह आंशिकरूप से प्रचलित की जा चुकी थी और अब व्यापक रूप से प्रचलित की गई। राजस्व के एकत्रित और विनियोग करने की उनकी प्रणाली के एक संक्षिप्त विश्लेषण से जनता की विशेषताओं और ब्राह्मण-शक्ति की प्रकृति की, जितनी की इस विषय से आशा की जा सकती है, उससे अधिक प्राप्त होती है। मराठों के सामान्य हित का परिरक्षण तथा मुगलों पर अतिसर्पण करने का बहाना प्रदान करने की अपनाई हुई प्रणाली का इससे न केवल स्पष्टीकरण होता है, बल्कि यह उस भ्रमसिद्ध युक्ति का भण्डाफोड़ करता है जिससे अपढ़ मराठे सरदार अपने ब्राह्मण लेखाकार पर पूर्णतया आश्रित हो जाते हैं।

दक्खिन के छहों सूबों की सरदेशमुखी या राजस्व का दस प्रतिशत अलग कर लिया जाता था। मंत्रिगण इसे राजा का वतन कहते थे। यह शब्द प्रत्येक मराठा को चाहे वह राजकुमार हो या किसान सन्तोषप्रद था।

इन प्रदेशों का वैसे ही अत्यन्त शोषण हो चुका था। सरदेशमुखी लागू करने से इनके राजस्व उसी अनुपात से और भी कम हो जाते थे। फिर भी नाममात्र का राजस्व वही बना रहा। इस समय सम्भवतः मानक करनिर्धारण का चौथाई भी एकत्रित कर लेना असम्भव था। किन्तु हर हालत में मराठे अपनी चौथ के बदले में वास्तविक शेष का कम से कम पच्चीस प्रतिशत प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। यद्यपि वे इसे उगाहने में कदाचित् समर्थ होते थे किन्तु वे सदा ही चौथ को टंका या मानक कर-निर्धारण पर बकाया दिखलाते थे। यदि पलटा देने का कोई दिन आ भी

---

१. पूना, २. सोपा, बारामत्ती समेत; ३. इन्दापुर, ४. वइ, ५. मावलें, ६. सातारा; ७. कुरार, ८. कुट्टाव, ६. मान, १० फल्टन, ११. मलकापुर, १२. तार्ला, १३. पन्हाला, १४. अजेराह, १५. जुन्नर, १६. कोल्हापुर। कोपल, गड्डुक हलियाल तथा शिवाजी द्वारा विजित सब किले सहित तुङ्गभद्रा के उत्तर के परगने। कोंकण जिसमें १. रामनगर गड्डावी समेत, २. जोवर, ३. चौल, ४. भीमगढ़, ५. भीमरी, ६. कल्याणी, ७. राजपुरी, ८. दाभोल, ६. जाव्ली, १०. राजापुर, ११. फोण्डा, १२ अकोलह, १३ कूदल सम्मिलित हैं।

जाय, तो मुगल इस शीर्षक के अन्तर्गत पेशकश की कोई माँग नहीं कर सकते थे, क्योंकि विलेख पर इसका कोई भी उल्लेख नहीं था।

जहाँ तक सरदेशमुखी का सम्बन्ध है, इस दावे की परिभाषा न देना उनके विदेशी और घरेलू नीति के उपयुक्त था। किन्तु एक प्रणाली अर्थात् अधिक से अधिक आहरण करना, व्यवहार में उतनी ही सरल थी जितनी कि निरपवाद।

मुगलों के लिए ७५ प्रतिशत बचता था उसमें से तिहाई अर्थात् २५ प्रतिशत प्रचलित रीति के अनुसार फौजदार लेता था। शेष की उगाही कभी २ शाही कोष के लिए की जाती थी, किन्तु साधारणतया किसी जागीरदार के लिए की जाती थी जिसको सेना के निर्वाह के लिए दक्खिन के मुगल विजित क्षेत्र सौंपे जाते थे। दक्खिन में निजाम और पेशवा के बीच में जो युद्ध हुए थे और जो जागीरें ग्रहण, पुनर्ग्रहण और अदल-बदल की गई थीं उनके नाम पर प्रदेशों का जो अभिग्रहण, पुनर्ग्रहण और अर्पण हुआ उसका कारण विनियोग की यह व्यापक प्रणाली थी। महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन द्वारा पिछली विजयों के समय तक भी अनेक गाँवों में ऐसी चलन थी—और यह उपर्युक्त प्रणाली के कारण थी—कि जागीर शीर्षक के अन्तर्गत शुद्ध राजस्व का पचास प्रतिशत रखा जाता था। एक शताब्दी से कम समय बीत जाने पर भी कुलकर्णी अपने पूर्वजों की चलन के कारण ऐसा करते थे और इसके अतिरिक्त कोई कारण नहीं बता सकते थे।

आरम्भ में स्वराज शब्द तुंगभद्रा नदी के उत्तर के उस क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होता था जो शिवाजी की मृत्यु के समय उनके स्वामित्व में था। बालाजी विश्वनाथ के लौटने पर सरदेशमुखी के अतिरिक्त समस्त मराठा दावों के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ। सरदेशमुखी के अतिरिक्त, इन दावों का चौथाई हिस्सा अथवा पच्चीस प्रतिशत राजशीर्षक के अन्तर्गत विनियोग किया गया। इस चौथाई भाग को राजा की बबती[1] कहते थे और शेष को मोकासा।[2]

मोकासा में के दो भाग राजा के अधीन थे। उनमें से एक सहोत्र या छः प्रतिशत, और दूसरा नारगौन्ड (नाद गाउद)[3] या ३ प्रतिशत। इनका परिकलन

---

[1] बबती शब्द बावत (विषय) से बना है। इसका अर्थ है राजा के विषय या मद का राजस्व।

[2] इस शब्द की उत्पत्ति बीजापुर के राजस्व अधिकारी के पुराने नाम 'मोकासादार' से है।

[3] नारगौन्ड कन्नड शब्द नाद (प्रदेश, जनपद) गावउद (मुखिया) का अपभ्रंश है। यह शब्द सर (मुख्य) पटेल का पर्यायवाची है।

संपूर्ण स्वराज पर होता था। मोकासा का शेष समस्त मराठा दावे का ६६ प्रतिशत था जिसमें सरदेशमुखी सम्मिलित नहीं था।

शाहू ने सहोत्र को वंशागत समनुदेशन के रूप में पंत सचिव को प्रदान किया किन्तु उन क्षेत्रों में जिनका स्वामित्व पूर्णतया मराठों के हाथ में था सचिव के निजी अभिकर्त्ता सहोत्र उगाहते थे। दूर के जनपदों में इसे वसूल करने के लिए राजा पृथक संग्राहकों को भेजता था। राजा की इच्छा पर नारगौण्ड विभिन्न व्यक्तियों को प्रदान किया जाता था। कोष से वेतन के अतिरिक्त प्रधानों को इनाम-गाँव प्रदान किए जाते थे। बालाजी विश्वनाथ को निजी जागीर के रूप में पूना के आसपास के कई जनपद मिले थे जिनमें लोगढ़ किला भी सम्मिलित था। प्रतिनिधि, पेशवा और पंत सचिव को राजा के लिए बबती एकत्रित करने का प्रभार सौंपा गया था। इस तरह पंत सचिव के सहोत्र के लिए बबती और सरदेशमुखी उगाहने के लिए समनुदेशिती की जो इसका मालिक था नारगौन्ड उगाहने के लिए, और मोकसा उगाहने के लिए जो सैनिकों के निर्वाह के लिए विभिन्न अधिकारियों को दिए जाते थे पृथक-पृथक अभिकर्त्ता थे।

मोकासा बहुसंख्यक सरदारों को सैनिक-जागीर के रूप में प्रदान किया जाता था। इस पर राज्य के प्रमुख को देने के लिए, परिस्थिति के अनुसार, रुपये तथा सैनिकों के रूप में देय का बोझ थी। पुराने मराठा जागीरदारों के जनपद चौथ से मुक्त थे किन्तु उनको साधरणतया सरदेशमुखी और घोड़ों का निर्धारित कोटा देना होता था किसी बड़े क्षेत्र के मोकासा के पट्टे में ऐसी जागीरों का सदा कटौती के रूप में उल्लेख होता है और जनपदों के विजय किए जाने के बहुत पहले उनके राजस्व के ओपचारिक पट्टे और समनुदेशन बांटे जाते थे। शाहू ने भूमि-क्षेत्रों और पूरे गाँवों की अगणित निजी जागीर और इनाम संक्रमण किए। जागीर के बदले में कुछ सेवा करनी होती थी, किन्तु इनाम पर पूर्णतया पूर्ण स्वामित्व था। इस प्रकार से स्वीकृत राजस्व को इकट्ठा करने के लिए राजा की दी हुई शक्ति आवश्यक समझी जाती थी। किन्तु जिस शक्ति की वे लगातार मांग कर रहे थे उपहास मात्र थी। ब्राह्मणों ने शीघ्र ही प्रमाणित कर दिया कि कम से कम अपने निजी संतोष के लिए, राजा की सनद उन जनपदों में कर उगाहने के लिए पर्याप्त है, जिनका शाही विलेखों में उल्लेख नहीं है। यदि कोई जनपद एक बार अभिभूत हो जाय तो यह समझा जायगा कि वह प्रचलन से तथाकथित करद है। किन्तु दूसरे अधिकार-लेख के कारण शेष जनपद लूटे जाते थे।

निम्नलिखित प्रकार से देश के विशेष क्षेत्र मुख्य अधिकारियों को दिए गए। पेशवा और सेनापति को जो राजा के व्यक्तिगत सैनिकों के एक बड़े अंश का प्रभार

ग्रहण किए हुए थे प्रदेश की प्रतिरक्षा और पूर्णरक्षा की ओर ध्यान देने की आज्ञा दी गई। पेशवा को खानदेश में तथा बालाघाट के कुछ भागों में सरकारी करों को उगाहने की शक्ति दी गई और सेनापति को बागलान में इसी प्रकार का अधिकार और गुजरात में चलन के अनुसार राजस्व उगाहने का अधिकार सौंपा गया। कान्हों जी भोसले को जो सेना साहब सूबा था बरार का पायान घाट दिया गया उसको गोंडवाना के पूरब में विजय करने तथा कर उगाहने का अधिकार दिया गया। सरलशकर के पास गंगथडी थी जिसमें औरङ्गाबाद का भी हिस्सा सम्मिलित था। फतह सिंह भोसले को कार्णाटक में नियुक्त किया गया। नीरा से वर्ना तक के पुराने क्षेत्र का पूर्ण प्रभार प्रतिनिधि को तथा राजा के आसन्न अभिकर्त्ताओं को सौंपा गया। कोंकण के अनेक जनपदों का विशेष प्रभार चिटनीस को दिया गया। पन्त सचिव अपनी जागीर के पुराने स्वामित्व के अतिरिक्त सम्पूर्ण सहोत्र के राजस्व का भोग करता था। राजा के जमीन्दारी का बकाया वसूल करने वाले अभिकर्त्ता सरदेशमुख कहलाते थे।

कान्होजी अंग्रिया जिसके जनपद कोंकण में पड़ते थे, सब राष्ट्रों के जहाजों को जो तट पर दिखाई पड़ते थे, लूट कर चौथ उगाहता था। कुछ समय तक अंग्रिया अंग्रेजों को तंग करने से हाथ खींचे रहा। किन्तु उसके द्वारा ब्रिटिश झण्डे की सक्सस नामक जहाज पकड़ लिए जाने के फलस्वरूप १७१७ में युद्ध फिर छिड़ा और रामकमत[1] नामक एक ब्राह्मण से षड्यंत्र कर उसने बम्बई उपनिवेश को खतरे में डाल दिया। राज्यपाल श्री चार्ल्स बून ने इस ब्राह्मण को सिपाहियों के कमान और गोपनीय काम पर लगा रखा था। परिषद् के सभापति के रूप में श्री फिप्स के पदारोहण पर युद्ध बड़ी तेजी से चलाया गया किन्तु कान्होजी अंग्रिया अंग्रेजों और पुर्तगालियों के प्रयासों की खिल्ली उड़ाता रहा जो उसकी लूटों का दमन करने के लिए एक हो गए थे। अंग्रिया राजा को बन्दूक, तोप, सैनिक-सामान और गोला-बारूद कर के रूप में देता था। कभी २ वह यूरोप और चीन की वस्तुओं का उपहार अर्पण करता था उसको कभी २ राजद्रोहियों को फाँसी देने का एक बहुत ही असाधारण काम सौंपा जाता था।

---

[1] राम एक शेनवी या गौड़ सारस्वत ब्राह्मण था। कामत एक सामान्य शेनवी उपनाम है जिसको उस समय के अभिलेखों में कामती लिखा गया। उसके लेखक के संस्वीकृति तथा एक चिट्ठी के आधार पर जो बाद को एक जालसाजी प्रमाणित हुई राम कामत को आजीवन कारावास का दण्ड मिला और उसकी सम्पत्ति जब्त की गई।

प्रमुख मराठा अधिकारियों में आपस में सम्पर्क एवं एकता बनाए रखने के लिए एक दूसरों के जनपदों के राजस्व के अंशों पर या पूरे गाँवों पर विशेष अधिकार सौंपे जाते थे। महान् मराठे सेनापति या उनके मुख्य ब्राह्मण अभिकर्ता अपनी २ जन्मभूमि के गाँवों का स्वामित्व पाने को उत्सुक रहते थे। अधिकार सौंप दिए जाने पर भी वे अपने को पटेल या कुलकर्णी के परिवार के होने में गौरव अनुभव करते थे। वतन या उत्तराधिकार छोड़ने की अपेक्षा वे धन और पद को छोड़ना पसन्द करते थे। पूर्ण सार्वभौमिकता प्राप्त कर लेने पर भी वे देश के अनिवार्य नियमों के अनुसार जन्म या क्रय से प्राप्त अधिकारों और विशेषाधिकारों के अतिरिक्त, आंतरिक ग्राम संस्थानों में कभी भी अधिकार नहीं दिखाते।

बालाजी विश्वनाथ के लौटने पर मराठा मन्त्रिगण ने जो प्रणाली और प्रबन्ध स्थापित किया उसकी यह एक संक्षिप्त रूपरेखा है। यह एक ऐसा ढंग था जिससे मराठा सरदारों में एक सामान हित की भावना उत्पन्न हुई और कुछ समय तक स्थिर रही। दूसरी ओर शाहू का चरित्र, बालाजी विश्वनाथ[1] का प्रभाव और शक्ति, उसके पुत्रों बाजी राव और चिमनाजी की योग्यताएँ तथा ब्राह्मण-मत और अधिकार के प्राबल्य ने पेशवाओं की सर्वोच्चता और अनधिकार-ग्रहण का पथ प्रशस्त किया, यद्यपि यह क्रमशः हुआ।

---

[1] बालाजी विश्वनाथ चितपावन ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज जञ्जीरा के सीदियों के नियन्त्रण में बङ्कोट के समीप श्रीवर्धन के देशमुख थे। सीदी के अत्याचार के कारण बालाजी अपने जन्मस्थान को छोड़कर और सातारा दरबार में आकर नौकरी करने लगे।—सी० के० श्रीनिवासन : बाजीराव द फर्स्ट, द ग्रेट पेशवा, पृ० १६-२०। उनकी बुद्धि शान्त, व्यापक और प्रभावशाली, प्रकृति काल्पनिक और उच्चाभिलाषी, प्रवृत्ति उद्दण्ड स्वभाव पर नैतिक बल से शासन करने वाली, प्रतिभा कूटनीतिक मेलमिलाप कराने वाली थी। वित्त के वे पूर्ण ज्ञाता थे। मराठा सार्वभौमिकता की उन्होंने मुगलों से स्वीकृति कराई। उनकी सब राजनीतिक चालों की विजय हुई। मरते समय उनको यह सन्तोष था कि उन्होंने मुसलमान शक्ति के ध्वंसावशेषों पर एक हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की है और इस साम्राज्य की वंशागत पेशवाई अपने परिवार के लिए सुरक्षित कर ली है—सर रिचर्ड टेम्पल : ओरिअन्टल एक्सपिरीअन्स, पृ० ३८६-६०।

अध्याय १३

(१७२० ई० से १७२६ ई० तक)

१७२० ई०—सैयद-भ्राताओं ने जो कार्रवाईयाँ कीं वे सामनीति के विपरीत थीं। जनता उनका आदर करती थी, किन्तु उन्हें न तो अमीर उमरा और न कठ-पुतली सम्राट् की सद्भावना प्राप्त थी। मालवा का राज्यपाल निजामुल्मुल्क सदा अपने विवर्धन के उपायों को सोचा करता था। असन्तोष के इन आभासों से उत्सा-हित होकर और मुहम्मद शाह के विश्वासपात्र व्यक्तियों द्वारा गुप्त रीति से प्रेरित किए जाने पर, सैयद-भ्राताओं की अधीनता से छुटकारा पाने तथा दक्खिन के साधनों का स्वामित्व प्राप्त कर उनकी प्रभुता का प्रतिरोध करने का उसने दृढ़ निश्चय किया। उसके प्रति सैयद-भ्राताओं का सन्देह जाग्रत हो गया था। अतः उसने अपने उद्देश्य को निश्चित किया और एक काफी योग्य असन्तुष्ट अधिकारी मरहम्मत खाँ ने उसकी इस योजना में सहायता की।

आशफजाह की उपाधि धारण कर और बारह हजार आदमियों को लेकर निजामुल्मुल्क ने नर्मदा पार किया। कुछ द्रव्य लेकर तलिब खाँ ने असीरगढ़[1] का किला उसे दे दिया। मुहम्मद अनवर खाँ ने बुर्हानपुर समर्पित किया और थोड़े समय में सम्पूर्ण खानदेश अधीन हुआ। चन्द्रसेन जाधव, भूतपूर्व सरलशकर हैबतराव का पुत्र निम्बाल्कर, राव रम्भा निम्बाल्कर तथा शाहू से असन्तुष्ट अन्य अनेक मराठे और कोल्हापुर से शम्भाजी के कुछ सैनिक उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हुए।

ऐसी संकट की स्थिति में दो सेनाएँ जो एक दूसरे से अतिदूर नहीं थीं सैयद-भ्राताओं की सहायता करने को तैयार थीं। एक सेना दिलावर अली खाँ के नेतृत्व में मालवा की सीमा पर थी और दूसरी औरंगाबाद में स्थित दक्खिन की सेना थी जो सैयद-भ्राताओं के भतीजे आलम अली खाँ के साथ थी जिसको दिल्ली को प्रस्थान करते समय, सैयद भ्राताओं के चाचा हुसेन अली खाँ, शासन का प्रभार दे

---

[1] सामरिक महत्त्व का यह गढ़, दक्खिन को जाने वाले मार्ग का द्वार-रक्षक था।

आया था इस निमित्त से की फर्रुखसीयर राजच्युत किया जाय। सम्भवतः निजामुल्मुल्क ने सोचा कि वर्षा होने वाली है और नर्मदा और ताप्ती की बाढ़ के कारण सैयद भ्राताओं की सेना इधर न आ सकेगी, और हिन्दुस्तान से उपराज्यपाल को अधिकपत्र प्राप्त होने के पहले ही वह इसके साधनों का स्वामी होने में समर्थ हो सकेगा। किन्तु दिलावर अली खाँ ने इतनी शीघ्रता से प्रस्थान किया कि जब ये नदियाँ पाँफने योग्य थीं तभी उसने उनको पार कर लिया। औरंगाबाद स्थित सेना से संयुक्त होने के लाभ की उपेक्षा कर या इसको न समझ कर और अपने शत्रु पर आक्रमण करने का लक्ष्य कर वह सीधे बुर्हानपुर को बढ़ता गया। निजामुल्मुल्क ने उसका सामना करने की तैयारी की। वह अपने विपक्षी के उद्दण्ड स्वभाव से परिचित था। दक्खिन की युद्ध प्रणाली के अनुभव के आधार पर उसने एक युद्ध-क्रम अपनाया। दिलावरअली खाँ के उत्साह को प्रेरित करने के लिए उसने सेना के कुछ भाग को आगे भेजा और उसका प्रदर्शन किया। दिलावर अली खाँ उस पर टूट पड़ा और कल्पित विजय में उसको खदेड़ता हुआ एक घातस्थान पर फँसकर पराजित किया गया और मारा गया।

जब इस विपत्ति की सूचना औरंगाबाद पहुँची, उस समय तक उप-राज्यपाल आलम अली खाँ ने अपनी पूरी सेना एकत्रित नहीं की थी। कान्होजी भोंसले जो सेना साहब सूबा, और हैबतराव निम्बालकर के नेतृत्व में शाहू की सेना शीघ्रता से शंकराजी मल्हार से संयुक्त हुई, जो हुसेनअली खाँ के प्रस्थान करने के समय से शाहू के दूत के रूप में उपराज्यपाल के साथ रह रहा था। एक अश्वारोही दल के साथ, खण्डीराव दाभाडे भी जो इसी समय दिल्ली से सातारा आया था भेजा गया। अपने विपक्षी को तंग करने के लिए मराठों को आगे भेजकर, आलमअली खाँ बुर्हानपुर की ओर बढ़ा। निजामुल्मुल्क भी जो अपने सैनिकों को तैयार करने तथा अपने विपक्षी के सैनिकों में विद्रोह फैलाने में व्यस्त था आगे बढ़ा। किन्तु पूर्णा नदी में बाढ़ होने के कारण उसको पाँफ स्थान मिलने तक कुछ समय के लिए रुकना पड़ा। जब तक मुगल सेनाएँ एक दूसरे के सामने न आईं, तब तक दोनों ओर के मराठों की मुठभेड़ होती रही। युद्ध आरम्भ करने के पूर्व ही निजामुल्मुल्क ने अपने मराठे सैनिकों को कुछ दूरी पर एक गाँव में सेना के पृष्ठ भाग में ठहराया। लगभग उसी तरह की व्यूह रचना कर जिससे उसे पिछली बार सफलता मिली थी निजामुल्मुल्क ने अपने विपक्षी पर बरार-पायान घाट स्थित बालापुर में आक्रमण कर उसको घातस्थान में आकर्षित किया। यहाँ पर आलमअली खाँ व्यक्तिगत शौर्य दिखाने, और उसके अनेक सैनिकों के भाग जाने या शत्रु की ओर चले जाने के पश्चात् अपनी रक्षा में मृत मराठों से घिरा हुआ धराशायी हुआ। इस अवसर पर मराठे निष्ठापूर्ण सहायक सैनिकों के रूप

में वीरतापूर्वक लड़े। इसमें कोई नामी व्यक्ति खेत नहीं हुआ सिवाय शंकराजी मल्हार के जो सांघातिक रूप से आहत हुआ और बन्दी बनाया गया।

निजामुल्मुल्क ने लगभग जुलाई के अन्त में इस दूसरी विजय को प्राप्त किया। दिल्ली में जब यह खबर पहुँची तो सैयद भ्राताओं को भय और सम्राट् को गुप्त सन्तोष हुआ। सैयद भ्राताओं ने अनेक योजनाओं को प्रस्तावित किया। किन्तु अन्त में यह निश्चय हुआ कि दक्खिन का शासन निजामुल्मुल्क को देने की अपेक्षा सम्राट् इस महान विद्रोही को कुचलने के लिए लेकर सेना के साथ प्रस्थान करे। सैयदों के एक हिन्दू अभिकर्ता रतनचन्द्र ने इस उपाय को अपनाने की बहुत जोरदार सिफ़ारिश की।

तदनुसार हुसेनअली खाँ ने प्रत्येक तैयारी कर, अपने भाई से विदा होकर तथा सम्राट् को लेकर दक्खिन की ओर प्रयाण किया। निजामुल्मुल्क के मित्र और देशवासी, तुरानीमुगल दक्खिन में युद्ध होने से डरते थे। किन्तु निजामुल्मुल्क की सफलता से प्रेरित होकर जिसको वे अपने कुल का प्रमुख समझते थे, और सम्राट् की उपेक्षा से उत्साहित होकर तीन साहसी व्यक्तियों ने जिनमें से एक को उन पर घात करने का काम सौंपा गया हुसेनअली खाँ के जीवन के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। हत्यारे ने अपना जीवन देकर इस सांघातिक उद्देश्य की पूर्ति की। उत्तरजीवी षड्यन्त्रकारी मुहम्मद अमीन खाँ और सआदत खाँ जिनके साथ हैदरकुली खाँ भी सम्मिलित हुआ तुरन्त ही सम्राट् को उन सैनिकों का जिनको वे अपने अधीन कर सके नेतृत्व दिया और सैयद भ्राताओं के अत्याचार से उसको छुड़ाने के अपने दृढ़ निश्चय को घोषित किया और काफी खून खच्चर के बाद शिविर में प्रबलता प्राप्त की। भारतीय सेना अनायास मालिकों को बदल लेती है और राष्ट्रीय युद्धकार्य की परिस्थिति में भी अपने पराजित सेना के सेनापति के मारे जाने पर उसके अनुयायी विजेता की नौकरी स्वीकार कर लेते हैं। और उनका नया नेता 'जिसका नमक वे खाते हैं' कभी कभी इतने विश्वास से उनका ही नेतृत्व करता हुआबहुधा प्रस्थान करता है मानो वे कभी भी उसके दुश्मन नहीं थे। इस वर्तमान अवसर पर यद्यपि सैनिक पूर्व से हुसेनअली खाँ को अपना स्वामी मानते थे, वे मुहम्मदशाह के नाम और अधिकार पर भरती किए गए। सैयद भ्राताओं के आसन्न आश्रितों को मिलाने के बाद, प्रमुख षड्यन्त्रकारियों को सेना की निष्ठा प्राप्त करने में कोई कठिनाई न हुई और शाही झण्डे राजधानी की ओर बढ़ाए गए। इस क्रान्ति की सूचना पाकर, अपने अधीन कोष का उपयोग कर सैयद अब्दुल्ला खाँ ने कुछेक दिनों में एक बड़ी सेना खड़ी की और मुहम्मद शाह के एक प्रतिद्वन्द्वी को सिंहासनारूढ़ कर अपने भाइयों की मृत्यु का दण्ड देने के लिए प्रयाण किया। शाहपुर में सेनाओं का सामना हुआ, और एक

घमासान युद्ध के बाद जो बहुत देर तक सन्दिग्ध था अन्त में, अब्दुल्ला खाँ पराजित, आहत और बन्दी किया गया।

इस तरह साम्राज्य के पूर्ण स्वामी होने पर मुहम्मदशाह ने अपने प्रति की गई सेवाओं की कृतज्ञता स्वरूप मुहम्मद अमीन खाँ को अपना वजीर नियुक्त किया, खान दौरान को अमीर-उल-उमरा की उपाधि दी, मुहम्मद अमीन का पुत्र कमरउद्दीन खाँ उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया गया, हैदरकुली खाँ और सआदत खाँ की पदोन्नति की गई और उन सबों को जिन्होंने शाहपुर के युद्ध में विशिष्टता दिखाई थी उपहार और प्रतिष्ठा प्रदान किए गए।

सम्राट् के वैभवपूर्ण जलूस ने राजधानी में प्रवेश किया और कई दिनों तक केवल आमोद-प्रमोद और हर्षोल्लास होता रहा। बहुत मात्रा में प्रत्येक दिशा से अधीनता के पत्र और निष्ठा की घोषणाएँ आईं। निजामुलमुल्क ने अपनी बधाईयाँ भेजीं। इसी प्रकार शाहू के दूत ने भी अविलम्ब अपनी निष्ठा अर्पित की और यूरोपीय कारखानों के प्रधानों ने भी विभिन्न राज्यपालों और फौजदारों के द्वारा बधाई की विनम्र प्रस्तुतियाँ तथा सम्राट् के दीर्घ और सुखी शासन के लिए सद्भावनाएँ भेजीं।

वास्तव में मुहम्मद शाह का शासनकाल लम्बा था। किन्तु उस काल में सामान्य क्षय के युग इकट्ठे हुए थे। साम्राज्य के तेजी से विनाश का और श्रद्धायोग्य दिल्ली के आसन्न भयानक भाग्य का इसके निवासियों को इस समय प्रफुल्लित करने वाले हर्षोल्लास और वैभव से जिसके लिए मुगल राजधानी तब भी विख्यात थी एक शोकयुक्त वैषम्य था। युवा सम्राट् के पास आए हुए ढेर के ढेर सन्देश, पत्र और उपहारों के उपयुक्त उत्तर और उपहार भेजे गए। निजामुलमुल्क विशेष रूप से सम्मानित किया गया, क्योंकि वर्तमान अनुकूल क्रान्ति का मूल कारण उसका सफल विद्रोह था। और थोड़े दिनों बाद मुहम्मद अमीन खाँ के आकस्मिक मृत्यु के फल-स्वरूप मालवा के अपने शासन के अतिरिक्त उसको न केवल राज्यपाल बने रहने की अनुज्ञा दी गई बल्कि वह साम्राज्य के वजीर के पद पर भी प्रतिष्ठित किया गया। किन्तु दक्खिन और कार्णाटक के प्रबन्धों के कारण जिसका हम अभी उल्लेख करेंगे १७२२ के जनवरी महीने तक वह दरबार में उपस्थित न हो सका।

इस काल की नियुक्तियों में हैदरकुली खाँ की गुजरात की नियुक्ति का उल्लेख करना उचित है जिसका वह अपने उपशासक द्वारा शासन करता था। इसी के साथ सआदत खाँ की नियुक्ति का उल्लेख करना उचित है जो पहले आगरा और बाद को अवध में नियुक्त किया गया। थोड़े समय तक जब उसके पास ये दोनों ही शासन थे उसने आगरा का शासन एक सहायक को सौंपा था। यह पहले ही उल्लेख किया जा

चुका है कि सआदत खाँ अपने पूर्व संरक्षकों, सैयद भ्राताओं, के विरुद्ध एक सक्रिय षड्यन्त्रकारी था। बाद की उस समय की घटनाओं में उसका बड़ा हाथ था। ब्रिटिश कालीन भारतवर्ष में वह अवध के नवाबों का पूर्वज होने के नाते विख्यात है।

सर्वप्रथम घटना जिसने दिल्ली के नए प्रशासन का ध्यान खींचा, और जिसके परिणाम पर सम्भवतः समस्त भारत का परिणाम निश्चित किया गया था, जोधपुर के राजपूत राजकुमार अजीत सिंह के विद्रोह से उत्पन्न हुई। अजीत सिंह ने आरम्भ में सैयद भ्राताओं के हित में अजमेर पर अधिकार कर लिया था। उसको वश में करने के लिए हैदरकुली खाँ और सआदत खाँ ने प्रयाण करने का प्रस्ताव रखा, किन्तु खाँ दौरान जो निजामुल्मुल्क की अनुपस्थिति में प्रधान मन्त्री था अभियान का कमान छोड़ने को अनिच्छुक था। वह युवा सम्राट् से दूर जा कर अपने प्रभाव को खोना नहीं चाहत था। इसके अतिरिक्त वह राजधानी के आमोद-प्रमोद को त्यागना नहीं चाहता था। अन्त में इस काम के लिए कमरउद्दीन खाँ की नियुक्ति की अनुमति दी गई। किन्तु कमरउद्दीन कमान के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ प्राथमिक सुविधाएँ चाहता था। अन्त में यह अभिग्रान त्याग दिया गया। शाही शासन ने समझौता किया। खाँ दौरान के द्वारा सम्राट् को अर्पित की हुई अजीत सिंह की क्षमा याचना और अधीनता को मान कर शाही शासन ने झगड़े को निबटाया। केवल क्षमा पर्याप्त न थी। खाँ दौरान के प्रभाव से अजीत सिंह को आगरे का शासन दिया गया क्योंकि सआदत खाँ के सहायक की हत्या हो जाने के कारण इस मामले में सआदत खाँ की सलाह नहीं ली गई। और इस तरह अपने मित्र की उपेक्षा कर सम्राट् ने अपने शत्रु की तुष्टि की।

मराठा दरबार के तीन प्रमुख मन्त्रियों, परशुराम त्रिम्बक, बालाजी विश्वनाथ और खण्डी राव दाभाडे की मृत्यु से मराठा दरबार में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। दिल्ली से बालाजी विश्वनाथ के लौटने के पहले ही श्रीपति राव अपने पिता परशुराम त्रिम्बक के स्थान पर प्रतिनिधि नियुक्त किए जा चुके थे। यात्रा की थकान से और यात्रा से लौटने के बाद विभिन्न प्रबन्धों में किए गए परिश्रम से पेशवा के स्वास्थ्य को गहरा धक्का लगा। कुछ समय तक आराम करने के लिए राजा से अनुज्ञा प्राप्त कर वह सासवद गया जहाँ उसका परिवार रहता था किन्तु उसका शरीर इतना अधिक थका हुआ था कि वह कुछ इनेगिने ही दिन तक जीवित

अक्टूबर

रहा।[1] मृत्यु के समय वह दो लड़के बाजी राव और चिमनाजी,

---

[1] उसकी मृत्यु २ अप्रैल १७२० में हुई।—सी० के० श्रीनिवासन : बाजी राव आई—दि ग्रेट पेशवा, पृ० २३।

और दो लड़कियों भिउबाई और अन्नोबाई को छोड़ कर मरा। भिउ बाई का विवाह बारामट्टी के एक धनी महाजन बापूजी नायक के भाई आबाजी नायक से हुआ था, और अन्नाबाई का इचलकरन्जी के नारायण राव घोरपडे के साथ। इन सम्बन्धियों के नाम का भविष्य की घटनाओं में उल्लेख होगा। अपने पिता की मृत्यु के लगभग सात महीने तक बालाजी के ज्येष्ठ पुत्र बाजीराव को औपचारिक रूप से पेशवा का पद नहीं प्रदान किया गया। इस देरी के कारण का उल्लेख कहीं नहीं है। हो सकता है कि प्रमुख अधिकारियों की अनुपस्थिति के कारण ऐसा हुआ हो, हो सकता है कि बाजीराव उस सेना में रहे हों जो बालापुर युद्ध के बाद कुछ समय तक गोदावरी के इस पार नहीं आई।

१७२१—उस अवसर पर खण्डीराव दाभाडे के सैनिकों ने बहुत वीरता दिखाई। उसके एक अधिकारी दमाजी गायकवाड़ ने मुख्य रूप से नाम कमाया। खण्डीराव दाभाडे की दृष्टि में वह तथा उसके कई पुत्र पहले से ही सम्मान के योग्य थे। वहाँ से लौटने पर खण्डी राव दाभाडे ने शाहू से बड़ी प्रशंसा की जिसके फल-स्वरूप राजा ने उसको समशेर बहादुर[1] की उपाधि देकर उसको खण्डी राव दाभाडे का द्वितीय कमान बनाया। बड़ौदा के राज्य-परिवार के पूर्वजों की यह उत्पत्ति थी। वहाँ से लौटने के बाद कुछेक महीनों से अधिक, न तो खण्डीराव दाभाडे और न दमाजी जिए। मई में खण्डी राव के पुत्र त्रिम्बक राव दाभाडे को सेनापति की पोशाक प्रदान कर सम्मानित किया गया। उसी महीने में बाजीराव पेशवा को मान-वस्त्र प्रदान किया गया। जङ्कोजी गायकवाड़ के पुत्र, पीलाजी गायकवाड़ ने, जो एक अवैतनिक सैनिक था, अपने चाचा दमाजी के पद को प्राप्त किया। मृत पेशवा का द्वितीय पुत्र चिमनाजी को भी अपने भाई के अधीन ऐसा ही एक पद प्राप्त हुआ। उसको सोपा जनपद की जागीर भी मिली। नियुक्ति के नियम के अनुसार उनके पिता के मुतालिक, आबाजी पन्त पुरन्दरे को शाहू ने विधिपूर्वक संस्कार करके वह पद फिर से दिया। बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु और बाजीराव की नियुक्ति के बीच की अवधि में आबाजी पन्त पुरन्दरे मृत पेशवा की मुहर से सामान्य राज-काज सञ्चालित करते थे किन्तु अधिकांश राजकाज खण्डू बल्लाल चिटनीस और श्रीपति राव प्रतिनिधि को करना पड़ता था चिटनीस ने मुख्य रूप से, सीदी और कोंकण के मामले की ओर ध्यान दिया। प्रतिनिधि ने सामन्त प्रधान आनन्द राव की सहायता से, निजामुलमुल्क से जो महत्त्वपूर्ण वार्ताएँ चल रही थीं उनकी देखरेख की।

आनन्दराव का पुत्र महताजी शाहू का वकील था। बालापुर विजय के

---

[1] इसका अर्थ है 'वीर या प्रख्यात तलवार चलाने वाला।'

दूसरे वर्ष जो कार्यवाही उसने की उसमें निजामुल्मुल्क की अवसरवादी नीति और चरित्र विशिष्ट रूप से परिलक्षित हैं। पहले जब उसको हुसेनअलीखाँ की ओर से आक्रमण का डर था, उसने कोल्हापुर के शम्भाजी से अपनी मैत्री दृढ़ की और शाही पट्टों से जो कुछ उसे मिला था उसको देने का वचन देकर शाहू को मना लिया। यह सुनते ही कि दिल्ली में उसके दल ने प्रबलता प्राप्त कर ली है और बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के रूप में मराठों की बड़ी क्षति हुई है, उसने शम्भाजी और चन्द्रसेन जाधव द्वारा उठाए हुए कुछ दावों के आधार पर शाहू के संग्राहकों के संस्थापन के प्रति आपत्तियाँ उठानी आरम्भ की। बालाजी विश्वनाथ की बुद्धिमत्तापूर्ण सावधानियों से और अर्पित राजस्व के बटवारे से उत्पन्न सहभागित्व से मराठों के राजा की स्थिति उससे कहीं अधिक सशक्त हो गई जितनी कि निजामुल्मुल्क के शासन के प्रारम्भिक भाग में थी। वकील औरङ्गाबाद में ठहरा रहा। उसके तर्क सम्भवतः निष्फल हुए होते किन्तु गङ्गथडी में सरलशकर के अधीन मराठों की एक विशाल सेना एकत्रित हो रही थी और निश्चय ही उनकी उपस्थिति का राजा शाहू के अपने सग्राहकों के संस्थापित करने की अनुज्ञा के आदेशों के प्रदान में शीघ्र कार्यवाही कराने में काफी हाथ था। मराठा वकील ने एक नया फर्मान दिल्ली में मुहम्मद शाह से प्राप्त किया। यह फर्मान ठीक अवसरपर निजामुल्मुल्क के पास पहुँचा जिससे डर के वश में हो जाने की प्रतीति दूर हुई और शाही आदेशों को पालन करने में क्षिप्रता दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ।

आपत्तियाँ उठाने में निजामुल्मुल्क ने उन बातों के सिलसिले का ख्याल नहीं किया जो बालाजी विश्वनाथ के प्रशासन में निहित थीं। वह ढिलाई करने और मराठों को एक दूसरे से लड़ा देने को उत्सुक था। किन्तु अनेक कारणों से वह मराठों और अपने बीच में प्रकट युद्ध को शीघ्रता से आरम्भ करने का इच्छुक नहीं था। उसको उनकी शक्ति की वृद्धि का वहीं तक डर था, जहाँ तक यह उसके अपने निजी विचारों को प्रभावित करता था। वजीर मुहम्मद अमीनखाँ की मृत्यु के बाद शाही दरबार में शक्ति विवर्धन की आशा उसके स्वतंत्र सार्वभौमिकता की योजना से मेल नहीं खाती थी किन्तु वह इसे या उसे छोड़ने को अनिच्छुक था।

युवा सम्राट् ने जिसको हाल ही में छुटकारा मिला था शाही आज्ञाओं के तुरन्त पालन को अच्छी दृष्टि से देखा होगा, यद्यपि इससे दक्खिन के अर्ध राजस्व के संक्रामण की पुष्टि हुई। दरबार में उसका आचरण जिस किसी भी प्रकाश में देखा गया हो, किन्तु इस अवसर पर निजामुल्मुल्क में इतनी दक्षता थी कि उसने शाहू की सद्भावना प्राप्त की, प्रतिनिधि को प्रसन्न कर मना लिया और उत्कोच देकर सामन्त को अपनी ओर कर लिया।

सामान्य दृष्टि से उसके युक्तियों का उद्देश्य था दरबार में अपना पद और दक्खिन में अपनी शक्ति का परिरक्षण करना, मराठों में नए झगड़ों को उत्पन्न करना और पुराने को जीवित रखना, अपने निजी प्रदेश से शाही प्रदेशों पर मराठों के आक्रमणों को निदेशित कर अन्त में इससे लाभ उठाने के लिए उस राष्ट्र से हुए सम्बन्ध का परिरक्षण करना। उनमें कुछ योजनाएँ भले ही अत्यन्त असङ्गत प्रतीत हों किन्तु दीर्घजीवी निजामुल्मुल्क अपने शेष जीवन भर इन राजनीतिक चालों को चलता रहा और सामान्यतया फला-फूला भी।

नए मुगल शासन के स्वरूप को और सम्राट् की वर्तमान मैत्री या भविष्य में शत्रुत्रता के लाभ और हानि को व्यक्तिगत रूप से पता लगाने के लिए वह दरबार को प्रस्थान कर चुका था। किन्तु बीजापुर कार्णाटक में उपद्रव हो जाने के कारण उसको लौट आना पड़ा और कुछ प्रबन्ध करने के बाद उसने एक नए सूबेदार की नियुक्ति की और राजधानी के लिए अपनी यात्रा आरम्भ की जहाँ वह जनवरी १७२२ में पहुँचा।

१७२२ ई०—वजीर का पद ग्रहण करने के बाद निजामुल्मुल्क ने दरबार में कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किन्तु सम्राट् अपनी अवस्था के अनुरूप आमोद-प्रमोद और आनन्दोत्सव मनाने का शौकीन, स्वभाव का चञ्चल और दुर्बल मस्तिष्क का था निजामुल्मुल्क का व्यवहार कठोर था तथा सम्राट् और उसके दरबारियों को अप्रिय था। वे हर प्रकार के घृणित षड़यन्त्र करने में चुस्त तो थे ही, उन्होंने निजा-मुल्मुल्क के साहचर्य से छुटकारा पाने के लिए शीघ्र ही एक योजना बनाई दक्खिन से निजामुल्मुल्क के लौटने के पूर्व हैदरकुलीखां, अहमदाबाद स्थिति अपने शासन को प्रस्थान कर चुका था। उसने कुछ अनियमताएँ की थीं। उनको लेकर, वजीर निजामुल्मुल्क से दण्डित कराने का उसको भय दिखाकर, और दोनों दलों के भावा-वेगों को प्रभावित कर उन्होंने उनको चरम सीमा तक उत्तेजित किया और हैदर-कुलीखाँ को और भी अवमानता और अवज्ञा के कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया। जिस ढङ्ग से उसने अजीतसिंह के विद्रोह की अपेक्षा की थी, उसकी निजामुल्मुल्क ने निन्दा की। हैदरकुलीखाँ का दमन करने के लिए गुजरात की सूबेदारी का पद प्रदान किए जाने पर उसने इसे तुरन्त स्वीकार किया यह आशा की गई थी कि इस कार्य में निजाम बहुत समय तक फँसा रहेगा या युद्ध के संयोग का शिकार होगा।

हैदरकुलीखां के पास एक सुसज्जित सेना थी और उसमें असंदिग्ध सैनिक गुण थे। किन्तु निजामुल्मुल्क ने चरों द्वारा हैदरकुलीखाँ के अधिकाँश सैनिकों को अपनी ओर फोड़ लिया जिसके फलस्वरूप हैदरकुलीखाँ आतंकित होकर तथा पागलपन का बहाना कर अपने विपक्षी को उस सूबे पर अशान्ति रहित कब्जा करने को छोड़कर

दरबार को भागा। यह सूचना पाकर निजामुलमुलक उज्जैन में ठहर गया जहाँ गुजरात के अधिकांश प्रमुख अधिकारी उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करने के लिए गए थे बिना अहमदाबाद गए वहीं बैठे बैठे उसने सब प्रबन्ध और नियुक्तियाँ की। देश में क्या हो रहा है, उसकी सूचना प्राप्त करने और अपने निजी साधनों की वृद्धि करने के प्रत्येक अवसर का लाभ उठाकर उसने सूबे के विभिन्न भागों के पाँच अत्यन्त उपजाऊ जनपदों को अपनी निजी जागीर के रूप में अलग कर लिया जिनके नाम ये हैं: धोलका, भड़ौच, जम्बूसीर, मकबूलाबाद और बलसर सामान्य नागरिक और सैनिक संस्थापन के अधिकारियों की पुष्टि या शाही जनपदों में नियुक्ति की गई यहाँ के जागीरदारों का स्वरूप औरङ्गजेब द्वारा दक्खिन में नियुक्त जागीरदारों से भिन्न था सामान्यतया अपना स्वयं ही नामांकन किए हुए अभिकर्ता अपनी भिन्न-भिन्न सीमाओं में राजस्व और पुलिस के काम की देखरेख करते थे।

१७२३ ई०—निजामुलमुलक ने अपने चाचा हमीदखाँ को अपना प्रतिनियुक्त बनाकर अहमदाबाद को भेजा, और अपने भतीजे अजीमउल्लाखाँ को मालवा के उप राज्यपाल के रूप में छोड़कर दिल्ली लौट आया किन्तु उसकी उपस्थिति सम्राट् को इतनी अप्रिय लगी और पारस्परिक ग्लानि इतनी कठिनाई से दबाई गई कि निजामुलमुल्क ने स्वेच्छा से एक समझौता कर वकील-इ-मुतलक या साम्राज्य में सर्वोच्च प्रतिनिधि की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया और वजीर के अपने पद को त्याग दिया। इसके बाद शीघ्र ही अक्टूबर १७२३ में शिकार यात्रा पर जाने का बहाना कर वह दक्खिन में अपनी सूबेदारी के लिए चल पड़ा। और उस समय से निजामुलमुल्क पूर्णतया स्वतन्त्र हो गया, यद्यपि वह सम्राट् के प्रति सदा ही, चाहे वह उसके विरुद्ध युद्ध भी करता रहा हो, अपनी निष्ठा दिखलाता रहा। नर्मदा के दक्षिण के प्रदेश जिसको विजय करने में मुगल युवराज एक शती से अधिक समय तक युद्ध करने में फंसे रहे सदा के लिए दिल्ली सिंहासन से विच्छिन्न हुए।

जब उत्तरी भारत में ये घटनाएँ घट रही थीं, पेशवा नियुक्त किए जाने के शीघ्र ही बाद बाजीराव ने एक सेना लेकर खानदेश को प्रस्थान किया। वहाँ उसने विरोध किए जाने पर भी मोकासा उगाहा। अपने पद को प्राप्त करने के बाद से उसने अपना अधिक ध्यान उत्तर में मराठा विजय विस्तार करने में लगाया। आरम्भ में उसका ध्यान मालवा की ओर गया। परिस्थितिवश वह साधारणतया प्रतिवर्ष सातारा और पूना लौट आता था और १७२४ की वर्षा के पहले मालवा पर उसने तीन अभियान किए थे। किन्तु यह पता नहीं चलता कि उस वर्ष के अन्त के पहले उसने स्वय नर्मदा पार किया। पेशवा बनने के ग्यारह वर्षों से अधिक समय व्यतीत हो जाने के पूर्व वह

१७२४ ई०

पर्याप्त समय तक मालवा में नहीं ठहरा था। दक्खिन भारत के विभिन्न मामलों में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी जिससे, और साथ ही निजामुल्मुल्क के षड्यन्त्रों तथा घरेलू विरोधों से, उसके उच्चाभिलाषा और उद्यम में अड़चन पड़ी।

बाजी राव ने १७२४ के पूर्व अलग २ समय पर बुर्हानपुर के सूबेदार को तथा दाउद खाँ नामक एक अधिकारी को जिसको मालवा से अजीमउल्ला खाँ ने उसके विरुद्ध भेजा था, पराजित किया। इन युद्धों में से एक में बाजीराव के दो अधिकारियों ने, जिन्होंने बाद को ऊँचे पद प्राप्त किए, प्रथम बार लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इनमें से एक मल्हार जी होल्कर एक सिलाहदार था जिसके पास अश्वारोहियों का एक अपना दल था। वह नीरा नदी पर स्थित होहल गाँव का निवासी एक शूद्र जाति का मराठा धङ्गर था। उसका पिता अपने गाँव का चौगला[1] था। उसने राजा के एक अधिकारी कन्ताजी कदम भाण्डे के अधीन काम किया था और अश्वारोहियों की एक टुकड़ी को एकत्रित कर लिया था। दूसरा अधिकारी रानो जी सिंधिया था जो सातारा से पन्द्रह मील पूरब कन्नेर खेड़ गाँव के एक परिवार की छोटी शाखा में उत्पन्न हुआ था। सिंधिया परिवार देश की दन्त कथाओं के अनुसार बह्मनी वंश के समय से विख्यात सिलाहदार था। इस नाम के दो मराठा परिवार हैं जिनमें से एक अपने वंशागत कन्नेरखेड़ के पटेल गाँव के नाम से है और दूसरा रवी राव के अभिधान से। दोनों ही परिवार राजपूत जाति के होने का दावा करते हैं। कन्नेरखेड़ के कुटुम्ब को औरङ्गजेब के अधीन एक मनसब प्राप्त हुआ था और सिंधिया की कन्या जिसको सम्राट् ने शाहू को विवाह में दिया था दिल्ली में बन्दी स्थिति में मरी। सिंधिया मुगलों का राजभक्त रहा। उसका क्या हुआ यह पता न चला। इससे यह अनुमान किया जाता है कि वह किसी दूरदेश में सम्भवतः अजीमशाह के साथ आगरा के युद्ध में १७०७ में मारा गया। इस परिवार का ह्रास हो गया था और रानोजी जिसने इसके यश को और अधिक गौरव के साथ बढ़ाया अत्यन्त निर्धन अवस्था में था जब वह पहले बालाजी विश्वनाथ के और बाद को उसके लड़के के पगाह में बारगीर के रूप में भरती हुआ। अपने पूर्व और बाद की स्थिति का वैषम्य दिखाने के लिए, कहा जाता है वह पेशवा की स्लीपर लेकर चला था, और इस छोटे से काम को करने में जो सावधानी उसने बरती उससे बाजीराव ने उसे विश्वास के स्थान के उपयुक्त समझा।

दूसरा अधिकारी उदाजी पवार विश्वासराव था जिसने इसी काल में अतिरिक्त ख्याति प्राप्त की। अपने प्रशासन काल में जिंजी के घेरे के समय रामचन्द्र पन्त

[1] पटेल का सहायक।

अमात्य ने उसके पिता के पद की वृद्धि की। शाहू की सेवा में सम्मिलित होने पर इस युवक को पगाह-अश्वारोहियों के एक बड़े दल का कमान मिला। विभिन्न सेवाओं में उसने काम किया। मालूम होता है कि वह एक क्रियाशील अवैतनिक सैनिक था। कन्ताजी कदम, पीलाजी गायकवाड़ और कान्होजी भोसले आदि अधिकांश सामयिक अनुभवी मराठा सरदारों की तरह उसने अधिक दूर के अभियानों में जहाँ उसकी उपस्थिति कम से कम अपेक्षित थी अपना निश्चित लाभ अनुमान किया। उसने गुजरात और मालवा पर चढ़ाइयाँ कीं। गुजरात में लूनावर्णा तक लूट की। उसको मालवा में सैनिकों का इतना अभाव प्रतीत हुआ कि कुछ समय तक वह वहाँ ठहर गया और राजा को यह सूचना भेजी कि यदि उसको उसका सहारा मिले तो वह हर एक दिशा में चौथ और सरदेशमुखी एकत्रित करे। अपने पहले आक्रमणों के अवसर पर वह कितने दिन वहाँ ठहरा यह अनिश्चित है। सम्भवतः वह धार[1] से लौट आने को बाध्य हुआ। गिरिधर बहादुर की नियुक्ति होने पर, वहाँ उसने अपने को सर्वप्रथम स्थापित किया। उसने बाजीराव के राज्यारोहण के दस वर्ष से अधिक समय बाद तक मराठों को मालवा में अपना पैर न जमाने दिया।

उदाजी पवार की प्रगति गुजरात में कन्ताजी कदम भाण्डे और पीलाजी गायकवाड़ की सफलताओं के समाचार और निजामुलमुल्क और शाही दरबार के बीच में मतभेद, ऐसी अवसरचारित घटनाएँ थीं जिनसे उत्तरी भारत में मराठा विजयों का विस्तार करने के पेशवा के विचारों को पुष्टि मिली। आरम्भ में शाहू ने इसको नापसन्द किया और श्रीपतिराव प्रतिनिधि ने चतुराई के उद्देश्य से और दलबन्दी की भावना से इसका दृढ़ विरोध किया। यहाँ कुछ व्याख्यात्मक विषयान्तर देना जरूरी है।

निजामुलमुल्क के चरित्र के सम्बन्ध में काफी लिखा जा चुका है। उसके महान् प्रतिद्वन्द्वी और यदाकदा मित्र बाजीराव को अपने आप पनपने दिया गया होता; किन्तु परिवर्ती आयोजनाओं के या विभिन्न शक्तियों के घरेलू मामलों के विस्तृत भूमिभाग के कारण जिसकी ओर अवश्य ही ध्यान देना है, और प्रतिवर्ष बहुसंख्यक क्रियाशील व्यक्तियों के महत्त्व या सार्वभौमिकता प्राप्त कर लेने के कारण इस काल का इतिहास पेचीदा है। किन्तु अग्रणी व्यक्ति निजाम और पेशवा हैं।

उसके पिता ने बाजीराव में आरम्भ से ही काम करने की आदत डाल रखी थी। वह उसके साथ दिल्ली गया था और बालाजी और जयपुर के राजा जयसिंह के बीच में हुई, एक या अधिक, भेटों में वह उपस्थित था। आगे

[1] मालवा के पश्चिम में धार एक बहुत ही प्राचीन किला है।

चलकर उस विख्यात राजा से उसका संम्बन्ध पुष्ट हुआ। सैनिक और कूटनीतिज्ञ दोनों ही रूप में उसका पालन पोषण हुआ था। मराठा सर्द्दार के उद्यम, ओज और दृढ़ता के साथ बाजीराव में सुसंस्कारता, बुद्धिमत्ता और दक्षता जो बहुधा कोंकण के ब्राह्मणों की विशेषता है, सम्मिलित थीं। अपने पिता की आर्थिक, योजनाओं की पूरी जानकारी रखते हुए उसने आयोजना के उस भाग को चुना जिससे महाराष्ट्र के लुटेरे दलों को एक सामान्य प्रयास में ले जाया जा सके। इस सम्बन्ध में बाजीराव ने अपने पिता द्वारा बनाई गई योजनाओं का अपनी प्रतिभा से विस्तार किया। और अधिकांश ब्राह्मणों के अननुकूल उसके सम्बन्ध में यह बात यथार्थ कही जा सकती है कि उसके पास योजना बनाने का मस्तिष्क और कार्यसम्पादन करने की क्रियाशीलता दोनों ही थे। घोर परिश्रम और सूक्ष्म निरीक्षण के साथ जिसका होना उस जाति में जन्म से माना जाता है उसमें ऐसी बिवेक शक्ति थी जिससे वह अपने मस्तिष्क को राजनीतिक महत्त्व के उन अग्रणी मामलों में लगा सका जिससे उसके प्रशासन काल में मराठा शक्ति का वास्तविक विस्तार हुआ।

विदेशी शत्रुओं के अतिरिक्त प्रतिनिधि के रूप में बाजीराव का एक गुणी घरेलू प्रतिद्वन्द्वी भी था। सार्वजनिक पदों की ईर्ष्या को अत्यन्त चतुर ब्राह्मण विरले ही छिपा या वश में कर सकते हैं। सभी ब्राह्मणों में यह आवेग विशिष्ट रूप से पाया जाता है और विभिन्न शाखाओं[1] के ब्राह्मणों के बीच में यह आवेग अत्यन्त सुस्पष्ट होता है। श्रीपति राव की प्रतिद्वन्द्विता, राज्याधिपति के रूप में राजा शाहू की प्रबलता अन्यथा जितने समय तक बनी रहती उससे अधिक समय तक सुरक्षित रखने में सहायक हुई। इस प्रतिद्वन्द्विता ने बाजीराव और चिमनाजी अप्पा के कार्यों को नियन्त्रित रखने में अंकुश का काम किया। कहा जाता है इन दोनों की ही, जैसा कि होना था, प्रबलता थी इससे कुछ वर्षों तक पेशवा के प्रयास भी सीमित हुए और दूर के अभियानों की सफलता के लिए, जितना हितकर था, उससे अधिक बार पेशवा को सातारा लौट आने को बाध्य होना पड़ा। इससे निजामुल्मुल्क को मराठों में आन्तरिक मतभेद उत्तेजित करने के प्रयत्नों में सहायता मिली।

प्रतिनिधि ने उग्ररूप से, और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, कुछ समय तक सफलता पूर्वक उत्तरी भारत में मराठा विजयों का विस्तार करने और मालवा से (उनके अनुसार) संस्थापित कर उगाहने का पेशवा के प्रथम प्रस्ताव का विरोध किया। प्रतिनिधि ने यह दर्शाया कि यह अभियान धृष्ट और अविवेक पूर्ण है। राज्याधिपति से आकस्मिक आक्रमणों का कारण न भी पूछा जाय किन्तु मुख्य प्रधान

---

[1] बाजी राव कोंकणस्थ ब्राह्मण था। श्रीपत राव यजुर्वेदी देशस्थ ब्राह्मण था।

को इतना अधिकार प्रदान करने से साम्राज्य की समूची शक्ति अवश्य ही उनके विरुद्ध खिंच आयेगी, और निजामुलमुल्क से प्रकट युद्ध होने में शीघ्रता लाएगी जिसकी विजयी सेना अब भी उनके दरवाजों पर है। प्रतिरोध करने की तैयारी की बात तो दूर रही जो प्रबन्ध-कार्य नियमानुसार होना चाहिए उसमें भी नियमितता का पूर्ण अभाव है एक साधारण विद्रोह का दमन कर सकना भी उनके लिए कठिन है और उस हालत में जबकि वे उसको भी नहीं प्राप्त कर सके हैं जो उनको दिया गया था; युद्ध छेड़ना मूर्खता और अविचारिता की चरमावस्था है। प्रतिनिधि ने यह भी कहा कि वह पेशवा तथा एक सैनिक भी है। यदि यह विवेकपूर्ण हो, तो वह किसी भी अभियान का नेतृत्व करने को उतना ही प्रस्तुत है जितना बाजी राव हो सकते हैं। अपने संग्राहकों को स्थापित करने और देश के दूसरे भागों में व्यवस्था कायम करने के बाद यह हितकर होगा कि उत्तरी भारत में विजय अभियान चलाने की अपेक्षा कार्णाटक में शिवाजी द्वारा विजित प्रदेशों की पुनर्प्राप्ति की जाय। यद्यपि फतहसिंह भोसले के पास कार्णाटक की मोकासा एकत्र करने की सनदें हैं किन्तु शम्भाजी और उसके अवप्रेरकों, चौवान, घोर्डपडे और आवनूर के नवाब की शक्ति के कारण उसके सैनिक कृष्णा को पार करने का कठिनता से साहस कर सकते हैं, अतः उनको उस क्षेत्र में प्रथम प्रयास करना चाहिए। सम्भवतः श्रीपति राव की वास्तविक राय यही थी किन्तु बाजी राव की बुद्धिमत्ता कहीं अधिक ऊँचे स्तर की थी। लुटेरी शक्ति की प्रकृति से वह परिचित था। विद्रोह और अव्यवस्था में इसके विकास को उसने देखा था जिसका प्रथम उपचार राजस्व वितरण की प्रणाली थी। वह समझता था कि राज्य के बाहर का गड़बड़ घरेलू व्यवस्था कायम करने में सहायक होगा। दूर के अभियानों के सेनापति के रूप में साम्राज्य के दूसरे सरदारों की अपेक्षा उसे अधिक बड़ी सेना का सञ्चालन मिलना चाहिए। अश्वारोहियों के समूहों को जो वहाँ के साधनों को निरर्थक ही खाए जा रहे थे, दूसरे जगहों में लगा देने से दक्खिन के साधनों की वृद्धि करने के साथ ही उस पर नियन्त्रण भी रखा जा सकेगा। क्योंकि दक्खिन के साधनों पर नियन्त्रण रखने के लिए यह आवश्यक है कि अत्यन्त सुगमता से सैनिकों के धन्धों का और निर्वाह का प्रबन्ध किया जाय तथा दक्खिन की सेना के अवज्ञापूर्ण और लुटेरे दलों को जिसमें सभी जाति और उपलक्षणों के दल थे तुष्ट एवं आतंकित किया जा सके।

श्रीपति राव की आलोचनाओं की न्यायता को किंचित् स्वीकार करते और अपनी गुप्त योजनाओं को छिपाते हुए उसने अपनी प्रभावशाली वाक्शक्ति द्वारा राजा के उत्साह और उच्चाभिलाषा को प्रेरित किया। उसने उसके गौरवशाली पितामह के विजयों को संक्षेप में कह कर और यह याद दिला कर कि उन्होंने शक्ति-

शाली राजाओं, और प्रबल सम्राट् से सफलतापूर्वक युद्ध किया है, उसने भारत की वर्तमान दशा का, मुगलों की निर्बलता, अकर्मण्यता और दुर्बलता तथा मराठों की सक्रियता, ऊर्जस्विता और क्रियाशीलता का चित्रण किया। उसने कहा कि यदि महान् शिवाजी का वही विचार होता, जैसा कि प्रतिनिधि का है तो कार्णाटक अभियान करने के पूर्व वे बीजापुर और गोलकुण्डा का दमन करने को सोचते। कृष्णा के पार अपने घरेलू झगड़ों के बारे में सोचने का समय बाद को भी रहेगा और राजा के सौभाग्य के प्रभाव से प्रत्येक इच्छा पूरी होगी। इस अवसर पर एक लम्बी वक्तृता के बाद जिसका पर्याप्त प्रभाव शाहू तथा सब उपस्थित व्यक्तियों पर पड़ा, प्रतीत होता है उस वीर पेशवा ने कहा 'हिन्दुओं के देश से विदेशियों को बाहर खदेड़ने और अमर ख्याति प्राप्त करने का यही समय है। उत्तरी भारत में प्रयास करने से आपके शासनकाल में मराठा झण्डा कृष्णा से अटक तक फहराएगा। राजा ने कहा 'आप इसे हिमालय पर फहराएँगे,[1] आप वास्तव में योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं।'

बाजी राव ने इस अवसर का लाभ उठाकर शाहू को छोटी २ बातों की उपेक्षा करने को प्रेरित कर और मुगल साम्राज्य का उल्लेख कर कहा कि हमें मुर्झाते हुए पेड़ के तने पर चोट करना चाहिए, शाखाएँ अपने आप अवश्य ही गिर जायेंगी।'

किस समय यह स्वीकृति प्राप्त की गई या किस वर्ष मूल आज्ञा निकाली गई, यह नहीं पता चला। उस स्तर पर जब उनकी प्रभुता बहुत बढ़ी चढ़ी थी, पेशवा ऐसे सब अवसरों पर राजा की आज्ञा प्राप्त करने के उपचार का कठोरता से पालन करते थे, क्योंकि उस आज्ञा के तथा मुख्य प्रधान के पद के बल पर जब कि उनका अनधिकार-ग्रहण पूर्ण हो चुका था, नाममात्र सेवक किन्तु वास्तविक स्वामी के रूप में काम करना, और मराठा सरदारों पर उनके राजा के प्रतिनिधि रूप में शासन करना, ब्राह्मण स्वभाव के उपयुक्त था।

मराठा शक्ति के विप्रकृष्ट एवं तात्कालिक कारण देश की सामान्य स्थिति और उनकी घरेलू नीति पर ध्यान देने से ही समझा जा सकता है। इस समय जितना कि पहले कभी नहीं था, मुगलों के राजकाज के मामले, मराठा इतिहास से पूर्णतया अन्तःबद्ध हैं।

जिस ढङ्ग से निजामुलमुल्क दिल्ली से दक्खिन चला आया उससे अविश्वास और साथ ही अपमान प्रकट होता है। इससे सम्राट् का क्रोध और प्रतिशोध भड़का।

---

[1] मराठी पद 'कनर खण्ड' का अर्थ है हिमालय के उस पार।

एक सेना खड़ी करने और निजामुल्मुल्क का विरोध करने के लिए हैदराबाद के सूबेदार मुबारिज खाँ के पास गुप्त आदेश भेजे गए। सफलता मिलने पर दक्खिन की सूबेदारी दिए जाने का उसको एक फर्मान मिला। इसके पहले कि वह उसके विरुद्ध प्रयाण करे, कुछ महीनों तक निजामुल्मुल्क सन्धि की बात चलाता रहा और अपनी सामान्य युक्तियों द्वारा विद्रोह पैदा करने, और अपने प्रतिद्वन्द्वी की शक्ति तोड़ने का प्रयत्न करता रहा। अन्त में जुलाई १७२४ में वह औरङ्गाबाद पहुँचा और लम्बे विवाद के बाद जबकि उसके आयोजन अंशतः सफल हो चुके थे, वह मैदान में उतरा और पहली अक्टूबर के आसपास शकरखेड में एक निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें मुबारिज खाँ व्यक्तिगत शौर्य के बहुत प्रयास के बाद घेरा और मारा गया। उसके चार लड़के बड़ी वीरतापूर्वक उसकी सहायता करते रहे जिसमें से दो उसी के साथ खेत रहे और दो बुरी तरह से आहत हुए। निजामुल्मुल्क ने सम्राट् की सेना द्वारा प्राप्त विजय के एक बधाई पत्र के साथ खाँ के सिर को दरबार भेजा।

जब मुबारिज खाँ दक्खिन में प्रगति करने लगा तो उसने अपने एक पुत्र ख्वाजा अहद के अधीन एक दृढ़ सैन्य दल गोलकुण्डा में रखा। सन्दूल खाँ जो उस स्थान पर बहुत दिनों तक राज्यपाल रह चुका था उसके स्थान पर रखा गया। उसके हित में बहुत से अधिकारी अन्य अनेक किलों का कमान लिए हुए थे। उसका पक्ष जनप्रिय था। अतः निजामुल्मुल्क ने ख्वाजा अहद को अपनी ओर मिलाने या दमन करने और शीघ्र से शीघ्र किलों पर अधिकार जमाने की आवश्यकता को देखा। अतः उसने हैदराबाद को प्रयाण किया और कुछ समय बाद उसने वहाँ अपनी युक्तियों को सामनीति द्वारा सम्पन्न किया। निजामुल्मुल्क की शक्ति का अधिक से अधिक दमन करने के निमित्त सम्राट् ने एक फर्मान निकाला जिसमें उसने उसको गुजरात और मालवा के शासन से हटा दिया। उसने सरबुलन्द खाँ की गुजरात में और राजा गिरिधर बहादुर की मालवा में नियुक्ति की।[1] निजामुल्मुल्क के दावे की पुष्टि करने के लिए, निजाम के हित में, मालवा से सेना हटा ली गई थी अतः राजा गिरिधर ने प्रान्त पर बिना विरोध के अधिकार किया।

सर बुलन्द खाँ ने सुजात खाँ को गुजरात का उपराज्यपाल नियुक्त किया। हमीद खाँ जिसके हाथ में अपने भतीजे निजामुल्मुल्क की ओर से उस सूबा

[1] वह नागर ब्राह्मण था। प्रोफेसर डी० आर० भण्डारकर के अनुसार मेवाड़ के गुहिलोत और सिसोदिया मूल रूप में नागर ब्राह्मण थे और गुर्जरों के जिन्होंने हूणों के बाद पाँचवीं-छठी शतियों में भारत में प्रवेश किया था पुरोहित थे।—स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री आव इण्डिया, पृ० ४२०।

का प्रभार था उसको राजधानी पर कब्जा करने से रोक न सका, किन्तु बिना युद्ध किए अपने शासन को न त्यागने का उसने निश्चय किया। दोहद जाकर उसने शाहू के एक पदाधिकारी कन्ताजी कदम भाण्डे को अपने साथ सम्मिलित हो जाने को आमन्त्रित किया। कन्ताजी ने इस आमन्त्रण को, चौथ पाने की प्रतिज्ञा पर तुरन्त स्वीकार किया। पहले वे कप्परवंज को आए जहाँ हमीद खाँ ने अहमदाबाद के अपने मित्रों से पत्र व्यवहार किया और सुजात खाँ की गतियों की ठीक सूचना उपलब्ध कर, अपने अवसर को ताक कर अहमदाबाद के कुछ मीलों के अन्दर ही उसने उस पर धावा बोला और उसको पराजित कर मार डाला। यहाँ हमीद खाँ का शासन फिर स्वीकृत हुआ। इस घटना पर सुजात खाँ के भाई, सूरत के फौजदार रुस्तम अली खाँ ने जिसने कि हाल ही में उस नगर के पड़ोस में पीलाजी गायकवाड़ के विरुद्ध कुछ नाम प्राप्त किया था, पीलाजी से एक विराम सन्धि की और हमीद खाँ पर एक आक्रमण करने में सम्मिलित हो जाने के लिए उसे आमन्त्रित किया। उसके चाचा हमीद खाँ की सहायता करने के लिए निजामुल्मुल्क के दूतों ने पीलाजी को पहले ही से मिला रखा था किन्तु उसने रुस्तम अली खाँ के समझौते की बातों को उस समय तक के लिए स्वीकार किया जब तक कि वह ठीक २ यह पता न लगा ले कि कौन सा पक्ष सबसे अधिक हितकर होगा। वह रुस्तमअली के साथ अहमदाबाद की ओर गया, फजिलपुर में माही नदी को पार किया और अरस में हमीद खाँ से एक मुठभेड़ की जिसमें रुस्तमअली ने अपने तोपों की वर्षा से अपने विरोधियों को पीछे ढकेल दिया। इतने समय में पीलाजी ने हमीद खाँ से सौदा पक्का कर लिया और रुस्तमअली को भगोड़ों पर आक्रमण करने को प्रेरित किया। पृष्ठ भाग के एक दल के प्रभार में अपनी तोपों को छोड़ कर जैसे ही इस घातक सलाह का रुस्तमअली ने अनुगमन किया वैसे ही पीलाजी ने तोपों की गाड़ियों को उलट दिया और अपने पिछले मित्र पर आक्रमण करने में सम्मिलित हुआ। रुस्तमअली ने वीरतापूर्वक प्रतिरक्षा की जब तक कि उसके सैनिकों की क्षीण संख्या के कारण उसका भागना असम्भव प्रतीत न हुआ। बन्दी बना लिए जाने पर अपमानजनक व्यवहार से बचने के निमित्त उसने अपने हृदय में छुरा भोंक लिया।

१७२५ ई०—पीलाजी का विश्वासघात कन्ताजी के साथ चौथ के संभाग के रूप में पुरस्कृत हुआ और दोनों ने साथ मिल कर अपने समनुदेशन को उगाहने के लिए प्रस्थान किया। किन्तु द्रव्य के वितरण ने चिरस्थायी कलह का रूप धारण किया। दाभाडे सेनापति के अभिकर्ता होने के नाते पीलाजी अपने को गुजरात में सर्वोच्च अधिकारी मानता था और कन्ताजी राजा का अधिकारी होने के नाते उसके दावों की उपेक्षा करता था। कुछ समय तक इन कलहों के कारण नगरों और गाँवों

को अधिक कर देना पड़ा। कम्बे पहुँच कर, अभित्रस्त करने के निमित्त वे पूर्ववत् उपनगरों को जलाने लगे। वहाँ के निवासियों को उनके मतभेदों की जानकारी थी, उन्होंने पीलाजी के पास एक दूत यह संकेत करने के लिए भेजा कि वे कन्ताजी के अधिकार को अधिक न्यायसंगत समझते हैं और उस जगह को छोड़ कर चले जाने के लिए वे उसको बीस हजार रुपये देंगे। इस अपमान से क्रोधित होकर पीलाजी ने दूत को बन्दी कर लिया। कन्ताजी ने उसके छोड़े जाने पर जोर दिया और अपने अधिकारों को घोषित करने के लिए वे हथियार लेकर भिड़ गए। एक घोर द्वन्द्व युद्ध हुआ जो दीवारों पर से दिखाई देता था। पीलाजी हार गया और कैरा के समीप के एक गाँव महतर को चला गया। विजेता ने कम्बे से अंशदान को उगाहा और अंग्रेजों की फैक्ट्री से पाँच हजार रुपये की माँग की। एजेन्ट ने 'शाहू राजा' से व्यापार का विशेषाधिकार पाने के आधार पर छूट पाने का तर्क पेश किया। इस पर 'सशस्त्र दुष्टों ने', जैसा कि फैक्ट्री के प्रधान श्रीइन्स ने दुःखी हृदय से इनको संज्ञा दी है 'केवल हँस दिया।'

अपने किसी न किसी संश्रित-शक्ति द्वारा साथ छोड़ दिए जाने की आशंका कर, हमीद खाँ ने उनसे एक अनुबन्ध पर हस्ताक्षर करा लिया जिसके अनुसार माही के पूरब का चौथ पीलाजी को प्रदान किया गया और उसके पश्चिम का कन्ताजी को। वर्षा ऋतु में अपने घरों को लौट जाने की पुरानी प्रथा का मराठे अब भी सुरक्षित रखे हुए थे। कम्बे युद्ध के शीघ्र ही बाद पीलाजी सूरत के समीप सोनगढ़ चले गए और कन्ताजी एक जामीर जनपद को चले गए जो खानदेश में उनके पास थी।

इस सङ्कट की घड़ी में सम्राट् ने सर बुलन्द खाँ को जो अन्यायपूर्वक काबुल से हटा दिया गया था अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की और हमीद खाँ के भयानक विद्रोह को दबाने के निमित्त गुजरात के शासन का प्रभार सम्हालने की उससे बिनती की। फर्रुखसीयर को राज्यच्युत करने वाले ज्येष्ठ सैयिद भ्राता अबदुल्ला खाँ को मुक्त कर सम्राट् तुरानी मुगलों को नियन्त्रित करना चाहता था, किन्तु इसमें उसको निराशा ही हाथ लगी। इस कारण से सम्राट् और भी शीघ्रता कर रहा था। किन्तु सिद्धान्तरहित दरबारियों ने उसको अपनी ईर्ष्या और भय का शिकार बनाया और विष देकर उसे मार डाला। सर बुलन्द खाँ ने शासन की बागडोर सम्हाली। वह एक बहुत ही अच्छा और जनप्रिय अधिकारी था। उसको हर प्रकार की सुविधाएँ दी गईं और शीघ्र ही उसके कमान में एक बड़ी सेना एकत्रित की गई। उसको कुछ समय तक रुकना पड़ा क्योंकि सम्राट् ने उसके साथ जाने की इच्छा प्रकट की थी। अन्त में उसने अहमदाबाद को प्रस्थान किया। निजामुल्मुल्क अपने चाचा के विपक्षी

की योग्यताओं को जानता था अतः उसने उसको सद्भावनापूर्वक प्रान्त को छोड़ने को लिखा, किन्तु हमीद खाँ ने इस सुझाव को न मान कर अपनी प्रतिरक्षा का उपाय किया। मराठों से सहायता मिलने की उसे कम आशा थी, अतः बाध्य होकर अहमदाबाद में एक निर्बल सैन्यदल छोड़ कर वह सर बुलन्द खाँ की सेना के अग्रिम टुकड़ी के सामने से हट गया। महमूदाबाद पहुँचते ही उसने सुना कि मराठों ने माही नदी पार की है। वह अहमदाबाद को लौट आया, किन्तु शहर के एक दल ने नए राज्यपाल को अपनी ओर मिलाने के निमित्त उसके सैनिकों को किले के बाहर कर दिया था। जिस दिन सर बुलन्द खाँ की अग्रिम टुकड़ी अदालज में आकर ठहरी उसी दिन हमीद खाँ ने शाही बाग[1] में जो अब भी वर्तमान है डेरा डाला। किन्तु मुख्य सेना की कुछ तोप-गाड़ियाँ टूट गई थीं अतः इस अग्रिम टुकड़ी को सहायता न मिलने की आशङ्का हुई। हमीद खाँ के निकट होने की सूचना पाकर इसने तुरन्त ही अपने चारों ओर खाईयाँ बनाना आरम्भ किया। इस सावधानी से मराठों को साहस मिला और उनको लेकर हमीद खाँ ने खाईयों से घिरे हुए सैनिकों पर हमला बोल दिया और पूर्ण विजय लाभ की। इसमें बहुत क्षति उठानी पड़ी अतः मराठे दूसरे युद्ध के लिए तैयार न हुए। अतः मराठों की तरह हमीद खाँ ने एक लुटेरे का रूप धारण कर मराठा नमूने पर युद्ध कार्य आरम्भ किया। नए राज्यपाल ने फौजदारों की नियुक्ति कर उत्साहपूर्वक सामान्य प्रबन्ध किया। किन्तु कन्ताजी और पीलाजी शेष ऋतु भर लूट करते रहे। और वर्षा आरम्भ होने पर उन्होंने वार्षिक पलायन किया। एक कपटपूर्ण शान्ति विराजी। जल गिरने से आनन्द देने वाली हरियाली छा गई और गुजरात का सुन्दर प्रान्त जो सैकड़ों मीलों तक इङ्गलैण्ड के सामन्तों के सुन्दरतम पार्कों से होड़ ले सकता है, शीघ्रता से फैलती हुई हरियाली और प्रभूत पौधों के साथ अपने सम्पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य से लद गया। कुछ ही समय पूर्व जहाँ निरन्तर युद्ध, दिन दहाड़े हत्या और डाकेजनी, दृढ़तापूर्वक रक्षित यात्री दलों की लूट-मार और जलते हुए या उजड़े हुए गाँवों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था वहाँ शान्ति का साम्राज्य छा गया।

मुगलों में मतभेद होने के कारण उत्पन्न गड़बड़ी का लाभ उठाकर बाजी राव ने मालवा पर धावा किया और राजा गिरिधर द्वारा प्रतिरोध किए जाने पर भी दो ऋतु सफलतापूर्वक लूट और अंशदान प्राप्त किया। सम्भव है कि निजामुल्मुल्क ने कम से कम इन अभियानों की उपेक्षा की हो, किन्तु पेशवा से कोई सीधा सम्पर्क

[1] शाही बाग अहमदाबाद से लगभग साढ़े तीन मील दूर है।

होने का प्रमाण नहीं है। शाहू द्वारा दिए हुए अधिकार के बल पर बाजी राव ने पवार, होल्कर और सिंधिया को चौथ और सरदेशमुखी उगाहने और अपने सैनिकों के वेतन के भुगतान में आधी मोकासा को अपने पास रखने के विलेख प्रदान किए।

१७२६ ई०—फतह सिंह भोसले के अधीन १७२६ में एक बहुत ही बड़ी सेना ने कार्णाटक में अभियान कर जनपदों को लूटा और श्रृङ्गापट्टम् से अंशदान उगाहा। पेशवा भी उसके साथ था। उसकी अप्रसन्नता का कारण निजामुल्मुल्क की वे चतुर योजनाएँ थीं जो सम्भवतः उस श्रृङ्खला को विच्छिन्न कर दिए होतीं जिससे बालाजी विश्वनाथ ने दक्खिन के अधिकांश हिन्दू सरदारों के हितों एवं प्रवृत्तियों को जोड़ रखा था, यदि बाजी राव में ऊर्जा और तीक्ष्ण बुद्धि का अभाव होता।[1]

---

[1] बाजी राव अठारहवीं शती के भारत का सबसे प्रख्यात कूटनीतिज्ञ और सेनापति था। इसने विश्रृङ्खल होते हुए मराठा राज्य को साम्राज्य का रूप दिया, राजा की शक्ति को दृढ़ीभूत किया, विघटन तत्त्वों को दूर किया, निजाम को अवमानित किया, गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड पर दृढ़ता से कब्जा कर मराठा ध्वज को राजधानी दिल्ली के उपनगरों तक ले गया, पुर्तगालियों से शाष्ठि और बसई छीना, कोंकण से जञ्जीरा के सीदियों को खदेड़ा और इस तरह इतना शक्तिशाली और विस्तृत साम्राज्य अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ा जितना कि गुप्त सम्राटों के बाद किसी हिन्दू सम्राट् ने नहीं छोड़ा था। उसने रानोजी सिंधिया मल्हार राव होल्कर, आनन्दराव पवार के नेतृत्व में मराठा अश्वारोहियों की एक राष्ट्रीय सेना खड़ी की और हिन्दू-पद-पादशाही की भावना राजस्थान और बुन्देलखण्ड के राजाओं में भरी जिसमें मुगल दरबार के सबसे प्रतिष्ठित सामन्त कूटनीतिक, प्रशासक और महान् विद्वान् और बुद्धिमान् नवाई राजा जयसिंह और छत्रपाल ने योगदान किया। उसको यह बात अत्यन्त खलती थी कि हिन्दू तीर्थ स्थान, वाराणसी और प्रयाग, मुसलमान के कब्जे में रहें। मराठी सेनाओं ने उत्तरी भारत से कर उगाहा। और अगले पच्चीस वर्षों के अन्दर ही अटक की दीवारों पर मराठी झण्डों को गाड़ा। किन्तु भारतीय इतिहास की यह एक अत्यन्त गूढ़ पहेली है कि उसने निजाम रूपी सर्प को पैरों से तो कुचला किन्तु उसका प्राणान्त क्यों नहीं किया। उसकी उदारता के फलस्वरूप एक पराजित और निर्बल मुसलमान राज्य आगे चल कर मराठा राज्य के विरुद्ध अँग्रेजों की कार्यवाहियों का अड्डा बना। यदि ऐसा न हुआ होता तो अँग्रेजों की भारत विजय में रुकावट हुई होती।—श्रीनिवासन : बाजी राव द फर्स्ट की के० एम० पनिक्कर लिखित भूमिका, पृ० ६-१५।

अध्याय १४

(१७२७ ई० से १७३४ ई० तक)

१७२७ ई०—निजामुल्मुल्क और उसके देशवासी तुरानी मुगलों ने पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य को बहुत ही अराजकतापूर्ण स्थिति में डाल दिया। मुहम्मद शाह के आसन्न संकटों से छुटकारा पाकर वह मराठों की बढ़ती हुई शक्ति से आतंकित हुआ। दक्खिन और कार्णाटक के विभाजित राजस्व पर व्यवस्थित और निरन्तर अतिसर्पण किए जाने से उसने यह समझ लिया कि उसके निज के एवं साम्राज्य के साधनों का अन्त होगा। उसने अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयास किया। उसने इन दोषों को दूर करने और मराठों में भेदभाव पैदा करने के जो उपाय अपनाए, मालुम होता है, वे बहुत ही कुशलता से नियोजित किए गए थे। ये आयोजनाएँ जनता की विशिष्टताओं पर आधारित थीं, किन्तु इन योजनाओं को बनाने में उसने अपने विपक्षी की योग्यताओं की उपेक्षा की और यह नहीं सोचा कि अपनी आयोजनाओं का अनुगमन कर वह पेशवा की ही शक्ति को दृढ़ करेगा।

शकरखेडा[1] युद्ध के समय से निजामुल्मुल्क ने अपनी स्थापित स्वतन्त्र सार्वभौमिकता के प्रशासन के केन्द्र के लिए, कुत्बशाही राजाओं की प्राचीन राजधानी हैदराबाद को सर्वोपयुक्त समझ कर, उस पर आँख गड़ा रखी थी अतः वह किसी भी शर्त पर उस भूभाग से मराठा संग्राहकों को हटाना अत्यन्त वांच्छनीय समझता था। यद्यपि निजामुल्मुल्क ने शाही पट्टों की शाहू के पक्ष में पुष्टि की थी, फिर भी उपलब्धि का बहुत बड़ा भाग वास्तविक रूप में नहीं दिया गया था। बहुसंख्यक अंश असमंजित रहे। कराडका शाहू का अंश—लूट रोकना—पूरा नहीं किया गया जिसके

---

[1] कोल्हापुर के अपने प्रतिद्वंद्वी पर राजा शाहू की यह एक बड़ी कूटनीतिक और नैतिक विजय थी। इससे मराठा जाति पर उनका निश्चित नेतृत्व स्थापित हुआ। इससे पूरे देश में मुगल प्रतिष्ठा को सांघातिक धक्का लगा। इससे मराठे शाहों के शाह हुए और उनके मांगों और दावों की वैधता स्वीकृत हुई और उनको दक्खिन के छहो सूबों में और कार्णाटक में सर्वोपरिता प्राप्त हुई।—डॉ० यूसुफ हुसेन खाँ : निजामुल्मुल्क आसफजाह द फर्स्ट, पृष्ठ १०७।

फलस्वरूप निरन्तर विवाद होते रहे। पुराने मराठा क्षेत्र के एक अंश के लिए निजामुल्मुल्क ने एक नया अधिकार प्रदान किया जिसमें उन मियादी व्यक्तिगत जागीरों का विशेषरूप से नामोल्लेख था जिनको पृथक्करण से छुटकारा देने को शाहू सहमत हुए थे। रम्भाजी निम्बालकर को जो एक असन्तुष्ट अधिकारी था और उसकी ओर मिल गया था निजाम ने पूना के आसपास पुराने क्षेत्र में जागीर अधिन्यास प्रदान किया था इसके बदले में उसने शाहू को पूरब की ओर करमल्ला के आसपास नए पट्टे दिए। निजामुल्मुल्क की इस कार्रवाई ने विशेषरूप से शाहू का संराधन किया। इसके बाद प्रतिनिधि द्वारा एक समझौता किया गया[१] जिसके अनुसार शाहू हैदराबाद के पड़ोस में चौथ और सरदेशमुखी इस शर्त पर छोड़ने को राजी हुए कि निजाम इसके बदले में तुल्यांक मुद्रा देगा। इसके लिए शाहू को इन्दापुर के समीप कुछ जागीर क्षेत्र मिला। उस जनपद के वे वंशागत देशमुख थे।[२] प्रतिनिधि को एक जागीर बरार में प्रदान की गई। इस तरह से निजामुल्मुल्क ने समझौते की बातचीत द्वारा अपना प्रथम उद्देश्य सम्पादित किया। किन्तु बाजीराव ने निश्चित रूप से इस अदलाबदली को नापसन्द किया, क्योंकि वह इस प्रकार की चकबन्दी का बद्धबैरी था। उसके और प्रतिनिधि के बीच में कलह ने इतना जोर पकड़ा कि आभासों से तथा चन्द्रसेन जाधव राव रम्भा, बार्सी के निम्बालकर[३] जागीरदार और कोल्हापुर के राजा शम्भाजी के सहारे और मैत्री से उत्साहित होकर निजामुल्मुल्क ने अपनी पूर्वनियोजित युक्ति को पूरा करने का दृढ़ विचार किया। इसी निमित्त से उसने शम्भाजी के पक्ष को ग्रहण करने का और शाहू और शम्भाजी के बीच के पुराने झगड़ों को पुनर्जीवित कर शाहू-शासन में पूर्ण मतभेद उत्पन्न करने का प्रयत्न करने का विचार किया। दाभाडे और पीलाजी गायकवाड़ के अपने सम्बन्ध से, राजा गिरिधर के द्वारा पेशवा के अधिकारियों को मालवा में काम देने की आशा

---

[१] इस सन्धि पर जो मुङ्गीशेवगाँव के नाम से विख्यात है ६ मार्च १७२८ को हस्ताक्षर किए गए। पल्खेड की विजय युवा पेशवा की महान् सफलता थी। इससे निजाम की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा जो प्रत्यक्षतः साम्राज्य का प्रायः सर्वेसर्वा था, मँजा हुआ कूटनीतिज्ञ और दक्ष सैनिक था और अनेक युद्धक्षेत्रों में विजय लाभ कर चुका था—सिडनी ओवेन : इण्डिया आन द ईव आव ब्रिटिश कनक्वेस्ट, पृ० ६७।

[२] इस देशमुखी का अर्धांश शाहजी ने खरीदा था।

[३] बार्सी के निम्बाल्कर हैबत राव सरलशकर के परिवार के हैं। करमाला के निम्बाल्करों की उपाधि राव रम्भा है। ये दोनों परिवार अलग २ हैं।

से, अपने सैनिकों की अहंकारोक्ति उत्कृष्टता से उसको यह प्रयास करने का बुरी तरह से प्रलोभन मिला।

शम्भाजी ने राजस्व के समविभाजन की माँग की जिसकी निजामुल्मुल्क ने औपचारिक रूप से सुनवाई की। दक्खिन की एक प्रचलित प्रथा के अनुसार उसने विवादग्रस्त सम्पत्ति का पृथक्करण किया और जब तक कि उनके अलग २ अधिकारों का समन्यायपूर्वक समञ्जन नहीं हो जाता तब तक के लिए उसने सरदेशमुखी संग्राहक हटाए और शाहू के मोकासादार विस्थापित किए। राज्यपाल के रूप में इस विशेषाधिकार को ग्रहण कर उसने दोनों दलों के निर्णायक और मित्र होने का छद्म किया। किन्तु वंशागत झगड़े में मराठा भाईयों को फँसाने की पुरानी युक्ति के जाल में बाजी राव नहीं पड़ सकता था। उसने शीघ्रता से निजाम के हथकण्डों को निजी लाभ के रूप में परिवर्तित किया। किसान वर्ग के भी विनम्र से विनम्र व्यक्ति बहुधा उग्र से उग्र मानव हो जाते हैं, जब उनके वतन के कब्जे का प्रश्न उठता है। शाहू में भी एक मराठा की जन्मजात अनुभूति थी। कुछ समय तक शाहू ने निजामुल्मुल्क से मेल कर रखा था। इस हस्तक्षेप से शाहू का निजाम के विरुद्ध और कुछ समय के लिए उन सबों के भी विरुद्ध जिन्होंने इसके पूर्व निजाम के व्यवहार का पक्ष ग्रहण किया था या अब निजाम के व्यवहार की सफाई देने का साहस करते थे अशमनीय रोष जाग्रत हुआ। प्रतिशोध और सम्मति के लिए उसने बाजी राव का सहारा लिया। वंशागत जागीरों के बदले में वह जीवन दे सकता था और अब उनके लिए उसने अपने साम्राज्य की सर्वोच्चता को व्यवहारतः बेच दिया। पहले उसने स्वयं ही प्रयाण करने का निश्चय किया था, किन्तु उसको यह समझाया गया कि ऐसा करने से वह कोल्हापुर के शम्भाजी के बराबरी में हो जाएगा क्योंकि हिन्दुओं के राजा से एकमात्र सम्राट् ही लड़ने के योग्य है। अतः सम्पूर्णशक्ति बाजी राव को सौंपी गई। राष्ट्र के झण्डे के नीचे अत्यन्त दुर्धर्ष और कलहप्रिय अनेक सिलाहदार परिवार जितनी शीघ्रता से और स्वेच्छापूर्वक एकत्रित हुए उससे पेशवा के महान् प्रभाव का पता चलता है।

निजामुल्मुल्क ने अपनी गलती अनुभव की और शाहू और प्रतिनिधि को लिखा कि कोंकणी ब्राह्मणों[1] के अतिसर्पण को रोकने के लिए जिनके आदमी हर पद

---

[1] चितपावन ब्राह्मण रत्नागिरि जनपद के चिपलूण स्थान के रहने वाले थे। उनका रङ्ग गोरा, उनकी आँखें हलके रङ्ग की और भूरी तथा अपने घरों में कोंकणी बोली बोलने के कारण समुद्र द्वारा आए हुए माने जाते हैं। पहले ब्राह्मणों में उनका स्थान नीचा था। विल्कस ने लिखा है कि वे ब्राह्मण नहीं माने जाते थे और वे

पर बैठे हुए हैं, वह एक मात्र राजा का हित साधन करना चाहता है, मोकासादार और सरदेशमुखी के संग्राही हटा दिए गए हैं और उनके स्थान पर राजा के सम्बन्धी, शम्भाजी के आदमी रख दिए गए हैं; और राजा के उप के रूप में दक्खिन के छहों सूबों के सरदेशमुख शम्भाजी नियुक्त किए गए हैं और जब राजा उपरोक्त ब्राह्मणों के चंगुल से छुटकारा पा जायगा, तब वह एकमात्र अपनी ही रुचि के अभि-कर्ताओं की नियुक्ति कर सकता है। पेशवा के अभिवेदनों से शाहू की सक्रिय शत्रुता चरम सीमा तक उत्तेजित हो चुकी थी। वह प्रस्तुतियों से सन्तुष्ट होने वाला नहीं था और बाजी राव ने जो रङ्ग उस पर चढ़ाया उसने घाव पर नमक छिड़कने का काम किया। अतः दोनों ही पक्ष बरसात समाप्त होते ही जिससे कि उनके घोड़े नदियों को पार कर सकें, एक दूसरे पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करने लगे।

निजामुल्मुल्क मित्र शक्तियों के सम्मिलित होने की प्रतीक्षा करता ही था कि बाजी राव मैदान में उतर पड़ा और इसके पहले कि मुगल सेना उसका विरोध करने को तैयार हो सके, उसने जाल्ना जनपद को उजाड़ दिया। नवम्बर के आरम्भ में निजाम की अग्रिम टुकड़ी को लेकर एवज खाँ ने मराठों पर आक्रमण किया। बाजी राव ने आंशिक रूप से उससे मुठभेड़ की। वे पहले महोर की ओर पीछे हटे और बाद को तेजी से लौट कर औरङ्गाबाद की ओर मुड़े। लूटने के लिए वे नहीं रुके और उन्होंने यह घोषित किया कि बुर्हानपुर को धूल में मिला दिया जायगा। अपने रास्ते में पड़ने वाले इलाके को उजाड़ते हुए उन्होंने खानदेश की ओर प्रयाण किया। बुर्हानपुर को बचाने के निमित्त एवज खाँ और उनके पीछे २ निजामुल्मुल्क ने उसका पीछा किया। जब पीछा करने वाली सेना अपने सारे साज-सामान के साथ अजन्ताघाट के आगे चली गई, बाजी राव बुर्हानपुर की ओर एक टुकड़ी भेज कर अपनी मुख्य सेना को लेकर बाईं ओर घूम पड़े और बड़े वेग से गुजरात की ओर प्रस्थान किया। इस प्रदेश को उन्होंने लूटा और निजामुल्मुल्क की दुरङ्गी चालों का और उसके और सर बुलन्द खाँ के बीच में वर्तमान शत्रुता का लाभ उठा कर उन्होंने सर बुलन्द खाँ को ऐसा विश्वास कराने का दाँव फेंका कि इस आक्रमण में निजाम का हाथ है। सूरत की ओर निजाम के बढ़ने के विवरणों से इस किंबदन्ति ने जोर पकड़ा। इस तरह से धोखा खाने और बुर्हानपुर में कुछ समय खोने और व्यर्थ ही पेशवा का पीछा करने के बाद निजामुल्मुल्क की आँखें खुलीं। पूना को नष्ट करने का निश्चय कर वह दक्षिण भारत की ओर लौटा, किन्तु उसके अहमदनगर पहुँचने के पहले ही बाजी राव ने,

---

संदेशवाहक और हरकारा का काम करते थे। जब बाजी राव द्वितीय नासिक गए थे, वे उस सीढ़ी से नहीं जाने दिए गए जिस सीढ़ी से ब्राह्मण चढ़ते उतरते थे।

करसरभरी घाट के आगे जाकर गण्डापुर और वैजापुर जनपदों को पूर्णतया नष्ट किया। ये जनपद पुराने पट्टों या पिछले विनिमयों के आधार पर पूर्णतया जागीर थे। निजामुल्मुल्क के पुनः गोदावरी पार करने पर पेशवा ने कुछेक दिन तक छोटी-मोटी मुठभेड़ें कीं, और उसको अपनी अनुकूल स्थिति में खींच लाकर, घास में आग लगा दी, खाद्य सामग्री नष्ट कर दी और उसको रसद मिलने में बुरी तरह कठिनाई उत्पन्न कर दी। तोपखाने की अग्नि वर्षा से मराठों को गहरी क्षति उठानी पड़ी किन्तु उन्होंने उन २ पृथक दलों को जिन पर वे हावी हो सके समाप्त कर दिया और भारवाही पशुओं को हका ले गए। अन्त में कुछ ऊबड़खाबड़ भूमि पर जिसके चारों ओर कई मीलों तक जल नहीं था मराठों ने निजाम की सेना को पूर्णतया घेर लिया और इतने प्रभावशाली ढङ्ग से उसके हटने में रुकावट डाली कि वह इस दुःखदायी स्थिति से अपने को निकाल न सका और अन्धेरा छा गया। निजामुल्मुल्क पहले ही से समझता था कि युद्ध का यह ढङ्ग अपनाया जायगा, और इस आशा से उसने इस अभियान को आरम्भ किया था कि उसके सहयोगी हलके सैनिकों का काम पूरा करेंगे। उसने उनमें ओज की कमी होने की निन्दा की थी और उनको अपने देशवासियों के विरुद्ध वही ढङ्ग अपनाने की अनुशंसा की थी जिसको बाजी राव ने अपनाया था। किन्तु चन्द्रसेन जाधव ने यह अभिवेदन किया कि उसके अधिकांश सैनिक मुगल हैं, और शम्भाजी ने यह स्वीकार किया कि उनके सैनिक संख्या में तो कम हैं ही, उनको यह भी आशंका है कि उनके कारकुन शत्रुओं से मिले हुए हैं। मैत्री के स्वरूप पर और मराठों की विशिष्टताओं पर इस बात से प्रकाश पड़ता है कि एक भेंट के अन्त में शम्भाजी ने निजामुल्मुल्क से एक बात अकेले में कहने की प्रार्थना की और तब उन्होंने निजाम से यह निवेदन किया कि उपदान का द्रव्य उनके कारकुनों को न दिया जाय, क्योंकि वे सैनिकों के प्रति कपट करेंगे। दूसरी ओर ब्राह्मणों ने एक दूसरे प्रतिनिवेदन द्वारा जो इसी के समान निजी था यह अभिवेदन किया कि शम्भाजी सम्पूर्ण मुद्रा को नर्तकियों पर खर्च कर देंगे, नशाखोरी और व्यभिचारिता में उड़ा देंगे और यह चिन्ता नहीं करेंगे कि वे लोग मर रहे हैं और सिपाही विद्रोह कर रहे हैं।

१७२८ ई०

इस समय निजामुल्मुल्क मराठा मित्र-शक्तियों पर नितान्त विवश था। अपने पर किए गए आक्रमणों और अभावग्रस्तता से लाचार होकर वह एवाज खाँ के द्वारा समझौता करने को बाध्य हुआ। प्रयास कर पहले तो वह पानी मिलने के स्थान पर पहुँचा बाजी राव की माँगें थीं: शम्भाजी उनके शिविर में भेजे जायँ; मराठा अंश के राजस्व के संग्रह की सुरक्षा के रूप में उनको कुछ किलेबन्द स्थान दिए जायँ और सम्पूर्ण बकाया राजस्व की जिसकी कि उगाही नहीं हुई है पूर्ति की

जाय। निजामुल्मुल्क ने अपने साथी को अर्पण करने के अतिरिक्त सब शर्तों को स्वीकार किया। बाजी राव ने यह अभिवेदन किया कि शम्भाजी राजा के निकट सम्बन्धी हैं और उनका बराबरी का आदर किया जाय। अन्त में यह निश्चय हुआ कि निजमुल्मुल्क पन्हाला में उनके सुरक्षापूर्वक पहुँचने का उत्तरदायित्व लेंगे, वहाँ पहुँचने पर पारिवारिक कलह को शान्त करने के लिए वे जो उचित समझेंगे, करेंगे।

बाजीराव और निजामुल्मुल्क की भेंट होने और जियाफत[1] (उपहारों) का विनिमय तथा सन्धि हो चुकने पर सेनाएँ लौट गईं। इसका अन्तिम सत्यांकन होना दोनों दलों, विशेषकर बाजीराव, के लिए आवश्यक था, क्योंकि वे उस समय गुजरात की चौथ और सरदेशमुखी प्राप्त करने की आशा से सर बुलन्द खाँ से समझौते की बात चला रहे थे। पहले तो सर बुलन्द खाँ ने मराठों के आक्रमणों को रोकने की चेष्टा की थी किन्तु देश को पूर्ण विनाश से बचाने के लिए उसको बाजी राव की शर्तों को मानना पड़ा। केन्द्र ने मुद्रा की उसकी माँगों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की और शुरू २ में शोषित किए हुए जनपदों से पर्याप्त राजस्व उगाहना असम्भव था। चौथ के पट्टे देकर उसने पीलाजी और कन्ताजी को मनाने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्होंने पूरा राजस्व एकत्रित कर लिया और देश की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया। चिमनाजी अप्पा एक बड़ी सेना लेकर आया, उसने पितलौद से एक भारी अंशदान वसूल कर धोलका को लूटा। अपने भाई की ओर से यह वचन दिया कि चौथ और सरदेशमुखी दिए जाने पर, जनपद की अन्य सभी लुटेरों के आक्रमणों से सफलतापूर्वक रक्षा की जायगी। अन्त में सर बुलन्द खाँ ने पेशवा के प्रस्तावों को मान कर १७२६ में राजा शाहू के मन्त्री बाजी राव के वकील शाम राव को पट्टे लिखे। जिनके अनुसार भूमि और सीमाशुल्क के सम्पूर्ण राजस्व का सरदेशमुखी या दस प्रतिशत किन्तु इसमें सूरत बन्दरगाह और जनपद शामिल नहीं था; और सूरत के अतिरिक्त सम्पूर्ण भूमि-सीमा शुल्क का चौथ या चौथाई; और अहमदाबाद नगर के राजस्व का पाँच प्रतिशत प्रदान किए गए।

१७२६ ई०

सर बुलन्द खाँ ने इन पट्टों में लिखा है कि दक्खिन में किए गए सुधार की प्रगति, बढ़ती हुई जनसंख्या, और सामान्य शान्ति के फलस्वरूप गुजरात में ये

---

[1] जियाफत का अर्थ है, दावत, भोजन से सत्कार; आतिथ्य। हिन्दू मुसलमान के हाथ का भोजन नहीं करते थे अतः जियाफत में केवल उपहारों की अदला-बदली होती थी।

देय अर्पण किए गए हैं। दक्खिन के सूबों की सरदेशमुखी की जो शर्तें इस पट्टे में दी हुई हैं, लगभग उसी के समान शर्तें इस प्रान्त की सरदेशमुखी के लिए भी इस विलेख में दी हुई हैं, किन्तु चौथ का विलेख अधिक विशिष्ट विवरणयुक्त है : २५०० घोड़े निरन्तर रखने होंगे; केवल वास्तविक संग्रह का चौथाई भाग देना होगा; मराठों की ओर से किसी भी जनपद में दो या तीन संग्राहकों से अधिक न रहेंगे; इसके अतिरिक्त रैयतों से कोई अन्य माँग नहीं की जायगी और शाही प्रभुता बनाए रखने में प्रत्येक सहायता प्रदान की जायगी। विलेख में एक शर्त यह भी है कि शाहू की ओर से बाजी राव मराठा जनता को, असन्तुष्ट जमींदारों या अन्य शान्ति भङ्ग करने वालों को किसी प्रकार से सहारा देने या उनसे सम्मिलित होकर कार्रवाई करने से, रोकने को सहमत है। इस शर्त का कारण यह था कि बाजी राव, कन्ताजी कदम और त्रिम्बक राव दाभाडे के हित विरोधात्मक थे। ऐसा प्रतीत होता है कि दाभाडे के अभिकर्ता पीलाजी गायकवाड़ की उस प्रदेश के भीलों और कोलियों से साठगाँठ थी। विशेष रूप से इस कारण से मुसलमान उसको विशेषतया भयानक मानते थे। विलेखों के प्राप्त हो जाने पर मोकासा तथा सरदेशमुखी के एक अंश का संग्रह दाभाडे को सौंपा गया। किन्तु प्रान्त के मामलों में बाजी राव के हस्तक्षेप की ईर्ष्या से वह सरदार उसका बद्धबैरी था। जब बाजी राव चिमनाजी की सहायता करने के लिए गुजरात गए हुए थे, उदाजी चवाण कोल्हापुर के राजा शम्भाजी को शाहू के समझौते की वार्ता की ओर ध्यान न देने को प्रोत्साहित किया। अतः वह अपना साहस प्रदर्शित करने के लिए वर्णा नदी के उत्तरी तट पर अपने सारे साज-सामान और महिलाओं के साथ शिविरस्थ हुआ और उस प्रदेश को लूटने लगा। अतः प्रतिनिधि को एक अवसर प्राप्त हुआ कि वह शाहू के यहाँ अपना खोया हुआ प्रभाव पुनः प्राप्त कर ले। शम्भाजी और उदाजी चवाण के शिविर पर आक्रमण कर उनको पन्हाला भागने को बाध्य कर और उनका सारा सामान छीन कर उसने कुछ हद तक अपना प्रभाव जमाया भी। प्रतिनिधि ने तारा बाई और उसकी पुत्रवधू राजिश बाई जो कोल्हापुर के शिवाजी की विधवा थी तथा अन्य अनेक व्यक्तियों को बन्दी किया। तारा बाई और राजिश बाई सातारा के किले में बन्दी बना कर रखी गईं। इस पराजय से तुरन्त समायोजन हुआ। कुछ किलों को छोड़ कर वे मराठे जनपद और अधिकार जो उत्तर में वर्णा और कृष्णा और दक्षिण में तुङ्गभद्रा नदियों के बीच में पड़ते हैं पूर्णतया प्रदान किए गए। शाहू ने तुङ्गभद्रा के समीप स्थित कोपाल[1] के बदले में रत्नागिरि

१७३० ई०

[1] बीजापुर से १०५ मील दक्षिण है।

ली। शाष्ठि से अङ्कोल तक का कोंकण प्रदेश कोल्हापुर राज्य में सम्मिलित किया गया। वर्णा नदी के दक्षिण तट पर स्थित वड़गाँव की गढ़ी, जिस पर उदाजी चवाण का अधिकार था और जिसके कारण सीमा-युद्ध में बहुत सी जानें गई थीं, पारस्परिक सहमति से नष्ट कर दी गई। किन्तु चवाण के दावे अनिश्चित छोड़ दिए गए, हटनी, कृष्णा के उत्तरी तट के कई गाँव और बीजापुर जनपद के कई किलेबन्द स्थान शाहू को प्रदान किए गए। यह सन्धि आक्रमणात्मक और प्रतिरक्षात्मक थी इसमें तुङ्गभद्रा के दक्षिण में हुई भावी विजयों के विभाजन के लिए गुञ्जाइश थी, जो सहयोग होने पर बराबर २ बाँटी जायगी। किसी भी पक्ष से दिए हुए इनाम भूमि या वंशागत अधिकारों के पट्टों की अपने २ सीमाओं के अन्दर पुष्टि की गई।

१७३१ ई०—पेशवा की ख्याति को कम करने वाले और उसके प्रतिद्वन्द्वियों की प्रशंसा करने वाले विपक्षियों की कमी नहीं थी। प्रतिनिधि की सफलता से बाजी राव के उत्कर्ष में वस्तुतः कोई असर नहीं पड़ा। किन्तु निजामुल्मुल्क अब भी उनका प्रतिरोध करने के लिए तुला हुआ था। उसने त्रिम्बक राव दाभाडे को अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए एक उपयुक्त साधन समझा। जब से पेशवा ने सर बुलन्द खाँ से विलेख प्राप्त किये तभी से दाभाडे अन्य मराठा सरदारों से समझौते की बात चला रहा था और गुजरात में सैनिकों की भरती कर० रहा था। अन्त में जब उसके पास ३५००० आदमी हो गए, उसने अगले युद्ध में दक्षिण भारत को प्रयाण करने का निश्चय किया। वाजी राव को सेनापति की शत्रुता की पूरी जानकारी थी। किन्तु उसकी तैयारियों से वह नहीं डरा, जब तक कि उसको यह नहीं मालूम हुआ कि दक्खिन में निजामुल्मुल्क उसकी सहायता करेंगे। उनके इरादे की जानकारी होते ही उसने तुरन्त समय पूर्व तैयारी कर ली यद्यपि उसके सब अनुयायियों की सम्मिलित सेना दाभाडे की आधी सेना से अधिक नहीं थी। दाभाडे ने यह बात फैलाई कि वह राजा के अधिकारों की रक्षा के लिए जा रहा है और पीलाजी गायकवाड़, कन्ताजी, रघुजी कदम भाण्डे, उदाजी, आनन्द राव पवार[1], चिमनाजी पण्डित,[2] कुँवरबहादुर तथा अन्य अनेक लोग उसकी सहायता कर रहे हैं। बाजी राव ने यह प्रमाणित किया कि दाभाडे सेनापति की निजामुल्मुल्क से साठगाँठ है। और यह घोषित किया कि उसने मराठा सार्वभौमिकता को कोल्हापुर के राजा के साथ विभाजन करने के

[1] पवार परिवार मालवा में धार के समीप रहता था और पीलाजी गायकवाड़ से इस परिवार का सदा से युद्ध होता रहा है।

[2] सम्भवतः यह चिमनाजी दामोदर था।

निमित्त यह गठबन्धन किया है। यह कार्रवाई शास्त्रों के दैवी आदेशों के विरुद्ध और न्यायपूर्ण नीति के असंगत थी।

निजामुल्मुल्क की तैयारियों से बाजी राव के प्रयाण में तेजी आई। यद्यपि उसकी सेना संख्या में इतनी कम थी, फिर भी उसने बड़ी तेजी से गुजरात की ओर प्रयाण किया, क्योंकि उसकी सेना में पुराने पगाहा अश्वारोही और कुछ चुने हुए मराठा मानकरी थे। पूना छोड़ने के दिन से हमला करने की घड़ी तक वह समझौते की वार्ता चलाता रहा। नर्मदा पार करने के शीघ्र ही बाद आबाजी कोवरे के नेतृत्व में उसके अग्रगामी सैनिक, पीलाजी गायकवाड़ के एक पुत्र दमाजी के अधीन एक शत्रु दल से मुठभेड़ होने पर वे पूर्णतया पराजित हुए, किन्तु बाजी राव इस दुर्भाग्य-पूर्ण घटना से अनुत्साहित न होकर अपने देशवासियों से युद्ध करने के पूर्व अपनी सामान्य योजना के विपरीत तुरन्त ही उन पर आक्रमण कर दिया। नए भरती किए हुए सैनिक इस आघात को नहीं सह सके और पहले ही हमले पर भाग खड़े हुए। खण्डो राव दाभाडे के पुराने सैनिकों को अपने लड़के की रक्षा करने के लिए वहाँ छोड़ कर, कन्ताजी कदम भगोड़ों के साथ चले गए। त्रिम्बक राव एक हाथी पर चढ़ाया गया और अपने सैनिकों को भागते देख कर हाथी के पैरों में जञ्जीर डाल दी। बाजी राव घोड़े पर था और इस महत्त्वपूर्ण अवसर के अनुरूप अपनी पूर्ण शक्ति इसमें लगा दी। किन्तु फिर भी बड़ी दृढ़ता से विजयश्री प्राप्त करने के लिए युद्ध होता रहा। परिणाम सन्दिग्ध था। जिस समय त्रिम्बक राव अपनी धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा रहा था, तोप से एक यादृच्छिक गोला उस पर आकर गिरा। उसकी मृत्यु से पूर्ण विजय और मराठा सार्वभौमिकता का नाम छोड़ कर सम्पूर्ण सञ्चालन-शक्ति बाजी राव के हाथ लगी।

अप्रैल १—पहली अप्रैल के आस पास गुजरात में बड़ौदा और दभोई के बीच के एक स्थान पर युद्ध हुआ जिसमें जावजी दाभाडे मूलोजी पवार और पीलाजी गायकवाड़ का एक पुत्र अपने सेनापति के साथ खेत रहे। उदाजी पवार और चिमाजी पण्डित बन्दी किए गए। आनन्द राव पवार, पीलाजी गायकवाड़, और कुँवर बहादुर आहत हुए किन्तु भाग निकले। दभोई[1] और बड़ौदा दोनों ही पीलाजी के हाथ में पड़े। बाद को उसने बड़ौदा को मुगलों के हाथ में सौंप दिया। किन्तु सर बुलन्द खाँ के संकेत पर बाजी राव इसको अपने ही लिए विजय करना चाहते थे। अगस्त के महीने में एक सन्धि की गई और वर्षा समाप्त होने पर पेशवा सातारा को लौटे। उसने निजामुल्मुल्क को विश्वासघात का मजा चखा दिया होता, किन्तु उस

[1] दभोई पहले उदाजी पवार और बाद को पीलाजी के हाथ में पड़ा।

चालाक राजनीतिज्ञ ने जिसकी युक्तियाँ उसी के सिर पर आ पड़ी थीं उस आघात के लक्ष्य को साम्राज्य के प्रधान के विरुद्ध सञ्चालित कर अपनी रक्षा की। इस आघात का सहन करना उसके लिए कठिन था।

बाजी राव तुरन्त ही निजाम के विचारों से सहमत हो गए क्योंकि यह उनके प्रिय नीति के अनुकूल था और इससे उन व्यक्तियों को काम मिला जिनसे अपेक्षित गृहप्रबन्ध में गड़बड़ी होने की सम्भावना थी। उनके भाई चिमनाजी के नेतृत्व में तुरन्त ही सैनिक मालवा की ओर भेजे गए। और वे पूना और कुछ समय तक सातारा के प्रशासन का भीतरी प्रबन्ध करने में व्यस्त थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी घटनाएँ घटीं और ऐसे षड्यन्त्र हुए कि अन्त में बाजी राव और निजामुल्मुल्क के बीच में एक गुप्त समझौता हुआ जिससे पेशवा के रूप में बाजी राव को सर्वोच्चता और निजामुल्मुल्क को दक्खिन में राज्य प्राप्त हुआ।

प्रत्येक गृहयुद्ध के परिणाम की तरह दाभाडे के ऊपर प्राप्त इस विजय ने भी बहुतों के मस्तिष्क पर प्रायः अमिट प्रभाव छोड़ा। किन्तु पेशवा ने साम नीति के प्रत्येक साधन को जो उसकी शक्ति में थे अपनाया। पूना के समीप दाभाडे के इनाम गाँव तलेगाँव में[1] प्रतिवर्ष कई दिनों तक कुछ हजार ब्राह्मणों को खिलाने की प्रथा थी। बाजी राव ने इस पुण्य कार्य को केवल चालू ही नहीं रखा बल्कि वहाँ एकत्रित हुए शास्त्रियों और वैदिकों को दक्षिणा भी प्रदान किया। उनके उत्तराधिकारी भी दक्षिणा नाम के इस उत्सव को मनाते थे।

मृत दाभाडे के पुत्र यशवन्त राव को सेनापति का पद मिला। किन्तु उसकी आयु बहुत ही कम होने के कारण वह इस उत्तरदायित्व को नहीं सम्हाल सकता था। अतः उसकी माता उमा बाई उसकी संरक्षिका बनी। और अपने पुराने मुतालिक पीलाजी गायकवाड़ की उसके पद पर पुष्टि की और उसको उसकी वंशागत शमशेर बहादुर की उपाधि के अतिरिक्त सेना खास खेल[2] की पदवी दी। झगड़ों को रोकने के लिए शाहू की आज्ञा से एक समझौता लिखा गया जिस पर पेशवा और सेनापति ने हस्ताक्षर किए। इसके अनुसार गुजरात और मालवा में इन दोनों पक्ष में से कोई भी पक्ष दूसरे की सीमा में प्रवेश नहीं करेगा। गुजरात सूबे की सीमा में सेनापति का पूर्ण प्रबन्ध होगा। किन्तु उसने पेशवा के द्वारा शासन को राजस्व का आधा भाग देने की प्रतिज्ञा की और सर बुलन्द खाँ की आज्ञा से दिए गए विलेखों

---

[1] 'तलेगाँव दाभाडे' पूना से बीस मील दूर उत्तर-पश्चिम में है। खण्डे राव दाभाडे के वंशज अब भी यहाँ रहते हैं। वे यहाँ के वंशागत पटेल हैं।

[2] सेना खास खेल का अर्थ है, 'विशिष्ट सेना के सेनापति।'

में जिन प्रदेशों का नाम विशिष्ट रूप से अङ्कित नहीं है, वहाँ से उगाहे हुए सब अंशदान खर्चा काट कर राजा को दिए जायँगे।

शाही दरबार ने गुजरात सूबे से चौथ और सरदेशमुखी का दिया जाना नितान्त नापसन्द किया, शाही दरबार ने न तो सर बुलन्द खाँ की सहायता करने का, और न उस विपदा और अपमान से उस अधिकारी को बचा लेने का प्रयत्न किया जो उसकी सहायता की माँग की उपेक्षा करने से होना ही था। जोधपुर के राजा अभयसिंह ने सर बुलन्द खाँ को अधिक्रमण किया और अपने नए शासन का प्रभार ग्रहण करने के लिए एक सेना लेकर प्रस्थान किया। पर्याप्त समय तक सर बुलन्द खाँ ने उसका प्रतिरोध किया, किन्तु अन्त में एक समायोजन होने के बाद सर बुलन्द खाँ ने दिल्ली को प्रस्थान किया जहाँ उसके साथ अत्यन्त दुरव्यवहार किया गया और वह बुरी तरह से अपमानित हुआ। यद्यपि बाजी राव निजामुल्मुल्क का शत्रु था किन्तु सर बुलन्द खाँ का अपमान और अप्रतिष्ठा होने पर निजामुल्मुल्क और बाजी राव का घनिष्ठ सम्बन्ध पुष्ट हुआ। मुसलमान इतिहास लेखक कुछ अंशों तक ठीक हैं। किन्तु सर बुलन्द खाँ के प्रति निजामुल्मुल्क का जो विचार हुआ, उसका वास्तविक कारण उदारता नहीं, बल्कि स्वार्थ था। बाजी राव की पूर्ण प्रभुता सर बुलन्द खाँ का अधिक्रमण कर हिन्दू राजा अभय सिंह की नियुक्ति, सम्राट् की निर्बलता, उसके पतित घूसखोर, उसके दरबारियों का विश्वासघात और पतित घूसखोरी, तथा सम्राट् की उसके प्रति अत्यन्त अरुचि के कारण निजामुल्मुल्क को पर्याप्त आशंका थी कि दक्खिन की सूबेदारी पेशवा को प्राप्त हो जायगी। इन परिस्थितियों में जो योजना उसने अपनाई, वह बहुत उच्च श्रेणी की राजनीति थी और ऐसा प्रतीत होता है कि मराठों का ध्यान अपने निजी प्रदेश के साधनों को विनष्ट करने से हटाने के निमित्त, और सम्राट् और पेशवा के बीच में अपनी निजी शक्ति का सन्तुलन बनाने के निमित्त उसने यह योजना बनाई थी।

मालवा अभियान पर प्रस्थान करने के पूर्व बाजी राव ने निजामुल्मुल्क से भेंट की और जो सहायता वह दे रहा था उसके बदले में उससे एक उपदान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। निजाम ने इसके औचित्य को तो स्वीकार किया किन्तु मित्र-शक्ति की सहायक सेना को कुछ न दिया। बाजी राव ने तुरन्त ही इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि वह दक्खिन के छहों सूबों से सामान्य कर के अतिरिक्त कुछ भी वसूल नहीं करेगा और मालवा आने-जाने में उसके रास्ते में पड़ने वाले खानदेश के जनपदों की रक्षा करेगा।

१७३२ ई०—पवार, होल्कर और सिंधिया मालवा प्रान्त के विभिन्न भागों से अंशदान वसूल करते रहते थे किन्तु राजा गिरिधर प्रत्येक अवसर पर बहुत धैर्य

और शक्ति से उनका सामना करता था। किन्तु १७२६ में उदाजी पवार और चिमनाजी पण्डित[1] से लड़ते हुए एक मुठभेड़ में वह खेत रहा उसके स्थान पर उसका सम्बन्धी दयाबहादुर सूबेदार नियुक्त होकर साहसपूर्वक मराठों के आक्रमणों को रोकता रहा और कभी २ सफलतापूर्वक, किन्तु अन्त में वह पेशवा के भाई चिमनाजी अप्पा, पीलाजी जाधव और मल्हार राव होल्कर द्वारा आक्रमण किए जाने पर धार के समीप ताला में मारा गया और उसके सैनिक पराजित हुए। नर्मदा पार कर बाजी राव ने मालवा की सेना का कमान अपने हाथ में लिया और अपने भाई और पीलाजी जाधव को सातारा भेज दिया जिससे वे दरबार में उसका प्रभाव बनाए रखें और कोंकण की अराजकता को शान्त करें; क्योंकि पेशवा उस सेना को लौटा लेने के लिए बाध्य हुआ था जो पहले कोंकण में पूर्ण व्यवस्था स्थापित करने और जञ्जीरा को विजय करने के लिए जाने वाली थी।

गुजरात से पेशवा के प्रस्थान करने के बाद अभय सिंह के फौजदार ने बड़ौदा के किले पर अधिकार कर लिया। किन्तु पीलाजी गायकवाड़ जनप्रिय था, क्योंकि उसने अनेक विजय लाभ की थी और कई मुख्य थानों पर अधिकार कर चुका था। अभय सिंह ने उससे समझौते की बात चलाने के बहाने और प्रारम्भिक बातों के तय करने के निमित्त अपने कुछ दूत भेजे। ये दूत पीलाजी से बारम्बार भेंट करते थे और एक दिन गोधूलि वेला तक बैठे रहने के पश्चात् वे वहाँ से चले और शिविर के बाहर आए। किन्तु उनमें से एक इस बहाने से कि वह कोई महत्त्वपूर्ण चीज भीतर छोड़ आया है शिविर के अन्दर गया और पीलाजी के कान में कुछ कहने के बहाने एक खञ्जर खींच कर उसके हृदय में भोंक दिया। हत्यारा तुरन्त मार डाला गया किन्तु बाकी दूत निकल गए। यह हत्या तौसरह जिले के एक विख्यात गाँव धाकू में हुई।

पीलाजी गायकवाड़ की हत्या से अभय सिंह को वे लाभ नहीं प्राप्त हुए जिसकी उसने आशा की थी। पीलाजी का दिल्ली से जो बड़ौदा के समीप पद्रा का देसाई था मैत्रीभाव था। उसने सारे प्रदेश के भीलों और कोलियों को भड़का कर विद्रोह करा दिया और जब विद्रोहियों को दबाने के लिए सैनिकों ने प्रस्थान किया तब उसने अवसर देखकर पीलाजी के भाई महाद जी गायकवाड़ को जो उस समय जम्बूसेर में थे, बड़ौदा पर आक्रमण करने की सलाह दी। इसके अनुसार कार्यवाही कर उसने १७३२ में लगभग उसी समय जब दयाबहादुर मालवा में मारा गया बड़ौदा पर अधिकार कर लिया। उस समय से बराबर यह गायकवाड़ परिवार के

---

[1] यह बाजी राव का भाई नहीं था।

हाथ में रहा।[1] मराठों द्वारा प्राप्त इन सफलताओं के अतिरिक्त, पीलाजी का ज्येष्ठ उत्तरजीवी पुत्र दमाजी ने एक बड़ी सेना लेकर सोनगढ़ से प्रस्थान किया और गुजरात के पूरब में कई मुख्य जनपदों पर अधिकार कर उसने जोधपुर तक आक्रमण किया। इस कारण अहमदाबाद को एक सहायक को सौंप कर अभयसिंह अपने पैत्रिक राज्य की रक्षा के लिए गया।

१७३३ ई०—इलाहाबाद का राज्यपाल मुहम्मद खाँ बंगश मालवा का नया सूबेदार नियुक्त किया गया। वहाँ पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद उसने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया और राजा छत्रसाल के प्रदेश में आ जमा। राजपूत राजा ने बाजी राव से सहायता माँगी, तुरन्त ही बुन्देलखण्ड में प्रयाण कर पेशवा ने बंगश को घेर लिया। उसने एक किले में शरण ली जहाँ उसको बहुत विपत्ति का सामना करना पड़ा। अन्त में उसके लड़के के नेतृत्व में उसकी ही जाति के एक अफगान दल ने उसको वहाँ से निकाला। उसके समस्त सैनिकों ने उस प्रान्त को छोड़ दिया, और छत्रसाल अपने नए मित्र से इतना सन्तुष्ट हुआ कि उसने उसको झाँसी के पड़ोस का एक किला और जनपद प्रदान किया जिसका वार्षिक राजस्व सवा दो लाख रुपए मूल्य का था। उसको अपना पुत्र माना और उसके मरने पर जो थोड़े ही दिनों बाद हुई, उसको उसके दो पुत्रों, जगतराज जी देव जो कालपी का राजा कहलाता था और हरदेसा, जो बुन्देलखण्ड का राजा कहलाता था, के साथ तिहाई हिस्सा मिला। ऐसा प्रतीत होता है कि चाहे वे अलग-अलग प्रबन्ध करते रहे हों, किन्तु उनके भाग सर्वनिष्ठ थे।[2]

१७३४ ई०—मुहम्मद खाँ बंगश की पराजय के बाद सम्राट् ने राजा जयसिंह को आगरा और मालवा के सूबों का राज्यपाल नियुक्त किया। यह बाजी राव के अत्यन्त अनुकूल हुआ, किन्तु जयसिंह जिस परिस्थिति में था उसमें राजपूत का मान उसके और मराठों के बीच के वर्तमान समझौते से भिन्न था किन्तु अन्त में उसने बाजी राव से समझौता किया और उसको अगले वर्ष मालवा का शासन दिया। जयसिंह के समझाने से उस समय सम्राट् ने भी मौन उपमति दी।

---

[1] स्वतन्त्र भारत में देशी राज्यों के विलीनीकरण के पूर्व तक।

[2] पन्ना के राजा छत्रसाल बुन्देला की मृत्यु १७३१ में हुई।

अध्याय १५

(१७३४ ई० से १७३९ ई० तक)

१७३४ ई०—पिछले अध्याय में यह बताने का प्रयत्न किया गया था कि किस तरह मराठे गुजरात में फैले और मालवा में पैर जमाए। उनकी गृहनीति, और बरार और कोंकण में उनकी कार्रवाइयों, मालवा में उनके अभियान तथा अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यवाहियों का वर्णन इस अध्याय में किया जायगा।

पेशवा की अनुपस्थिति में, सेना साहब सूबा कान्होजी भोसले पर आज्ञा उल्लंघन का अभियोग लगा कर उसको सातारा में बन्दी रखा गया। उसके स्थान पर कान्होजी का चचेरा भाई बिम्बाजी का पुत्र रघुजी नियुक्त हुआ। एक अश्वारोही दल लेकर रघु जी ने अपने सम्बन्धी कान्होजी की एवं गोंडवाना में एक साधारण मुसलमान शासक की सेवा की थी।[1] उसका पद अत्यन्त छोटा था अतः उसे लोग सामान्यतया नहीं जानते थे। किन्तु उसने अपने सीमित क्षेत्र में अपने उत्कृष्ट बुद्धि, क्रियाशीलता और साहस से नाम कर लिया था। उस षड्यंत्र के विवरण का पता नहीं है जिसके कारण कान्होंजी भोसले के पद और जागीर छीने गए। किन्तु राजा के चुनाव के अनुकूल रघुजी का उसका उत्तराधिकारी चुने जाने से मालूम होता है कि सम्भवतः बाजी राव का इसमें हाथ नहीं था। रघुजी एक अत्यन्त साहसी एवं कुशल शिकारी था और शाहू के साथ उसके आखेट अभियानों में जाया करता था। इस तरह उसने राजा का अनुग्रह प्राप्त कर लिया और उसका प्रभाव भी राजा पर था। शाहू ने उसका विवाह अपनी ही एक पत्नी की बहिन से शिर्के परिवार में करा दिया। सातारा और नागपुर के परिवारों के बीच यही एक मात्र सम्बन्ध का पता चलता है। इसके अतिरिक्त उन दोनों का एक ही कुल-नाम[2] था सम्भव है वे मूलरूप में सम्बन्धी और अपने

---

[1] पहले वे हिन्दू पालेगार थे जिनका औरङ्गजेब ने धर्म परिवर्तन किया।

[2] एक परम्परा के अनुसार दोनों में वंशागत झगड़ा था। सम्भव है कि यह बात सातारा के राजाओं और नागपुर के भोसलों में मनमुटाव करने के लिए गढ़ी गई हो।

गाँव के पाटेली अधिकार के प्रतिद्वन्द्वी रहे हों।[1]

बरार की सनदें प्राप्त होने पर रघुजी ने एक बन्धपत्र दिया जिसके अनुसार राज्य की सेवा के लिए उसे पांच हजार अश्वारोही रखने का, नौ लाख रुपये वार्षिक देने का, और घास-दाना के अतिरिक्त जिसको रखने की अनुमति, राजाराम के समय से सेना साहब सूबा को मिल गई थी अन्य सब करों का, इनाम जायदाद का और उपदानों का, केवल आधा भाग शासन को देने का अनुबन्ध किया। आवश्यकता पड़ने पर दस हजार अश्वारोही भरती करने; पेशवा के साथ जाने, और जहाँ भी उसको आज्ञा दी जाय वहाँ प्रस्थान करने का अनुबन्ध भी उसने किया।

यह प्रबन्ध श्रीपति राव प्रतिनिधि की अनुपस्थिति में किया गया जिसको राजा ने कोंकण में भेज रखा था। प्रतिनिधि कान्होजी भोसले का मित्र था। उसने उसके दण्ड में कमी कराने का प्रयत्न किया और यह प्रस्ताव किया कि दो सौ अश्वारोही रखने की शर्त पर उसको बरार-पायान-घाट के अकोला और बालापुर पुनः दे दिए जाँय। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात मानी नहीं गई। कान्होजी एक बहुत ही साहसी अधिकारी था। उसने गोंडवाना में कुछ आंशिक विजय प्राप्त की थी और कटक में अभियान का नेतृत्व किया था। सातारा में कई वर्षों तक एक खुले कैदी के रूप में रहने के बाद उसकी वहीं मृत्यु हुई।

यह अनिश्चित है कि इन कलहों के फलस्वरूप निजामुल्मुल्क ने कोई तैयारियाँ की थीं। किन्तु चिमाजी अप्पा के मन में ऐसा विचार उठा या उसने ऐसा विश्वास करने का छद्म किया कि वह एक आक्रमण करने को सोच रहा है। अतः उसने सातारा से चालीस मील दूर पूरब में अपना शिविर लगाया। पेशवा के तात्कालिक हित के लिए सातारा में यही अकेली सेना थी। अतः पीलजी जाधव के पास बहुत ही थोड़े अश्वारोही बचे।

जब बाजी राव ने मालवा में प्रवेश किया, तो उसकी युक्ति राजा को कोंकण के छोटे मामलों में फँसा रखने की थी। गोआ से बम्बई तक के छोटे से क्षेत्र के अधिक विभाजन, कलहरत दल और इसके कुछ निवासियों की दुर्धर्ष प्रकृति उसके ध्यान को कार्य में लगाने और श्रान्त करने के लिए पर्याप्त थे। इनका विशेष विवरण यहाँ पर दिया जा रहा है, क्योंकि पिछली शताब्दी में बम्बई सरकार की कार्यवाहियों में इन अधिकारियों का भी बड़ा हाथ रहा है। इसी क्षेत्र में वरी के प्रधान देशमुख

---

[1] सम्भवतः भोस परगना या ग्राम पर शिवाजी के पूर्वजों का नाम भोसले पड़ा। इसी तरह नागपुर के भोसलों का भी नाम पड़ा। वे सातारा जनपद के देउर ग्राम के पटेल थे।

सावन्त का अपने वशांगत इलाके पर कब्जा था। किन्तु सातारा और कोल्हापुर के राजाओं के बीच में हुई पिछली सन्धि के पूर्व कान्होजी अंग्रिया के आक्रमणों से उसे क्षति उठानी पड़ी थी। अतः वह उसी समय से अंग्रिया के परिवार से शत्रुता रखता था।

कान्हो जी अंग्रिया की मृत्यु १७१८ के लगभग अन्त में हुई। उसके जीवन काल में उसकी शक्ति का दमन करने के सारे प्रयत्न निष्फल हुए। उसकी धृष्टता और लूटमार से क्रोधित होकर बम्बई सरकार ने पुर्तगालियों से साठगांठ कर कोलाबा के विरुद्ध एक अभियान किया। उसी राष्ट्र द्वारा दिए हुए भूमि-सैनिकों ने और कम्मोडोर मेथ्यूज[1] के अधीन तीन अंग्रेजी जहाजों ने जो एक के पीछे एक लगी हुई थीं सहयोग किया किन्तु पुर्तगालियों की कायरता के कारण प्रयास असफल रहा। यह अभियान १७२२ में किया गया और दो वर्ष बाद डचों ने सात जहाजों, दो बमवर्षक नावों और सैनिकों के एक दल को लेकर विजयदुर्ग पर आक्रमण किया जो उस समय मुगलों के दिए हुए घरिया के नाम से विख्यात था। अंग्रिया ने कई अंग्रेजी जहाजों को पकड़ा और अपनी मृत्यु के लगभग एक वर्ष पूर्व इसने डरबी जहाज को पकड़ा जो ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी की थी और जिस पर मूल्यवान् वस्तुएँ लदी थीं। उसके जहाजों के मल्लाह, अन्य मराठों की तरह जब वे सफल हो जाते हैं, बहुत साहसी हो गए। समुद्र तट पर के उसके किले दुर्दमनीय समझे जाते थे।

कान्होजी अंग्रिया दो वैध और तीन अवैध पुत्रों को छोड़कर मरा। पूर्वोक्त दो लड़के उसके स्वामित्व के उत्तराधिकारी हुए। सकोजी[2] नाम का ज्येष्ठ पुत्र कुलाबा में रहता था और कनिष्ठ पुत्र शम्भाजी सुवर्णदुर्ग में। ज्येष्ठ पुत्र भी अपनी पिता की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद मर गया और शम्भाजी ने सौतेले भाईयों में से ज्येष्ठ को अपने पास रखा और शेष दोनों को कुलाबा का प्रभार सौंपा। इन दोनों में से ज्येष्ठ यसाजी के हाथ में आन्तरिक प्रबन्ध था, और माना जी नौ-सैनिक और सैनिक संस्थापन का कमान करता था। कुछ दिनों बाद मानाजी ने अपने परिवार से झगड़ा कर पुर्तगालियों से शरण और सहायता मांगी। कुछ सैनिकों की सहायता पाकर, सीढ़ी लगाकर वह कुलाबा पर चढ़ गया और हाथ में तलवार लिए हुए इस पर अधिकार कर लिया। उसने भाई यशजी की आँखे निर्दयतापूर्वक निकलवा लीं और उसको

---

[1] यह अभियान ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की प्रार्थना पर इङ्गलैण्ड के राजा की आज्ञा से भेजा गया था।

[2] सकोजी अंग्रिया ने निश्चित शान्ति के प्रस्तावों के साथ २१ जून १७३३ को दूत भेजा। किन्तु उसकी मृत्यु से वार्ता समाप्त हो गई।

बन्दी कर लिया। पुर्तगालियों के जाते ही शम्भाजी ने उस पर आक्रमण किया। मानाजी को बाजी राव से सहायता प्राप्त हो चुकी थी, अतः, उसने शम्भाजी को घेरा डालने के लिए विवश किया और सहायता देने के बदले में उसने पेशवा को कोटला और राजमाची किले प्रदान किए।

सीदी जो उस समय जंजीरा का प्रधान था कई वर्षों से यह पद ग्रहण किए हुए था। इसकी पुरानी मुगल उपाधि याकूत खाँ थी। महर, रायगढ़, दाभोल, अञ्जनवील आदि जनपदों की जिनको औरङ्गजेब ने सीदी के प्रभार में दे रखा था, मराठों के प्रत्येक प्रयास के विरुद्ध सीदी प्रतिरक्षा करता रहा और उनके आक्रमणों के फलस्वरूप, सीदी बहुधा शाहू के जनपदों से उपदान उगाहता था। शक्ति का वश चलने की यहाँ सम्भावना नहीं थी, अतः प्रतिनिधि, जेवाजी खण्डेराव चिटनिस तथा राजा के मन्त्रियों में से अन्य लोगों ने षड्यन्त्र द्वारा सीदी का विनाश करने के लिए एक योजना बनाई। उस समय का एक अत्यन्त साहसी समुद्री-डाकू यकूब खाँ था, जो शेखजी के नाम से पुकारा जाता था। सीदी का इस पर पूर्ण विश्वास था। यह व्यक्ति कोंकण के कोली राजा का वंशज और गोआगढ़ का वंशागत पटेल था। जब कि वह अपनी बाल्यावस्था में था, सीदी के एक आक्रमण में वह बन्दी किया जाकर मुसलमान के रूप में पाला पोषा गया। अपने जीवन के आरम्भ में ही, उसने विशिष्टताएँ दिखलाई और एक जहाज का कमान पाने पर वह अपनी युक्ति तथा साहस दोनों के लिए विख्यात हुआ। प्रतिनिधि ने इस शेख यकूब को अपनी ओर कर लिया और उससे एक गुप्त सन्धि की, जिसके अनुसार उसको बेड़ा का कमान, कुछ किलों को छोड़ कर सीदी का सम्पूर्ण स्वामित्व, इनाम में कई गाँव और पेन नदी से कोल्हापुर प्रदेश की सीमा तक के दक्षिणी कोंकण के पूरे राजस्व का सरगौंडा[1] अर्थात् दो प्रतिशत मिलना था। क्रान्ति करा देने में सफलता होने पर, उसके भाई की रायगढ़ में उप-कमान के रूप में नियुक्ति होना तथा नावों के मल्लाहों और सैनिकों में उपहार स्वरूप एक लाख रुपया बाँटा जाना था।

इस योजना के सहायतार्थ प्रतिनिधि, उसका मुतालिक यमाजी शिवदेव और उदाजी चवाण के अधीन एक सेना कोंकण में १७३३ में भेजी गई। ये कपट योग असफल रहे (कारण नहीं बताए गए हैं), किन्तु एक युद्ध की शुरुआत हुई जिसका प्रभाव विशेष कर असहाय कृषक वर्ग पर पड़ा। सीदी के सैन्य दल पर नाम मात्र से अधिक प्रभाव नहीं डाला जा सका। कई महीने बाद, अन्त में, प्रतिनिधि को मुँह

[1] सरगौंडा नारगौंडा ही है। यह केवल यहाँ तीन प्रतिशत के स्थान पर दो प्रतिशत है।

की खानी पड़ी और जब वह चिपलूण में डेरा डाले हुए था गोयल कोट पर जो सैनिकों द्वारा दृढ़तापूर्वक रक्षित था बुरी तरह से आक्रमण किया गया और ले लिया गया। चिमनाजी अप्पा से राजा असन्तुष्ट हो गए क्योंकि बारम्बार आज्ञाएँ भेजने पर भी उसने श्रीपतराव को सहायता नहीं भेजी। अन्त में शाहू ने उससे कहा कि यदि आप नहीं जाते तो अवश्य ही मुझे स्वयं जाना चाहिए। अन्त में पीलाजी जाधव भेजा गया, किन्तु सातारा स्थित कोई भी अन्य अधिकारी प्रतिनिधि को सहारा देना नहीं चाहता था, सिवाय इस शर्त पर कि विजित जनपद उसको जागीर में दिए जायँ। अतः पर्याप्त ख्याति खोकर उसको सातारा लौटने को बाध्य होना पड़ा। इस समय के लगभग जञ्जीरा के प्रधान की मृत्यु हुई। उसके कई लड़के थे जिनमें से ज्येष्ठ भ्राता सीदी अबदुल्ला को उसके भाईयों ने दूसरे षड्यन्त्रकारियों से सहायता पाकर मार डाला, क्योंकि वे सीदी रहमान के शासनाधिकार को हड़पना चाहते थे जो हत्या के समय न तो जञ्जीरा में था और न उसका इस षड्यन्त्र में कोई हाथ था।

१७३५ ई०—यकूब खाँ ने तुरन्त ही सीदी रहमान का पक्ष ग्रहण किया और शाहू से सहायता करने की माँग की। किन्तु बाजी राव के लौटने के पूर्व कुछ भी नहीं किया जा सका। मालवा में होल्कर और सिंधिया के पास एक बड़ा अश्वारोही दल छोड़ कर, बाजीराव दक्खिन को लौट गया और गोदावरी पार करने के बाद, राजा को यह सूचना भेजी कि वह सीधे दण्डाराजपुरी पर आक्रमण करे। काम में आने योग्य सब पदातियों की पेशवा के पास एकत्रित होने की आज्ञा दी गई और पीलाजी जाधव को पगा अश्वारोहियों के एक दल का अधिकबलन दिया गया और वह मल्हार राव होल्कर की सहायता करने के लिए मालवा भेजा गया।

सीदी रहमान और यकूब खाँ ने बाजी राव का साथ दिया। उसने कुछ किलों पर आक्रमण कर युद्ध आरम्भ किया। फतह सिंह भोसले और प्रतिनिधि ने सहयोग देने के लिए प्रस्थान किया। किन्तु वे केवल शिवाजी की राजधानी रायगढ़ को प्राप्त कर सके, जिसके किलेदार को शेख यकूब ने पहले से ही भ्रष्ट कर दिया था। पेशवा ने ताला और गोसाला क़िलों पर अधिकार किया। किन्तु उसका एक भाई सीदी रेहन जञ्जीरा से सैनिकों का एक दल लेकर आया जिससे उसकी आगे की गति रुक गई। उन्होंने पेशवा पर जोरों से आक्रमण किया किन्तु वे मराठों के बहुसंख्यक सैनिकों को वश में नहीं कर सके। सीदी रेहन मारा गया और उसके सैनिकों का दण्डाराजपुरी तक पीछा किया गया। जञ्जीरा के विरुद्ध तोपखाने खड़े किए गए और मानाजी आंग्रिया ने समुद्र से इस पर आक्रमण किया।

शम्भाजी के समय से जब भी मराठों के हाथों में दण्डाराजपुरी रहता था जञ्जीरा पर प्रतिवर्ष तोपों द्वारा अग्नि वर्षा की जाती रही। बाजी राव ने कम से कम कई महीनों तक इसको वश में करने की अव्यवहारिकता देखी और कोंकण में रहने के अनेक दुष्परिणाम होंगे ऐसा उन्होंने समझा। अतः उन्होंने घिरे हुए सैनिकों की समझौते की वार्ता की ओर ध्यान दिया और एक सन्धि की जिसके अनुसार सीदी रेहमान के दावों की पुष्टि की गई, ग्यारह महलों के राजस्व का आधा सीदी को दिया गया, और रायगढ़, ताला, गोसाला, उचितगढ़ और बीरवाडा के किले मराठों को दिए गए।

सफलतापूर्वक युद्ध समाप्त होने पर, अतिरिक्त शक्ति और प्रभाव के साथ बाजी राव सातारा लौटे और कुछ समय पूर्व उपलब्ध प्रदेशों के सूबेदार नियुक्त किए गए।

बाजी राव के दक्खिन लौटने के बाद मल्हार राव होल्कर के सैनिकों ने आगरे के आगे धावे किए। मुहम्मद शाह का वजीर खान दौरान ने तलवार की अपेक्षा कलम से मराठे की प्रगति रोकने का प्रयास किया। वह यह भूल गया कि लुटेरे राज्य के अग्रधर्षणों को दण्ड देने के पूर्व किसी भी प्रकार के समझौते से मात्र अतिरिक्त-लूटपाट उत्तेजित होती है। यह दिखाए बिना कि वह निजाम की सहायता की याचना कर रहा है, उसने उसकी सहायता पाने की योजनाएँ बनाई। यह आचरण सम्राट् के आचरण से जो चञ्चल बुद्धि का था और जो इस समय हृदय से उसको प्रसन्न करने में लगा था थोड़ा ही कम असंगत था। किन्तु निजाम अपने साधनों को पुष्ट कर रहा था, और वह समय अभी तक नहीं आया था जब वह देख सके कि दिल्ली में उसकी उपस्थिति का वैसा ही स्वागत होगा जैसा साम्राज्य के रक्षक की उपस्थिति का होता है।

खान दौरान ने निर्बल प्रयास किए किन्तु उसकी तैयारियाँ सदा ही विशाल होती थीं। जब उसके अभियान प्रस्थान करते तो पूरे दिल्ली में हलचल हो जाती। वे बड़े धूमधाम से प्रारम्भ किए जाते, किन्तु उनका अन्त हास्यास्पद होता। लुटेरों और डाकुओं को नर्मदा के उस पार खदेड़ने के लिए उसका भाई मुजफ्फर खाँ चला। दिन में उसके प्रयाण को उत्पीड़ित करने के लिए और रात्र को उसके शिविर में राकेट फेंकने के लिए होल्कर ने अपने कुछ हलके हथियार वाले सैनिकों को भेजा। किन्तु पेशवा की निरन्तर माँगों को पूरा करने के निमित्त उसने अंशदान एकत्रित करने में कभी भी ढिलाई नहीं की। पेशवा की आर्थिक दशा बहुत बिगड़ चुकी थी। मुजफ्फर खाँ सिरञ्जी तक जाकर लौट आया। दिल्ली में उसका ऐसा स्वागत हुआ मानो उसने मार्के की सेवाएँ की हों। अपने शत्रुओं की उपेक्षा करने के कारण उसकी

उसके मित्रों में कीर्ति हुई। मालवा सूबा और चम्बल के दक्षिण का प्रदेश रौंद डाला गया किन्तु इने गिने कुछ किले शाही अधिकारियों के स्वामित्व में रह गए। रोहिल्लाओं और मराठों ने अनेक स्थानों पर कब्जा कर लिया। कन्ताजी कदम भाण्डे जो गत वर्ष दमाजी गायकवाड़ के कारण गुजरात को छोड़ने को बाध्य हुआ था होल्कर को उस सूबे में आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। अकस्मात् वे वहाँ पर आ धमके, बनास तक जाकर अंशदान ग्रहण किया, अहमदाबाद के उत्तर के अनेक नगरों को लूटा जिसमें इदर और पालनपुर भी थे और जितनी शीघ्रता से वे आए थे उतनी ही शीघ्रता से वे लौट गए।

थोड़े दिनों बाद अभय सिंह गुजरात के प्रशासन से हटा दिया गया और नजीबुद्दौला, मोमिन खाँ स्थानापन्न होने को नियुक्त किया गया किन्तु अभयसिंह का उप अहमदाबाद नगर को छोड़ने के लिए तैयार न था, और अन्त में उसको निकालने के निमित्त मोमिन खाँ दमाजी से एक सन्धि करने को बाध्य हुआ।

१७३६ ई०—अपने प्रतिद्वन्द्वियों का दमन करने और अपनी विजयों को सुरक्षित रखने के निमित्त बाजी राव ने एक विशाल सेना खड़ी की और भारी ऋण में फँस गए। उनके सैनिकों का वेतन बकाया था। साहूकारों ने जिनसे उसने कई लाख रुपये व्यक्तिगत ऋण के रूप में लिए थे अब और रुपया देने से इन्कार कर दिया। उनके शिविर में लगातार हल्ला-गुल्ला और विद्रोह होते रहते थे जिनसे उसको अत्यन्त उद्विग्नता और कठिनाई होती थी। बहुत दुःखी होकर वे इन उपद्रवों की चर्चा करते थे।[1] मालवा में उन्होंने चौथ और सरदेशमुखी उगाहा और राजा जयसिंह के द्वारा उन्होंने आवेदन किया कि औपचारिक रूप से ये उसको दे दिए जायँ और सर बुलन्द खाँ ने गुजरात के लिए जो पट्टे दिए थे उनकी पुष्टि की जाय। मन्त्रिमण्डल में तुरानी मुगल अधिक संख्या में थे। वे निश्चित रूप से ऐसा अपमानजनक समझौता करने के विरुद्ध थे। खानदौरान और सम्राट् इनको मौन रूप से मान चुके थे और अब जयसिंह की सलाह से औपचारिक रूप से इस अधिकार की स्वीकृति करने को तैयार थे, किन्तु इस समझौते के दौरान में शाही वजीर और पेशवा दोनों ने ही अपने मूल विचारों का अतिक्रमण कर मुहम्मद शाह और निजामुल्मुल्क के मिटते हुए मनमुटाव को दूर करने में सहायता की।

आगामी ऋतु में चम्बल के दक्षिण के जनपदों का तेरह लाख रुपये का राजस्व सम्राट् समनुदेशन के रूप में छोड़ने को तैयार हुआ। निश्चित समयों पर तीन किस्तों में यह रकम चुकता करनी थी। १०,६०,००० रुपये वार्षिक राजपूत राज्यों

---

[1] इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने अपने गुरु को एक पत्र लिखा था।

से, पश्चिम में बूँदी और कोटा से, पूरब में बदावर तक के राजपूत राज्यों से कर उगाहने का अधिकार सम्राट् ने पेशवा को दिया। सम्भवतः खान दौरान यह सोचता था कि अन्तिम रियायत से मराठों और राजपूतों में मैत्री होने की अपेक्षा शत्रुता पैदा होने की अधिक सम्भावना है। राजनीतिक चालों में वजीर ने अपने को एक मराठा ब्राह्मण से अधिक कुशल समझा और समझौते की बातचीत चलाता रहा जब उसे मराठों को दण्ड देने के अतिरिक्त और कुछ न सोचना चाहिए था। खान दौरान ने बाजी राव से सन्धि की बातचीत चलाने के लिए राजा जयसिंह के द्वारा अपने एक निजी दूत यादगार खाँ को भेजा। चौथ और सरदेशमुखी की सनदें गुप्त रीति से तैयार की गईं और दूत को अपने पास रखने को दी गईं। किन्तु पेशवा के वकील धोंदू पन्त पुरन्दरे को जो खान दौरान के साथ ठहरा था, यह बात मालूम हो गई और उसने इसकी सूचना बाजी राव को दी। हर एक समझौते की वार्ता में मराठे जितनी आशा करते हैं, अनिवार्य रूप से उससे कहीं अधिक की माँग करते हैं। उनकी माँग पूरी किए जाने पर वे और अधिक माँग करते हैं और बहुधा उनकी अत्यन्त विनम्रता और सज्जनता सदर्प धृष्टता, सीधी धमकी और भर्त्सना में बदल जाती है। जिन लोगों ने केवल उनके विनम्र रूप को देखा है वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

अब बाजी राव की माँगों ने सब सीमाओं का अतिक्रमण किया। वार्ता की विभिन्न अवस्थाओं में उन्होंने ये माँगें कीं—सम्पूर्ण मालवा सूबा जागीर में, रोहिल्लाओं से कब्जा हरण करना; मण्डू, धार और रायसिन के किले; चम्बल के दक्षिण के समूचे प्रदेश की जागीर और फौजदारी; शाही कोष से पचास लाख रुपये या बंगाल पर इसके बराबर का समनुदेशन; इलाहाबाद, बनारस (वाराणसी), गया और मथुरा जागीर में; और दक्षिण के छहों सूबों का वंशागत सरदेश पाण्डे अधिकार।

सम्राट् ने इन सब माँगों की उपेक्षा की। छः लाख रुपए का शुल्क चुकता करने को सहमत होने पर बाजी राव की केवल अन्तिम माँग स्वीकृत हुई। खान दौरान ने इस तरह निजामुल्मुल्क पर चोट की। इस पट्टे के अनुसार बाजी राव को देशमुख और देशपाण्डे के उपलब्धियों का अनुपात दिया गया: सरदेशमुखी दस प्रतिशत और सरदेशपाण्डेगीरी पाँच प्रतिशत थी। मुगल दल से उत्साह, और मुहम्मदशाह से दिल्ली आने का निमन्त्रण पाकर निजामुल्मुल्क ने मराठों के विरुद्ध पलटा देने को सोचा। समझौते की वार्ताओं से बाजी राव की कार्रवाईयाँ बन्द नहीं हुईं। उसकी माँगें इतनी अत्यधिक थीं कि एक विशाल सेना एकत्रित करने का निश्चय किया गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी सजधज मात्र से ही मराठों का विनाश हो

जायगा। राजधानी के पड़ोस के मैदानों पर शिविर छा गए। तैयारियाँ उतनी ही विशाल थीं जितनी कि कार्रवाईयाँ निष्क्रिय प्रमाणित हुई। यह सूचना पाकर कि खान दौरान एवं कमरुद्दीन खाँ ने एक २ बड़ी सेना लेकर मथुरा की ओर प्रस्थान किया है, अपने भारी सामानों को अपने सहयोगी बुन्देलखण्ड के जगतराज[1] के पास जमा कर पेशवा आगरा से चालीस मील दूर दक्षिण में यमुना तट पर आ डटा। भदावर के राजा[2] ने उसके दावों को निबटाने से इन्कार किया। अतः उसने राजा पर आक्रमण और प्रत्येक दिशा में अंशदानों की उगाही की। मल्हार राव होल्कर, पीलाजी जाधव और विठूजी बोले उस समय तक दोआब में लूट मचाते रहे जब तक कि अवध से आकर सआदत खाँ ने मराठों पर अकस्मात् आक्रमण कर उनको यमुना के उस पार खदेड़ नहीं दिया।[3] उसने अपनी सफलता का यह बढ़ा-चढ़ा वर्णन लिख कर दरबार को भेजा कि उसने मल्हार राव होल्कर को आहत और विठूजी बोले को मार डाला है और पूरी मराठा सेना को चम्बल के उस पार खदेड़ दिया है। दो हजार मराठे मारे गए हैं और दो हजार यमुनाजी में डुबो दिए गए हैं। सआदत खाँ के आगरा पहुँचने पर बाजी राव ने यमुना तट के मैदान को छोड़ कर उत्तर-पूरब की ओर एक अधिक खुले मैदान में डेरा डाला। उसके बाएँ पार्श्व में चम्बल और उसके खेमों के बीच में गहरी २ घाटियाँ थीं। यह स्थिति उसके युद्ध करने के ढंग के नितान्त प्रतिकूल थी।

सआदत खाँ ने अपनी सफलता का जो विवरण सम्राट् के पास स्वयं ही लिख कर भेजा था उसकी सूचना बाजी राव के वकील ने उसको दी। बाद को जब खान दौरान और मुहम्मद खाँ बंगश आगरा पहुँचे, तो सआदत खाँ की सलाह से खान दौरान ने इस वकील को वापस भेज दिया। सारे दिल्ली में केवल वीर सआदत खाँ की चर्चा थी जिसने मराठों को दक्खिन में ढकेल दिया था। बाजी राव ने लिखा कि मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं सम्राट् को सत्य बात बतलाऊँगा कि मैं अब भी उत्तर भारत में हूँ और मैं आपके राजधानी के फाटकों पर मशालों और मराठों का प्रदर्शन करूँगा। सआदत खाँ से खान दौरान के मिलने के छः दिन पहले बाजी राव ने दिल्ली पर कूच किया। उसने यह भाँप लिया था कि खान दौरान और सआदत खाँ सम्मिलित होने वाले हैं। बड़ी सड़क को छोड़ कर मेहवत पहाड़ियों के किनारे-किनारे जो चूड़ामणि जाट के इलाके की सीमा थीं और उरलस से १४

---

[1] जगतराज बुन्देला राजा छत्रसाल का द्वितीय पुत्र था।

[2] राजा अनुरुद्ध सिंह।

[3] १२ मार्च १७३७।

मील दूर बाईं ओर रहकर जहाँ कमरुद्दीन खाँ डेरा डाले हुए था चालीस मील प्रतिदिन की गति से वह आगे बढ़ा और दिल्ली के उपनगरीय स्थानों के समीप आकर अपना डेरा डाला। कुछ हाथी और ऊँट जो शहर के बाहर आ रहे थे पकड़े गए और हिन्दुओं का एक दल जो एक धार्मिक कृत्य के लिए एक मन्दिर को जा रहा था लूटा गया।[1] किन्तु पेशवा ने लूटने और जलाने के अपने पूर्व विचार को बुद्धिमत्तापूर्वक त्याग दिया क्योंकि उसने यह विचार किया कि लूट के कारण उसके पीछे हटने में रुकावट पड़ सकती है और उपनगरीय स्थानों को जलाना सम्राट् के प्रति अपमान और घृणा सूचित करना है और सम्राट् और खान दौरान से समझौते की जो वार्ताएँ चल रही हैं उनमें रुकावट पड़ेगी। वह यह अच्छी तरह से जानता था कि ये दोनों ही उसके अधिकांश माँगों की स्वीकृति देने को तैयार हैं। अतः दूसरे दिन उसने दो पत्र लिखे, एक सम्राट् को और दूसरा राजा भक्तमल को। उनका आशय नहीं दिया गया है। किन्तु सम्राट् ने यह प्रार्थना की कि एक वकील भेजा जाय।[2] किन्तु बाजी राव ने वकील भेजना अस्वीकर कर दिया जब तक कि उसकी रक्षा के लिए एक गारद न आवे। उसने यह शिष्ट सूचना भेजी कि उसके सैनिकों के सामीप्य से नगर में उत्पात होने का भय है। अतः वह झील के किनारे ठहरने को जा रहा है। इस नम्रता से प्रोत्साहन पाकर मुजफ्फर खाँ, मीरहसन खाँ कोका, राजा शिवसिंह तथा दरबार के अन्य सामन्तों के अधीन आठ हजार सैनिकों के एक दल ने मराठों पर आक्रमण किया। उनकी टोह लेने के लिए बाजी राव ने सत्ताजी जाधव को सैनिकों के कुछ छोटे २ दलों के साथ भेजा और सत्ताजी के यह सूचना भेजने पर कि वे आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं, मल्हार जो होल्कर और उसके पीछे रनोजी सिंधिया तुरन्त ही चक्रवत घूम कर उन पर टूट पड़े और छः सौ से अधिक आदमियों को हताहत कर उनको शहर में खदेड़ा और उनके दो हजार घोड़े और एक हाथी कब्जे में लिया। राजा शिव सिंह वहीं खेत रहा और मीरहसन खाँ कोका सांघातिक रूप से आहत हुआ।

मराठों के मात्र इनेगिने आदमी काम आए और केवल एक अधिकारी इन्द्राजी

---

[1] मार्च २९, १७३७ को श्रीराम नवमी थी और ३० मार्च को भवानी मेला था।—श्रीनिवासन : बाजीराव द फर्स्ट, पृ. ९९-१०१।

[2] बाजी राव का दिल्ली में प्रवेश उसके विजय-अभियानों की पराकाष्ठा सूचित करता है। इससे वह अपने देशवासियों का एक मात्र नेता बन गया और इससे राजपूत, सिक्ख और बुन्देले मुगल अधीनता की शृङ्खलाओं को तोड़ने और स्वतन्त्र होने को प्रेरित हुए।—श्रीनिवासन : बाजीराव द फर्स्ट, पृ० १०५।

कदम जो रानोजी सिंधिया के दल का था आहत हुआ। इस युद्ध के समाप्त होने में देर न लगी। बाजीराव अपने आदमियों को विश्राम देने ही वाला था कि कमरुद्दीन की सेना दृष्टिगोचर हुई। बाजीराव की उससे एक मुठभेड़ हुई। अन्धेरा हो रहा था और उसने यह सोचा कि शत्रु को नगर के सैनिक तथा खान दौरान और सआदत खाँ जो समीप ही थे सहायता कर रहे हैं अतः उसने पीछे लौट जाने का निश्चय किया और प्रातः होने के पहले ही वह वर्तमान युद्धक्षेत्र से आठ मील दूर पश्चिम में चला गया। कमरुद्दीन खाँ की मुठभेड़ में पेशवा के तीस आदमी काम आए और दूसरे दिन खान दौरान और सआदत खाँ का सम्मिलन हुआ। बाजीराव रेवाड़ी और मन्दावर के रास्ते से ग्वालियर की ओर लौटा। इन दोनों स्थानों को उसने लूटा किन्तु न तो इसमें अड़चन डाली गई और न उसका पीछा किया गया। बाजीराव का विचार वर्षा आरम्भ होने के पहले यमुना को पार करना और दोआब को लूटना था। किन्तु यह सोचकर कि निजामुलमुल्क मालवा में राजस्व संग्रह करने में रुकावट डाल सकता है, उसने अपने भाई के पास निजाम की तैयारियों को देखने के लिए आज्ञा भेजी। पेशवा अपने पत्र में लिखता है कि रेवा (नर्मदा) पार करने के लिए उसके पिछाड़ी पर तुरन्त टूट पड़ो और उस पर पिछाड़ियाँ लगा दो।

यमुना पार करने का उसको फिर अवसर नहीं मिला और दक्खिन में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी। अतः बाजी राव ने मालवा का शासन और तेरह लाख रुपए पाने के वचन पर पुनः अपने वकील को खान दौरान के पास भेज कर सातारा को प्रस्थान किया। राजा के प्रति अपना सम्मान सूचित कर वह वहाँ से तुरन्त ही कोंकण को चला गया।

१७३७ ई०—पुर्तगालियों ने कुलाबा पर कब्जा करने में सहायता की थी। किन्तु रेवादण्डा के समीप में उन जनपदों को न पाने पर जिनको देने का उनसे वादा किया गया था वे अब मानाजी के विरुद्ध कुलाबा पर किए गए एक अन्य आक्रमण में शम्भाजी आंग्रिया के सहयोगी के रूप में प्रकट हुए। इस प्रयास को विफल करने के लिए पेशवा भेजा गया। इसमें वह सफल हुआ और उसने इस शर्त पर मानाजी को अपने संरक्षण में ले लिया कि वह उन्हें सात हजार रुपए वार्षिक चुकता करेगा और तीन हजार रुपए या अधिक मूल्य की यूरोप और चीन की विदेशी वस्तुएँ प्रतिवर्ष राजा को उपहार स्वरूप देगा। इस युद्ध के कारण शाष्ठि पर आक्रमण किया गया। वीसाजी पन्त लेले जो पेशवा की सेवा में एक कारकुन था, पुर्तगाली सेवा में कुछ मूल निवासियों को भ्रष्ट किया। मराठों ने बसई से नदी के दूसरे किनारे के एक छोटे किले पर ६ अप्रैल की रात को अधिकार किया, उसके कमान को सैनिकों सहित तलवार के घाट उतारा और नदी पर कब्जा कर लिया जिससे कि बसई द्वीप के अन्य

किलों को किसी प्रकार की सहायता न मिल सके। उनके बहुसंख्यक सैनिकों ने ७ अप्रैल को नदी पार किया। थाना की किलेबन्दी उस समय अधूरी थी और एक पूरी दीवार नहीं थी। शाष्ठि के पुर्तगाली राज्यपाल डॉन लेविस बाटेल्हो ने इसकी प्रतिरक्षा का उपाय न कर एक युद्ध परिषद् बुलाई और करंज में शरण लेने का निर्णय किया। वहाँ केप्टेन जॉन द सौजा पेरीरा को किले की प्रतिरक्षा करने को और केप्टेन जान द सौजा फर्राज् को बांदरा के जो माहिम के सामने पड़ता है गैरिसन का कमान करने को वहीं रहने दिया। पेरीरा ने वीरता और साहस से दो आक्रमणों को विफल किया। इनमें से दूसरे आक्रमण में वह बुरी तरह आहत हुआ। किन्तु उसके पद का उत्तर-वर्ती घबड़ा कर निर्लज्जता पूर्वक भाग गया, जब कोई शत्रु दृष्टिगोचर नहीं था। बम्बई स्थित अंग्रेजों का बांदरा की प्रतिरक्षा में हित था। अतः उन्होंने सैनिक और युद्ध-सामग्री दोनों की सहायता दी। किन्तु दूसरे अवसरों पर वे तटस्थ रहते थे।[१] इन विजयों को सुरक्षित रखने और पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध बनाए रखने के निमित्त, पेशवा ने कुछ अरब-निवासियों को तथा एक बहुत ही बड़े पदाति दल को जिसमें मुख्यतया मावले और हितकरी थे आमन्त्रित किया। किन्तु दिल्ली के समाचार ने उसको कोंकण से अपनी सेना की एक टुकड़ी को बुला लेने को विवश किया।

अन्त में सम्राट् निजामुल्मुल्क को दिल्ली बुला लेने में सफल हुआ। मालवा और गुजरात की सूबेदारी फिर उसके ज्येष्ठ पुत्र गाजी उद्दीन के नाम से इस शर्त पर दी गई कि वह मराठों को इन सूबों से भगा देगा। उसके लोभ और महत्त्वाकांक्षा को प्रत्येक ढङ्ग से प्रेरित कर यह प्रयत्न किया गया कि वह स्वयं ही इस काम को करे।

सम्राट् ने सब करद राजाओं को अपने झण्डे के नीचे एकत्रित करने के लिए उसको पूरी शक्ति दी। इन राजाओं के तथा अपने सैनिकों की कुल संख्या उसके व्यक्तिगत कमान में ३४,००० थी। इसके अतिरिक्त उसके पास एक तोपखाना था जो उस समय भारत में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। सआदत खाँ का भतीजा अबुल मसूर खाँ सफदर जंग, और कोठा के राजा उसकी सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा में थे। निजाम ने बड़ी सावधानी से युद्ध कार्रवाईयाँ आरम्भ कीं। दोआब में आकर यमुना के किनारे २ चला और काल्पी में आकर यमुना को फिर पार किया और बुन्देलखण्ड के राजा को लेकर मालवा में प्रवेश किया।

---

[१] बांदरा की प्रतिरक्षा में अँग्रेजों ने पचास आदमियों और कुछ युद्ध सामग्री की सहायता भेजी किन्तु जब मराठों ने बांदरा पर आक्रमण करने की घोषणा की तो अंग्रेजों ने इन सहायताओं को लौटा लिया।

बाजी राव ८०,००० आदमियों को एकत्रित कर नर्मदा के किनारे पहुँचा। यशवन्तराव दाभाडे और सेनापति के अधिकारी उसकी सेना में सम्मिलित नहीं हुए। रघुजी भोंसले ने यह कह कर आज्ञा को टाल दिया कि बरार पर आक्रमण होने की आशंका है।

१७३८ ई०—जिस समय बाजी राव ने नर्मदा पार किया उस समय निजामुल्मुल्क सिरोंज में था। जनवरी में दोनों सेनाएँ भोपाल के समीप मिलीं। हमले से बचकर निजाम भोपाल के किले के पड़ोस में एक दृढ़ स्थान पर आ डटा। उसकी सेना के पृष्ठ भाग में एक तालाब था और सामने एक उपनदी थी। यह कहा जा सकता है कि इस अत्यन्त सावधानी ने युद्ध के भाग्य को निर्णीत किया। मराठों को पहले कुछ घबराहट थी किन्तु यह कल्पना करते ही कि वे अधिक अच्छी स्थिति में हैं वे वास्तव में वैसे ही हो गए। उन्होंने निजाम को उसके शिविर पंक्तियों में ही अपमानित किया और जब उसकी सेना के एक टुकड़ी ने युद्ध के लिए एक स्थान चुना तो मराठों ने जोरों से उस पर आक्रमण किया। इस झपट में निजामुल्मुल्क की ओर से राजा जयसिंह के पुत्र के अधीन राजपूतों ने तथा बुन्देलखण्ड और पास पड़ोस के सैनिकों ने मोर्चा सम्भाला। बूँदी के राजा को छोड़ कर सभी राजा निजामुल्मुल्क के साथ थे। राजपूतों के ५०० पदाति और ७०० अश्वारोही खेत रहे। स्वयं पेशवा के प्राक्कलन के अनुसार सौ मराठे मारे गए और तीन सौ आहत हुए, विशेषतया तोपखाने की वर्षा से। इस टुकड़ी का नेतृत्व रनोजी सिंधिया, पिलाजी जाधव और सयाजी गूजर कर रहे थे। जब यह झपट हो रही थी, पेशवा निजाम के दो राकेटों की मार के अन्दर ही था। वह उत्सुकतापूर्वक इस अवसर की ताक में था कि यदि निजाम अपने दृढ़ स्थान से हटे तो वह उसको विच्छेद कर दे। किन्तु इसमें उसको केवल निराशा ही हाथ लगी। इस आक्रमण में मराठों को कोई निर्णायक लाभ प्राप्त नहीं हुआ। निजाम ने अपने सैनिकों को वापस बुला लिया और उनसे चारों ओर से घिरा हुआ वह बैठा रहा। खाद्य पदार्थ और सामान का अत्यन्त अभाव हुआ। सफदरजंग और कोटा के राजा के अधीन एक टुकड़ी बीच ही में मल्हार राव होल्कर और यशवन्तराव पवार द्वारा रोकी जाकर परास्त की गई जिसमें उनके १५०० सैनिक काम आए। सफदरजंग को पीछे हटना पड़ा और खुशी में भरकर मराठों ने भोपाल स्थित सेना को अभावग्रस्त किया। उसकी रसद को रोक लिया और उसको, दिन और रात, चौकन्ने रहने को बाध्य किया। अभावों से अनुत्साहित और दिन-रात की चौकसी से परेशान होकर बहुत से सैनिक विशेष रूप से राजपूत साथ छोड़ दिए होते, किन्तु बाजीराव कोई भी समझौता करने को तैयार न था। इस समय उसको एक ऐसा अवसर प्राप्त हुआ कि

वह अपनी श्रेष्ठता सारे भारतवर्ष को दिखा सके। वह यह अच्छी तरह जानता था कि जितने ही अधिक समय तक घेरा डाला जा सके और जितनी ही अधिक संख्या में उसके विपक्षी होगें, उतनी ही अधिक उनकी कठिनाईयाँ होंगी। बाजीराव यह देखकर चकित था कि किस तरह निजामुल्मुल्क उसके चंगुल में आ फंसा। पेशवा ने एक पुत्र में अपने भाई को लिखा कि नवाब वृद्ध एवं अनुभवी भी है, समझ में नहीं आता कि वह कैसे इस परेशानी में आ फंसा। दिल्ली में वह सभी की दृष्टि में गिर जायगा।

उत्तरी भारत एवं दक्खिन में उसको इस कठिनाई से निकालने के लिए तैयारियाँ की गईं। अपने प्रतिद्वन्द्वी के संकट से खान दौरान को सम्भवतः गुप्त प्रसन्नता हुई हो। सम्राट् की इस आज्ञा से कि वह स्वयं ही प्रयाण करेगा, बाजी राव को यह संकेत मिला कि उत्तर की ओर से उसे कोई आशंका नहीं है। निजाम को मुख्य रूप से दक्खिन से सहायता पाने की आशा थी और उसके द्वितीय पुत्र नासिर जङ्ग ने जिसको वह अपना प्रतिनियुक्त बनाकर छोड़ आया था, हैदराबाद और औरंगाबाद दोनों ही स्थानों पर सैनिकों को एकत्रित किया उनका शीघ्र प्रयाण कराने के लिए भोपाल शिविर से गुप्त रीति से दूत भेजे गए। दूसरी ओर बाजी राव ने उनके आने को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किए। उसने रघुजी भोंसले को पत्र लिखा प्रार्थना की और धमकाया भी किन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने राजा से विनती की कि वे सेनापति को जो उस समय सूरत के समीप सोनगढ़ में था उससे सम्मिलित होने को विवश करें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शाहू ने स्वयं अपने हाथ से एक अल्लंघनीय आदेश लिखा। चिमना जी अप्पा ताप्ती नदी पर आ डटा और औरंगाबाद के उत्तर में फूलम्री में निजाम के लिए एकत्रित की गई कुमक पर दृष्टि रखी। अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में पेशवा ने अपने भाई को एक-एक आदमी को एकत्रित करने के लिए प्रेरित किया 'दक्खिन से फतह सिंह भोसले, शम्भू सिंह जाधव और सरलशकर को लाओ, यदि दाभाडे, गायकवाड़ और भाण्डे मुझसे सम्मिलित होने को नहीं प्रयाण कर रहे हैं तो उनको तुम्हारे साथ ताप्ती पर आ डटना चाहिए, एक-एक मराठा को इसमें सम्मिलित होना चाहिए, एक विशाल और सम्मिलित प्रयास से हम दक्खिन के स्वामी हो सकते हैं।'

निजाम ने आगे बढ़ने की चेष्टा की किन्तु भारी सामान और भंडार के भार के कारण वह लौटने को विवश हुआ। जब उसके सैनिक अपने पूर्व स्थान को लौटने लगे तो वे भोपाल की क़िलेबन्दी के अन्दर ढकेल दिए गए। तोपखाने की कमी के कारण बाजी राव भेदन नहीं कर सका। किन्तु उसने राकेटों की ऐसी वर्षा की और तोपों से मुगलों को ऐसा परेशान किया कि निजामुल्मुल्क ने वहाँ से निकल आने का

अन्तिम प्रयास करने का निश्चय किया। उसने अपने सामान को भोपाल और इस्लाम गढ़ में जमा कर एक शक्तिशाली तोपखाने तथा ऊटों पर खड़े किए गए बहुसंख्यक चूलछल्लों की रक्षा में पीछे हटना आरम्भ किया। मराठों ने तोपों पर हमला किया किन्तु वे उन पर अधिकार करने में विफल हुए। किन्तु यह अपयान केवल तीन मील प्रतिदिन की गति से था। मराठों ने पूरी शक्ति लगाई, किन्तु तोपों की मार से अनुत्साहित होने लगे। आक्रमण के आरम्भ होने के चौबीसवें दिन ११ फरवरी के लगभग सिरोंज के समीप दोराहा सराय में निजाम शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने को विवश हुआ।[१] उसने अपने ही हस्तलेख में निम्नलिखित प्रतिज्ञा की : बाजी राव को पूरा मालवा और नर्मदा और चम्बल के बीच के प्रदेश की सम्पूर्ण सार्वभौमिकता देने, सम्राट् से इसकी पुष्टि प्राप्त कराने, पेशवा के खर्चों को चुकता करने के लिए ५० लाख रुपए उपदान के चुकता कराने के लिए प्रत्येक प्रयत्न करने का वचन दिया। बाजी राव लिखते हैं कि 'मैंने स्वयं नवाब से कुछ प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, और जब मैं उसके सहायतार्थ एक समझौता करने लगा तो मुझे रुपया देने की उसकी अनिच्छा की याद आई।' छः साल पहले के एक समझौते की ओर इसका संकेत है।

फरवरी ११

चम्बल के दक्षिण में अंशदानों को उगाहने में तथा दरबार से कुछ समझौते की बातचीत चलाने में पेशवा ने कुछ समय लगाया। उस समय नादिर शाह कंधार को घेरे हुए था मुसलमान लेखकों ने मराठों के विरुद्ध निजाम की असफलता का यही कारण बताया है किन्तु सचबात यह है कि दिल्ली के दरबार पर इसका बहुत ही कम प्रभाव रहा। सब सत्त्वहीन और स्वार्थी लोगों की तरह दिल्ली के निवासी आसन्न संकट के प्रति उतने ही उदासीन थे जितने इसके आने पर वे भयभीत और असहाय हुए।

इसी बीच पुर्तगालियों के विरुद्ध कोंकण में युद्ध चलता रहा। उनको रोकने के लिए वेंकट राव नारायण घोडपडे के नेतृत्व में एक अश्वारोहीदल गोआ की ओर भेजा गया और खण्डूजी मानकर ने उत्तरी कोंकण में तारापुर के समीप असीरी किले पर घेरा डाला। किन्तु डान अन्टोनियों कर्डिमफ्रोइस एक नामी अधिकारी था। उसने

---

[१] भोपाल की विजय पेशवा की विजयी यात्रा का शीर्षबिन्दु है।—डिघे : पेशवा बाजी राव द फर्स्ट पृष्ठ १४६। सरदेसाई के अनुसार यह उसकी अन्तिम और सर्वोच्च कीर्तियुक्त विजय थी, कीर्तियुक्त इसलिए कि उसने विजय के क्षण में नम्रता प्रदर्शित की। किन्तु पनिक्कर के अनुसार यह उसकी भूल थी जिसके कारण अँग्रेजों को भारत-विजय करने में निजाम के राज्य के रूप में एक अड्डा मिला।

बसई के पिछले राज्यपाल को अधिक्रमण किया था और अपने स्वामित्व को फिर से प्राप्त करने में कुछ सफलता प्राप्त की। कर्नल पेड्रो द मिल्लो ने पांच सौ यूरोपीयनों को और चार हजार पुर्तगालियों को लेकर खण्डूजी मानकर पर हमला किया, असीरी के तोपखानों पर आक्रमण कर नष्ट किया और तन्ना को पुनर्ग्रहण करने के लिए बहुत प्रयास करने की तैयारी की। बम्बई के राज्यपाल ने इसकी सूचना मराठों को भेज दी और उन्होंने मराठों को पुर्तगालियों से सन्धि करने की सलाह दी किन्तु साथ ही अंग्रेज उनके हाथ बारूद और गोली बेचते रहे। किन्तु खण्डूजी मानकर को अधिक बलन प्राप्त हुआ और मल्हार राव होल्कर अत्यन्त तीव्रगति से तन्ना भेजे गए। वह ऐसे समय पहुँचे कि किले पर होने वाले हमलों को रोक सके। यह हमला स्वयं डान अन्टोनियो फ्रोइस के नेतृत्व में हुआ था जिसने इस युद्ध में वीरगति प्राप्त की।

यद्यपि उस समय बम्बई महत्त्वहीन था। यह बाद को अंग्रेजों की एक बड़ी बस्ती बना और इस अवसर पर इसके प्रमुख ने जो चतुराई का कार्य किया था वह पश्चात्ताप करने की बात है। राजनीतिक शत्रुता और व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण ऐसा आचरण किया गया। यह हमारी राष्ट्रीय कीर्ति पर कलङ्क स्वरूप है। पुर्तगालियों ने आवेश में आकर अँग्रेजी के विरुद्ध बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा। किन्तु यह असत्य है कि अँग्रेजों ने तन्ना की प्रतिरक्षा में मराठों की सहायता की और एक अँग्रेज तोपची के गोले से पुर्तगाली कैमाण्डर की मृत्यु हुई। अँग्रेजों के ऐसे आचरण का मुख्य कारण यह था कि पुर्तगालियों ने अँग्रेजों के प्रति दुर्व्यवहार किया था। पुर्तगाल के शासक ने १६६१ में दहेज के रूप में बम्बई तथा इसके अधीनस्थ प्रदेश को चार्ल्स द्वितीय को उसके रानी के दहेज में दिया था। दूसरे वर्ष जब अँग्रेजों ने अधिकार माँगा तो उन्होंने शाष्ठि देने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि वह बम्बई के आधीन नहीं है। किन्तु जो कुछ अब तक समझा जाता था उसके यह विपरीत था। अतः अँग्रेजों ने आरंम्भ में इस देन का कुछ भी अंश लेने से इन्कार कर और पांच सौ सैनिक जो उनके साथ आए थे उनको अञ्जीद्वीप पर उतार दिया।

१७३९ ई०

किन्तु वहाँ की अस्वस्थ कर जलवायु के कारण ३८० आदमी बलिदान हुए। अतः इन साइन हंफ्रे कुक ने जो जीवित बचा हुआ कमाण्डर था किसी भी शर्त पर बम्बई को लेना स्वीकार किया। अतः जब[1] मराठों ने शाष्ठिको पुर्तगालियों से खाली करा लिया तो अँग्रेजों

---

[1] शाष्ठि संस्कृत शब्द षट्षष्ठि (छासठ) का लघु रूप है। इसमें ६६ ग्राम थे। षट्षष्ठि नाम ११८२ ई० के एक शिलालेख में है।

अन्तिम प्रयास करने का निश्चय किया। उसने अपने सामान को भोपाल और इस्लाम गढ़ में जमा कर एक शक्तिशाली तोपखाने तथा ऊटों पर खड़े किए गए बहुसंख्यक चूलछल्लों की रक्षा में पीछे हटना आरम्भ किया। मराठों ने तोपों पर हमला किया किन्तु वे उन पर अधिकार करने में विफल हुए। किन्तु यह अपयान केवल तीन मील प्रतिदिन की गति से था। मराठों ने पूरी शक्ति लगाई, किन्तु तोपों की मार से अनुत्साहित होने लगे। आक्रमण के आरम्भ होने के चौबीसवें दिन

फरवरी ११

११ फरवरी के लगभग सिरोंज के समीप दोराहा सराय में निजाम शर्तनामे पर हस्ताक्षर करने को विवश हुआ।[1] उसने अपने ही हस्तलेख में निम्नलिखित प्रतिज्ञा की : बाजी राव को पूरा मालवा और नर्मदा और चम्बल के बीच के प्रदेश की सम्पूर्ण सार्वभौमिकता देने, सम्राट् से इसकी पुष्टि प्राप्त कराने, पेशवा के खर्चों को चुकता करने के लिए ५० लाख रुपए उपदान के चुकता कराने के लिए प्रत्येक प्रयत्न करने का वचन दिया। बाजी राव लिखते हैं कि 'मैंने स्वयं नवाब से कुछ प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, और जब मैं उसके सहायतार्थ एक समझौता करने लगा तो मुझे रुपया देने की उसकी अनिच्छा की याद आई।' छः साल पहले के एक समझौते की ओर इसका संकेत है।

चम्बल के दक्षिण में अंशदानों को उगाहने में तथा दरबार से कुछ समझौते की बातचीत चलाने में पेशवा ने कुछ समय लगाया। उस समय नादिर शाह कंधार को घेरे हुए था मुसलमान लेखकों ने मराठों के विरुद्ध निजाम की असफलता का यही कारण बताया है किन्तु सचबात यह है कि दिल्ली के दरबार पर इसका बहुत ही कम प्रभाव रहा। सब सत्त्वहीन और स्वार्थी लोगों की तरह दिल्ली के निवासी आसन्न संकट के प्रति उतने ही उदासीन थे जितने इसके आने पर वे भयभीत और असहाय हुए।

इसी बीच पुर्तगालियों के विरुद्ध कोंकण में युद्ध चलता रहा। उनको रोकने के लिए वेंकट राव नारायण घोडपडे के नेतृत्व में एक अश्वारोहीदल गोआ की ओर भेजा गया और खण्डूजी मानकर ने उत्तरी कोंकण में तारापुर के समीप असीरी किले पर घेरा डाला। किन्तु डान अन्टोनियो कर्डिमक्रोइस एक नामी अधिकारी था। उसने

---

[1] भोपाल की विजय पेशवा की विजयी यात्रा का शीर्षबिन्दु है।—डिघे : पेशवा बाजी राव द फर्स्ट पृष्ठ १४६। सरदेसाई के अनुसार यह उसकी अन्तिम और सर्वोच्च कीर्तियुक्त विजय थी, कीर्तियुक्त इसलिए कि उसने विजय के क्षण में नम्रता प्रदर्शित की। किन्तु पनिक्कर के अनुसार यह उसकी भूल थी जिसके कारण अँग्रेजों को भारत-विजय करने में निजाम के राज्य के रूप में एक अड्डा मिला।

बसई के पिछले राज्यपाल को अधिक्रमण किया था और अपने स्वामित्व को फिर से प्राप्त करने में कुछ सफलता प्राप्त की। कर्नल पेड्रो द मिल्लो ने पांच सौ यूरोपीयनों को और चार हजार पुर्तगालियों को लेकर खण्डूजी मानकर पर हमला किया, असीरी के तोपखानों पर आक्रमण कर नष्ट किया और तन्ना को पुनर्ग्रहण करने के लिए बहुत प्रयास करने की तैयारी की। बम्बई के राज्यपाल ने इसकी सूचना मराठों को भेज दी और उन्होंने मराठों को पुर्तगालियों से सन्धि करने की सलाह दी किन्तु साथ ही अंग्रेज उनके हाथ बारूद और गोली बेचते रहे। किन्तु खण्डूजी मानकर को अधिक बलन प्राप्त हुआ और मल्हार राव होल्कर अत्यन्त तीव्रगति से तन्ना भेजे गए। वह ऐसे समय पहुँचे कि किले पर होने वाले हमलों को रोक सके। यह हमला स्वयं डान अन्टोनियो फ्रोइस के नेतृत्व में हुआ था जिसने इस युद्ध में वीरगति प्राप्त की।

यद्यपि उस समय बम्बई महत्त्वहीन था। यह बाद को अंग्रेजों की एक बड़ी बस्ती बना और इस अवसर पर इसके प्रमुख ने जो चतुराई का कार्य किया था वह पश्चात्ताप करने की बात है। राजनीतिक शत्रुता और व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण ऐसा आचरण किया गया। यह हमारी राष्ट्रीय कीर्ति पर कलङ्क स्वरूप है। पुर्तगालियों ने आवेश में आकर अँग्रेजी के विरुद्ध बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिखा। किन्तु यह असत्य है कि अँग्रेजों ने तन्ना की प्रतिरक्षा में मराठों की सहायता की और एक अँग्रेज तोपची के गोले से पुर्तगाली कैमाण्डर की मृत्यु हुई। अँग्रेजों के ऐसे आचरण का मुख्य कारण यह था कि पुर्तगालियों ने अँग्रेजों के प्रति दुर्व्यवहार किया था। पुर्तगाल के शासक ने १६६१ में दहेज के रूप में बम्बई तथा इसके अधीनस्थ प्रदेश को चार्ल्स द्वितीय को उसके रानी के दहेज में दिया था। दूसरे वर्ष जब अँग्रेजों ने अधिकार माँगा तो उन्होंने शाष्ठि देने से इस आधार पर इन्कार कर दिया कि वह बम्बई के आधीन नहीं है। किन्तु जो कुछ अब तक समझा जाता था उसके यह विपरीत था। अतः अँग्रेजों ने आरंम्भ में इस देन का कुछ भी अंश लेने से इन्कार कर और पांच सौ सैनिक जो उनके साथ आए थे उनको अञ्जीद्वीप पर उतार दिया। किन्तु वहाँ की अस्वस्थ कर जलवायु के कारण ३८० आदमी बलिदान हुए। अतः इन साइन हंफ्रे कुक ने जो जीवित बचा हुआ कमाण्डर था किसी भी शर्त पर बम्वई को लेना स्वीकार किया। अतः जब[1] मराठों ने शाष्ठिको पुर्तगालियों से खाली करा लिया तो अँग्रेजों

१७३६ ई०

[1] शाष्ठि संस्कृत शब्द षट्षष्ठि (छासठ) का लघु रूप है। इसमें ६६ ग्राम थे। षट्षष्ठि नाम ११८२ ई० के एक शिलालेख में है।

को इस अभाग्य पर दुःख नहीं हुआ, विशेष कर इस कारण से कि ऐसा होने से मराठों से एक न एक दिन उस चीज को प्राप्त या विजित करने का अधिक अच्छा अवसर मिला जिसको वे अपने न्यायपूर्ण अधिकार के रूप में पुर्तगालियों से नहीं प्राप्त कर सके।

१६६५ ई०

वर्षा समाप्त होने पर पेशवा के साले वेंकट राव नारायण घोड़पडे के नेतृत्व में एक अश्वारोही दल गोआ के पड़ोस में आया। चिमनाजी अप्पा सिंधिया होल्कर के साथ एक बहुत बड़ी सेना, अनेक तोपें और पदातियों के एक बृहद् दल को लेकर कोंकण गया। रानोजी सिंधिया के अधीन एक टुकड़ी ने कटलवारी और दन्नू पर जनवरी के आरम्भ में अधिकार किया और फरवरी महीने के पूर्व ही सीरगांव ने समर्पण किया और केल्वा और तारापुर पर आकस्मिक आक्रमण कर अधिकार किया गया। अन्तिम स्थान पर प्रतिरक्षा और आक्रमण जी जान से किए गए। मराठों ने चार सुरंगें लगाई जिनमें से दो सफल रहीं और एक बुर्ज और दीवार में बड़े २ भेदन किए नेताओं ने आक्रमण करने में एक दूसरे से होड़ लगा दी। बाजीभीव राव रामचन्द्र हरी, यशवन्त राव पवार और तुकाजी पवार जो आंग्रिया का अधिकारी था, अपने २ झण्डे लेकर तेजी से आगे बढ़े। किन्तु पुर्तगालियों ने वीरतापूर्वक उनका सामना किया। अन्त में रानोजी भोसले ने खाई को एक ऐसी जगह से पार किया जहाँ पर कोई भेदन नहीं था। दीवार पर सीढ़ियाँ लगाकर और हाथ में तलवार लेकर प्रवेश किया। इस आक्रमण का वर्णन करते हुए चिमना जी अप्पा लिखते हैं कि फिर भी यूरोपीय रक्षक दल तब तक वीरतापूर्वक लड़ते रहे और अपनी रक्षा करते रहे जब तक कि वे पूर्णतया अभिभूत नहीं कर लिए गए। थोड़े से जो बचे उन्होंने जिनमें उनका कमाण्डर डानफ्रांसिसद अलकंओ, भी था शरण माँगी और उनको शरण दी गई।

जब पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध तेजी से चल रहा था, अमरावती के रानोजी भोसले जो रघुजी के चाचा और सेना साहब सूबा थे, तारा पुर में ख्याति प्राप्त की। उसके भतीजे ने पूरब की ओर अपने स्वामित्व का विस्तार किया और जब निजाम भोपाल में घिरा हुआ था, उसने कटक को लूटा। रघुजी ने उत्तर में इलाहाबाद तक आक्रमण किया, शुजा खाँ सूबेदार को परास्त कर मार डाला और लूट का माल लिए हुए लौट आया। ये अभियान बिना अनुमति के किए गए थे, अतः बाजी राव ने इनको नापसन्द किया। उसको दण्ड देने के लिए बाजी राव ने पूना से प्रस्थान किया और अवजी कवरे को बरार लूटने

को आगे भेजा। रघुजी ने फरवरी के अन्त में इस अधिकारी को पराजित किया।[1] इसका बदला लेने के लिए बाजी राव तैयारी कर ही रहा था कि उसको नादिर शाह के आगमन, मुगलों की पराजय, खानदौरान की मृत्यु, सआदत खाँ के बन्दी होने और दिल्ली की देहलियों पर विजयी आक्रमण द्वारा छुटकारे की शर्तें आदिष्ट करने के समाचार पहुँचे। इन विवरणों से बाजी राव अत्यन्त भयभीत हुआ, किन्तु बादको सम्राट् के बन्दी होने, दिल्ली की लूट, इसके अनेक निवासियों[2] के भयानक संहार की सूचना उसे नसीराबाद में मिली. जिससे वह कुछ समय के लिए विह्वल प्रतीत हुआ पेशवा ने लिखा कि रघुजी भोसले से हमारे गृहकलह का अब कोई महत्त्व नहीं है। पुर्तगालियों के विरुद्ध युद्ध भी कुछ नहीं है। अब तो केवल एक ही शत्रु हिन्दुस्तान में है। बाजीराव को ऐसा प्रतीत हुआ कि नादिर शाह सम्राट् बनकर स्थित होगा। इस सूचना से वह अविचलित रहा कि एक लाख फारस निवासी दक्खिन की ओर प्रयाण कर रहे हैं। बाजी राव ने ललकारा, 'हिन्दू और मुसलमानो, दक्खिन की पूरी शक्ति एकत्रित होना चाहिए और मैं अपने मराठों को नर्मदा से चम्बल तक फैला दूँगा। सामान्य शत्रु के विरुद्ध सशस्त्र होने के लिए उसने नासिर जंग को आह्वान किया और चिमना जी अप्पा को कोंकण युद्ध से हाथ खींचने और पूरी गति से आकर उससे सम्मिलित होने का आदेश भेजा। किन्तु यह आदेश मिलने के पूर्व ही खण्डू जी मानकर के अधीन उसकी एक टुकड़ी ने वर्सोवह और दारावी किलों को वश में कर चुकी थी। अब पूरा शाष्टि उसके स्वामित्त्व में था और अब वह बसई पर घेरा डाल रहा था शंकरा जी नारायण के अधीन एक अग्रिम टुकड़ी ने १७ फरवरी को इस पर घेरा डाला कमान्डेन्ट ने नम्रतापूर्वक यह निवेदन किया कि वह मराठा कर देने को सहमत है और वह वही शर्तें चाहता है जो जंजीरा के सीदियों को प्रदान की गई हैं। किन्तु यह सोचने में उसने गलती की कि ऐसे स्वर से एक विजयी ब्राह्मण का आक्रमण रुक जायगा। चिमना जी ऐसे महत्वपूर्ण किले पर अधिकार करने से नहीं चूक सकता था जिससे उसकी विजय सुरक्षित होती है और जिसके बिना पुर्तगाली उस कुञ्जी से वंचित होते हैं जो उनको पुनः प्राप्ति का, न केवल उसकी प्राप्तिका जो कुछ उनके हाथ से निकल गया है किन्तु समूचे कोंकण की प्राप्ति का घाटों से लेकर समुद्र तक और दमण से लेकर बम्बई तक रास्ता खोलता है। अतः यद्यपि

---

[1] दभोइ के युद्ध के पूर्व १७३१ में दमाजी गायकवाड ने उसे पराजित किया।

[2] निम्नतम गणना के अनुसार आठ हजार।

उसके भाई का आदेश अत्यावश्यक था, फिर भी उसने बसई को प्राप्त करने का निश्चय किया। यह जानते हुए भी कि पराजय हो जाने पर उसको किस संकट का सामना करना पड़ेगा; वह प्रत्येक सम्भव उपाय से पूरे मार्च और अप्रैल भर घेरा डाले रहा। तोपें चढ़ाने में और खाईयों में प्रतिदिन बहु संख्यक आदमी मारे जाते थे। ऊँचाई पर स्थित तोपों से फेंके गए गोलों और भारी पत्थरों से भयानक संहार हो रहा था। अन्त में घिरे हुए सैनिकों की बहु संख्यक तोपों से आग उगलना बन्द हुआ और एक दीवार में भेदन हुआ। किन्तु फिर भी यह प्रभावशाली नहीं था। घेरने वालों की सुरंगें बारम्बार निष्फल की जा रही थीं। अन्त में पाँच सुरंगें तैयार की गईं, जिनमें से पहली में केवल आंशिक धड़ाका हुआ और उन तीनों सुरंगों में से जो पास ही पास थीं और जिनमें एक ही साथ धड़ाका होने को था केवल दो ही में विस्फोटन हुआ किन्तु इनमें से एक में बहुत ही बड़ा भंजन हुआ जिस पर मराठा सैनिक दृढ़ता और शीघ्रता से चढ़े। उसी समय शेष सुरंग में आग भड़की और सैकड़ी आक्रमणकारियों को हवा में उड़ा दिया। पुर्तगालियों ने पृष्ठ भाग के सैनिक समूहों पर हाथ द्वारा फेंके जाने वाले बहुत से बम फेंके और जो ऊपर चढ़ आए थे उनपर बड़े जोरों से तोपों से आक्रमण किया और उनको पीछे खदेड़ दिया। उनका काफी संहार हुआ। प्रतिरक्षाओं की शीघ्रता से मरम्मत की गई। घेरा डालने वालों ने फिर आक्रमण किया किंतु पहले के भंजन स्थान पर फिर आक्रमण करने के पहले सेन्टसिबसटियन बुर्ज के नीचे की शेष सुरंग में आग लगा दी गई। यह सुरंग मल्हार राव होल्कर की देखरेख में बनाई गई थी। आधी बुर्ज धराशायी हुई और अन्त में, अपने दो झण्डों को खोने के बाद, आक्रमणकारी वहाँ प्रवेश पा सके। यद्यपि घिरे हुए सैनिकों में से चालीस मारे जा चुके थे और सेन्ट सिबसटियन के भंजन में एक सौ तीन से अधिक आहत हुए थे, फिर भी वे एक-एक इंच भूमि के लिए लड़े, मट्टी भरने के बर्तनों से बनाई हुई प्रतिरक्षा की एक भीतरी रेखा खड़ी की और नई तोपों को चढ़ाया जिनसे वे लगातार आग उगलते रहे। अन्त में श्रम से थक कर और सामग्री के अभाव से पीड़ित होकर, क्योंकि समुद्र की ओर माना जी आंग्रिया ने नाके बन्दी कर रखी थी, उन्होंने आत्मसमर्पण करने के प्रस्ताव भेजे जो १६ मई को स्वीकार किए गए और उनको अपने निजी सामान और परिवारों को जहाजों द्वारा हटाने के लिए आठ दिन दिए गए। मराठा विवरण के अनुसार पुर्तगालियों के आठ सौ आदमी हताहत हुए जब कि चिमना जी अपना इस विख्यात घेरे के आरम्भ से अन्त तक ५,००० से ऊपर अपनी निजी क्षति स्वीकार करता है। यह घेरा मराठों के घेरों में से सब से अधिक प्रबल घेरा था। पुर्तगाली केवल अन्तिम भंजन के समय हुई अपनी क्षति की गिनती देते हैं। केप्टेन द सौजा पेरिरा ने

आत्मसमर्पण किया। यह वही अधिकारी है जिसने तन्ना की प्रतिरक्षा की थी। कमान-अधिकारी सिलवीरा द मेनेजेज एक आक्रमण में मारा जा चुका था।

बसई के पतन[1] के शीघ्र ही बाद होल्कर और सिंधिया, बाजी राव से सम्मिलित होने के लिए पूर्ण गति से भेजे गए। किन्तु तब तक ईरानियों के लौट जाने का समाचार प्राप्त हुआ नादिर शाह ने पदच्युत सम्राट् को उसका सिंहासन वापस कर दिया और भारत के सब राजाओं को इस घटना की सूचना दी। उसने एक पत्र शाहू को और एक बाजी राव को लिखा। उसने बाजी राव को मुहम्मद शाह के पुनः स्थापन की सूचना दी, जिसको कि वह अब अपना भाई मानता है। उसने लिखा कि बाजी राव के पास एक बड़ी सेना होते हुए भी एक पुराने सेवक के नाते उसने सम्राट् की सहायता नहीं की और अब मुहम्मद शाह के आदेशों का सब को अवश्य ही पालन करना चाहिए, क्योंकि यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो वह अपनी सेना लेकर फिर आ धमकेगा और अवज्ञा करने वालों को दण्ड देगा।

---

[1] बसई का पतन चिमनाजी अप्पा की सङ्गठन शक्ति की एक और प्रमाण है। इसके फलस्वरूप वर्सोवा से दमड़ तक का सम्पूर्ण उत्तरी प्रदेश जिसमें चार मुख्य बन्दरगाह, ३४० ग्राम, बसई के अतिरिक्त आठ नगर, बीस किले, दो किले बन्द दीवारें, शाष्ठि और अर्णाला द्वीप, और ढाई लाख वार्षिक राजस्व की प्राप्ति हुई। —दन्वेर्स : द पोर्चुगीज इन इण्डिया, भाग २, पृ० ४११-३।

अध्याय १६

(१७३९ ई० से १७४० ई० तक)

१७३६ ई०—नादिर शाह के प्रस्थान करने के थोड़े समय बाद बाजी राव ने सम्राट् के पास १०१ स्वर्ण मोहर की नजर तथा एक पत्र भेजा जिसमें उसने अपनी निष्ठा और आज्ञाकारिता प्रकट की इस पत्र की पहुँच की स्वीकृति उचित शब्दों में की गई और एक मूल्यवान् खिलअत भेजी गई।[1] सम्राट् ने यह आश्वासन दिया कि उसका पद, जागीर जनपद और दाय जो उसको प्रदान किए जा चुके हैं उनकी पुष्टि की जायगी और वह यह विश्वास रखे कि शाही शासन के प्रति दृढ़ता से अपना कर्तव्य निभाते रहने में उसका सर्वाधिक हित है।

यद्यपि मालवा में कोई नया सूबेदार या निजामुल्मुल्क का कोई प्रतिनियुक्त नहीं रखा गया। फिर भी बाजी राव को वहाँ का शासनभार प्रदान की जाने की सनद नहीं भेजी गई। इस भूल को पेशवा ने निजामुल्मुल्क की ओर से एक विश्वासघात माना। इस समय भी निजाम की सेना उत्तर भारत में थी, और बाजी राव के कुछ चुने हुए अधिकारी कोंकण से आ रहे थे। अतः उसने अधिक उपयुक्त अवसर आने तक अपने दावों की पूर्ति कराना स्थगित रखा। इस अन्तराल में वह मालवा प्रान्त के मामलों को सुव्यवस्थित करने और कोटा से इलाहाबाद तक के चम्बल नदी के किनारों के राजपूत राजाओं से अपने सम्बन्ध दृढ़ करने में व्यस्त था, विशेष कर जगत्‌देव और उसका भाई हरदेस (हृदयेश) से जो बुन्देलखण्ड के राजा थे। मुसलमानों के विरुद्ध पारस्परिक रक्षा और सहायता के निमित्त बाजी राव ने इन राजाओं से एक विशेष और गुप्त सन्धि की। अनुबन्ध करने वाले इन पक्षों ने

[1] खिलअत राजा द्वारा प्रदान किया हुआ सम्मानीय पहनावा है। पद और परिस्थिति के अनुसार इसमें रत्न, घोड़ा, हाथी और शस्त्र भी सम्मिलित रहता था। इस अवसर पर बाजी राव को पगड़ी के लिए जड़ाऊ आभूषण, मोती का एक हार, एक घोड़ा और एक हाथी प्रदान किए गए थे। सिरपा का अर्थ है सिर से पाँव तक का सम्मानार्थ प्रदान किया हुआ पहनावा जिसमें पगड़ी, पायजामा, कमरबन्द और लबादा सम्मिलित हैं।

अत्यन्त गम्भीर शपथ द्वारा अपने को बाँधा। बुन्देलखण्ड के ये राजा बाजी राव के साथ यमुना और चम्बल के पार के सभी अभियानों में साथ जाने को सहमत हुए। इसमें बदावर का प्रदेश शामिल नहीं था।[1] इनाम और विजय का बँटवारा उनके अपने-अपने सैनिकों की गणना के अनुसार होना था। उन्होंने यह भी शर्त की कि दक्खिन में युद्ध में बाजी राव के फंसे रहने पर वे दोनों राजा कम से कम दो महीने तक बुन्देल खण्ड की प्रतिरक्षा करेंगे और यदि उस अवधि के अन्त होने तक मराठे उनकी सहायता के लिए नहीं आवेंगे तो वे अस्थायी सुरक्षा के रूप में सर्वोत्तम शर्तों पर सन्धि कर लेंगे। किन्तु हिन्दू मित्र-शक्तियों के सम्मिलित होते ही वे उन शर्तों को भंग करेंगे। भूतपूर्व राजा छत्रसाल के प्रदेशों का, झाँसी को छोड़कर, बाजी राव का अंश पांच लाख रुपया नियत हुआ।

उत्तरी सीमान्त की सुरक्षा के ये प्रबन्ध निजामुल्मुल्क से युद्ध या कार्णाटक में एक अभियान करने की तैयारी के रूप में थे। निजामुल्मुल्क के विरुद्ध बाजी राव की पिछली सफलता निजामुल्मुल्क की ओर से समझौते का उल्लङ्घन, उसकी वृद्धावस्था, और उसके पुत्रों के बीच सम्भावित कलह ने पेशवा को दक्खिन को अपने अधिकार में करने के प्रयास को उत्साहित या प्रेरित किया। किन्तु इतनी बड़ी आयोजना के लिए उसके साधनों के अभाव ने उसको इस कार्य में रुकावट डाली। दूसरी ओर देय और लूट की आशा से जिनसे वह अपने ऋणों को चुकता कर सकता था, और सम्भवतः आर्काट से कुछ गुप्त प्रेरणा पाकर वह कार्णाटक में अभियान करने को जोरों से प्रलोभित हुआ। किन्तु बाजी राव की स्थिति भयावह थी और परिस्थितियों ने भी उसे दक्खिन को ही अपने कार्रवाइयों का केन्द्र बनाने को प्रेरित किया। दाभाडे के यथार्थ में उमाबाई के अभिकर्त्ता दमा जी गायकवाड़ के दल (क्योंकि उमाबाई का पुत्र यशवन्तराय बड़ा हो जाने पर भी अपने पद के लिए अयोग्य था) के पास बहुत ही अधिक साधन थे। कुछ कारणों से जो पहले लिखे जा चुके हैं, यह दल सदा से ही पेशवा के प्रति शत्रुभाव रखता था।

रघुजी भोसले ब्राह्मण उत्कर्ष के प्रति ईर्ष्यालु था। राजा को अपने वश में कर वह क्रान्ति की योजना बना रहा था क्योंकि शाहू को भावी दायाद की आशा नहीं थी, सम्भवतः रघुजी ने पुत्र रूप में गोद लिए जाने पर मराठा शक्ति का स्वामित्व पाने की सोचा हो। फतहसिंह भोसले ही एक ऐसा मराठा था जो शाहू द्वारा चुनाव किए जाने पर सम्भवतः उसका अधिक्रमण कर सकता था। किन्तु न तो उसमें योग्यता थी और न कार्य करने की शक्ति, और सैनिकों के बीच में उसका कोई प्रभाव न था।

---

[1] यह पता नहीं कि यह बुन्देलखण्ड के राजा के या पेशवा के पक्ष में था।

अपनी आयोजना को सफल बनाने में उसके सामने कई अड़चनें थीं। यद्यपि पेशवा के प्रति शत्रुताभाव रखने वाला वहाँ एक दल था। किन्तु बाजी राव के मित्र और आश्रित राजा को घेरे और उसके कान को भरते रहते थे, चाहे उनको शाहू का पूर्ण विश्वास प्राप्त न रहा हो। इसके अतिरिक्त बिना ब्राह्मण अभिकरण के न तो रघुजी भोसले और न दमाजी गायकवाड़ कोई आयोजना बन सकते थे या अल्पतम काम-काज कर सकते थे। यदि बाजी राव उस पद को जो वह उन दोनों के बीच में ग्रहण किए हुए था त्याग[१] दे तो उसके विरुद्ध उनके गठबन्धन करने में कोई अड़चन न रहे।

रघुजी और बाजी राव में जो भेद था उसके कारण ये थे : रघुजी ने इलाहाबाद सूबे को लूटा था। और आज्ञा पाने पर भी (१७३८ में निजाम के विरुद्ध) बाजी राव के साथ सम्मिलित नहीं हुआ था यद्यपि उसे ऐसा करना था, क्योंकि इसी शर्त पर उसे भूमि और उपाधि दी गई थी। पेशवा ने इस बात की पुष्टि की कि नर्मदा के उत्तर में देय उगाहने का उसको कोई अधिकार नहीं था और १७३८ के अन्त में पूना से प्रस्थान करते समय उसने उगाही वापस दिलाने का अपना निश्चय प्रकट किया, स्वामी को नहीं बल्कि मराठा राज्य को। उसने अप्रधर्षण को दण्डित करने की अपनी प्रतिज्ञा को सूचित किया। इरानियों के दिल्ली पहुँचने पर एक अस्थायी समझौता हुआ। किन्तु विवाद बना ही रहा और केवल इनके पारस्परिक-हितों की क्षति की भावना ने ही खुला युद्ध रोका।

राजकाज की इन स्थिति ने उस आयोजना की नींव डाली जिसका विकासोन्मुखी किन्तु अस्थिर मराठा शक्ति के विस्तार करने में बड़ा हाथ था। अभाग्यवश उनके इतिहास के इस अन्श की पुष्टि करने लिए प्रत्यक्ष प्रमाणों का प्रायः अभाव है। किन्तु इतना निश्चित है कि बाजी राव और रघुजी की भेंट हुई और उनका मनमुटाव दूर हुआ।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है तथा आने वाली घटनाओं के आधार पर ऐसा माना जाता है कि बाजी राव ने रघुजी को अपनी आयोजना का उतना भाग बताया जितना कि उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक था।

उसकी उच्चाभिलाषा और लालच को प्रेरित करने के लिए सम्भवतः पेशवा ने उसके सामने कार्णाटक की लूट, दक्षिण भारत में उसके अपने निजी प्रदेश की अन्ततः वृद्धि और बङ्गाल और उत्तरी भारत का भावी विभाजन प्रस्तुत किया हो।

इस भेंट में उस वास्तविक श्रोत का दर्शन किया जा सकता है जिससे कि मराठों के एक बड़े समूह ने कार्णाटक में जाने का तांता बांधा।[1]

दक्षिण भारत में विजय की अपनी आयोजनाओं को पूर्ण करने के लिए बाजी राव को निजामुल्मुल्क की अनुपस्थिति से, क्योंकि दिल्ली गया था, एक अवसर प्राप्त हुआ और उसने उस वर्ष के लगभग अन्त में नासिर जंग को घेर लिया। वह निजाम का द्वितीय पुत्र था और दस हजार आदमियों के साथ औरङ्गाबाद के पड़ोस में डेरा डाले हुए था। एक बड़ी संख्या में अश्वारोही और पदाति और एक बड़ा तोपखाना उसकी सहायता के लिए आकर उससे सम्मिलित हुआ इस अधिकबलन के मिल जाने से उसने बाजी राव पर आक्रमण किया, मराठा सेना की उपेक्षा कर गोदावरी को पार किया और रास्ते में पड़ने वाले गावों को लूटते हुए अहमदनगर की ओर प्रस्थान किया।[2] चिमनाजी अप्पा ताजे सिपाहियों के एक दल के साथ जिसमें विशेष कोंकण के पदाति थे पेशवा से आ मिला मुगलों पर बारम्बार

---

[1] शाहू महाराज ने राजमन् राजश्री रघुजी भोसले सेना साहब सूबा को एक आदेश भेजा कि तुङ्गभद्रा के दक्षिण के कार्णाटक प्रदेश के १. त्रिचनापल्ली, २. तञ्जोर, ३. अर्काट (जिंजी समेत), ४. श्रृङ्गापट्टम जनपदों की सम्पूर्ण उगाही (शासन से की हुई सन्धि से निश्चित की हुई कटौती काट कर) राजा शाहू के स्वामित्व की है, और १. सेरा, २. अदोनी, ३. कर्नूल, ४. कड्डापा, ५. फुटमहाल (विभिन्न जनपदों के भाग) की सरदेशमुखी, बबती, सहोत्रा आदि की कटौती कर, मोकासा जो शेष बचता है उसका आधा भाग कूसाजी यसाजी भोसले का है और दूसरा आधा भाग राजा शाहू का है। इस तरह पूर्वोक्त प्रथम चार जनपदों का पूरा (राजस्व) और शेष जनपदों की सरदेशमुखी, और बबती, और मोकासा के आधे भाग के कुल योग का अर्ध भाग रघुजी भोसले का होगा; और शेष आधा भाग शासन का है और राजकोष में जमा किया जाय। रघुजी भोसले और (बाजी राव) सलाह कर और उचित प्रबन्ध कर पर्वतदुर्गों, किलों, और प्रदेश पर कब्जा करेंगे। रघुजी भोसले किलों और किलेबन्द स्थानों की रक्षा के लिए अपने अश्वारोही देंगे (बाजी राव) उन स्थानों पर आवश्यक पदाति रखेंगे। इस वर्ष (रघुजी को) शासन को सात लाख रुपया देना होगा।

[2] चिमनाजी अप्पा के अनुसार नासिर जङ्ग की सेना में तीस हजार अश्वारोही, बीस हजार पदाति, एक सौ पचास तोपें, तीन सौ चूल छल्ले और तीन सौ राकेट ढोने वाले ऊँट थे। सम्भव है इसमें अतिशयोक्ति हो फिर भी यह बहुत बड़ी सेना थी।

धावे किए जिससे विवश होकर नासिर जङ्ग को गोदावरी की ओर पीछे हटना पड़ा। कई महीने बाद इस अलाभकर युद्ध से ऊबकर मराठों ने मङ्गी पैठन में एक समझौता किया जिसके अनुसार दोनों दलों ने शान्ति बनाए रखने और दक्खिन में लूट करने से पारस्परिक रूप से अपने हाथ खींचने की प्रतिज्ञा की नर्मदा के तट पर स्थित हिंडिया और किरकौन जनपद बाजी राव को जागीर में दिए गए पेशवा पूना और सातारा नहीं गए, बल्कि बड़ी पीड़ा अनुभव करते हुए प्रायः निराश होकर उन्होंने अपनी सेना के साथ उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया।[1] पेशवा का पुत्र बालाजी बाजी राव कोंकण में युद्ध करने में व्यस्त था चिमनाजी अप्पा को उसकी सहायता करने की आज्ञा हुई।

१७४० ई०

शम्भाजी आंग्रिया अपने सौतेले भाई मानाजी से कुलाबा प्राप्त करने के लिए अब भी तुला हुआ था। सैनिकों के इतने बड़े दल की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसने मानाजी के जनपदों पर फिर आक्रमण किया और तेजी से चौल, अलीबाग, थल और सागरगढ़ पर अधिकार कर कुलाबा पर घेरा डाला और रक्षक दल को ताजा पानी पाने से वञ्चित किया। मानाजी ने बालाजी बाजी राव से निवेदन किया जो उस समय राजा के साथ सातारा के पड़ोस में था अतः रक्षक दल की सहायता करने के लिए पाँच सौ आदमी भेजे गए और आदेश के लिए चिमनाजी अप्पा के पास एक अत्यावश्यक पत्र भेजा गया। चिमना जी ने अपने भतीजे को स्वयं ही कुलाबा जाने की आज्ञा दे दी थी और बम्बई स्थिति सपरिषद् राज्यपाल को (जिसके साथ उसने एक सन्धि कर रखी थी और कोंकण में अपने पिछले अभियान के समय से एक मैत्री पूर्ण सम्पर्क बनाए रखा था) कुलाबा के सैन्य रक्षक दल को सहारा तथा जल की सहायता करने का आवेदन किया जो तुरन्त ही पूरा किया गया। बालाजी उस समय अनिवार्य रूप से नाना साहब कहलाता था प्रयाण के पाँचवें दिन कुलाबा पहुँचा और हीराकोट के संरक्षण में स्थिति एक दल पर आक्रमण कर अपनी पहली सेवा में ख्याति प्राप्त की। उसने उस दल को शम्भाजी के शिविर में खदेड़ दिया, पचीस तीस आदमियों को मार डाला और शम्भाजी के सौतेले भाई तुलाजी

---

[1] बाजी राव ने ब्रह्मेन्द्र स्वामी को लिखा कि कठिनाईयों और ऋण के कारण वह इतना हतोत्साहित हो गया है कि उसकी मनोदशा उस व्यक्ति की तरह है जो विष पान करने को प्रस्तुत है। सातारा में राजा के समीप मेरे शत्रु हैं जो मेरे वक्षस्थल पर अपना पैर रखना चाहते हैं। वहाँ जाने की अपेक्षा मैं मृत्यु का आलिङ्गन करना पसन्द करता हूँ।

को बन्दी किया।[1] नाना साहब के पूर्व ही अँग्रेज पहुँच गए थे। उन्होंने शम्भाजी के बेड़े को स्वर्णदुर्ग जाने को विवश किया और उसके शिविर को जो उसने समुद्र तट पर खड़ा किया था हटने को विवश किया। अँग्रेजों की लगातार भारी अग्नि वर्षा से बचने के लिए उन्हें खाई खोदनी पड़ी। शम्भाजी ने अँग्रेजों से स्वर्णदुर्ग लौट जाने की अनुज्ञा माँगी किन्तु उन्होंने उनकी प्रार्थना अनसुनी कर दी किन्तु किसी प्रकार वह बच निकले। इसके सम्बन्ध में मराठा पत्रों और हस्तलेखों में कोई विवरण नहीं है। चिमनाजी अप्पा और नाना साहब संयुक्त होकर रेवादण्डा को अपने अधीन करने की योजना बना रहे थे कि उनको सूचना मिली कि बाजी राव की मृत्यु २८ अप्रैल १७४० को नर्मदा के तट पर हो गई है। यह समाचार प्राप्त होने पर शंकराजी नारायण कोंकण का सूबेदार नियुक्त किया गया। एक सैन्य दल का कमाण्ड खण्डूजी मानकर के हाथ में रहा और चिमनाजी अप्पा और उसका भतीजा दस या बारह दिन की अन्त्येष्टि क्रिया करने और सूतक मनाने के बाद पूना को लौट गए और वहाँ से थोड़े दिनों बाद सातारा गए।

बाजी राव की मृत्यु मराठा इतिहास में एक ऐसी घटना है जिसका मात्र बाजी राव के कारण ही सिंहावलोकन करना आवश्यक है। इस राष्ट्र के इतिहास में उन शक्तियों का जिनसे उनका सम्बन्ध था, सिंहावलोकन जो भले ही संक्षिप्त हो, नितान्त आवश्यक है। बाजी राव के उन यूरोपीय समसामयिक व्यक्तियों की अपेक्षा जिनको सौ वर्ष पहले[2] मराठों का नाम अज्ञात था आज के पाठकों को इन मराठों को समझने में अधिक कठिनाई नहीं है जिन्होंने प्राचीन राजतन्त्रों को उलट दिया और जो पूरब और पश्चिम में हुगली नदी से बनस नदी तक और मद्रास से दिल्ली तक लूट करते थे और आग लगाते थे। फिर भी उनकी विजयों का रूप छितरा हुआ होने के कारण, उनके अतीत के इतिहास के सिंहावलोकन तथा सर्वेक्षण बिना, उनकी शक्ति के उत्कर्ष और प्रगति का अपेक्षित महत्त्व ओझल हो सकता है। सतरहवीं शती के आरम्भ से मुसलमान युद्धों, शिवाजी की आयोजनाओं तथा विजयों, उनकी मृत्यु के बाद किसी नियन्त्रण करने वाली सत्ता के अभाव में दक्खिन की स्थिति, आए दिन की बढ़ती हुई लूट, इस तरह से तैयार हुई महान् लुटेरी-शक्ति, और उनके संचालन करने के साधन जिनको मुगलों ने शाहू को सौंपा था—इन सब का मराठा शक्ति का विशाल रूप बनाने में हाथ था। जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि किस कुशलता से

[1] बाद को मालूम नहीं किस तरह वह छोड़ दिया गया।

[2] राजाराम की मृत्यु के समय तक यूरोपीयनों में मराठे शिवाजी के नाम से अधिक विख्यात थे।

बालाजी विश्वनाथ और उसके उत्तराधिकारी ने भयङ्कर विनाश की सम्पूर्ण कर्तृत्व शक्ति को सम्मिलित और नियन्त्रित किया, तब हम उस विनाशलीला से चकित नहीं होते जो इसके फलस्वरूप हुई। मराठा प्रगति के अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों के सम्मिलित हो जाने से तैमूरी वंश की अवमानता पूर्ण हुई और उस अवधि में जब बाजी राव की मृत्यु हुई मुगल-साम्राज्य का बृहत् ढांचा असम्बद्ध या जीर्णशीर्ण था।

निरंकुश शासक की इच्छा के अधीन होने के बाद मुहम्मद शाह ने अपनी स्वतन्त्रता और अपना मुकुट प्राप्त किया। चालीस करोड़ से अधिक रुपये की दिल्ली में लूट हुई। हजारों निवासी निर्दयतापूर्वक तलवार के घाट उतारे गए।[1] नादिर शाह ने काबुल, तत्ता, और मुलतान को अपने फारस के राज्य में मिलाया।

फारस की सेना पर किए गए एक जल्दबाजी के आक्रमण में खान दौरान की मृत्यु हुई। इस स्थान पर निजामुल्मुल्क का मित्र कमरुद्दीन मन्त्री बनाया गया। इस तरह से शक्ति तुरानी मुगलों के हाथों में बनी रही, यद्यपि सम्राट् की गुप्त इच्छाएँ इसके विरुद्ध थीं। निजामुल्मुल्क को अमीर-उल-उमरा की उपाधि से सुशोभित किया गया। वह कुछ दिन दिल्ली में ठहरा, किन्तु यह सूचना पाने पर कि उसका पुत्र नासिर जङ्ग विद्रोह करने का विचार कर रहा है, उसने अपनी अमीर-उल-उमरा की उपाधि को अपने ज्येष्ठ पुत्र गाजीउद्दीन को हस्तांतरित करने के लिए सम्राट् की मंजूरी प्राप्त की और दक्खिन को प्रस्थान किया।

नादिर शाह के दिल्ली छोड़ने के पूर्व अवध के नवाब सआदत खाँ की मृत्यु हुई और उसका भतीजा और दामाद अब्दुल मंसूर खाँ सफदर जंग उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया।

सम्राट् के करद प्रमुख राजपूत जयपुर, जोधपुर और उदयपुर थे। इनमें से दो अन्तिम राज्यों को मराठों ने अंशतः विध्वंस किया था। किन्तु जयसिंह और

---

[1] बहुत दिनों तक सड़कों पर शव छितरे पड़े थे जिस तरह उद्यान के पग-डंडियों पर मुरझाए हुए फूल और पत्तियाँ पड़ी रहती हैं। नगर जला कर राख कर दिया गया था और यह अग्नि से जला हुआ एक मैदान सा प्रतीत होता था। इसकी सुन्दर सड़कों और भव्य भवनों को उनके पूर्व वैभवपूर्ण स्थिति में लाने के लिए वर्षों के परिश्रम की आवश्यकता है।—इलियट एण्ड डॉसन : हिस्ट्री आव इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ हर ओन हिस्टोरिअन्स, जिल्द ८, पृ० ८८-९।

बाजी राव[1] के बीच में घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण जयपुर के जनपदों में इस प्रकार के अग्रघर्षण नहीं हुए थे।

जाट जो सिंधु नदी के तट पर रहने वाले एक शूद्र जाति के थे औरङ्गजेब की मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व आगरा और जयपुर के प्रदेश में बस गए थे। उस समय की हलचल में उनके मुखिया चूणामणि ने शक्ति प्राप्त की। कहा जाता है कि औरङ्गज़ेब की सेना के सामान की लूट से भरतपुर की किलेबन्दी आरम्भ की गई। यद्यपि जाट मराठों से काफी दूर पर बसे हुए थे, फिर भी जाटों का उत्कर्ष मराठों के कारण हुआ, और मराठों के चम्बल पार करने के समय से पारस्परिक हित के कारण ये दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध थे और अधिकांशतः इन दोनों में एक मैत्री संसर्ग बना रहा है।

इसी समय के लगभग अनधिकार ग्राही अल्लाहवर्दी खाँ[2] ने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा प्रान्तों पर अपनी सत्ता स्थापित की। बङ्गाल के नवाब सुजाउद्दीन खाँ की सेवा में एक तुच्छ पद से उन्नति कर अलीवर्दी खाँ बिहार में नवाब का प्रति नियुक्त बनाया गया। नवाबी का प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी सरफ़रज खाँ ढाका में नियुक्त था और सुजाउद्दीन का दामाद मुर्शीदकुली खाँ उड़ीसा का उपराज्यपाल था। उसका दीवान अरब निवासी मीर हबीब था।[3] सुजाउद्दीन के मरने पर सरफ़रज खाँ नवाब नियुक्त किया गया। अली वर्दी खाँ ने विद्रोह कर युद्ध में उसको मार डाला। उसने मुर्शीदकुली खाँ पर आक्रमण कर उसे उड़ीसा से भगा दिया। दीवान मीर हबीब भी जिसका बाद को मराठा प्रगति में पर्याप्त हाथ था भागा, किन्तु बाद को उसने समर्पण किया और सफल विद्रोही की सेवा स्वीकार की। अलीवर्दी खाँ ने सरफ़रज खाँ की सम्पत्ति और रत्नों का एक भाग सम्राट् के पास भेजा जिसके फलस्वरूप सम्राट् ने उसको बङ्गाल के नवाब होने की स्वीकृति दी।

दिल्ली के उपनगर में भी नए राज पैदा हुए। उस राज का संस्थापक जो बाद को रोहिला नाम से विख्यात हुआ कुछ दिनों से अपनी ओर लोगों का ध्यान

---

[1] बाजी राव का एक गुप्त अभिकर्ता व्यङ्कोजी राम जयसिंह के पास ठहरा हुआ था।

[2] स्वीकृत किए जाने के बाद अल्लाहवर्दी खाँ (१७४०-५६) ने दिल्ली सम्राट् को कभी कोई कर चुकता नहीं किया।

[3] सियारुल मुताखिरीन के लेखक गुलामहुसेन खाँ के अनुसार वह फेरी लगाने वाला एक ईरानी था।

आकर्षित कर रहा था। सर्वप्रथम एक अहीर[1] ने राज स्थापित किया। महाराष्ट्र के धङ्गरों की तरह यह भी एक पशु पालक जाति है। जब वह बालक था, एक अफगान ने उसको अपना बेटा बना लिया और उसका नाम अलीमुहम्मद रोहिल्ला रखा। अतः उसका तथा उसके सब साथियों का नाम रोहिल्ला पड़ा।[2] उसका जीवन अफगान अश्वारोही दल के एक साधारण कमाण्डर के रूप में मुरादाबाद के उपराज्यपाल के अधीन आरम्भ हुआ। बाद को उसने अधिक ऊँची लगान देने के बहाने जमीनों पर अधिकार कर लिया और अन्त में उसके अतिसर्पण को दबाने का प्रयास होने पर उसने विद्रोह कर दिया और वीर कमरुद्दीन खाँ के सहायक को पराजित किया जिसके जागीर में जो दोआबा में राज्यधानी से सौ मील की कुछ ही अधिक दूरी पर दक्षिण में थी ये सब बातें पैदा हुईं।

स्वराज को और उन प्रदेशों को छोड़ कर जो पूर्णतया जागीर में प्रदान किए जा चुके थे, निजामुल्मुल्क शेष दक्खिन और कार्णाटक के राजस्व को मराठों के साथ विभाजित कर लेता था। दूसरी परिस्थितियों में तुङ्गभद्रा के दक्षिण के उन सब राज्यों और जागीरों पर जिन्होंने औरङ्गजेब की अधीनता स्वीकार कर ली थी निजाम सार्वभौमिकता का दावा करता था और मराठे कर उगाहने का दावा करते थे।

दाउद ने १७०६ में सआदत उल्ला खाँ को कार्णाटक-पायान-घाट में अपना प्रतिनिधि बनाकर रखा। सआदत उल्ला खाँ के मरने पर उसका भतीजा दोस्तअली १७३२ में निजामुल्मुल्क की स्वीकृति या सम्राट् की आज्ञा प्राप्त किए बिना ही अपने चाचा के उत्तराधिकारी के रूप में नव्वाब बन बैठा।

देश छोटे २ राज्यों में विभाजित होता जा रहा था। बीजापुर और गोलकुण्डा वंशों के अधीनस्थ नवाबों के वंशज, करनूल, कड्डापा और सावनूर के नवाबों का कुछ मराठों से घनिष्ठ सम्पर्क था, और कुछ समय से वे प्रायः स्वतन्त्र थे। अर्काट के नवाब के दामाद विख्यात चन्दा साहब ने मृत राजा के विधवा की रक्षा की बहाने त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया था।

तञ्जोर का नाममात्र का राजा शिवाजी के भाई व्यङ्कोजी का पौत्र था। व्यङ्कोजी के तीन पुत्रों में केवल सबसे कनिष्ठ तुकाजी के ही सन्तान थीं। इस समय तुकाजी के दो पुत्र जीवित थे। इनमें से सायाजी वैध था और दूसरा प्रतापसिंह एक रखैल का पुत्र था। सायाजी के नाम पर शासन होता था किन्तु शक्ति एक मुसलमान

---

[1] फार्स्टर के अनुसार वह एक जाट था।

[2] रोहिल्ला एक अफगान जनजाति है जिसने अवध के उत्तर-पश्चिम के हिन्दू प्रदेशों सम्भल आदि को जीत लिया था।

अधिकारी के हाथ में थी जो तुकाजी के समय से तञ्जोर किले का कमाण्डर था। सायाजी कुछ समय बाद मद्रास स्थित अँग्रेजों की रक्षा में चले गए। अतः इस अधिकारी ने सायाजी से कब्जा छीन लिया और १७४१ में प्रतापसिंह को शासन का प्रधान बना दिया। किन्तु यह नया राजा अपने मन्त्री के नियन्त्रण में नहीं रहना चाहता था, अतः उसकी हत्या कर संरक्षण की स्थिति से छुटकारा पा गया।

अँग्रेज और फ्रांसीसी जिनको शीघ्र ही उस समय के कलह और अनधिकार-ग्रहण में भाग लेना पड़ा अपनी निजी शक्ति को न पहचानते हुए या इसका प्रयोग करने में अन्यमनस्क रहते हुए अब भी प्रतिरक्षात्मक बने रहे। किन्तु अपनी शक्ति न पहचानते हुए भी जब उनको हथियार उठाना पड़ा तो उन्होंने सब अवसरों पर अधिकारों की वीरतापूर्वक रक्षा की। फिर भी इन दोनों महान् राष्ट्रों के व्यापारियों ने अन्य यूरोपीय कोठी वालों के समान अपने चारों ओर के छोटे २ दरबारों को बारम्बार उत्कोच और उपहार देकर और विनम्रता प्रदर्शित कर केवल अपने व्यापार और विशेषाधिकारों की वृद्धि की आकांक्षा की।

मराठों ने पुर्तगालियों को बुरी तरह से नीचा दिखाया। बम्बई स्थित अँग्रेजों ने उसके भाई चिमनाजी अप्पा द्वारा पेशवा की अनुरञ्जना की जिससे कि उनको और अधिक व्यापारिक विशेषाधिकार प्राप्त हों। उन्होंने चिमनाजी अप्पा से बसई में जुलाई १७३६ में एक सन्धि की थी।[1]

मराठों के विरुद्ध युद्ध में सोन्दा के राजा और कारबार के देसाई ने पुर्तगालियों की सहायता की। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बेदनूर का राना जिसका प्रदेश कोल्हापुर के राजा शम्भाजी के प्रदेश से मिला हुआ था तटस्थ रहा। यद्यपि मैसूर राज्य मुगलों का तथा राजा शाहू का एक घोषित करद राज्य था, इधर बारह या पन्द्रह वर्षों से अपने पड़ोसियों की हलचल तथा कुछ अपने अधिकारियों के ओज के कारण लूट और बलपूर्वक आहरणों का शिकार नहीं हुआ था जिनके कारण भारत का अधिकांश भाग विनाश को प्राप्त हो रहा था।

इस महत्त्वपूर्ण काल में मुगल साम्राज्य की ऐसी जर्जरित अवस्था थी। घटनाओं के विवरण से मराठों के दल, गृहनीति, और कुल-वैर प्रत्यक्ष हो गए हैं। किन्तु अभी बाजी राव के चरित्र और प्रशासन के सम्बन्ध में कुछ कहना शेष है।

---

[1] अँग्रेज दूत केप्टन इञ्चबर्ड ने यह सन्धि की थी। पुर्तगालियों और मराठों के बीच में १७४० में चौल के हस्तांकन किए जाने के अवसर पर अँग्रेज मध्यस्थ थे।

मराठों की एकता पुष्ट करने के निमित्त राजस्व के बनावटी विभाजन के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। यहाँ यह पता लगाना उपयुक्त होगा कि कहाँ तक यह प्रणाली एकता की पुष्टि करने में सफल हुई और कितने दिनों तक इस प्रणाली के ब्यौरे का अनुसरण किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि इससे एकता हुई और इससे दक्खिन की लुटेरी शक्ति को एक तात्कालिक रास्ता मिला। सम्भवतः मराठे अपनी विजय का विस्तार इतनी दूर तक कभी भी न किए होते यदि सरदारों के तुष्टिकरण और नियन्त्रण के इस साधन का आविष्कार न हुआ होता। यह स्वकल्याण के सिद्धान्त पर आधारित था; और इसको उपयुक्त ढङ्ग से किसी समुदाय के विचारों की ओर प्रेरित करने से इसका परिणाम सुनिश्चित है। किन्तु यह सदा याद रखना चाहिए कि इस सिद्धान्त का दुरुपयोग होने से या इसको गलत समझने से यह विद्रोह को उत्तेजित और वैमनस्यता को उत्पन्न कर सकता है, जिस तरह यह एकता और सङ्गठन को सुरक्षित रख सकता है। इसके विवरण और प्रबन्ध को देखने के लिए बाजी राव के पास समय नहीं था। मुगलों द्वारा प्रदान किए गए राजस्व के सूक्ष्म विभाजन से सैकड़ों ब्राह्मण कारकुनों को रोटी का सहारा हुआ और इनमें से हर एक कारकुन अपनी माँगों को पूरा करने की शक्ति के अनुसार, न कि माँगों की न्यायता को प्रमाणित करने की योग्यता के अनुसार, अपने स्वामी के तथा निजी सरदेशमुखी, बबती, मोकासा आदि दावों की माँग करता था।

शिवाजी की अधिक ठोस संस्थाएँ अब भी उनके मूल पहाड़ी निवासियों में पाई जाती हैं। किन्तु १७२० में पचास वर्षों से कम अवधि में भी महाराष्ट्र के इने-गिने व्यक्ति ही राजस्व विभाजन की उत्पत्ति समझ पाते थे और अब इसकी उपयोगिता केवल ऐतिहासिक ही रह गई है। जब हम बाजी राव की विदेशी एवं गृह सम्बन्धी व्यग्रताओं की ओर निहारते हैं तो हमको उसके प्रशासन के हर एक विभाग में व्याप्त अस्तव्यस्तता से आश्चर्य नहीं होता। नियमित प्रशासन की ओर उसका नाम मात्र का झुकाव था। उसके बहुत से देशवासी उस पर लोभ का, अपने धर्म के नियमों के उल्लङ्घन का, मात्र सैनिकता का, और अर्थशास्त्र और विधिशास्त्र की प्रत्येक शाखाओं के प्रति उपेक्षा का दोष लगाते हैं। उनके मत पूर्णतया विचारणीय हैं किन्तु ये उनके उत्कृष्ट गुणों का अधिक अपकर्ष नहीं कर सकते। यदि उसने अपनी जाति के कुछ दोषों को उत्तराधिकार में प्राप्त किए थे, फिर भी उसमें उन दोषों की कट्टरता नहीं थी। किन्तु उसमें उन नीचतर दुर्गुणों का छुआव था जो ब्राह्मणों के सामान्य चरित्र को जब वे शक्ति में होते हैं घृणित बना देता है। उसकी उद्विग्नताएँ और उसकी जीवन-यात्रा ही उसके देशवासियों के आक्षेपों का सर्वोत्तम उत्तर है। यह सच है कि वह अपरिमित रूप से उच्चाकांक्षी था और दक्खिन को विजय करने

की अपनी अन्तिम योजना में उसने अपने साधनों की नितान्त गलत गणना की। किन्तु उसने इस प्रयास से अपना हाथ खींच कर शानदार ढङ्ग से अपनी दूर दृष्टि की कमी पूरी की। अधिकांश व्यक्तियों की योजनाएँ भयङ्कर कठिनाईयों, कलहों, षड्यन्त्रों और सङ्कटों के कारण सुदूर भविष्य तक नहीं चल पातीं। यही हाल बाजी राव की योजनाओं का भी हुआ। प्रभूत गृह-विरोध को दबाने में, तथा निजामुल्मुल्क की योजनाओं को शीघ्रतापूर्वक ताड़ने में, और तुरन्त ही उनको विफल करने में उसने एक राजनीतिज्ञ के रूप में सूझ-बूझ, प्रतिभा और स्फूर्ति दिखाई। उसके उदार विचारों से तथा उसके हाथ में जो एकमात्र शक्ति थी उसके उपयुक्ततापूर्वक सञ्चालन से सम्भवतः हम यह समझें कि वह बड़ा से बड़ा काम सम्पादित कर सकता है। किन्तु उसके चरित्र को देखने से हमें यह कल्पना गलत प्रतीत होती है। एक लुटेरे नेता के रूप में उसके गुण महान् थे, वह साहसी और सुस्पष्ट वक्ता, कर्मण्य और दक्ष था। उसके जीवन काल का समय और उसके कार्य करने की परिस्थितियाँ शिवाजी के काल और परिस्थितियों से इतने भिन्न थे कि संक्षेप में उन दोनों की समता नहीं की जा सकती। फिर भी उसकी विशेषताएँ काफी स्पष्ट हैं, और यद्यपि बाजी राव अधिक स्तुत्य था फिर भी इतिहास में उसकी उतनी ख्याति नहीं हो सकती है।

बाजी राव देखने में सुन्दर और व्यवहार में चिकनी-चुपड़ी बातें करने वाले दरबारियों की अपेक्षा एक स्पष्टवादी सैनिक की तरह था। अपने सैनिकों के साथ युद्धक्षेत्र में रहते समय वह शानशौकत नहीं रखता था और साधारण से साधारण अश्वारोही के अभावों को सहन करता था। उसके चरित्र के सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है। निजामुल्मुल्क ने बाजी राव को नहीं देखा था। प्रथम अभियान में जब वे एक दूसरे के विरोध में आए तो निजामुल्मुल्क ने अपने एक दक्ष चित्रकार को यह आदेश देकर बाजी राव की सेना में भेजा कि जिस रूप में वह सर्वप्रथम उसे दिखाई पड़े, उस रूप में वह उसका चित्र बनाकर लावे। चित्रकार ने अपना कार्य सम्पन्न किया। उसने चित्र में दिखाया कि पेशवा घुड़सवारी किए हुए है। एक साधारण मराठा की तरह अपने भोज्य पदार्थ के थैले में अपने घोड़े की अगाड़ी और पिछाड़ी रखे हुए हैं, उसका भाला उसके कंधे पर है। वह पके हुए जुआर के कुछ बालों को अपने दोनों हाथों से मलता हुआ और खाता हुआ घुड़सवारी किए हुए जा रहा है।

बाजी राव तीन लड़कों को छोड़ कर मरा। उसका ज्येष्ठ पुत्र बालाजी बाजी राव उत्तराधिकार के रूप में पेशवा बनाया गया। उसका द्वितीय पुत्र रघुनाथ राव था। बाद को अँग्रेजों का इससे भली भाँति परिचय हुआ। उसका तीसरा पुत्र जनार्दन बाबा था, जिसकी युवावस्था के प्रारम्भ में ही मृत्यु हुई। उसका एक अवैध

पुत्र भी था जिसकी माता मुसलमान थी।[1] उसका नाम शमशेर बहादुर था और वह एक मुसलमान के रूप में पाला पोषा गया था।[2]

---

[1] तारीखे मुहम्मद शाही के अनुसार वह एक मुसलमान नर्तकी थी जो घोड़े की सवारी तथा तलवार और भाला चलाने में दक्ष थी और बाजी राव के अभियानों में सदा उसके साथ रहती थी। उसके कारण पेशवा के परिवार में अशान्ति हुई। पेशवा के भाई रघुनाथ के यज्ञोपवीत-संस्कार और उसके चचेरे भाई सदाशिव राव के विवाह-संस्कार के अवसर पर पुरोहित लोग बाजी राव सदृश दूषित व्यक्ति की उपस्थिति में अपना कार्य करने को तैयार न थे।—सर देसाई : मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० २३२-३। बाजी राव की दाह क्रिया के अवसर पर एकत्र व्यक्तियों को आश्चर्यान्वित और चकित करती हुई वह एक हिन्दू पत्नी की तरह सती हो गई 'और बाजी राव का स्वागत करने के लिए निर्भयतापूर्वक ज्वालाओं से होकर दूसरे लोक में चली गई'।—किंकेड एण्ड पारस्निस, खण्ड २, पृ० २६६। 'बाजी राव कितना भी महान् और शक्तिशाली रहा हो, हिन्दू समाज को यह असह्य था।' —डॉ० सिन्हा : राइज आव द पेशवाज, पृ० २००। ब्राह्मण कट्टरता के सामने साम्राज्य के सब से शक्तिशाली व्यक्ति को घुटने टेकने पड़े और पराजय स्वीकार करनी पड़ी। इससे सङ्गठित हिन्दू समाज की स्पष्ट विजय हुई।—के० एम० पनिक्कर : भूमिका, पृ० १३-४ श्रीनिवासन : बाजी राव द फर्स्ट)।

[2] बाजी राव की हार्दिक इच्छा थी कि वह ब्राह्मण माना जाय किन्तु पुरोहित वर्ग उसका यज्ञोपवीत कराने को तैयार न था। वह मुसलमान की तरह पाला गया। बाजी राव ने बुन्देलखण्ड के अपने भाग में से उसको बाँदा और कालपी प्रदान किया। वह बाँदा के नवाब का पूर्वज था जो पेशवा और झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के साथ-साथ १८५८ के कालपी के युद्ध में अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ा था।—श्रीनिवासन : बाजी राव द फर्स्ट, पृ० ८०-८१।

अध्याय १७

(१७४० ई० से १७४९ ई० तक)

१७४० ई०—रघुजी भोसले के नेतृत्व में जिस सेना ने कार्णाटक में प्रवेश किया, उसमें राजा, पेशवा, प्रतिनिधि, फतहसिंह भोसले तथा अन्य अनेक सरदारों के सैनिक थे। शाहू और पेशवा ने पत्र भेजकर सोन्दूर और गूटी के घोडपडों को इसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। सन्ताजी घोडपडे एक विख्यात और श्लाघनीय मराठा सैनिक अधिकारी था किन्तु राजा ने इसकी उत्कृष्ट सेवाओं का सम्मान नहीं किया। उसकी मृत्यु के बाद प्रथम बार उसका पौत्र मुरार राव जो गूटी के मुरार राव का दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी था राष्ट्रीय झण्डे के नीचे आया। उसने मराठा सेना के अपने सेनापति-पद की माँग की। किन्तु तुङ्गभद्रा के समीप के तीन जनपदों के पाने का वचन पाकर वह इस पद को छोड़ने को सहमत हुआ। मराठी हस्तलेखों के अनुसार यह पूरी सेना जिसने कार्णाटक में प्रवेश किया था पचास हजार थी। एक निर्जन रास्ते से उतर कर, वे दमलचरी दर्रा के पड़ोस में दोस्तअली की सेना के पृष्ठ भाग में आ धमके और उस पर आक्रमण कर उसको मार डाला और उसकी सेना को पराजित और उसके दीवान मीरआसद को बन्दी किया। उन्होंने पूरे प्रदेश भर से देय उगाहना आरम्भ किया। किन्तु मृत नवाब का पुत्र और उत्तराधिकारी सफदरअली ने उनको खरीद लिया। वापस जाने के पहले उन्होंने एक गुप्त सम्विदा किया कि वे लौट आकर चाँदा साहब का दमन करेंगे जिसने त्रिचनापल्ली पर अधिकार कर लिया है। चाँदा साहब की लोकप्रियता और शक्ति के प्रति सफदरअली और मीर-आसद ईर्ष्यालु और शङ्काकुल थे। मराठों के लिए त्रिचनापल्ली का प्रलोभन सर्वोपरि था। आक्रमण की आशङ्का को कम करने तथा भावी विजय की तैयारी करने के लिए वे केवल ढाई सौ मील महाराष्ट्र की ओर पीछे हटे।

उसकी सेना के मुख्य भाग के शिवगङ्गा के किनारे पड़ाव डालने पर रघुजी भोसले ने सातारा को प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उसने यह प्रयत्न किया कि उत्तराधिकार में बालाजी बाजी राव पेशवा न होने पाए बल्कि पेशवा के रिक्त पद

को बारामती का बापूजी नायक[1], जो मृत पेशवा का एक सम्बन्धी तथा शत्रु था सुशोभित करे। बापूजी नायक के पास अपार धन था और बाजी राव से उसकी शत्रुता का एक अत्यन्त समान कारण यह था कि उसने रुपया उधार दिया था जो उसका ऋणी चुकता नहीं कर सकता था। रघुजी के दल ने असन्तुष्ट साहूकार को अपना हथियार बनाया। एक बहुत बड़ी रकम शाहू को इस शर्त पर दी गई कि वह बापूजी को रिक्त पेशवाई प्रदान करे।

यद्यपि प्रतिनिधि यह नहीं चाहता था कि पेशवा का बोलबाला हो किन्तु वह रघुजी के दावों का अधिक विरोधी था। उसने इस षड्यन्त्र में भाग नहीं लिया। अन्त में बालाजी बाजी राव ने अपने चाचा चिमनाजी की सहायता पाकर अगस्त १७४० में पेशवाई का वस्त्र धारण किया। अपने पिता के ऋणों के बोझ से बालाजी बाजी राव को अत्यन्त मानसिक पीड़ा हुई। अन्य मराठा साहूकारों की तरह[2] बापूजी नायक ने पूरी धृष्टता और उद्विग्नकारक हठ से अपनी माँग को पूरा किया। उसके दीवान माहादजी पन्त पुरन्दरे ने अपने प्रभाव और साख से बालाजी का दुःख दूर किया। इस सेवा को पेशवा जन्म भर नहीं भूला।

अपनी योजना निष्फल हो जाने पर रघुजी बापूजी नायक को कार्णाटक की ओर ले गया और त्रिचनापल्ली में अपेक्षित फसल को काटने के लिए लौटा। उसके साथ श्रीपतराव प्रतिनिधि और फतहसिंह भोसले भी थे। कार्णाटक में मराठों की बाद की कार्रवाईयों के सम्बन्ध में जो कुछ इतने विद्वतापूर्ण ढङ्ग से लिखा जा चुका है, उसके अतिरिक्त नाममात्र को ही कोई नया तथ्य जानकारी में आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तञ्जोर राज्य का जहाँ उस समय दलबन्दियों का जोर था अपने देश-वासियों के साथ एक मैत्रीपूर्ण पत्र व्यवहार होने लगा। परन्तु आक्रमण को रोकने के लिए अथवा सहायता देने के लिए इसका उल्लेख नहीं है। त्रिचनापल्ली ने २६ मार्च १७४१ को समर्पण किया। चाँदा साहब[3] बन्दी बनाकर सातारा लाया गया, जहाँ वह लगभग सात वर्ष तक, रघुजी भोसले के एक अभिकर्ता की अभिरक्षा में रहा। उसको पूर्ण छुटकारा १७४८ में मिला। मुरार राव घोडपडे ने त्रिचनापल्ली किले का कमान सम्हाला। उसके रक्षक सैन्यदल में पेशवा के

[1] महाराष्ट्र में ब्राह्मण साहूकार और पोतदार नायक की पदवी धारण करते हैं।

[2] तकाजा करना और ऋणी के घर के दरवाजे पर धरना रखना।

[3] वह कारावास में नहीं रखा गया किन्तु एक रक्षक दल उसके साथ २ रहता था।

पदाति भी थे। शाहू ने इनका व्यय उठाया। इसके अतिरिक्त, यह निश्चय हुआ कि अर्काट सूबे के कर में से बीस हजार रुपये वार्षिक बालाजी बाजी राव को दिया जायगा।

बाजी राव की मृत्यु हो जाने से मालवा का शासन अजीमुल्ला खाँ को प्रदान किया गया किन्तु यह नियुक्ति केवल नाममात्र की ही रही। अपना पद सम्हालते ही नए पेशवा ने उसके पूर्ववर्ती को दिए हुए विभिन्न वचनों के सम्बन्ध में दिल्ली याचिकाएँ भेजी। ये याचिकाएँ जयसिंह और निजामुलमुल्क के द्वारा भेजी गई थीं। बालाजी को नकद रुपये की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतः सम्राट् ने उसको पन्द्रह लाख रुपये बिना शर्त के उपहार रूप में दिए। तब पेशवा और चिमनाजी अप्पा के संयुक्त नाम पर करार के प्रस्ताव लिखे गए जिनमें उन्होंने मालवा का शासन पाने की प्रार्थना की और उन्होंने सम्राट् के प्रति अपनी व्यक्तिगत निष्ठा प्रकट करने; दूसरे मराठा अधिकारियों को नर्मदा पार करने से रोकने; सम्राट् सेवा में शरीररक्षक के रूप में एक अधिकारी के अधीन पाँच सौ अश्वारोही रखने; और जितना उपहार दिया जा चुका है उसके अतिरिक्त रुपये की माँग न करने का वचन दिया। दुर्जेय जमींदारों को यथाशक्ति दण्ड देने के लिए वे सेवा में चार हजार अश्वारोही भेजने को सहमत हुए और उन्होंने निष्ठा पूर्वक यह वचन दिया कि वे दान अथवा धार्मिक उद्देश्य से दी गई जागीर या माफी भूमि को उसी रूप में रहने देंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस याचिका पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। बालाजी का स्वभाव सहज रूप से मेल मिलाप का था वह चाहता था कि उसके पिता के साथ की गई सन्धि के अनुसार उसको अधिकार स्वरूप मालवा का शासन प्रदान किया जाए। इस दृष्टि से बालाजी ने निजामुलमुल्क से नर्मदा के पास भेंट की और उसके सहायतार्थ एक सैन्य दल भेजा। जब वह नासिरजङ्ग की अवज्ञा को दमन करने के लिए दक्खिन की ओर प्रयाण कर रहा था उसके चाचा चिमनाजी अप्पा की मृत्यु जनवरी के अन्त में १७४१ में हुई। यह बड़ी भारी क्षति थी। इस घटना के ग्यारह दिन पहिले खण्डोजी मानकर ने चिमनाजी के नियन्त्रण में रेवादण्डा[1] को अपने अधिकार में किया था। यह गोआ और दामण के बीच में अन्तिम पुर्तगाली स्थान है। एक यूरोपीय राष्ट्र के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने से मराठों में चिमनाजी का नाम जितना होना चाहिए था उससे अधिक हुआ। प्रत्यक्ष परिस्थितियों से प्रभावित होकर उसने एक गलत धारणा बना ली थी कि सेना की शक्ति पदाति और तोपों

१७४१ ई०

[1] चौल के दक्षिण में है।

में निहित हैं। इस समय उसका पुत्र सदाशिव चिमनाजी भाउ[1] दस वर्ष का था। सम्भवतः अपने पिता की इस पूर्वधारणा से तथा अन्य परिस्थितियों से प्रभावित होकर इसने बीस वर्ष बाद पानीपत के मैदान में सेना का अविवेकपूर्ण संचालन किया जिसका परिणाम अत्यन्त घातक हुआ।

अपने चाचा के मरने पर पेशवा उत्तर की ओर से लौट आया और लगभग एक वर्ष तक पूना और सातारा में नागरिक प्रबन्ध करने में लगा रहा। और राजा के प्रति प्रत्यक्ष रूप से पूर्णनिष्ठा प्रकट करता रहा। उसने शाहू से एक पट्टा प्राप्त किया जिसके अनुसार उसको पुर्तगालियों से छीना हुआ सम्पूर्ण प्रदेश तथा, गुजरात को छोड़ कर, नर्मदा के उत्तर में राजस्व एकत्र करने और देय उगाहने का अनन्य अधिकार प्रदान किया गया।

१७४२ ई०—वर्तमान स्थिति में इस एकाधिकार का बहुत महत्त्व था। बंगाल में अलीवर्दी खाँ का उदय और प्रगति, मुर्शीदकुली खाँ की पराजय और उसके दीवन मीर हबीब के आचरण का संक्षेप में उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने स्वामी की पराजय के तुरन्त बाद मीर हबीब ने भासकर पन्त को कटक सूबे में अभियान करने को निमन्त्रण दिया। उस समय रघुजी भोसले कार्णाटक में था और उसका दीवान भासकर राम पन्त बरार का शासन सम्हाले हुए था। किन्तु वह अपने स्वामी की अनुज्ञा प्राप्त करने की प्रतीक्षा करता ही रह गया। इसी बीच में अलीवर्दी खाँ ने इस सूबे को विजय कर लिया। मीर हबीब ने उसकी अधीनता स्वीकार की। किन्तु शीघ्र ही एक दूसरा अवसर प्राप्त होने पर भासकर पन्त ने अपने सैनिकदल को पूरब की ओर बढ़ाया। इन क्षेत्रों पर पेशवा भी अपना अधिकार जमाना चाहता था। पूर्वानुसार वह यह मान बैठा था कि राजा से उसे इन प्रदेशों पर अधिकार प्राप्त हैं। अतः उसने पूरब की ओर प्रयाण कर गढ़ा और मण्डला पर अधिकार किया। किन्तु उसको वर्षा ऋतु में नर्मदा तट पर पड़ाव डालने को विवश होना पड़ा। सम्भवतः वह इलाहाबाद में एक अभियान करने को सोच रहा था कि उसको अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए मालवा जाना पड़ा जिस पर दमाजी गायकवाड़ और बापूराव सदाशिव ने आक्रमण कर दिया था।

पूरब की ओर पेशवा की प्रगति रोकने के लिए रघुजी ने मालवा पर आक्रमण किया। मालवा में बालाजी के पहुँचने पर गुजरात की सेना पीछे हटी। बाजीराव आनन्द राव पवार से असन्तुष्ट था क्योंकि उसने त्रयम्बक राव दाभाडे

---

[1] भाउ का अर्थ चचेरा भाई है।

का साथ दिया था। बालाजी ने पवार को उसके प्रति अपनी निष्ठा अर्पण करने की अनुज्ञा दी और धार तथा पास पड़ोस के जनपदों पर उसके स्वामित्व की पुष्टि की। इस राजनीतिक चाल से पवार उसके पक्ष में हो गया और गुजरात की ओर से 'भावी आक्रमण' से सुरक्षा हुई। जब से पेशवा मण्डला पहुँचा था तब से राजा जयसिंह की मध्यस्थता से और निजामुल्मुल्क के सहारे से पेशवा और सम्राट् के बीच में समझौते की वार्ता चल रही थी जिसके फलस्वरूप पेशवा को शाही प्रदेश (मालवा, बुन्देलखण्ड, इलाहाबाद) की चौथ का वचन दिया गया और एक ऐसी भव्य खिलअत बालाजी को प्रदान की गई जैसी कि उसके पिता को कभी नहीं दी गई थी। ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि मुहम्मद शाह ने कभी इस व्यापक चौथ के उगाहने का पट्टा प्रदान किया। रकम और सुलभ देय चुकता करने के रूप थे। इस समझौते को लम्बित रखने में मालवा के शासन का जो वचन दिया गया था उसकी सनद प्राप्त करना पेशवा का, और समझौते को टालने और पेशवा और रघुजी भोसले के बीच मनमुटाव को पुष्ट करने का दिल्ली दरबार का उद्देश्य था। इस समझौते को लम्बित करने में दोनों का अलग २ उद्देश्य था। पेशवा मालवा के शासन की सनद प्राप्त करना चाहता था, और दिल्ली दरबार हीला-हवाला करना तथा पेशवा और रघुजी के मनमुटाव को दृढ़ करना चाहता था।

इस आशा से कि इस प्रदेश की सेना कटक के विद्रोह को दबाने के लिए चली गई होगी जो वहाँ अलवर्दी खाँ के नाती उस प्रान्त के सूबेदार[1] के अत्याचार और दुराचार से भड़क उठा था भासकर पन्त बिहार में घुस आया था और वह इसको अपने प्रथम अभियान का युद्धस्थल बनाना चाहता था। जैसा कि भासकर पन्त को आशा थी इस समय अलीवर्दी खाँ कटक के विद्रोह को दबाने में लगा था। इसमें उसको शीघ्रता से सफलता मिली। अप्रैल के महीने में वह मुर्शिदाबाद से प्रयाण कर चुका था जब उसको यह सूचना मिली कि मराठे रामगढ़ के पास की पहाड़ियों और जङ्गलों से निकल कर बिहार में प्रवेश कर गए हैं और दाईं ओर घूम कर पचेट जनपद पर टूट पड़े हैं और यथासामान्य लूट और अपकर्षण में लगे हुए हैं।

मराठा सेना में दस या बारह हजार सैनिक थे। किन्तु अफवाह यह उड़ी कि

---

[1] सिराजउद्दौला ने जिसका नाम ग्राण्ट डफ ने सिराजुद्दौला लिखा है १७५० में अपने चाचा अल्लाहवर्दी खाँ के विरुद्ध विद्रोह किया। किन्तु अल्लाहवर्दी खाँ ने उसको प्रशासन का भार सौंपा और १७५५-५६ में उसने राज्यारोहण किया और १७५७ के प्लासी युद्ध के बाद मुर्शिदाबाद में उसकी हत्या की गई।

वे लगभग अस्सी हज़ार हैं। अलीवर्दी खाँ के नेतृत्व में तीन हजार अश्वारोही और चार हजार पदाति थे और उसने उनका सामना करने का निश्चय किया किन्तु मराठों ने सफलता पूर्वक उसकी सेना को घेर लिया, और उसके सामान को लूट लिया जिससे वह बड़ी बिपत्ति में पड़ गया। उसके बहुत से आदमी मार डाले गए या भाग गए। मराठों की कठोर माँगों को पूरा करने की अपेक्षा उसने शेष तीन हजार सैनिकों के साथ मर जाना श्रेयष्कर समझा। कई दिनों तक बुरी तरह परेशान होने के बाद वह लड़ता हुआ बाहर निकल गया और कटवा पहुँचा। अपने आरम्भिक आक्रमणों में मराठों ने मीर हबीब को जो अलीवर्दी खाँ की सेना में था बन्दी बना लिया। उसने मराठों का साथ दिया और भासकरपन्त का विश्वास प्राप्त किया। भासकर पन्त वर्षाऋतु में लौट जाना चाहता था। मीर हबीब ने इसका प्रबल विरोध किया और उससे केवल एक टुकड़ी लेकर मुर्शिदाबाद को प्रस्थान किया। वहाँ जा कर उसने अपने भाई को छुड़ाया और जगत सेठ आलम चन्द को कोठी से साढ़े तीन करोड़ रुपये की भारी रकम लूट कर भासकर पन्त से आ मिला और उसको यह समझाने में सफल हुआ कि बङ्गाल ऐसे धनी प्रदेश को न लूट कर चला जाना मूर्खता है। अतः वह घूम पड़ा और मीर हबीब की सहायता से युक्ति द्वारा हुगली नगर पर अधिकार कर लिया। कटवा से लेकर मिदनापुर के पड़ोस तक के अधिकांश स्थान उसके हाथ में आ गए। किन्तु हुगली में बाढ़ आ जाने के कारण मराठे मुर्शिदाबाद जनपद में प्रवेश न कर सके। ऐसी परिस्थिति में नवाब से बकाया कर माँग करने के लिए शाही दरबार का एक अधिकारी बङ्गाल सूबा की सीमा पर पहुँचा। अलीवर्दी खाँ ने उससे अपनी परिस्थिति बताई और यह निवेदन किया कि जब तक वह मराठों को खदेड़ न देगा तब तक उसके लिए इन न्यायपूर्ण माँगों को पूर करना असम्भव है। साथ ही उसने अधिकबलन के लिए प्रार्थना की। दूसरी ओर उसने पेशवा से भी इसी प्रकार की सहायता माँगी। उपादान स्वरूप उसने एक बड़ी रकम पेशवा को दी जिससे कि वह बरार में रघुजी भोसले के जनपदों पर आक्रमण करे। किन्तु अवध के नवाब सफदर जङ्ग की आज्ञा या मौन अनुमति से वह सार्थ रोक लिया गया।

संकट निवारणार्थ जितनी भी सहायता वह पा सकता था उसके लिए उसने प्रयास किया किन्तु अलीवर्दी खाँ ने बुद्धिमत्ता पूर्वक अपने निजी प्रयासों पर मुख्य भरोसा रखा। जितने भी आदमी वह इकट्ठा कर सकता था एकत्र किया। कटवा में भासकर पन्त के शिविर पर आक्रमण करने की उसने जोरदार तैयारियाँ कीं जिससे कि वह ऋतु साफ होते ही उन पर आक्रमण करे। नदियों में बाढ़ कम होने के पहले ही उसने नावों का एक पुल बनाया जिसको उसने रात में पहले हुगली के और बाद को अदजी के इस पार से उस पार तक लगा दिया और इस तरह वह

अदजी के दूसरे तट पर पहुँचा। बीच में नावों का बन्धन कहीं से टूट जाने के कारण पन्द्रह सौ आदमी अदजी नदी में डूब गए और उनका पता न चला। इस अनपेक्षित आक्रमण से घबड़ा कर मराठे पूरब की ओर भागे और जाकर बिहार की पहाड़ियों और जंगलों में छिपे। वहाँ से वे पुनः मिदनापुर जनपद में घुसे। शीघ्र ही अलीवर्दी खाँ को उनके आने का पता चल गया और उसने अपने अत्यन्त तीव्रगामी सैनिकों को लेकर उनका पीछा किया। आकस्मिक मुठभेड़ को छोड़कर वे भागते गए। बलिसोर[1] में एक अनिर्णीत युद्ध हुआ जिसके परिणामस्वरूप वे सम्पूर्ण विश्वास खो कर बंगाल से भागे और उड़ीसा होते हुए बरार पहुँचे। अपने भगोड़े दीवान के आने के कुछ ही दिन पहले रघुजी भोसले अपनी सेना लेकर कार्णाटक से लौटा था। बंगाल में अपने दावों के अनुपोषण के लिए उसने बंगाल का वही रास्ता थामा जिस रास्ते से भासकर पन्त ने वहाँ प्रवेश किया था।

बंगाल पर भासकर पन्त के आक्रमण की सूचना पाकर सम्राट् ने अवध के नवाब सफदरजंग को भासकर पन्त को खदेड़ने की आज्ञा दी तथा बालाजी बाजीराव से सहायता की याचना की। पेशवा को प्रलोभन देने के लिए सम्राट् ने अजीमाबाद[2] (पटना) की बकाया चौथ के लिए उसके पास अलीवर्दी खाँ के नाम एक अधिन्यास भेजा तथा मालवा के शासन में उसकी पुष्टि करने का आश्वासन दिया।

पेशवा ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया। उसने मालवा से प्रस्थान किया और इलाहाबाद सूबे से होता हुआ सीधे बोगलीपुर आया। खड़ी फसल के समीप की सड़कों को बचाते हुए वह मुर्शिदाबाद पहुँचा, क्योंकि वहाँ की जनता मराठी सेना से अत्यन्त भयभीत थी। शत्रु रूप में रघुजी भोसले एक प्रबल सेना लेकर पूरब की ओर से बढ़ रहा था। इस परिस्थिति का लाभ उठा कर पेशवा ने मैदान में उतरने के पूर्व हिसाब निबटारा करने के लिए अलीवर्दी खाँ का गला दबाया। अलीवर्दी खाँ ने हिसाब चुकता करने का वचन दिया। इस समय तक रघुजी कटवा और बर्दवान के बीच में पहुँच चुका था। किन्तु समझौते की सूचना पाकर वह पहाड़ियों की ओर लौट पड़ा। अलीवर्दी खाँ ने तुरन्त ही उसका पीछा किया। किन्तु बालाजी ने समझौते को पूरा करने के उद्देश्य से और इस धारणा से कि नवाब मराठी सेना का पीछा नहीं कर सकता एक दूसरे मार्ग

१७४३ ई०

---

[1] वलीश्वर।

[2] औरंगजेब ने अपने पौत्र अजीम-उश-शान के नाम पर प्राचीन पाटलिपुत्र या कुसुमपुर का नाम अजीमाबाद रखा। किन्तु अब इसका नाम पटना है।

से प्रयाण किया और शीघ्र ही बङ्गाल सेना के आगे निकल कर कुछेक दिनों में रघुजी की सेना को जा घेरा और उस पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। भास्कर पन्त के अधीन एक रिजर्व दल था। वह अविलम्ब उड़ीसा के रास्ते से पीछे हटा। किन्तु विजय प्राप्त करने के बाद बालाजी राव मालवा लौटा जिसका शासन दिए जाने का उसको बहुत दिनों से वचन दिया गया था। पिछले अभियान में पेशवा ने जो प्रयास किया था उसके कारण समझौते को टालने का मुहम्मद शाह के पास कोई बहाना न रहा। किन्तु शाही नाम की साख के रक्षार्थ पेशवा को सम्राट् के पुत्र राजकुमार अहमद का नायब प्रतिनियुक्त किया गया। जयसिंह और निजामुल्मुल्क के सुझाव पर जिनके द्वारा यह समझौता किया गया था ऐसा किया गया।[1]

इस समझौते के शेष भाग तथा इसके पूर्व किए गए समझौते में जो बालाजी और उसके चाचा चिमनाजी के संयुक्त नाम में किया गया था नाममात्र का अन्तर है। चार हजार अश्वारोहियों के स्थान पर बालाजी ने बारह हजार अश्वारोहियों को तैयार रखने का वचन दिया जिनमें से आठ हजार अतिरिक्त अश्वारोहियों का व्ययभार सम्राट् पर था।

बालाजी राव के आरोहण के समय से उसके और जयसिंह के बीच में अत्यन्त मैत्रीपूर्ण सम्पर्क था। अनेक लिखे हुए ऐसे समझौते प्राप्त हैं जिनमें संश्रय और आलम्ब के पारस्परिक आश्वासन दिए गए हैं। मुहम्मद शाह के साथ की हुई सन्धि के पालन की प्रत्याभूति जयसिंह था। इस सन्धि में शाही गौरव के आरक्षण के लिए, यह ध्यान देने योग्य बात है, मल्हार राव होल्कर, रानोजी सिंधिया और पीलाजी जाधव प्रतिभूति हैं। उन्होंने विधिपूर्वक यह घोषित किया है कि यदि पेशवा अपने कर्तव्य पालन से पीछे हटेगा तो वे उसकी सेवा छोड़ देंगे। जिनका हित समझौते को भङ्ग करने में था उन लोगों से समझौते के पालन करने की प्रतिज्ञा करना निस्सार है। इन सैनिकों के महत्त्व का पता चलता है बल्कि यह भी पता चलता है कि सम्राट् कितनी अवमानता को प्राप्त हो गया था। सम्भव है इस सुरक्षा की

---

[1] बाजी राव की नियुक्ति पर निम्नलिखित आशय का एक फर्मान उसको दिया गया : 'आपको मालवा में राजकुमार के नायब का पद तथा उस पद से सम्बद्ध आय प्रदान की गई है। आप वहाँ ऐसा प्रबन्ध कीजिए कि शासन को कर देने वाली प्रजा की सुरक्षा तथा उन पर अनुग्रह हो और असन्तुष्ट और दुष्ट प्रवृत्ति के लोगों को दण्ड मिले। आप मद्य और मदिरा का सेवन रोकें और सामान्य रूप से न्याय करें जिससे प्रबल निर्बल को सता न सके। किसी प्रकार की हिंसा का सहन न किया जाय।'

योजना में कोई राजनीतिक चाल रही हो क्योंकि निर्बल शासकों के पास दूर की कौड़ियों की कमी नहीं रहती। अपने शत्रुओं में इस प्रकार की भेद-नीति उन्होंने भले ही बरती हो किन्तु शाही दरबार ने उनकी आपेक्षिक स्थितियों पर ध्यान नहीं दिया और न यही विचार किया कि जब तक मुगल सम्राज्य का पूर्णतया विनाश नहीं हो जाता मराठों में सम्मिलन होने की सम्भावना बनी रहेगी।

अपना सम्मान अर्पण करने के लिए और अपना राजस्व लेखा उपस्थित करने के लिए पेशवा सातारा लौटा। राजा के सैनिकों के एक दल के सेनानायक होने के नाते पेशवा को इन लेखों को उपस्थित करना होता था जिनमें रसीदों, परिव्ययों और शेष का उल्लेख रहता था। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि सातारा के राजा के पूर्ण शून्य हो जाने पर भी पेशवा इसी प्रकार अपने लेखों को अन्त तक पेश करता रहा।

१७४४ ई०—इस समय अन्य महत्त्वपूर्ण मामलों को निबटाने के लिए बालाजी की उपस्थिति आवश्यक थी। अपनी पराजय के बाद रघुजी भोसले ने यह आश्वासन देने के लिए पेशवा के पास अपने वकीलों को भेजा था कि मेलमिलाप करने की उसकी हार्दिक इच्छा है और अब उसको पूर्णतया विश्वास हो गया है कि बाजी राव की आयोजना ही उसके अपने हित के लिए तथा मराठा राष्ट्र के वास्तविक कल्याण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। प्रत्यक्ष सच्चाई से वह यही बात बताता रहा। किन्तु सातारा की ओर उसके तेजी से प्रयाण करने से विशेषरूप से दमाजी गायकवाड़ के आसन्न आगमन से पेशवा चौकन्ना हुआ। बीमारी के कारण प्रतिनिधि[1] निर्बल हो गया था किन्तु उसका मुतालिक यमाजी शिवदेव सक्रिय, योग्य और पेशवा के आधिपत्य का विरोधी था और यद्यपि रघुजी के षड्यन्त्र में नहीं था फिर भी दाभाडे के

---

[1] प्रतिनिधि देशस्थ ब्राह्मण था और पेशवा कोंकणस्थ (चितपावन ब्राह्मण)। शाहू के मरने पर जिस समय से बालाजी बाजीराव ने प्रतिनिधि दादोबा उपनाम जगजीवन परशुराम को कारावास में रखा, दक्खिन में उसी समय से देशस्थ ब्राह्मणों के राजनीतिक प्रभाव का अन्त हुआ। देशस्थ ब्राह्मण देश या सह्याद्रि के पूर्वी ढालों और पार्श्व पर रहते थे। यह विशाल प्रदेश सह्याद्रि से वैनगङ्गा नदी तक फैला हुआ है। अनेक मराठी कवि देशस्थ ब्राह्मण थे। देशस्थ ब्राह्मण लौकिक व्यवसाय करते हैं और अपने पद और अपने परिवारों के पूर्व धंधों के अनुसार अपने नामों में पन्त, राव, देसाई, देशपाण्डे, देशमुख, कुलकर्णी और पाटेल उपाधि लगाते हैं और कोंकणस्थ ब्राह्मणों की अपेक्षा ये काले वर्ण के होते है। विल्सन : इण्डियन कास्ट, १८७७, द्वितीय भाग, पृ० १८-१९।

दल से उसका घनिष्ठ सम्पर्क था। ऐसी स्थिति में बालाजी बाजी राव को इन दो बातों में से एक चुनना था, रघुजी भोसले के लिए बङ्गाल छोड़ना या मराठा सरदारों से युद्ध। बात स्पष्ट थी, उसने पहला विकल्प चुना। सम्राट् से जो समझौता हुआ था उसमें महानदी और नर्मदा के उत्तर का प्रदेश सम्मिलित था। अतः उसने यह दम्भ किया कि वह कर उगाहने का अपना अधिकार रघुजी को दे रहा है। एक गुप्त समझौता जिसमें राजा मध्यस्थ रखा गया अन्त में किया गया।

इस समझौते का उद्देश्य जितना एक दूसरे का हस्तक्षेप बचाना था, उतना संश्रय नहीं। इस मामले में राजा का अधिकार दोनों के लिए सुकर था। पेशवा को एक सनद दी गई जिसके अनुसार उसको उसकी निम्न लिखित मोकासा प्रदान की गई : १. उसके पिता या पितामह द्वारा प्राप्त की हुई या उसको प्रदान की गई समस्त जागीरें। २. कोंकण और मालवा के शासन। ३. इलाहाबाद, आगरा और अजमेर के कर या राजस्व के भाग। ४. पटना जनपद में तीन तालुके; अर्काट सूबे से बीस हजार रुपये और रघुजी के जनपदों के कुछ अलगवाँ गाँव। दूसरी ओर यह निश्चय किया गया था कि लखनऊ, पटना और लोअर बङ्गाल का जिसमें बिहार भी सम्मिलित था राजस्व और देय रघुजी भोसले संग्रह करेंगे। बरार से कटक तक के पूरे प्रदेश का कर उगाहने का एकाधिकार भी रघुजी भोसले को सौंपा गया।

यह निश्चय किया गया कि दमाजी गायकवाड़ ने जो देय मालवा में उगाहा है उसका हिसाब वह पेशवा को समझाने को विवश किया जाय। किन्तु शासन के अध्यक्ष का जो बकाया दाभाडे के नाम था उसकी बात इस समय नहीं उठाई गई। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई समझौता नहीं किया गया और गुजरात में उसकी उपस्थिति अत्यावश्यक होने पर भी दमाजी कुछ समय तक दक्खिन में रहा। हिन्दुस्तान (उत्तरी भारत) में पेशवा की दक्षिणी और पूर्वी सीमाएँ नर्मदा, सोन, और गङ्गा से सुस्पष्ट थीं। किन्तु इस अवसर पर प्रदान की गई सनद से उसको यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह अपने विजयों को उत्तर में जितनी दूर तक ले जा सके ले जाय।

मराठों के इन घरेलू प्रबन्धों में निजामुल्मुल्क ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि उसने अपने पुत्र नासिरजङ्ग के अवेदित विद्रोह के कारण दिल्ली से प्रस्थान किया। निजामुल्मुल्क ने १७४१ के आरम्भ में दक्खिन लौटने पर अपने पुत्र को बिना विरोध किए हुए समर्पण करने को प्रलोभित किया। अन्ततः समझौता करने के लिए नासिरजङ्ग ने दूत भेजे। इससे उसके पक्षवाले बहुत भयभीत हुए और उनमें से अधिकांश व्यक्तियों ने जितनी अच्छी शर्तें वे बना सकते थे उतनी बनाने का प्रयत्न किया। शनैः २ निजामुल्मुल्क ने उनको अपनी तरफ

मिला लिया। अपने पुत्र के प्रति वह सुन्दर शब्द प्रयोग करता रहा। उदारता के वशीभूत होकर नासिरजङ्ग ने अपने पूरे तोपखाने को लौटा दिया। ऐसी परिस्थिति में निजामुलमुल्क को उदारतापूर्वक क्षमा कर देना चाहिए था किन्तु निजामुल्मुल्क उसका पूर्णतया मानमर्दन करना चाहता था। नासिरजङ्ग को पश्चात्ताप हुआ। फकीर का वेश धारण कर वह दौलताबाद के निकट रोजू को चला गया किन्तु उसका पिता वही कड़ाई का व्यवहार करता रहा। इससे इस युवा का ऐसा मन फटा कि फतहयाब खाँ के सुझाव पर वह फिर से विद्रोह करने को तैयार हुआ।

यथारीति वर्षा भर के लिए निजामुल्मुल्क ने अपने सैनिकों का डेरा डाला। एक भाग औरङ्गाबाद में ठहराया और शेष को पड़ोस के विभिन्न नगरों में। फतहयाब खाँ ने नासिरजङ्ग को यह सुझाव दिया कि पहले उन्हें किसी दृढ़ किले पर अधिकार करना चाहिए। उन्होंने मुल्हेर किले पर आकस्मिक आक्रमण करने का निश्चय किया जिसका किलेदार नासिरजङ्ग का साला मतवस्सिल खाँ था। इस कार्रवाई में फतहयाब खाँ को सफलता मिली। नासिरजङ्ग तुरन्त आकर उससे सम्मिलित हुआ। निजामुल्मुल्क को ऐसी आशा न थी। अतः उसने कोई तैयारी न की थी। उसके फुरतीपन की सूचना पाकर फतहयाब खाँ ने उस पर औरङ्गाबाद में आक्रमण करने का प्रस्ताव रखा। नासिरजङ्ग ने सात हजार अश्वारोहियों को लेकर, इसके पहले कि इसकी सूचना वहाँ पहुँचे, मुल्हेर से प्रस्थान किया और यदि वह बढ़ता जाता तो सम्भवतः वह अपने पिता को बन्दी बनाने में सफल होता। किन्तु जो कुछ वह कर रहा था उससे उसको दुःख हुआ और वह एक विख्यात सन्त के मन्दिर में दिन भर प्रार्थना करता रहा। निजामुल्मुलक प्रत्यक्षरूप में शान्त, किन्तु बहुत ही भयभीत था और उसने अपनी टुकड़ियों को एकत्र होने की आज्ञा प्रसारित की। तोप खींचने वाले उसके सब भैंसे दूर चर रहे थे और नाम चार के आदमी तैयार थे। किन्तु उसने तुरन्त ही अपना डेरा डाला और शहर के बाहर निकला। दूसरे दिन २३ जुलाई को प्रातः होने के पूर्व उसके पास एक अच्छी खासी सुसज्जित फौज हो गई और वह शान्ति-पूर्वक अपने लड़के की पहुँच की प्रतीक्षा करता रहा। उसका पुत्र अपने अनुयायियों के साथ आगे बढ़ा किन्तु पीछे खदेड़ दिया गया। यह देख कर कि उसके सैनिकों के पैर उखड़ गए हैं नासिरजङ्ग ने बड़ी तेजी से अपने पिता के झण्डे पर आक्रमण किया। उसके हाथी की ओर बढ़कर उसके तीन बहुत ही वीर सैनिकों को एक के बाद एक को मार डाला अपने हाथी के महावत के मार जाने पर नासिरजङ्ग ने उछल कर उसकी जगह ग्रहण की। उसी समय उसका साला मतवस्सिल खाँ ने आगे बढ़ कर उसके ऊपर एक बाण ताना जो उसको अवश्य ही भेद दिया होता यदि उसका पुत्र हियादत मुहिदीन खाँ जो उसी हाथी पर बैठा था उसका हाथ न पकड़ लेता।

उसी समय एक अनुभवी अधिकारी सैयद लशकर खाँ जो नासिर जङ्ग को तथा उसके गर्व और उद्धरता को जानता था अपने हाथी को खेद कर उसकी बगल में खड़ा किया और उसका अभिवादन कर आदरपूर्वक उसको अपने हाथी पर आने की प्रार्थना की। इस विनम्रता पूर्ण कार्य से अभिभूत होकर नासिरजङ्ग उस पर बैठ गया और इस तरह से बन्दी बना कर औरङ्गाबाद ले जाया गया। शाहनवाज खाँ ने सर लशकर खाँ के साथ अन्त तक नासिरजङ्ग का साथ दिया और वह अवश्य ही काट डाला गया होता यदि निजामुल्मुल्क की सेना में से उसका एक मित्र नासिरजङ्ग के पकड़े जाने के बाद उसके भाग जाने के लिए एक रास्ता न कर देता और उसको भाग जाने के लिए न कहता। उसने इस सलाह को माना। उसको विवश होकर सात साल तक छिपे रहना पड़ा। इस बीच में उसने मआसिरुल-उमरा[1] नामक मूल्यवान् जीवन चरित्र लिखा।

अपने पुत्र की सुरक्षा से निजामुलमुल्क को अत्यन्त संतुष्टि हुई। किन्तु उसने उसके अनेक अनुयायियों को कारावास में डाल दिया और नासिरजङ्ग के विद्रोह के प्रति अपनी भावना को प्रकट करने के लिए उसने उसको थोड़े समय के लिए नन्देरी के समीप कान्धार किले में बन्दी रखा। किन्तु दक्षिण की ओर एक अभियान पर प्रस्थान करने के पहले उसको स्वतन्त्र कर दिया। उसने ऐसा क्यों किया आगे चल कर हम स्पष्ट करेंगे।

जब मराठे बङ्गाल के मामलों में फँसे थे, निजामुल्मुल्क ने कार्णाटक[2] की ओर ध्यान दिया और दक्खिन से वह बहुत दिनों तक अनुपस्थित रहा। इसी कारण उसने मालवा के शासन के प्रति बालाजी राव के दावों की सहायता करने में सामनीति बरती।

अर्काट के नबाब सफदर अली की १७४२ में मुर्तजा खाँ द्वारा की गई हत्या से और कृष्णा के दक्षिण के मुगल प्रदेशों में व्यापक गड़बड़ी होने से, निजामुल्मुल्क को कार्णाटक में शान्ति पुनर्स्थापन करने और अपनी सत्ता जमाने के निमित्त हस्तक्षेप का सुयोग प्राप्त हुआ। अतः उसने जनवरी १७४३ में एक बहुत बड़ी सेना लेकर

---

[1] सरदेसाई के अनुसार शाह नवाज खाँ पाँच वर्ष तक छिपा रहा। इस काल में उसने मआसिरुल-उमरा नामक पुस्तक लिखी जिसमें मुगलसाम्राज्य के सामन्तों की जीवनियाँ हैं। बाद को वह अपने पूर्वपद पर पुनः नियुक्त किया गया।—मराठों का नवीन इतिहास, भाग २, पृ० २५७।

[2] कार्णाटक गोदावरी से कावेरी तक फैला हुआ है।

हैदराबाद से प्रस्थान किया। अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में उसका एक वर्ष से अधिक समय लगा। त्रिचनापल्ली पर अधिकार करना एक महत्वपूर्ण बात थी। मराठे भी इस पर दाँत लगाए थे। अतः इसमें कुछ राजनीतिक सूझबूझ की आवश्यकता थी। सन्ताजी की हत्या के बाद से घोडपडे कुटुम्ब की कभी भी अपने देशवासियों से दृढ़ एकता न हुई। यह सत्य है कि वे मराठों की ओर रहना पसन्द करते किन्तु अधिक अच्छे लाभ और लूट का अवसर मिलने से वे मुगलों या यूरोपीयनों की ओर झुक जाते थे। निजामुल्मुल्क ने मुरार राव को गूटी के सरदार के रूप में मान्यता दी और अगस्त १७४३ में अपनी पूरी सेना के साथ कार्णाटक छोड़ दिया।

सातारा में १७४४ के आरम्भ में मराठा सेनाओं के एकत्र होने से सम्भवतः निजामुल्मुल्क को बड़ी चिन्ता हुई। कार्णाटक से उसने शीघ्र ही हैदराबाद को प्रस्थान किया। उसने अनवरउद्दीन खाँ को कार्णाटक पायान-घाट के शासन का प्रभार सौंपा और अपने पौत्र हिदायत मुहिदीन खाँ को जो मुजफ्फर जङ्ग की उपाधि से अधिक विख्यात है कार्णाटक-बालाघाट (मुख्य कार्णाटक) में नियुक्त किया। उसने हिदायत मुहिदीन खाँ का प्रधान कार्यालय बीजापुर में रखा और उसको जागीर में अदोनी जनपद प्रदान किया। अनवरउद्दीन का प्रधान कार्यालय प्राचीन राजधानी अर्काट में बना रहा जैसा दाउद खाँ और नवायत[1] नवाबों के समय में था। यह देख कर कि उसे मराठों की ओर से कोई भय नहीं है, उसने आन्तरिक शासनकार्यों की ओर ध्यान दिया और कई विद्रोही किलेदारों का दमन किया।

मराठे अपनी ही योजनाओं में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने निजाम की अनुपस्थिति का लाभ उठाने की ओर ध्यान नहीं दिया। बङ्गाल में रघुजी भोसले अपने उखड़े हुए पैरों को जमाने में लगा हुआ था और पेशवा रघुजी के विरुद्ध कार्यवाही न करने का बहाना करने के लिए दक्खिन में बना रहा। वर्षाऋतु में

[1] साआदतुल्ला खाँ, दोस्तअली और सफदरअली दक्खिन में नवायत नवाबों के नाम से विख्यात हैं। नवायत मुसलमानों की एक पृथक जाति है। ऐसा कहा जाता है कि अरब से खदेड़े जाने पर आठवीं शती से उन्होंने भारत के पश्चिमी तट पर शरण ली। बाम्बे गजेटियर के अनुसार इस शब्द का अर्थ है नाविक या जहाज पर काम करने वाले। दसवीं और तेरहवीं शती में अरब और फारस देश के शरणार्थी और आप्रवासी इनमें आकर मिल गए। बी० जी० : 'गुजरात मुसलमान्स', पृ० १४-१५।

रघुजी बरार लौट आया। किन्तु जैसे ही ऋतु आरम्भ हुई भासकर पन्त, अली कराबल तथा कई विख्यात अधिकारी बीस हजार अश्वारोहियों के साथ उड़ीसा के रास्ते से बङ्गाल में भेजे गए। अलीवर्दी खाँ ने अपने सैनिकों को तैयार किया। किन्तु सन्धि करने के बहाने भासकर पन्त से समझौते की वार्ता चलाई और उसको तथा उसके प्रमुख अधिकारियों में से बीस को जियाफत या भोज में निमन्त्रित कर अत्यन्त विश्वासघात पूर्वक हत्या कर दी। बाइस मुख्य अधिकारियों में से केवल एक सरदार रघुजी गायकवाड़ जिस पर शिविर का प्रभार था इस कपटपूर्ण संहार से बच कर भागा। जिस रास्ते से वे आए थे उसी रास्ते वह सेना को बरार लौटा ले गया किन्तु क्रोधित किसानों ने अनेक भटकैया मराठों को काट डाला।

अभियानों को आरम्भ करने का एक अवसर शीघ्र ही प्राप्त हुआ। अलीवर्दी खाँ के शासन के विरुद्ध अफगानों ने जो उसकी सेवा में थे एक विद्रोह किया। अतः वह एक हिन्दू राज्यपाल के प्रभार में उड़ीसा को कुछ अंश तक अरक्षित छोड़ने को विवश हुआ। कुछ गोसाईयों से जिनको उसने गुप्तचर बना रखा था प्रांत की स्थिति की सूचना पाकर रघुजी भोसले उड़ीसा में घुस गया और कई जनपदों पर अधिकार कर, तीन करोड़ रुपये शेष जनपदों पर अधिकार न करने और देश से चले जाने का मूल्य माँगा। अलीवर्दी खाँ विद्रोह के दमन करने के पूर्व तक उसका मन बहलाता रहा। इसके बाद उसने रघुजी के पास एक दर्पपूर्ण सन्देश भेजा जिससे समझौते की सब वार्ता का अन्त हुआ। वर्षा ऋतु के पश्चात् युद्ध कार्यवाहियाँ आरम्भ हुईं किन्तु कटवा में मराठों की आंशिक पराजय के बाद कुछ समय के लिए रुक गईं। गोण्डवाना के देवगढ़ राज्य में उत्तराधिकार के झगड़े के कारण रघुजी को अपने प्रदेश को लौटना पड़ा। वहाँ के राजा को औरङ्गजेब ने मुसलमान बना लिया था। उसके पुत्रों में झगड़ा हुआ। उनमें से वलीशाह नामक एक लड़के ने अपने दोनों भाईयों अकबरशाह और बुरहानशाह को कारावास में डाल दिया। अन्य चन्दा के राजा नीलकण्ठ शाह से जिसने अपना धर्म छोड़ दिया था सहायता पाकर वलीशाह ने मराठों को या तो चौथ या सरदेशमुखी देना बन्द कर दिया। अकबरशाह निजाम से सहायता प्राप्त करने का इच्छुक था किन्तु बुरहानशाह ने मराठों से सहायता माँगी।

वलीशाह और नीलकण्ठशाह के विद्रोह से उनके राज्य छिन गए। देवगढ़ और चाँदा दोनों पर रघुजी ने कब्जा किया। किन्तु वलीशाह के भाई, बुरहनशाह को उसके निर्वाह के लिए रतनपुर सौंपा। उसके वंशज अब भी नागपुर दरबार में हैं और

इसके एक अंश का भोग कर रहे हैं। अकबर शाह निजाम शासन में पेंशन भोगी होकर मरा।

१७४५ ई०—अफगान विद्रोह होने के समय बङ्गाल में रघुजी के प्रवेश करने के शीघ्र ही बाद बालाजी बाजीराव भिलसा पहुँचा जो मालवा में है। यहाँ से उसने सम्राट् के पास पत्र भेजे जो अटूट राज्यनिष्ठा के आश्वासनों से भरे थे और जिसमें सम्राट् के समक्ष उपस्थित होकर अपना सम्मान अर्पण न करने के अपराध की सफाई थी। रघुजी को न खदेड़ने में अलवर्दी खाँ ने जो निष्क्रियता दिखाई उस पर उसने आश्चर्य प्रकट किया। इसके उत्तर में सम्राट् ने बालाजी पर यह अभियोग लगाया कि बालाजी ने पूर्व योजना के फलस्वरूप रघुजी के चले जाने पर घाटों के रास्तों को नहीं रोका। किन्तु रघुजी के साथ हुए समझौते के कारण किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता था, अतः पेशवा ने इस विवाद को टाला। वार्षिक कर उगाही के बाद दक्खिन में कार्य होने के बहाने से वह शीघ्रता से पूना लौटा।

१७४६ ई०—पेशवा के पुराने ऋणदाता बापूजी नायक बारामतीकर के थानों (रक्षक-सैनिकों) को खदेड़ देने वाले कुछ देशमुखों को दण्डित करने के लिए, उसने १७४६ में सदाशिव चिमनाजी भाउ के साथ सखाराम बापू[1] को जो माहादजी पन्त पुरन्दरे का कारकुन था कार्णाटक में एक अभियान पर भेजा। रघुजी भोसले की कृपा से राजा से उसने कृष्णा और तुङ्गभद्रा के बीच के प्रदेश की चौथ और सरदेशमुखी सात लाख रुपये वार्षिक ठीके में प्राप्त की थी। किन्तु वहाँ के विरोध और सैनिकों के रखने के भारी खर्चे के कारण कुछ एक वर्षों में वह विनष्ट हुआ। वर्तमान अभियान के खर्चे से जिसको देने के लिए वह विवश हुआ उसकी उद्विग्नता और भी बढ़ी किन्तु फिर भी वह जैसा कि उसको सुझाव दिया गया था इस ठीके को भाउ के पक्ष में छोड़ने को वह सहमत न हुआ। सदाशिव चिमनाजी ने तुङ्गभद्रा तक योगदान उगाहा और भादरबेण्डा किले को अधिकार में लिया जिसपर मराठों का बहुत दिनों से दावा था। इस अभियान से सदाशिव चिमनाजी के लौटने पर राजा ने उसको वही पद प्रदान

---

[1] सखाराम भगवन्त बोकिल, हेवरा का कुलकर्णी और पन्ताजी गोपीनाथ का वंशज था जिसने विश्वासघातपूर्वक अफजल खाँ को शिवाजी के हाथों में सौंपा था। प्रथम बार जिस समय ब्रिटिश शासन ने पूना दरबार में सक्रिय भाग लिया, उस समय वह प्रधान मन्त्री था। वारेन हेस्टिंग्स ने १७७५ में उसको लिखा कि उसने उसकी बुद्धि एवं योग्यता की सर्वत्र प्रशंसा सुनी है और यदि वह अपने में विश्वास कर इसमें रुचि लेगा तो कार्य अवश्य ही बन जायगा।—फारेस्ट सेलेक्शंस, मराठा सिरीज, पृष्ठ २४६

किया जो उसके पिता भोग चुके थे।[1] अपने चचेरे भाई पेशवा से अधिक महत्त्वाकांक्षी और साहसी होने के कारण उसने पर्याप्त शक्ति संचित कर ली। उसने वासुदेव जोशी और रघुनाथ हरि को अपना कारकुन चुना। ये दोनों योग्य व्यक्ति कान्होंजी अंग्रिया के अधीन प्रशिक्षित हुए थे।

१७४७ ई०

स्वयं पेशवा ने बुन्देलखण्ड के राजाओं से एक नवीन तथा अधिक विशिष्ट समझौता किया जिसके अनुसार एक तिहाई प्रदेश जिसका साढ़े सोलह लाख रुपया[2] आंका गया बालाजी बाजी राव को प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त पन्ना के हीरे की खानों के लाभों में से इसी प्रकार का एक हिस्सा उसे दिया गया। रैहली जनपद पूर्णरूप से पहले ही पिछले पेशवा को दिया जा चुका था।

अपेक्षाकृत शान्ति की इस अवधि में दक्खिन में पेशवा ने कृषि को प्रोत्साहन और ग्रामीणों और अनाज के व्यापारियों को रक्षा प्रदान की। चारों ओर उन्नति दृष्टिगोचर हुई। किन्तु इसी समय के लगभग उत्तरी भारत, दक्खिन और कार्णाटक में ऐसी घटनाएँ घटीं जो भारत के प्रत्येक भाग में नई आपत्तियों और महान् क्रान्तियों की पूर्वगामी थीं।

उत्तरी भारत में १७४७-४८ का वर्ष स्मरणीय है क्योंकि इस काल में अहमदशाह अब्दाली का प्रथम आक्रमण हुआ था। वह पठानों का राजा था जो भारत में दुर्रानी, अब्दाली और गिल्ज्याँ अभिधानों से ख्यात हैं। उनका वर्तमान स्वीकृत शासक अहमदशाह अब्दाली नामक एक अफगानी जन-जाति के मुखिया का पुत्र था और उस समय हिरात प्रदेश में रहता था जब इस पर नादिरशाह ने अधिकार किया था। बन्दी अवस्था से अहमद नादिर का सैनिक अनुयायी हुआ और शनैः २ ऊँचे पद को प्राप्त किया। नादिरशाह की हत्या होने पर अहमदशाह ने अपनी पूरी जन-जाति के साथ जो शिविर में थी ईरानी सेना त्याग दिया और हिरात आकर उस पर कब्जा कर लिया। सम्पूर्ण अफगान राष्ट्र ने शीघ्र ही उसको अपना शासक स्वीकार किया और वह नादिर शाह के राज्य के पूर्वी आधे भाग का स्वामी हुआ।

अपने बड़े भाई की प्रतिकूलता में वजीर के एक भतीजे कमरुद्दीन खाँ ने मुलतान और लाहौर के शासन का प्रभार ग्रहण किया। अदिनाबेग खाँ नामक एक विश्वसघाती मुगल ने उदीयमान अहमद शाह अब्दाली के साथ अपने भाग को एक करने को उसको सम्मति दी। किन्तु जैसे ही उसने इस सम्मति को कार्यान्वित करना

---

[1] पेशवा के अधीन सेना का द्वितीय संचालक।

[2] रुपये १६,६३६ (मूल प्रलेख)

आरम्भ किया अदिनाबेग ने उसके चाचा को सूचना दी। अपने आचरण से भतीजा लज्जित और राज्य के प्रति निष्ठावान् हुआ। किन्तु राज्यद्रोही अदिनाबेग से अहमद-शाह के सौदे की इतनी बात हो चुकी थी कि अहमद शाह पीछे हटने को तैयार न हुआ। उसके सैनिक आगे बढ़े और प्रायः बिना विरोध के मुलतान और लाहौर पर अधिकार कर लिया और दिल्ली की ओर बढ़े। किन्तु युवराज अहमद के नेतृत्व में सम्राट् की मुगल सेना ने सफलतापूर्वक उनका सामना किया जिससे अफगान सेना काबुल की ओर लौट गई। इस युद्ध में कमरुद्दीन खाँ वजीर काम आया। मुलतान और लाहौर के शासन उसके पुत्र मीरमन्नु को दिए गए। उसने इन सूबों का प्रभार लेने के लिए प्रस्थान किया। युवराज अहमद दिल्ली की ओर लौटा किन्तु उसके राजधानी पहुँचने के पूर्व ही सम्राट् ने अन्तिम सांस ली। अहमद शाह की उपाधि धारण कर अप्रैल के अन्त में युवराज ने राज्यारोहण किया और अवध के नवाब सफदरजङ्ग को अपना वजीर बनाया। उसने निजामुल्मुल्क को वजीरी प्रदान की थी। किन्तु अपनी वृद्धावस्था के कारण उसने इस पद को ग्रहण नहीं किया और मुहम्मद शाह के मरने के बहुत ही थोड़े समय बाद उसकी आयु के एक सौ चौथे वर्ष में १६ जून १७४८ को बुर्हानपुर में उसकी मृत्यु हुई।

१७४८ ई०

निजामुल्मुल्क छः पुत्रों को छोड़ कर मरा जिनके नाम गाजीउद्दीन, नासिर जङ्ग, सलामतजङ्ग, निजाम अली, मुहम्मद शरीफ और मीर मुगल थे। प्रथम दो एक माता से थे। बाकी सब पृथक २ माताओं से थे। गाजी उद्दीन अमीर-उल-उमरा के पद पर दिल्ली में था जब उसके पिता की मृत्यु हुई। नासिर जङ्ग ने शासन अपने हाथ में लिया।

निजामुलमुल्क की मृत्यु के कुछ ही महीने बाद सम्राट् ने अपने ही हाथ से एक पत्र लिख कर बहुत ही दबाव डालते हुए उसको दरबार में आने को निमन्त्रित किया। नासिरजङ्ग नर्मदा तक पहुँच चुका था जब यह निमन्त्रण कुछ कारणवश जो सन्तोषपूर्वक स्पष्ट नहीं है, वापस ले लिया गया। उस समय नासिरजङ्ग को यह परिस्थिति सौभाग्यपूर्ण प्रतीत हुई क्योंकि उसी समय उसको एक भयानक विद्रोह की सूचना मिली थी जिसका नेतृत्व उसका भतीजा मुजफ्फर जंग कर रहा था और चन्दा साहब फ्रांसीसी सैनिकों की एक टुकड़ी लेकर उसकी सहायता कर रहा था। इसके शीघ्र ही बाद अम्बर के युद्ध में कार्णाटक-पायान घाट के राज्यपाल अनवरउद्दीन की पराजय और मृत्यु की सूचना प्राप्त हुई। इससे नासिरजङ्ग ने रघुजी भोसले से उसके सैनिकों की एक टुकड़ी की सहायता माँगी और उसकी सेवा के पुरस्कार स्वरूप कुछ प्रदेश अर्पण

१७४६ ई०

करने का वचन दिया। दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हुए उसने कार्णाटक के समस्त मुगल आश्रित करदों की अपनी सेना में सम्मिलित होने को प्रस्तुत रहने का आह्वान किया। गूटी के जागीरदार के रूप में मुरार राव घोड़पडे, और सावनूर के नवाब और अपने अनुपोषकों के साथ स्वर्गीय अनवर उद्दीन के द्वितीय पुत्र मुहम्मद अली, मद्रास स्थित अँग्रेजी उपनिवेश की सभा और सभापति प्रमुख अधिकारी थे जो नासिरजङ्ग के साथ सम्मिलित हुए या जिन्होंने अपने सैनिकों को सम्मिलित होने के लिए भेजा।

इस तरह सैनिकों से पूर्णतया खाली हो जाने के कारण, दक्खिन पेशवा के लिए एक अरक्षित आकर्षक क्षेत्र था किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घरेलू मामलों के कारण उसकी उपस्थिति सातारा में आवश्यक थी। कुछ वर्षों से राजा शाहू मानसिक निर्बलता की अवस्था में थे।[1] कहा जाता है कि उनकी सब से छोटी पत्नी सगुना बाई मोहिते की मृत्यु से उनको यह बीमारी हुई। जैसे २ उनका स्वास्थ्य गिरता गया वैसे २ उन्होंने पुनः बुद्धि प्राप्त की।[2] पेशवा के आश्रितों ने जो उसे घेरे रहते थे उसे एक पुत्र गोद लेने को प्रेरित किया। अपने मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ने के कुछ समय पूर्व उसने अपने एक मात्र शिशु की मृत्यु पर यह घोषित किया था कि यदि कोल्हापुर के राजा शम्भाजी को कोई सन्तान हुई, तो वह शम्भाजी को गोद लेगा,

---

[1] शाहूजी कुछ दिनों तक निरापद, मूर्खतापूर्ण पागलपन से पीड़ित थे जिससे हँसी आने के साथ अनुवेदना भी होती थी। प्रथम बार यह पागलपन उस समय प्रकट हुआ जब उन्हें पूरे दरबार में दो मराठा सरदारों से भेंट करना था। इस अवसर पर उन्होंने अपने प्रिय कुत्ते को रत्नों से ढके हुए सोने के जरीदार कपड़ों से सजाया और अपनी निजी पगड़ी कुत्ते के शिर पर रखा। पुनः बुद्धि प्राप्त करने पर उन्होंने अपने शिर को फिर कभी किसी चीज से नहीं ढका। एक चीते के शिकार में इस कुत्ते ने उनके प्राणों की रक्षा की थी। उस कुत्ते के नाम उन्होंने एक सनद निकाली जिसमें उन्होंने उस कुत्ते को एक जागीर दी और एक पालकी इस्तेमाल करने का अधिकार दिया। इन सब बातों में राजा का मन रखा गया और पालकी संस्थान वस्तुतः स्थापित किया गया।

[2] जयपुर के राजा जयसिंह ने एक पत्र में शाहू से पूछा कि उन्होंने हिन्दू धर्म के लिए क्या किया है और धर्मार्थ क्या २ दान दिया है। शाहू ने उत्तर भेजा कि मैंने रामेश्वर से दिल्ली तक सम्पूर्ण देश को मुसलमानों से विजय कर ब्राह्मणों को प्रदान किया है।

यद्यपि इसके पूर्व वह उसके प्रति कठोर शब्द कहता था। किन्तु शम्भाजी को कोई सन्तान न हुई। अतः यह सुझाव दिया गया कि मालोजी के भाई और शाहूजी के चाचा विठोजी की कुछ वंशागत सन्तति के सम्बन्ध में पूछ ताँछ होना चाहिए। तदनुसार खोज की गई किन्तु किसी का पता न चला। तब यह सुझाव दिया गया कि पाटिल वंश के बहुत से लोग वहाँ हैं उनमें से किसी सम्मान्य सिलाहेदार के लड़के को गोद लिया जाय। शाहू ने कहा कि इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने के लिए उसके पास दृढ़ कारण हैं और अन्त में माहादजी पन्त पुरन्दरे और गोविन्दराव चिटणीस से कहा कि तारा बाई ने जो अब भी जीवित है और सातारा में रह रही है अपने पौत्र राम को जो शिवाजी द्वितीय का पुत्र है और अपने पिता की मृत्यु के बाद १७१२ में उत्पन्न हुआ था कहीं छिपा रखा है। यह नहीं मालूम है कि किस प्रकार शाहू को यह गुप्त बात मालूम हुई और यह विषय जो स्वयं ही बड़ा पेचीदा है जान बूझ कर ऐसा रहस्यमय बनाया गया जिससे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि पेशवा को राम राजा की वैधता का विश्वास था और उसको तुच्छ बनाने के निमित्त उसने यह गढ़ना कि यह सम्पूर्ण मामला राज्य की एक चाल है या उसने कम से कम इस दुर्भावनापूर्ण कटाक्ष की ओर से आँख मूंद लेना आवश्यक समझा। जब तारा बाई को कोल्हापुर के शम्भाजी को गोद लेने की मनसा की सूचना मिली तो वह यह कहती हुई सुनी गई कि मैं इसे रोकूँगी। सूक्ष्मता से प्रश्न किए जाने और उत्साहित किए जाने पर उसने अपने पौत्र के अस्तित्व के सम्बन्ध में कहा कि उसका पौत्र जीवित है। ताराबाई की इस घोषणा की जानकारी होने पर शाहू की सबसे ज्येष्ठ जीवित पत्नी सक्वर बाई शिर्के ने अपने वंश की जन्मजात हिंसा और महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप तुरन्त ही शम्भाजी से पत्र व्यवहार आरम्भ किया और उनको ताराबाई के तथाकथित पौत्र के दावों का विरोध करने को उत्तेजित किया। उसको उसने धूर्त घोषित किया क्योंकि उसके गोद लिए जाने से उसकी प्रत्याशित शक्ति का सम्पूर्ण अवसर छिन जाता जो उसके अपने ही देखभाल में एक अवयस्क के राज्यारोहण से उसको मिलता। उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से शम्भाजी की सहायता करने का वचन दिया। उसने यमाजी शिवदेव को अपने पक्ष के समर्थन के लिए नियुक्त किया। श्रीपत के कनिष्ठ भ्राता जगजीवन ने भी अपनी शक्ति भर उसके पक्ष का समर्थन करने का वचन दिया। श्रीपत राव की १७४७ में मृत्यु हो जाने पर वह प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। दमाजी गायकवाड़ ने भी इस प्रस्ताव से अपनी सहमति प्रकट की। सदा ही विद्रोह के लिए तैयार घाटमाथा और कोंकण में सिपाहियों की भरती करने और उनको ताराबाई के निमित्त प्रस्तुत रखने के लिए प्रणिधि भेजे गए। बालाजी बाजी राव पैंतीस हजार सैनिकों

को लेकर सातारा पहुँचा किन्तु कोई ऐसी कार्रवाई करने में जिससे ब्राह्मण शक्ति के प्रति पहले ही से ईर्ष्यालु मराठा भावना को धक्का पहुँचे वह इतना सतर्क था कि उसने सक्वर बाई को उसके पति से अलग करने या उसके ऊपर ऐसे कोई बन्धन लगाने का जिससे कि उसके सम्बन्धियों की सक्रिय शत्रुता उत्तेजित होने की सम्भावना हो, प्रयत्न नहीं किया। उसको उसके षड्यन्त्रों के विस्तार की जानकारी थी और उसको यह भी ज्ञात था कि सक्वर बाई की आयोजना उसकी हत्या करने की है किन्तु साथ ही उसको ताराबाई के प्रति भी सन्देह था। वास्तव में बालाजी बाजी राव के प्रति ज्ञात शत्रुता उसकी अद्‌भुत कहानी की सत्यता का मुख्य प्रमाण है। शिवाजी की मृत्यु के समय राजाराम की छोटी पत्नी राजिस बाई को शिवाजी की द्वितीय पत्नी भवानी बाई के गर्भवती होने का प्रबल सन्देह था। विनाश से शिशु की रक्षा करने के लिए ताराबाई की सम्पूर्ण देखरेख और सावधानी की आवश्यकता थी। उस शिशु को पन्हाला के किले के बाहर ले जाने के साधन उसे प्राप्त हुए। उसने इस बच्चे को भवानी बाई की बहन को सौंपा। वह तुलजापुर ले जाया गया और वहाँ से बर्सी को जहाँ उसका अज्ञात रूप से पालन-पोषण किया गया।

पेशवा किं कर्तव्यविमूढ़ था और राजा की मृत्यु के बाद तीन महीने तक जब वह सातारा में था वह महत्त्वाकांक्षा और भय दोनों ही से बारी २ उद्विग्न था। कभी उसके मन में यह विचार उठता कि राजा को पूर्णतया अलग कर वह अपना आधिपत्य जमावे।[1] किन्तु सब बातों का विचार कर उसने तारा बाई के दावे की पुष्टि करना इष्टकर समझा। यद्यपि वह उस बालक को राजकुमार स्वीकार करता था और उसके प्रति सम्मान के हर एक प्रत्यक्ष रूप का पालन करने में सावधान था, फिर भी, बाद को वह इस जनश्रुति को दबाने को उत्सुक नहीं था कि यह पूरी कहानी मनगढ़न्त हैं। जब पेशवा के हाथ में पूरी शक्ति आ गई और उसका उद्‌देश्य पूरा हो गया तो हड़पने वाले के लिए कुछ राजारूपी तमाशा असुविधाजनक था और उसको

---

[1] सदाशिव चिमनाजी ने एक पत्र में अनुशंसा की कि पेशवा तुरन्त शक्ति हड़प ले। उसने एक पत्र में जो १६वीं शवल को भेजा गया था लिखा कि बाई के कार्यों पर विश्वास न कीजिएगा और निरन्तर सावधान रहिएगा। बाई जिस कार्य को हाथ में लेती है उसमें गलती नहीं करती। जो दिखावा कर रहे हो उसके विपरीत किसी भी हालत में कुछ न कीजिएगा। कोई चीज ऐसी सामने न आने पावे जिससे तुम्हारे विचारों का पता लगे। किन्तु राजा के मरते ही सब कार्य अपने हाथों में लेने में न चूकिएगा। जब तक राजा जीवित है तुम्हारे आचरण में तिल भर भी अन्तर न आने पावे। इस सम्बन्ध में मुझको बराबर लिखते रहिएगा।

पूर्णतया हटा देने के लिए पहला कदम यह था कि उसके ठग होने के विश्वास को पुष्ट होने दिया जाय। किन्तु देश की आवाज अतिशक्तिशाली थी और शिवाजी के वंश के उत्तराधिकारी के चारों ओर उस प्रदेश के हजारों आदमी इकट्ठे हुए होते जहाँ वह पहले पहल अपना पाँव जमाता।

अपने षड्यन्त्र को छिपाने के निमित्त सक्वरबाई सदा यह कहा करती थी कि मृत्यु होने पर वह सती होगी। यह घोषणा उसके विनाश का कारण हुई क्योंकि चतुर ब्राह्मण ने इस पर विश्वास करने का दम्भ किया और उसने इस सूचना को इतना प्रचारित किया और यह सूचना इतने व्यापक रूप से फैली कि सम्पूर्ण देश की दृष्टि में इसके पूरा न किए जाने से उसके वंश की प्रतिष्ठा पर आँच आती।

यद्यपि सक्वरबाई कठिनता से ही कभी राजा से अलग होती थी और उनको अपने पक्ष के आदमियों से लगातार घिरा रखती थी, बालाजी ने एक गुप्त भेंट करने का रास्ता निकाला। इस भेंट में उसने राजा को इस बात के लिए राजी किया कि वह बालाजी को एक विलेख दे। इसके अनुसार मराठा साम्राज्य के पूरे शासन के प्रबन्ध करने की शक्ति इस शर्त पर पेशवा में निहित की गई कि वह राजा के नाम को चिरस्थायी और शिवाजी के वंश की प्रतिष्ठा को तारा बाई के पौत्र और उसके वंशजों द्वारा स्थिर रखेगा। इस विलेख में यह भी निर्देश किया गया कि कोल्हापुर राज्य सदा एक स्वतन्त्र प्रभुसत्ता समझा जाय; कि उनके धारकों के स्वामित्व में वर्तमान जागीरों की पुष्टि की जाय। पेशवा को यह शक्ति दी गई कि हिन्दू राज्य के विस्तार के हित को, एवं मन्दिरों, खेतिहरों, और जो कुछ भी पवित्र या उपयोगी हो उन सब की रक्षा को दृष्टि में रखकर वह जागीरदारों से समझौता करे।[1]।

राजा की साँस निकलने भी न पाई थी कि सरपट दौड़ते हुए अश्वारोहियों के एक दल ने सातारा नगर में प्रवेश किया और प्रतिनिधि और उसके मुतालिक यमाजी शिवदेव को बन्दी कर और तुरन्त ही उनको शृङ्खलाओं में जकड़ कर कठोर अनुरक्षा में दूर स्थित गढ़ों में भेजा। नगर के चारों ओर के सब रास्तों पर सैनिक बैठा दिए गए और पेशवा की एक सैन्य टुकड़ी किले में रखी गई। रामराजा

---

[1] इस विलेख से पेशवा को राजा के प्रतिनिधि रूप में अनेक जागीरदारों पर सम्पूर्ण शक्ति, और उत्तराधिकार के हर एक मामले में नए जागीरदारों को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ। रघुनाथ यादव के पानीपत बखर में शाहू के इस कार्य की चर्चा है। उसने लिखा है कि मरते समय शाहू ने सम्पूर्ण राज्य को पेशवा के हाथों में सौंपा।—रानाडे : मराठा शक्ति का उदय, पृ० २६६।

के अनुरक्षक दल को अधिक बलन देने के लिए एक टुकड़ी भेजी गई क्योंकि वह शाहू के मरने तक वहाँ नहीं पहुँचा था।

अपनी सम्पूर्ण योजनाओं के भण्डाफोड़ और असफल हो जाने पर सक्वर बाई भय और क्रोध से अभिभूत हुई ही थी कि पेशवा ने उसके पास यह कपटपूर्ण सन्देश भेजा कि उसकी प्रार्थना है कि सक्वर बाई सती होने को न सोचें, उसके लिए वह और उसके (सक्वर बाई के) सारे सेवक उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए प्रस्तुत हैं। क्रोधित महिला के मस्तिष्क को उत्तेजित करने और उसको आत्मोत्सर्ग करने को प्रेरित करने से सन्तुष्ट न होकर उसने उसके भाई कुँवर जी को बुला भेजा और उसको समझाया कि उसके घराने की प्रतिष्ठा में बट्टा लगने का डर है और उसको इस शर्त पर कोंकण में एक जागीर देने का वचन दिया कि वह अपनी बहन को न केवल शिर्के वंश की प्रतिष्ठा के लिए बल्कि मृत राजा के राज्य के अधीन समस्त भारत की प्रतिष्ठा के लिए सती होने को राजी करे। इन कूटनीतियों से बालाजी बाजी राव ने अपनी बलि को वशीभूत किया। किन्तु पाठकों को यह न सोचना चाहिए कि उसके वे देशवासी जो इस घृणित कार्यवाही के गुप्त इतिहास को जानते हैं और जिनके मस्तिष्क ब्राह्मण दरबार की अनुद्विग्न दुष्टता से कलुषित नहीं हुए है यह कहकर इस बलिदान की सफाई देने का प्रयास करते हैं कि यह उनके धर्म के अनुरूप है। इसके विपरीत वे अत्यन्त घृणा से इसका उल्लेख करते हैं और कहते हैं कि हत्या का साधारण ढंग भी इससे कहीं अधिक मानवोचित और कहीं कम आपत्तिजनक होता।[1]

[1] उसके पक्षपाती प्रतिनिधि और यमाजी शिवदेव पकड़े जा चुके थे, उसकी महत्त्वाकांक्षा भग्न हो गई थी, पेशवा और ताराबाई की संरक्षता में रहना उसके लिए असह्य था, उसके कोई सन्तान नहीं थी अतः इस दुःखदायी स्थिति से छुटकारा पाने के लिए वह सती हुई।—डॉ० सिन्हा : राइज आव द पेशवाज, पृ० २५४-६०।

अध्याय १८

(१७५० ई० से १७५४ ई० तक)

१७५० ई०—शाहू की मृत्यु के पूर्व उसके नाम से यशवन्त राव दाभाडे और रघुजी भोसले को सातारा आने की आज्ञा भेजी गई थी। दुराचार के कारण दाभाडे पूर्णतया निर्बल हो गया था और जैसा कि सम्भवतः पहले से समझा जाता था न तो दाभाडे और न सेनापति दमाजी गायकवाड़ उपस्थित हुआ। अन्य अधिकांश जागीरदार वहाँ उपस्थित थे किन्तु यदि किसी का पेशवा की सत्ता का विरोध करने का मन भी था तो भी वह शान्त रहा और इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि रघुजी भोसले क्या करता है। किन्तु अब रघुजी की महत्त्वाकांक्षा, अवस्था की सावधानी और अनुभव की भर्त्सना से नियन्त्रित थी। वह वार्षिक बङ्गाल-अभियानों के संचालन पर तुला बैठा था। जनवरी १७५० में वह अनुमानित केवल बारह हजार आदमियों की एक सेना लेकर सातारा पहुँचा। पेशवा के प्रति उसका झुकाव शान्तपूर्ण था किन्तु रामराजा को स्वीकार करने में उसने आनाकानी की। वह चाहता था कि उसके भोसले एवं राजाराम का पौत्र होने के साक्ष्य स्वरूप पहले जाति के सामने ताराबाई उसके साथ भोजन करे, और उस भोजन की जिसको वे दोनों एक साथ खाएँ वह यह शपथ ले कि राजाराम उसका पौत्र है। इस सुझाव के अनुसार अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक कार्य किए जाने पर रघुजी को पूर्ण सन्तोष हुआ। पेशवा से बहुत देर तक वार्ता करने के बाद उसने उन योजनाओं के औचित्य का निर्णय दिया जो उसके विचारार्थ प्रस्तुत किए गए थे। उन दोनों के बीच जो सद्भावना थी उसके प्रमाणस्वरूप बालाजी ने राजा को रघुजी की देखभाल में छोड़कर पूना को प्रस्थान किया और रघुजी से यह प्रार्थना की कि वह राजा को समस्त जागीरदारों के साथ पूना ले आए जिससे कि मृत राजा के इच्छापत्र के अनुसार सब कार्य सम्पन्न किए जाँय। इस समय से पूना मराठों की राजधानी मानी जा सकती है। अपनी आयोजनाओं की सफलता के उत्साह में बालाजी ने ताराबाई की प्रायः उपेक्षा की। इस समय ताराबाई की आयु ७० वर्ष से अधिक थी किन्तु शीघ्र ही बालाजी को यह विश्वास हो गया कि उस महिला की भावना की उपेक्षा करना भयावह है। पति की भस्म पर बनाई हुई समाधिस्थल पर अपनी श्रद्धा को अर्पण करने के बहाने वह सिंहगढ़ किले

को गईं और पन्त सचिव को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वह उसे मराठा साम्राज्य का प्रमुख घोषित करे। बहुत अनुनय के बाद बालाजी ने उसको पूना आने को राजी किया और उसकी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के हेतु यह आशा दी कि प्रशासन में उसका महत्त्वपूर्ण भाग होगा और अन्त में रामराजा पर अपने प्रभाव से वह अपनी कई आयोजनाओं की पुष्टि कराने में सफल हुआ।

रघुजी भोसले को बरार, गोंडवाना और बङ्गाल की नई सनदें प्रदान की गईं और प्रतिनिधि की कुछ जागीर-भूमि हस्तांतरित की गई जो बरार के निकट थी। आधे गुजरात की सनदें यशवन्त राव दाभाडे को भेजी गईं जिससे दमाजी गायकवाड़ को जिसने कभी भी राज्य के राजस्वभाग का हिसाब नहीं दिया था यह पता चल गया कि पेशवा की बढ़ती हुई शक्ति से वह क्या आशा कर सकता है। इसी काल में रानोजी सिंधिया की मृत्यु[1] हुई और उसके ज्येष्ठ पुत्र जयप्पा (जयजी) के जागीर की पुष्टि की गई। सम्पूर्ण मालवा का वार्षिक राजस्व प्रायः एक सौ पच्चास लाख रुपया आँका गया था। इसमें से लगभग दस लाख रुपया छोड़कर बाकी सब होल्कर और सिंधिया में बाँटा गया। होल्कर को साढ़े चौहत्तर लाख और सिंधिया को साढ़े पैंसठ लाख रुपए प्रदान किए गए। शेष दस लाख विभिन्न जागीरदारों को प्रदान किए गए जिसमें से आनन्द राव पवार को सबसे अधिक मिला। ये सब पेशवा के विचारों के अनुसेवी थे और इनसे उसको किसी विरोध का डर न था।

बालाजी राव ने अष्ठ प्रधानों की पुष्टि की किन्तु उसका विचार उनको रखने का न था। उसने थोड़े समय के लिए गङ्गाधर श्रीनिवास को प्रतिनिधि नियुक्त किया किन्तु उसने रघुजी भोसले तथा कुछ अन्य जागीरदारों के अवेदन पर जगजीवन परशुराम को मुक्त कर उसको उसके पद पर पुनः बैठाया। राजा की सिब्बन्दी बहुत कम की जाने वाली थी अतः उनके उन अधिकारियों को जिनको वे रख नहीं सकते थे उनके पक्ष में सुरक्षित करना आवश्यक था। अतः पेशवा ने प्रतिनिधि के जागीरों और अर्पणों के एक बड़े भाग को, विशेष रूप से कराड के पश्चिम में उरमूरी और वर्णा नदियों के बीच का प्रदेश जहाँ उसे कोल्हापुर के राजा के समर्थन से एक विद्रोह होने का डर था उन लोगों के लिए सुरक्षित रखा।

शाहू के दत्तक पुत्र फतहसिंह भोसले की उसकी जागीर के स्वामित्व की तथा राजस्व भाग पर विभिन्न, छोटेमोटे दावे और 'अकलकोट के राजा' की

---

[1] रानोजी सिंधिया की मृत्यु शुजलपुर के समीप १७४५ में हुई जहाँ उसका चैत्य बना हुआ है।

उपाधि की पुष्टि की गई। छोटेमोटे दावों को छोड़कर यह अधिकार अब भी उसके वंशज भोग रहे हैं। मन्त्री के एक सम्बन्धी के लिए शाहू ने अजाहत सरदेश मुख या प्रधान सरदेशमुखी संग्राहक नाम का एक नया पद बनाया था। नाम के लिए तो यह पद रहने दिया गया किन्तु दक्खिन के छःसूबों पर दस प्रतिशत उगाही में उसके हस्तक्षेप करने के अधिकार के बदले में उसको जागीरभूमि प्रदान की गई।

सरलशकर की नियुक्ति सोमवन्शी कुटुम्ब से हटा ली गई और निम्बाजी नायक निम्बालकर को दी गई। ये सब परिवर्तन और नियुक्तियाँ राजा के नाम पर की गईं। किन्तु यह अब अच्छी तरह भासित हो गया कि राज्य में पेशवा का अधिकार सर्वोच्च है और व्यापक रूप से और बिना असन्तोष के यह अधिकार मान लिया गया है।

किन्तु यमाजी शिवदेव ने जो प्रतिनिधि के साथ ही मुक्त किया गया था, पण्ढरपुर के समीप संगोला के किले में पहुँच कर विद्रोह किया। सदाशिव चिमनाजी भाउ ने उसका दमन किया।

पेशवा की इन कार्यवाहियों की सफलता में दीवान महादजी पन्त का बड़ा हाथ था। उसके चचेरे भाई सदाशिव राव के बाद महादजी का पेशवा पर सबसे अधिक प्रभाव था। संगोला के अभियान के समय सदाशिव राव भाउ के साथ राम राजा भी था जिससे दमाजी शिवदेव को प्रतिरोध करने का कोई बहाना न रहे। और जब तक पेशवा उस स्थान पर रहा राजा अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसको देने को सहमत हुआ। पेशवा की सब कार्यवाहियों को पुष्टि करने को भी वह सहमत हुआ। इस शर्त पर कि उसको सातारा के आसपास की भूमि का एक टुकड़ा उसके निजी प्रबन्ध में दिया जाय बालाजी राव ने इन शर्तों को स्वीकार तो किया किन्तु इन शर्तों की पूर्ति कभी न की गई। राजा एक प्रबल रक्षक दल के साथ संगोला से सातारा लौटा। उस समय पेशवा और उसके चचेरे भाई सदाशिव राव के बीच एक असाधारण मतभेद उत्पन्न हुआ जिससे बालाजी राव की सम्पूर्ण योजना जो वह बड़े परिश्रम से निर्माण कर रहा था प्रायः उलट गई।

इस समय सदाशिव राव ने रामचन्द्र बाबा शेणवी[1] से सम्पर्क स्थापित

---

[1] शेणवी गोआ और दक्षिण कोंकण के ब्राह्मण हैं। पेशवा शासन के उत्तर काल में उनपर कुछ अत्याचार किया गया और वे त्रि-कर्मी पद पर च्युत किए गए अर्थात् उनको छः वैदिक कर्मों में से केवल तीन को करने की अनुज्ञा दी गई। इसके बाद वे अपने को पहले तिरहूत के गौड़ ब्राह्मण कहते थे, बाद को गौड़ सारस्वत।

कर लिया था। यद्यपि शेणवी का आचरण अत्यन्त आपत्तिजनक था विशेष रूप से जिस ढङ्ग से उसने शक्ति प्राप्त की थी, तो भी महाराष्ट्र देश उसका बड़ा ऋणी है। इस व्यक्ति का मूल नाम रामचन्द्र मल्हार था। वहूवरी के सामन्तों के अधीन अरूली गाँव का कुलकर्णी था। वह अपने गाँव के राजस्व को चुकता न करने के कारण भागने को विवश हुआ था। सातारा में आने के बाद उसने कचेश्वर बाबा अतीतकर की सेवा ग्रहण की। उसने बाजी राव से उसकी सिफारिश की। बाजी राव के अधीन उसने सैनिक तथा कारकुन रूप में ख्याति प्राप्त की। बाजी राव ने उसको रानोजी सिन्धिया का दीवान नियुक्त किया। रामचन्द्र ने बहुत धन इकट्ठा किया और कुछ अंश तक रानोजी की कुख्यात निर्धनता का वह कारण हुआ। रानोजी की मृत्यु पर उसने सदाशिव राव भाउ को इस आशा से उत्कोच दिया कि वह जयप्पा का दीवान बना रहे। किन्तु जयप्पा उसको नापसन्द करता था और मल्हार राव होल्कर ने भी इसका विरोध किया। अतः पेशवा ने उसको इस पद से हटा दिया। देखने में यह बात तुच्छ प्रतीत होती है किन्तु इससे बहुत उपद्रव उठ खड़े हुए। होल्कर और भाउ की एवं रामचन्द्र और पेशवा की शत्रुता की यह जड़ बना। सदाशिव राव ने रामचन्द्र को अपना दीवान बनाया और उसके सुझाव पर वही अधिकार माँगा जो उसके पिता चिमनाजी अप्पा के पास थे। बालाजी ने ऐसा करना अस्वीकार किया क्योंकि इसका अर्थ होता माहादजी पन्त पुरन्दरे का अधिक्रमण जिसके उन पर असंख्य आभार थे। इस कारण संगोला के अभियान से लौटने के बाद सदाशिव राव भाउ ने कोल्हापुर के राजा से निवेदन किया और वह उसका पेशवा नियुक्त किया गया। उसको तीन किले पारगढ़, कलानिधि और चन्दगढ़ और पाँच हजार रुपये वार्षिक की एक जागीर प्रदान की गई। माहादजी पन्त के प्रशंसनीय आचरण से युद्ध न हुआ। उन्होंने स्वेच्छा से अपना पद त्यागा। सदाशिव राव कोल्हापुर में अपनी पेशवाई छोड़कर पूना चला आया जहाँ वह पेशवा नियुक्त किया गया।

दक्खिन से एक बहुत बड़ी सेना कार्णाटक में चली जाने पर भी मराठे इस अवसर का लाभ नहीं उठा सके। इसके कारण वे घटनाएँ हैं जो राजा की मृत्यु के पूर्व और पश्चात् हुई। मल्हार राव होल्कर के द्वारा निजामुल्मुल्क के ज्येष्ठ पुत्र गाजी उद्दीन ने बालाजी राव से समझौते की वार्ता चलाई थी। पेशवा उसके दावों की पुष्टि करने को सहमत था और सम्राट् अहमद शाह को एक पत्र लिख कर यह प्रार्थना की थी कि गाजी उद्दीन सूबेदार बनाया जाय नहीं तो सेना की अनुपस्थिति

और ब्राह्मणों के प्रतिकूल वे मछली भक्षण करते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति सम्भवतः सेण (कन्नड), 'ग्राम राजस्व अधिकारी' शब्द से हुई है।

, और कार्णाटक की अव्यवस्था से स्वतन्त्र लुटेरे दक्खिन पर छा जाएँगे। इस अन्तराल में पेशवा ने अपने सैनिकों को तैयार कर औरङ्गाबाद की ओर प्रस्थान किया किन्तु पूना छोड़ने के पूर्व उसने पंत सचिव को तूंग और तिकोना किलों के बदले में सिंह गढ़ किला देने को राजी किया और ताराबाई को शान्त करने के निमित्त वृद्धावस्था के कारण जिसकी सक्रियता और कपट योग में कमी नहीं आई थी, उसने असावधानी पूर्वक सातारा के किले से अपने निजी सैनिकों को हटाकर उनके स्थान पर गधकरियों और पुराने अनुयायियों को वहाँ रखा जिनकी राजाराम की विधवा के प्रति श्रद्धा थी और पूरा प्रबन्ध उसके हाथों में दिया। सातारा नगर में एक पृथक सिब्बन्दी के साथ राजा ठहराया गया। उसको पूर्ण-स्वतन्त्रता थी। उसके तथा उसके अधिकारियों के लिए वैभवपूर्ण खाद्य का प्रबन्ध किया गया जिसका व्यय पैंसठ लाख रुपया वार्षिक था।

जिस समय बालाजी बाजी राव शाहू की बीमारी के कारण सातारा में था, नासिर जङ्ग कार्णाटक अभियान पर गया हुआ था। मुरार राव घोडपडे और कुछ अन्य मराठे कार्णाटक पायान घाट में बने रहे। किन्तु रघुजी का पुत्र जनोजी भोसले ने या तो मार्च १७५० में मुजफ्फर खाँ की पराजय होने पर सेना छोड़ दी या वह शाह नवाज खाँ के साथ चला गया जो सलाबत जङ्ग का साथ छोड़कर कर्नूल के घेरे के समय मार्च १७५१ में औरङ्गाबाद चला गया था। डुप्ले[1] के षड्यन्त्रों के कारण नासिरजङ्ग का पतन हुआ था। उसने चिकाकोल निवासी रामदास नामक एक ब्राह्मण के द्वारा जो नासिरजङ्ग का विश्वासपात्र था सेना में विद्रोह फैला दिया। इस पर डुप्ले ने शिविर पर आक्रमण कर दिया। कर्पा के पठान नवाब मुहम्मद खाँ ने जो एक षड्यन्त्रकारी था ५ दिसम्बर १७५० को विश्वासघातपूर्वक गोली चला कर नासिरजङ्ग की हत्या कर दी। नासिरजङ्ग में अपने पिता की विवेक बुद्धि बिल्कुल नहीं थी और यदि वह अपने भाग्य में सफल होता भी तो सम्भवतः उसका अन्त एक मुसलमान विलासी का हुआ होता। किन्तु कुछ बातों में वह एक श्रेष्ठ व्यक्ति था उसने एक यूरोपीय देश में अच्छी शिक्षा पाई थी। उसमें स्त्रियों के स्नेह भाजन और शिष्टता के अनेक गुण थे। वह साहसी और उदार था और साहित्य और काव्य में रुचि लेता था।

---

[1] आधिपत्य के लिए दक्खिन भारत में जो युद्ध हुआ उसमें अंग्रेजों ने निजाम के सिंहासन के लिए पिछले निजाम के द्वितीय पुत्र नासिरजङ्ग का, और कार्णाटक की नवाबी के लिए अनवरउद्दीन के अवैध पुत्र मुहम्मद अली के पक्ष का समर्थन किया। फ्रांसीसियों ने क्रमशः पिछले निजाम के एक पौत्र मुजफ्फर जङ्ग, और चन्दा साहब का पक्ष ग्रहण किया।

उसकी असमयिक मृत्यु हुई। किन्तु कुछ अंशों में अपने ग्रंथों के कारण किन्तु प्रधान रूप से अपने मित्र मीर गुलाम अली बेलग्रामी के ग्रंथों के कारण उसकी स्मृति दक्खिनी मुगलों में बनी हुई है।

१७५१ ई०—अपने मित्र फ्रांसीसियों की सहायता से मुजफ्फर जङ्ग ने दक्खिन के छहों सूबों की सूबेदारी ग्रहण की। राज्यद्रोही रामदास जो डुप्ले के सिद्धांत विहीन उच्चाकांक्षा का एक उपयुक्त साधन था राजा रघुनाथ दास की उपाधि से मुख्यमन्त्री बनाया गया। बस्सि के दीवान अब्दुल रहमान का जो हैदरजङ्ग की उपाधि से विख्यात है यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। निजाम शासन के अधीन मसुलीपटम में इसका पिता राजस्व का बाकीदार था। जब उसके हाथ में शक्ति थी फ्रांसीसियों के प्रति उसका मैत्री भाव था। विपत्ति पड़ने पर वह पाण्डिचरी भाग आया और डुप्ले ने उसकी रक्षा की और उसके प्रति बहुत नम्रता दिखाई। उसके बालक अब्दुल रहमान ने शीघ्र ही फ्रेञ्च भाषा सीख ली और रामदास से षड्यन्त्र कर डुप्ले का साथ और उनकी सफलता होने पर वह बस्सि के साथ रहा जब उसने मुजफ्फरजङ्ग के साथ प्रस्थान किया। उसका नाम फ्रांसीसी दीवान रखा गया। नव नवाब ने उसको हैदर-जङ्ग की उपाधि दी। पठान नवाबों ने मुजफ्फरजङ्ग के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा क्योंकि उनकी आशाओं की पूर्ति नहीं हुई थी। मुजफ्फरजङ्ग विजयी होने पर भी १७५१ के जनवरी के अन्त में लड़ता हुआ मारा गया। निजामुल्मुल्क का तृतीय पुत्र सलाबत जङ्ग उसका उत्तराधिकारी चुना गया।

बालाजी बाजीराव ने गाजीउद्दीन के गुप्त मित्र, औरङ्गाबाद के राज्यपाल सैयद लशकर खाँ से गाजीउद्दीन की रुपये से सहायता करने के बहाने अंशदान की माँग की। सैयद लशकर खाँ ने दबाव का बहाना लेकर पन्द्रह लाख रुपये तक की रकम एकत्र की। यह रकम पाने पर सलाबत जङ्ग का सामना करने के निमित्त पेशवा ने कृष्णा के तट को प्रस्थान किया। उस समय सलाबत जङ्ग बस्सि के नेतृत्व में एक फ्रान्सीसी टुकड़ी लेकर हैदराबाद की ओर बढ़ रहा था। ये सेनाएँ एक दूसरे की दृष्टि में प्रायः आई भी न थीं कि पेशवा को सातारा से एक भयावह समाचार मिला जिससे सलाबत जङ्ग के प्रथम प्रस्तावों को स्वीकार कर वह अत्यन्तवेग से पश्चिम की ओर लौट गया।

पेशवा के औरङ्गाबाद को प्रस्थान करने के बाद ताराबाई ने राजाराम से बालाजी बाजी राव के हाथ से राज्य का नियन्त्रण अपने हाथों में लेने के लिए बात की किन्तु उदासीन देखकर उसने कहा कि उसने ऐसा प्रस्ताव हँसी में किया था। उसने दमाजी गायकवाड़ के पास दूत भेजे और राजा और मराठा राज्य को ब्राह्मणों के हाथों से छुटकारा दिलाने के लिए शीघ्र सातारा आने की अनुशंसा की। दमाजी

गायकवाड़ ने शीघ्र ही इस प्रार्थना को कार्यान्वित किया। गायकवाड़ के पहुँच की निश्चित सूचना प्राप्त होने पर ताराबाई ने राजा को सातारा के किले में बुलाकर बन्दी बना लिया और उसमें साहस की कमी होने के कारण उसको भला बुरा कहा। उसने यह दुःख प्रकट किया कि यदि वह उसको एक अज्ञात जीवन से बाहर न निकालती तो वह वहीं पड़ा रहता। वह उसका पौत्र या महान् शिवाजी का वंशज नहीं है। वह न भोसले और न मोहिते है बल्कि एक नीच गोधाली[1] है जो उस घर में बदल लिया गया जहाँ वह सर्वप्रथम ले जाया गया था। उसने उसको अपना पौत्र माना था इसके लिए अब वह पावन कृष्णातट पर प्रायश्चित करेगी। उसने हवलदार और उनके परिचरों पर जो किले के फाटक पर थे और नहीं जानते थे कि भीतर क्या हो रहा है गोली चलाने की आज्ञा दी। किले के नीचे नगर के उन घरों की ओर तोपों के मुँह करने की आज्ञा दी जो कोंकणी ब्राह्मणों के पक्षपाती थे। त्र्यंबक पन्त (नाना पुरन्दरे), गोविन्द राव चिटणीस और सातारा में स्थित पेशवा की ओर के अधिकारियों ने पहले तो इसको एक पागल वृद्ध महिला का प्रयास कहकर इसकी खिल्ली उड़ाई। किन्तु जब उनको सोनगढ़ से दमाजी गायकवाड़ के आने की सूचना मिली तो वे नगर के बाहर चले गए और कृष्णा तट पर अर्ला गाँव में सैनिकों को एकत्र किया। जब गायकवाड़ ने सल्पीघाट पार किया तो उन्होंने उस पर आक्रमण किया किन्तु वे जमकर नहीं लड़े, यद्यपि उनके पास बीस हजार और उनके शत्रु के पास केवल पन्द्रह हजार सैनिक थे। वे पीछे हट कर नीम्ब चले आए। गुजराज के सैनिकों ने वहाँ तक उनका पीछा किया और उनपर आक्रमण कर उनको पराजित किया। दमाजी गायकवाड़ ने तुरन्त ही जा कर ताराबाई को अपना सम्मान अर्पण किया। पड़ोस के कई किले उसके पक्ष में आ गए। सातारा में भरपूर खाद्य सामग्री एकत्र की गई थी और प्रतिनिधि ने उसके पक्ष को मजबूत बनाने का वचन दिया। इन कार्यवाहियों की सूचना पाकर पेशवा लौटा किन्तु उसके पहुँचने के पूर्व ही नानापुरन्दरे ने दमाजी गायकवाड़ को जोरेखोरा में ढकेलने का श्रेय प्राप्त किया था। यहाँ पर दमाजी को कुरार से प्रतिनिधि के और गुजरात से सैनिकों के सम्मिलित होने की आशा थी। किन्तु इसमें उसको निराश होना पड़ा क्योंकि कोंकण का सूबेदार शंकराजी पन्त उनके पृष्ठ भाग में सैनिकों को जमा कर रहा था और पेशवा की सेना जिसने लगभग चार सौ मील कूँच किया था उनके सिर पर थी। दमाजी ने बालाजी से समझौता करने के लिए एक दूत भेजा। बालाजी

---

[1] राजाराम पहले एक गोन्धाली के घर में छिपाए गए थे। गोन्धाली निम्न जाति के गायक हैं जो देवी भवानी की स्तुति में पावड़े गीत गाते, गोन्धल-नृत्य करते और तमाशा दिखाते हैं।

प्रस्तावित शर्तों को मानने के लिए सहमत हुआ और दमाजी को अपने पड़ोस में ही ठहरने को फुसलाया। जब दमाजी बालाजी की मुट्ठी में आ गया तो उसने गुजरात से प्राप्य सम्पूर्ण बकाया को चुकता करने एवं उसके प्रदेश के एक बड़े भाग को अर्पण करने की माँग की। दमाजी ने यह बात सामने रखी कि वह सेनापति दाभाडे का मुतालिक मात्र है और जो कुछ वह चाहता है उसका उसको कोई अधिकार नहीं है। यह उत्तर पाने पर पेशवा ने गायकवाड़ और दाभाडे के परिवार के कुछ आदमियों को जो तलेगाँव में रहते थे पकड़ने और लोहगढ़ के किले में बन्दी रखने की गुप्त आज्ञाएँ भेजीं। नियत समय पर उसने विश्वासघात पूर्वक दमाजी गायकवाड़ के शिविर पर आक्रमण किया और लूटा और उसको पूना शहर में कारावास में रखा।[1] इसके बाद पेशवा ने किला और राजा को देने के लिए ताराबाई को समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु ताराबाई ने रक्षक सैनिकों को एकत्र कर हर एक से यह प्रतिज्ञा ली कि वह अन्त तक उसका साथ देगा किन्तु जो किला छोड़ना चाहते थे उनको उसने जाने दिया। पेशवा के सैनिकों में कुछ उसे देवी और कुछ उसे राक्षसी समझते थे। किन्तु सब मराठों का यह दृढ़ मत था कि ताराबाई न्यायपूर्ण राजप है। अतः बालाजी ने कड़ी कार्रवाई करने की अपेक्षा उसको शान्तिपूर्वक रहने देना अधिक अच्छा समझा, यद्यपि उसके दल के बढ़ने में केवल एक ख्यातिपूर्ण नेता की कमी थी। स्थिति संकटपूर्ण थी किन्तु ताराबाई के आचरण से पेशवा का ही हित साधन हुआ, क्योंकि वह सातारा के किले में राजा को बन्दी करने की लाँछना से बच गया। ताराबाई ने केवल उसे किले में बन्दी बनाकर ही नहीं रखा बल्कि उसको पत्थर के एक नम कारावास में डाल दिया जो अब भी वर्तमान है और उसे अत्यन्त मोटे अनाज का भोजन दिया।

दमाजी गायकवाड़ एक मात्र ऐसा व्यक्ति था जिसका पेशवा को भय था किन्तु वह अब पूना के कारावास में बन्द था। गाजीउद्दीन से जो प्रतिज्ञा बालाजी ने की थी उसको पूरा करने के लिए उसने औरङ्गाबाद की ओर प्रस्थान किया। जहाँ २ सलाबतजङ्ग का आधिपत्य माना जाता था उसने अंशदान या लूट की सामान्य मराठा आयोजना को कार्यान्वित किया। मुगल सेना की गति को सञ्चालित करने वाला प्रधान सलाहकार बस्सि था। वह पाँच सौ यूरोपीय सैनिकों की एक बटालियन और पाँच हजार अनुशासित सिपाहियों की एक टुकड़ी के साथ वहाँ उपस्थित था। उसने मराठा अभियानों को पीछे खदेड़ने का सबसे अच्छा तरीका यह बताया

[1] इसके पश्चात् दमाजी पेशवा का केवल बाएँ हाथ से अभिवादन करता था।

कि मराठा प्रदेश पर आक्रमण किया जाय। अतः सलाबत जङ्ग ने अहमदनगर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उसने अपने भारी भड़कमु सामानों और सामग्रियों को जमा कर दिया और अपने प्रधानमन्त्री राजा रघुनाथ दास के द्वारा ताराबाई से एवं कोल्हापुर के राजा शम्भाजी से पत्रव्यवहार करना आरम्भ किया। पेशवा और उसके अधिकारी युद्ध कार्यवाहियों की इस अप्रत्याशित योजना के लिए तैयार न थे और अपनी ही योजनाओं के अनुसार कार्य होते देख कर उद्विग्न हुए। उनका विचार था कि कभी गाजीउद्दीन का और कभी सलाबत जंग का साथ देकर तथा दोनों को निर्बल कर पूरे दक्खिन को विजय किया जाय। इस तरह उन्होंने अर्पण की बड़ी २ रकमें भी कभी एक पक्ष से और कभी दूसरे पक्ष से प्राप्त करने को सोचा था। सलाबत जंग को पीछे धकेलने के लिए उन्होंने लड़ाई का मराठा ढंग अपनाया और चालीस हजार अश्वारोहियों ने मुगल सेना को घेरा और अपने सामान्य छिटपुट ढंग से उस पर आक्रमण किया। किन्तु फ्रांसीसी तोपखाने की आठ या दस तोपों ने उनको बुरी तरह परेशान किया। इस सशक्त सहायक का सहारा पाकर मुगल पूना की ओर बढ़े और रास्ते में पड़ने वाले हर एक गाँव को नष्ट करते गए। उनकी प्रगति से पेशवा शंकित हुआ और उसने समझौते का प्रयास किया किन्तु साथ ही सलाबत जंग के पदाधिकारियों में भेदभाव और ईर्ष्या को बढ़ाने का भी उसने प्रयत्न किया। फ्रांसीसियों के उद्देश्य के सम्बन्ध में उनमें पहले से ही मतभेद था। इस तरह की योजनाओं को निष्फल करने और अपना प्रभाव बढ़ाने का बस्सि ने परिश्रमपूर्वक विवेकपूर्ण प्रयत्न किया। चन्द्र ग्रहण के समय २२ नवम्बर की रात्रि में उसने मराठा शिविर पर आक्रमण करने की एक योजना बनाई क्योंकि उस समय हिन्दू पूजा पाठ में लगे रहते हैं। उसके समक्ष समस्त मराठा सेना भागी। पेशवा के कुछ स्वर्णपात्र और कुछ मूल्यवान् लूट के सामान हाथ लगे। इसमें मराठों की बहुत ही थोड़ी हानि हुई[1] किन्तु इसका प्रभाव बहुत अधिक हुआ और इससे बस्सि की कीर्ति में वृद्धि हुई।

१७५२ ई०—यद्यपि मराठों पर अकस्मात् आक्रमण किया गया था किन्तु दूसरे ही दिन वे पूर्ववत् सक्रिय से प्रतीत होते थे। मुगल आगे प्रयाण करते गए और रंजन गाँव को लूटा और तलेगाँव को पूर्णतया विनष्ट किया। २७ नवम्बर को मराठों ने उन पर अत्यन्त दृढ़ता से आक्रमण किया और यदि फ्रांसीसी तोपखाना न होता

---

[1] यह युद्ध सम्भवतः घोर नदी पर स्थित राजापुर में हुआ था। इसमें केवल एक ही उल्लेखनीय व्यक्ति रामाजी पन्त भानु के पुत्र बाबू राव आहत हुए थे।

तो उनकी पूर्ण पराजय हुई होती। इस अवसर पर भूतपूर्व दीवान माहादजी पन्त पुरन्दरे तथा रानोजी सिंधिया के दो पुत्र दत्ताजी और माहादजी और कान्हर राव, त्र्यम्बक एकबोती ने मराठों का नेतृत्व किया। एकबोती ने वीरता के कार्य किए और फाकड़े या वीरपुरुष की विशेष उपाधि प्राप्त की और उस दिन से उसके घोड़े के पैर में एक चाँदी की चूड़ी रहती थी, मराठों में जिसका अर्थ है कि अश्वारोही या तो विजयी होगा या अपने प्राणों की आहुति देगा।[१] किन्तु इस सफलता से मुगलों की प्रगति में कोई कमी न आई। भीमा नदी पर स्थित कोरी गाँव में पहुँचने पर (बाद को इसी स्थान पर अंग्रेजों के हाथ विजयश्री लगी थी), पेशवा की ओर से समझौते की वार्ता के फलस्वरूप राजा रघुनाथ दास ने सदाशिव राव भाउ से भेंट की और एक विराम सन्धि हुई होती किन्तु इसी समय यह सूचना मिली कि एक मराठा अधिकारी ने त्र्यम्बक किले पर अचानक आक्रमण कर अधिकार कर लिया है। पेशवा ने इसे लौटाना अस्वीकार किया किन्तु सलाबत जंग ने इसे तुरन्त ही अपने अधिकार में करने के लिए जोर दिया। अपने गोलाबारूद की कमी को पूरा करने तथा बारम्बार मार करने वाली तोपों को लेने के लिए मुगल सेना अहमदनगर लौटी। उन्होंने जुन्नर की ओर प्रयाण किया किन्तु मराठे उनका बराबर पीछा करते रहे। साथ ही सड़क की दुरवस्था के विवरण और रघुजी भोसले की पूरब की ओर प्रगति की सूचना एवं अन्य परिस्थितियों के कारण सलाबत जंग का उद्दण्ड और अस्थायी उत्साह भंग हुआ। उसके सैनिक अपने वेतन के लिए हल्ला मचा रहे थे और उनकी सेवाओं की जितनी ही आवश्यकता बढ़ती गई उतनी ही अनिवार्य उनकी माँगे होती गईं। अनेक पदाधिकारी भी असंतुष्ट थे। अतः अन्त में बसिस ने यह निश्चय किया कि पेशवा से समझौता कर लिया जाय। अतः एक युद्धविराम-सन्धि की गई और सलाबत जंग की सेना हैदराबाद की ओर लौटी। किन्तु असंतोष के चिह्न बने ही रहे। पिछला वेतन न मिलने के कारण सैनिकों ने हुल्लड़बाजी की और ७ अप्रैल को बालकी में दीवान रघुनाथ दास की हत्या की गई।

१७५१ ई०—जब पश्चिम में ये घटनाएँ हो रही थीं, अनुभवी रघुजी ने जिनके युद्धकार्यों का पहले उल्लेख हो चुका है ऐसी उपलब्धियाँ कीं जिससे उसके देशवासियों में उसकी महान् ख्याति का दीर्घ और सक्रिय जीवन गौरवान्वित हुआ। अपने प्रदेश में संभावित हलचल के कारण वह १७५० में पूना से बरार गया। अपने

[१] उसकी मृत्यु मई १७५६ में जब वह बस्सी के तोपखाने में खड़ा था सिर में एक गोली लगने से हुई।

मंतव्य को पूरा करने के लिए उसे एक सुअवसर भी दिखाई पड़ा। उसका पुत्र जनोजी जो नासिरजंग की सेना से लौटा था बंगाल पर आक्रमण करने और मीरहबीब को सहारा देने के लिए कटक भेजा गया। एक वर्ष यह प्रांत मराठा लूट से बचा रहा। किन्तु इस समय मराठे इसकी धन-सम्पत्ति को लूटने के लिए और भी अधिक उत्साह से आ धमके। छुटकारे का कोई दूसरा रास्ता न देख कर अलीवर्दी खाँ ने उत्तर में बलिसोर (बलीश्वर) तक का सम्पूर्ण कटक प्रांत मराठों को अर्पण किया। यह अर्पण मीर हबीब को बंगाल के नवाब के नाम मात्र के प्रतिनिधि के रूप में किन्तु रघुजी भोसले के वास्तविक सेवक के रूप में अर्पण किया गया। मीरहबीब अधिक समय तक इस स्थिति में न रह सका। इस बहाने से कि मीर हबीब ने बकाया राजस्व रोक लिया है, उस पर उस समय तक के लिए उसके सहायक जनोजी ने ईर्ष्या-वश रोक लगा दी जब तक कि वह हिसाब न समझा दे। इस अपमान को न सह सकने के कारण अपने कुछ साथियों को लेकर वह अपने ऊपर नियुक्त किए गए रक्षकदल पर टूट पड़ा और टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। अतिरिक्त दावे के बदले में बारह लाख रुपये ;बंगाल और बिहार की चौथ नियत की गई। दक्खिन में जो घटनाएँ घटित हो रही थीं उनके कारण रघुजी ने इतनी थोड़ी और अपर्याप्त रकम स्वीकार की। पेशवा और सलाबतजङ्ग में युद्ध छिड़ने पर रघुजी ने गावीलगढ़ और नरनल्ला पर अधिकार किया, मानिक दुर्ग का स्वामी बन बैठा और इन किलों के अधीन जनपदों पर कब्जा कर लिया। बस्सि के सम्मति से सलाबतजङ्ग ने पूना की ओर कूच किया। तब तक रघुजी ने पायान घाट और गोदावरी के बीच के सम्पूर्ण प्रदेश से अंश दान उगाहा और मुगल थानों (रक्षक सैनिकों) को खदेड़ कर अपने निजी थानों को स्थापित किया।

१७४८ ई०—दक्खिन में हुई अनुवर्ती घटनाओं के स्पष्टीकरण करने के पूर्व निजामुलमुल्क के ज्येष्ठ पुत्र का तथा शाही दरबार के मराठों से सम्बन्धित काम काज का उल्लेख करना आवश्यक है। गाजीउद्दीन खाँ दक्खिन जाने को उत्सुक था किन्तु अपने पिता की मृत्यु के समय से वह दिल्ली में रोक रखा गया था। उसने मराठों से समझौते की बात चलाई। इससे प्रतीत होता है कि सम्भवतः उसके भाइयों ने दिल्ली में उसके रोक रखे जाने के लिए उत्कोच दिया था। अहमद शाह के राज्यारोहण के शीघ्र ही पश्चात् लाहौर की ओर अहमद शाह अब्दाली के आने की सूचना प्राप्त हुई। भूतपूर्व वजीर कमरुद्दीन खाँ का लड़का मीर मन्नू वहाँ का तथा मुलतान प्रांत का राज्यपाल था। मीर मन्नू ने चार जनपदों का राजस्व अर्पण कर अब्दाली की सहिष्णुता प्राप्त की। इस उपाय से वजीर सफदरजङ्ग का हाथ खाली हो गया और वह रोहिल्लों के विरुद्ध अपनी योजनाओं को चलाता

रहा। इन साहसी योद्धाओं की बढ़ती हुई शक्ति और अतिक्रमणों से वजीर को विशेष ईर्ष्या हुई क्योंकि उसके ही प्रदेश अवध प्रांत में उनके छा जाने की आशङ्का उपस्थित थी। सफदरजङ्ग के वजीर नियुक्त किए जाने के कुछ दिन पहले अली मुहम्मद रोहिल्ला की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकार का दावा करने वालों में कलह आरम्भ हुई। लाहौर पर अहमदशाह अब्दाली के आसन्न आक्रमण के समय रोहिल्लों में गृहयुद्ध छिड़ा था। अन्त में अली मुहम्मद का तृतीय पुत्र सादुल्ला खाँ रोहिल्ला अपने अभिभावक हाफिजरहमत की योग्यताओं से सफल प्रतिद्वन्द्वी हुआ। बाद को उसके दोनों ज्येष्ठ भाईयों ने अब्दाली की कैद से छूटने पर अपने उत्तराधिकार का दावा किया। किन्तु सादुल्ला खाँ हाफिज रहमत की सहायता से अपना आधिपत्य बनाए रखा। अब्दाली की ओर से आशङ्काओं के शान्त होने पर सफदरजङ्ग ने रोहिल-खण्ड में प्रवेश किया और उसका अस्थायी रूप से दमन कर नवलराय नामक अपने एक कायस्थ[1] आश्रित को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। रोहिल्लों ने शीघ्र ही विद्रोह किया और नवलराय को पराजित कर उसकी हत्या की। विद्रोहियों को दण्ड देने के लिए सफदरजङ्ग वहाँ गया, लेकिन वह पूर्ण रूप से पराजित किया गया। अतः उसने अपनी सहायता के लिए मल्हार राव होल्कर, जयजी सिंधिया और जाट सूरजमल[2] को बुलाया। इनकी सहायता से उसने शीघ्र ही रोहिल्लों का दमन किया और अधिकांश को कुमायूँ पहाड़ियों में भागने को विवश किया। उपदान के बदले में उन्होंने अपने प्रदेश के अधिकांश भाग को अर्पणा के रूप में होल्कर और सिंधिया को दिया। उत्तरी भारत में मराठे उन्नत स्थिति में थे किन्तु दक्खिन में उनकी राजधानी पर सलाबत जङ्ग के प्रयाण से सङ्कट उत्पन्न हो गया था। रघुनाथ राव जो सूरत के अभियान पर चला गया था बुला लिया गया और पेशवा ने मल्हार राव होल्कर को तुरन्त दक्खिन लौट आने का अत्यावश्यक सन्देश भेजा। उस समय होल्कर कुमायूँ पहाड़ियों के समीप था। सन्देश पाते ही उसने तुरन्त दक्खिन की ओर प्रस्थान किया। गङ्गा पार करने पर उसे वजीर से तथा दिल्ली के समाचार से ज्ञात हुआ कि दक्खिन में सन्धि कर ली गई है। यह सूचना पाने पर होल्कर ने पेशवा को एक पत्र लिखा कि वह उसकी सहायता के लिए बिल्कुल तैयार खड़ा है। किन्तु इस प्रकार की

[1] बङ्गाल की लेखक-जाति जो शूद्रों के संस्कारों का पालन करने के कारण व्रात्य कही जाती थी। सम्भवतः यह समाज के विभिन्न स्तरों या वर्णों से लिया गया एक कार्यशील वर्ण है जो सरकारी एवं साहित्यिक कार्य करने के कारण विकसित हुआ।—रिस्ले : ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आव बङ्गाल, १ कलकत्ता (१८९२)।

[2] १७२५ और १७६३ के बीच में भरतपुर वंश का वास्तविक संस्थापक।

सूचनाएँ प्राप्त होने के फलस्वरूप वह उसकी आज्ञाओं की प्रतीक्षा कर रहा है। इसी बीच में वजीर सफदरजङ्ग का दिल्ली से बुलावा आया क्योंकि अहमद शाह अब्दाली ने पुनः आक्रमण किया था और मुलतान और लाहौर पर अधिकार कर लिया था। सफदर जङ्ग के पहुँचने के पहले ही सम्राट् इन दोनों को पूर्णरूप से उसे अर्पण कर चुका था। यदि यह जल्दबाजी न की गई होती तो अब्दुल्ला को खदेड़ने के लिए वजीर कोई बात उठा न रखता। उसने होल्कर और सिंधिया को बड़े पारितोषिक प्रदान करने का वचन देकर अपना सहायक बना लिया था। इन इनामों का देना अत्यन्त आवश्यक था क्योंकि कुछ ही समय पूर्व उनको अर्पण किए हुए जनपदों से सेनाएँ हटानी पड़ी थीं। इन जनपदों को खाली करने के पूर्व, दोनों ओर से अधिकाधिक लाभ का सौदा करने की अपनी सामान्य नीति के अनुसार उन्होंने विजित रोहिल्लों से पचास लाख रुपये वसूल किए थे।

राजधानी के समीप पहुँचने पर सफदरजंग को अब्दुल्ला को दी गई रियायत की सूचना मिली। उसको बड़ी उद्विग्नता हुई कि मराठा सहायकों से क्या काम लिया जाय या किस प्रकार उनकी क्षति पूर्ण की जाय। पेशवा ने यह विराम सन्धि कर तो ली थी किन्तु वह इस अनुकूल अवसर की ताक में था कि होल्कर और सिंधिया का सहारा पाते ही वह इस सन्धि को भंग करे। इसी उद्देश्य से उसने होल्कर एवं दिल्ली में स्थित अपने वकीलों द्वारा गाजीउद्दीन से घनिष्ठ संपर्क बनाए रखा। अतः दक्खिन को मराठा सहायकों सहित गाजीउद्दीन के प्रयाण करने और वहाँ अपने भाग्य की परीक्षा करने की अनुज्ञा देकर भी वह सब दलों को संतुष्ट रख सकता था।

राजा रघुनाथदास की हत्या होने पर सलाबत जङ्ग ने औरंगाबाद के अपने सर्वाधिक योग्य और जनप्रिय अधिकारियों सैयिद लशकर खाँ और शाहनवाज खाँ को हैदराबाद बुला भेजा। दोनों ही फ्रांसीसियों के विरोधी थे, पूर्वोक्त गुप्त रूप से और पश्चादुक्त व्यक्तरूप से। किन्तु दोनों ही ने बाद को बस्सि की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयत्न किया था क्योंकि सलाबत जङ्ग पर उसका पूर्ण रूप से प्रभाव था। बस्सि की सहमति से सैयिद लश्कर खाँ की दीवान पद पर पदोन्नति की गई थी और शाहनवाज खाँ हैदराबाद का सूबेदार बनाया गया था। मराठों से सैयिद लश्कर का घनिष्ठ संबंध था और वह गुप्त रीति से गाजीउद्दीन के पक्ष का समर्थक था। जब निश्चित रूप से सलाबत जङ्ग को यह सूचना मिली कि गाजीउद्दीन दक्खिन की ओर प्रयाण कर रहा है, तब सैयिद लश्कर सलाबत जङ्ग और बस्सि को कुशलता से यह समझाने में सफल हुआ कि दीवान पद छोड़ कर और मराठों की ओर जाकर वह अपने प्रभाव से बहुत से उनके सरदारों को या तो सलाबतजङ्ग की ओर फोड़ लेगा या उनको तटस्थ करने में सफल होगा। अतः शाहनवाज खाँ को वजीर का काम सौंपा गया और सैयिद

लश्कर खाँ ने जनोजी निम्बालकर के निवासस्थान की ओर प्रस्थान किया जो करमाला में रहता था। गाजीउद्दीन के निकट आ कर पेशवा ने बुर्हानपुर की ओर प्रयाण किया। सैयिद लश्कर खाँ और जनोजी निम्बाल्कर ने उससे भेंट की। सैयिद लश्कर खाँ ने सलाबतजङ्ग के दूत के रूप में यह निवेदन करते हुए वार्तालाप आरंभ की कि सम्राट् ने जो पत्र उसके स्वामी के पास भेजे हैं उससे मालूम होता है कि गाजीउद्दीन औरंगाबाद केवल जाएँगे, अपने नाम पर शासन की व्यवस्था करेंगे और अपने भाई को सहायक नियुक्त कर दिल्ली लौट आएँगे। पेशवा ने पूर्णरूप से समझ लिया कि वह गाजीउद्दीन से सम्मिलित होने और उसका आलम्ब प्राप्त करने का इच्छुक है। अपने निजी स्वार्थ में हैदराबाद में एक उपयुक्त मन्त्री रखना अत्यंत वांछनीय होते हुए भी उसको डर था कि सैयिद लश्कर खाँ की योग्यताओं का व्यक्ति शक्ति पाने पर क्या न कर बैठे। फिर भी उसने गाजीउद्दीन को इन समझौते की वार्ताओं के संबन्ध में लिखा। इस पत्र को उसने अपने मंत्रियों सैयिद लश्कर खाँ और मुहम्मद अनवर खाँ के पास भेजा। मुहम्मद अनवर खाँ सैयिद लश्कर खाँ को शत्रु की अपेक्षा एक प्रतिद्वंद्वी के रूप में अधिक डरता था। उसने पेशवा को अनवर खाँ और निम्बालकर दोनों ही को रोकने तथा शिविर में लाने को लिखा। पेशवा की सेना और बुर्हानपुर स्थित मुगल सेना के मिल जाने से यह पूरी सेना जब औरंगाबाद के समीप पहुँची डेढ़ लाख थी। एक ओर दोनों ही पक्ष वर्षा समाप्त होते ही युद्ध आरंभ करने की तैयारी कर रहे थे, दूसरी ओर सलाबत जङ्ग ने समझौते की वार्ता आरम्भ की। अग्रज होने के नाते निःसन्देह उसका अधिकार था ही और परिस्थितियाँ भी ऐसी उत्पन्न हुईं कि ज्येष्ठ भ्राता के अधिकार की वैधता को अस्वीकार करना असम्भव हुआ। इसी बीच में, पेशवा ने ताप्ती से गोदावरी तक के बरार के पश्चिम के प्रदेश के पूर्ण अर्पण की माँग तथा प्राप्ति की। सब दलों के दावों का निबटारा होने की आशा प्रतीत हो रही थी कि गाजीउद्दीन ने एक अशुभ घड़ी में शहर में होने वाले एक मनोरञ्जन का निमंत्रण स्वीकार किया। निजाम अली की माता द्वारा तैयार किए हुए विषैले भोजन की एक तश्तरी खाने से उसी रात को उसकी मृत्यु हुई।[1]

सितम्बर १२

[1] एक सामान्य किन्तु अस्वाभाविक कल्पना के आधार पर ओर्म लिखता है कि स्वयं उसकी माता ने उसको विष दिया। किन्तु निजामुलमुल्क के पुत्रों की माताएँ भिन्न २ थीं। केवल गाजीउद्दीन और नासिरजंग सहोदर भाई थे। कर्नल विल्क्स ने लिखा है कि विष सलाबतजंग की माता ने दिया। मिल विष की कहानी को स्वीकार नहीं करता। फारसी अभिलेखों में इसका उल्लेख नहीं है। सियारुल मुताखिरीन मीर

अब सलाबतजङ्ग का कोई प्रतिद्वन्द्वी न रहा। उसके भाई ने जो प्रदेश मराठों को अर्पण किया था उसको न देने का उसने सोचा। किन्तु सम्पूर्ण मराठा शक्ति एकत्र की जा रही थी और मुहम्मद अनवर खाँ एवं बुर्हानपुर के सरदार मराठों का साथ दे रहे थे। गाजीउद्दीन की नियुक्ति की वैधता मान ली गई थी। अतः बस्सि ने देखा कि युद्ध को रोकने के लिए यह अर्पण करना सङ्गत एवं आवश्यक है। अतः सलाबतजङ्ग ने इस शर्त पर उन प्रदेशों के संक्रामण की पुष्टि की कि रघुजी भोसले अपनी सेना सहित पायान गङ्गा के पार हट जाएँगे। रघुजी भोसले ने तुरन्त ही इसका पालन किया।

१७५३ ई०—इस तरह शान्ति की स्थापना हो जाने पर होल्कर और जयप्पा सिंधिया ने अपनी २ सेना लेकर, होल्कर ने उत्तरी भारत को और पेशवा ने पूना को, प्रस्थान किया। सैयिद लश्कर खाँ पुनः मुख्य मन्त्री बनाया गया और सलाबतजङ्ग हैदराबाद चला गया। रास्ते में बस्सि बीमार पड़ गया और स्वास्थ्य-लाभ के लिए समुद्र तट पर मसलीपटम जाने को विवश हुआ। उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठा कर लश्कर खाँ ने सलाबतजङ्ग को बस्सि के प्रभाव से मुक्त किया और कुछ ही महीनों में चतुरतापूर्वक फ्रांसीसी टुकड़ी को सलावतजंग से पृथक कर उसे औरंगाबाद ले जाने का उपाय किया। वह समस्त यूरोपीयनों को अपने प्रदेश से हटाना चाहता था। एक लम्बी और कठोर बीमारी के बाद जब बस्सि चलने योग्य हुआ उसने अपने सैनिकों को एकत्र किया और औरंगाबाद पहुँच कर सैयिद लशकर खाँ को पदच्युत कराया और उसके स्थान पर शाह नवाज खाँ को मन्त्री नियुक्त कराया।

रुपये एकत्र करने की कठिनाई के आधार पर फ्रांसीसी टुकड़ियाँ अलग की गई थीं। यह कठिनाई चिकाकोल (विशाखापटनम्), राजमन्द्री और एल्लोर अर्पण कर दूर की गई। ये प्रदेश पूर्वी तट पर हैं। फ्रांसीसियों ने यहाँ की कुल आय बढ़ा-चढ़ा कर तीन करोड़ रुपये से अधिक आँकी और इसकी रक्षा के लिए ढाई हजार सिपाही और डेढ़ सौ यूरोपीयनों को वहाँ रखा। बस्सि ने वहाँ के राजस्व की उगाही विजयराम राजे नामक एक योग्य तथा प्रमुख देशमुख को ठीके पर दी। लगान साधारण थी और कठोरतापूर्वक वसूल नहीं की जाती थी। ठीक-ठीक लेखा तैयार किए गए। अधिकांश वंशागत अधिकारियों की सम्पत्ति की पुष्टि की गई जिनके कब्जे में लगान मुक्त भूमि नहीं थी। इन तथ्यों से बस्सि और उसके राष्ट्र की बहुत प्रतिष्ठा है।

गुलामअली के ग्रन्थों के आधार पर लिखी गई थी जिसको समझने में उसने कहीं २ गलती की है। इसका लेखक निजामअली के शासन के पहुँच के बाहर था।

अपने को अर्पण किए गए जनपदों को सरदारों में बाँटकर और कब्जा करने की आवश्यक व्यवस्था कर पेशवा ने कार्णाटक अभियान के लिए एक बड़ी सेना खड़ी की। चारुमण्डल के विख्यात युद्ध में मैसूर की सेनाएँ फ्रांसीसियों का साथ दे रही थीं। बकाया कर उखाड़ने का यह इतना अनुकूल समय था कि उसने गुजरात की ओर की अपनी योजनाओं को स्थगित किया। बालाजी ने स्वयं ही प्रस्थान करने के पूर्व तारा बाई से समझौता करने का एक रास्ता निकाला। उसके औरंगाबाद चले जाने पर, ताराबाई ने पाँच या छः हजार मराठों और रामोसियों की सहायता से जो उसकी नौकरी में थे वइ और सातारा के जनपदों पर अधिकार कर लिया था। इसलिए एक बड़ी सेना सातारा पर घेरा डालने और उसको भूखों मार कर अधीनता स्वीकार कराने के लिए भेजी गई। किले के हवलदार आनन्द राव जाधव ने प्रतिरोध करना मूर्खता समझा। उसने उसके कब्जे से राजा को निकाल ले जाने की एक योजना बनाई थी। किन्तु ताराबाई को इस योजना का पता चल गया और उसने उसके शिरच्छेदन की आज्ञा दी। सैनिकों ने अपने ही सेनापति तथा अन्य अनेक व्यक्तियों को यह दण्ड दिया जो बाद को इसी प्रकार के षड्यन्त्र में फंसाए गए। बाबूराव जाधव को जिसका कोई सम्बन्ध मृत हवलदार से न था और जो सिन्दखेड़ के जाधवों का एक सम्बन्धी था इस किले का कमान दिया गया। जब वह कार्णाटक के रास्ते में था, पेशवा ने ताराबाई के पास यह आश्वासन भेजा कि यदि वह समर्पण कर देगी तो राजा और उसके संस्थान का नियन्त्रण उसके हाथ में रहने दिया जायगा। किन्तु ताराबाई इस प्रस्ताव को तब तक सुनने के लिए तैयार न थी, जब तक कि बालाजी सातारा आकर उसके अधिकार को स्वीकार न करें और व्यक्तिगत आश्वासन देकर उसको इस विषय में सन्तुष्ट न कर दें।

१७५४ ई०—कर उगाही की दृष्टि से यह कार्णाटक अभियान बालाजी के सब अभियानों में सर्वाधिक लाभकारी था। मराठों के लिए अपनी सीमा के बाहर राजस्व एकत्र करना या युद्ध करना पर्यायवाची पद थे। किसी गाँव के प्रतिरोध करने पर उसके अधिकारी पकड़ लिए जाते थे और कभी २ न्यूनाधिक कठोर पीड़ा द्वारा समझौता करने के लिए विवश किए जाते थे। नकद रुपया कठिनता से नहीं प्राप्त होता था किन्तु उन महाजनों के ऋणपत्र जिनसे सम्पूर्ण गाँव का व्यवहार था अधिमान थे, क्योंकि उनके बदले में धारक को हुंडियाँ मिल जाती थीं जो भारत के किसी भी भाग में देय थीं। असफल प्रतिरोध करने पर किलाबन्द स्थानों के रक्षक सैनिक दल तलवार के घाट उतार दिए जाते थे। इस मुलकगीरी (लूट) के अभियान में होल होन्नूर (मैसूर में) पर एक झन्झावाती आक्रमण द्वारा अधिकार किया गया।

रुपया मिल जाने से पेशवा ने श्रीरङ्गपट्टम पर आक्रमण नहीं किया। इस अवसर पर निष्ठा और अधीनता की स्वीकारोक्ति की गई और मराठा दावों की आगामी चुकौती में और अधिक नियमितता वरतने के वचन दिए गए। इस सफलता से सन्तुष्ट हो कर बालाजी राव अपने चचेरे भाई सदाशिव चिमनाजी के साथ जून के महीने में पूना लौटा। वर्षा कम होते ही उसके भाई रघुनाथ राव दत्तजी सिंधिया ने सखाराम बापू के साथ गुजरात के अभियान पर प्रस्थान किया।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि अभयसिंह के हटाए जाने पर १७३५ में शाही दरबार की एक आज्ञा द्वारा नजीमुद्दौला मोमिन खाँ को गुजरात के शासन का प्रभार सौंपा गया। दिल्ली लौटने पर १७३५ में निजामुल्मुल्क गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। किन्तु इस काल की अव्यवस्था के कारण गुजरात में सम्राट् का नाम मात्र का अधिकार रह गया था। अतः गुजरात की सूबेदारी छूछी प्रतिष्ठा प्रमाणित हुई। निजामुल्मुल्क ने भड़ौच को अपनी व्यक्तिगत जागीर कर ली थी। वहाँ का फौजदार अब्दुल्ला बेग न तो अभयसिंह को स्वीकार करता था और न मराठों के दावे को मानता था।

इस अन्तराल में मोमिन खाँ अपने अधिकार को स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। किन्तु एक मारवाड़ी रतनसिंह भण्डारी जो अभयसिंह का सहायक था अहमदाबाद के कब्जे का विवाद खड़ा किए रहा। अन्त में दमाजी ने मोमिन खाँ से एक सन्धि कर पगड़ियाँ बदलीं और रतनसिंह को खदेड़ने के लिए रङ्गजी के नेतृत्व में मोमिन खाँ के साथ एक फौज भेजी। एक आक्रमण में वे पीछे खदेड़ दिए गए। किन्तु अन्त में रतनसिंह ने हार मान ली। रङ्गजी और मोमिन खाँ ने लगभग २० मई १७३७ को अहमदाबाद पर अधिकार किया। मुगलों और मराठों को अधिकार और राजस्व का समभाग अर्पण किया गया जिससे, जैसी की आशा की जा सकती थी, निरन्तर झगड़ा बना रहा।[1]

दमाजी गुजरात से समस्त सामान्य मराठा देय, और काठियावाड़ से वार्षिक कर बिना विवाद के तब तक उगाहता रहा जब तक कि फरवरी १७४३ में मोमिन खाँ की मृत्यु न हुई। अब्दुल अजीज खाँ जो उस समय दक्खिन में औरङ्गाबाद में था एक शाही फर्मान द्वारा उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया। उसने तुरन्त ही सेना खड़ी करना आरम्भ किया। कुछ हजार आदमियों को एकत्र कर अपने नए शासन का प्रभार ग्रहण करने के लिए उसने प्रस्थान किया और सूरत होते हुए भड़ोच के समीप पहुँचा। किन्तु दमाजी या उसके किसी सम्बन्धी ने ओकलासीर में

---

[1] रङ्गोजी और मोमिन खाँ का संयुक्त राज्य १५ वर्ष (१७३८-५३) चला।

उस पर अकस्मात् आक्रमण कर उसको तथा उसके दल को पूर्णतया नष्ट कर दिया। अब्दुल अजीज खाँ का नाम फिर कभी नहीं सुना गया और नासिर जङ्ग के विद्रोह का अनुपोषक फतहयाब खाँ खेत रहा। अहमदाबाद का प्रभार ग्रहण करने के लिए १७४४ में फखरूद्दौला दिल्ली से बुलाया गया। उस काल में तब तक दमाजी को सातारा में रहना पड़ा जब तक कि रघुजी भोसले और पेशवा के झगड़े का निबटारा न हुआ। उसके अभिकर्ता रङ्गजी के नेतृत्व में एक टुकड़ी ने फखरूद्दौला का विरोध किया और कब्जा करने से उसे रोका। अपने भाई दमाजी की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर खण्डेराव गायकवाड़ ने अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। रङ्गाजी को अहमदाबाद से हटाया और उसके स्थान पर एक अपने निजी अभिकर्ता की नियुक्ति की और कुछ अंश में फखरूद्दौला को भी अनुपोषित किया। किन्तु दमाजी तेजी से लौट कर मराठापक्ष को हानिकर प्रमाणित होने के पूर्व ही उनके सम्बन्ध को समाप्त कर दिया। उसने खण्डे राव को बूरसत का किला और नदियाद का मूल्यवान् जनपद प्रदान किया तथा बड़ौदा में उसको अपना सहायक नियुक्त किया। इस विवेकपूर्ण प्रबन्ध से दमाजी ने अपने परिवार के अनेक सदस्यों के ऊपर प्रभुत्व बनाए रखा। प्रांत में अपनी शक्ति बनाए रखने में सम्भवतः यह सबसे बड़ी अड़चन थी। वह फखरूद्दौला को स्वीकार करने के लिए तैयार न था। शासन में वह अपने पुराने मित्र मोमिन खाँ के भाई फिदाउद्दीन खाँ को और उसके पुत्र मोहतफिर खाँ को आलम्ब देता था।

यह पता नहीं चला है कि किस निश्चित समय पर दमाजी गायकवाड़ ने भड़ोच के नगर और बन्दर से राजस्व और सीमाशुल्क का एक भाग प्राप्त किया।[1] किन्तु अधिकार प्राप्त करने के लिए १७४७ में सूरत में कई प्रतिद्वन्द्वी थे। केदारजी उनके विवादों को निबटाने के लिए निमन्त्रित किया गया। एक पक्ष ने उसकी सहायता करने के पारितोषिक स्वरूप तीन लाख रुपये देने की प्रतिज्ञा की। उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। किन्तु हस्तक्षेप के बिना ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाने से उसने यह रकम देना अस्वीकार किया। अतः दमाजी पास-पड़ोस के प्रदेश को लूटने लगा। उसको संतुष्ट करने का दूसरा साधन न होने के कारण सैयिद अचीन ने जिसने कि यह संविदा किया था उस समय तक सूरत के राजस्व का एक तिहाई देने का प्रस्ताव किया जब तक कि यह रकम चुकता न हो जाय। दमाजी की इच्छानुसार

[1] प्रतीत होता है कि दमाजी गायकवाड़ ने १७४२ के अल्प समय बाद भड़ोच के विरुद्ध एक प्रदर्शन किया जिसके फलस्वरूप उसको राजस्व और सीमाशुल्क का एक भाग प्राप्त हुआ।

केदारजी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। सूरत में बहुत गड़बड़ी होती रही जब दमाजी पूना में बन्दी था। यह भी एक कारण था जिससे दमाजी अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने को इतना उत्सुक था। पेशवा गुजरात में व्यापक रूप से व्यवस्था करने का इच्छुक था। किन्तु इसके पूर्व कि वह दमाजी के समझौते की वार्ताओं को सुनने को तैयार हो उसने उसको अत्यन्त कठोर ऋणपत्रों से जकड़ दिया। बकाया रकम से उसे छुटकारा देने के लिए उसने पन्द्रह लाख रुपये की रकम निश्चित की। यह रकम किसी प्रकार भी अधिक नहीं थी। पूना शासन की इस नम्रता का कारण यह बताया जाता है कि दमाजी ने रामचन्द्र बाबा शेखवी को अपने तथा अपने स्वामी सदाशिव राव भाउ के लिए एक लाख रुपये का उत्कोच दिया। गुजरात में गायकवाड़ परिवार के अधिकार के जनपदों तथा आगामी विजयों में समविभाजन के लिए एक पट्टे का आहरण भी किया। दमाजी ने आधे प्रदेश को देना अंगीकार किया और व्यय घटा कर, राजस्व के भाग कर, अंशदान और इनामी सम्पत्ति की उगाही के अर्धभाग का सच्चा लेखा प्रस्तुत करने का वचन दिया। दमाजी ने दस हजार अश्वारोहियों को रखने तथा आवश्यकता पड़ने पर पेशवा की सहायता करने, गुजरात प्रांत के उसके हिस्से के बदले में उसके मुतालिक होने के नाते दाभाड़े सेनापति को पाँच लाख पच्चीस हजार रुपये वार्षिक कर चुकता करने, राजा के संस्थापन के अनुपोषण के लिए प्रतिवर्ष एक निश्चित रकम अंशदान करने, इस संविदा के अनुसार प्रदान किए हुए जनपदों में प्रतिरक्षक दलों की स्थापना कर पेशवा की सहायता करने, और अन्ततः, गुजरात के पूरे प्रायद्वीप के कर पर अपने २ पारस्परिक दावे को लागू करने में सम्मिलित होने का भी वचन दिया। किन्तु इन शर्तों को पूरा करने की सुविधाजनक अवधि तक वह पूर्णतया बन्दी न होते हुए भी एक खुले हुए बन्दी के रूप में रखा गया जिसकी देख भाल बालाजी के विश्वस्त सैनिक करते थे।[१]

---

[१] यह रकम पूना में पाए गए एक लेखा के अनुसार है किन्तु फारसी और मराठी हस्तलेखों में दमाजी ने प्रारंभ में जो रकम चुकता की वह अनिवार्यतः एक करोड़ से ऊपर दिखाई गई है। पूना के राज्य लेखा से यह पता चलता है कि ५,२५,००० रुपये वार्षिक चुकाई के अतिरिक्त दमाजी गायकवाड़ ने १७५२-५३ के ऋतु में जब वह पूना में था नजरों और आहरणों के रूप में १,१०,००० रुपये चुकता किया जिसमें से एक लाख रुपया पेशवा, सदाशिव राव भाउ, रामचन्द बाबा शेखवी और पेशवा की पत्नी गोपिका बाई रस्तिआ में बराबर२ बाँटा गया। नानापुरन्दरे को ५००० रुपये मिले और ५००० रुपये संभवतः अवर सेवकों में बाँटे गए। आगामी वर्ष में उसने कुल मिला कर ७,६०,००० रुपये चुकता किए।

उस समय सूरत पश्चिमी भारत के समुद्रतट का व्यापारिक केन्द्र था। पेशवा उस पर पूर्ण कब्जा करने को बहुत उत्सुक था। जब उसने दमाजी से पूर्वोक्त समझौता किया उस समय अंग्रेजों से जिनकी आँखें उस ओर लगी थीं उसकी वार्ता चल रही थी।

मित्र राष्ट्रों के हस्तक्षेप के बिना सूरत पर कब्जा प्राप्त करने की आशा में १७५१ में रघुनाथ राव वहाँ भेजा गया। किन्तु उसका उद्देश्य पूरा होने के पहले ही वह दक्खिन को बुला लिया गया। दमाजी के साथ जो समझौता किया गया था उसकी मुख्य व्यवस्था पूरा करने के निमित्त रघुनाथराव पुनः वहाँ भेजा गया। प्रतीत होता है कि इसी समय दमाजी स्वतंत्र किए गए क्योंकि गुजरात में रघुनाथ राव के प्रवेश करने के शीघ्र ही बाद दमाजी अपनी सेना सहित उससे सम्मिलित हुए और वे दोनों मिल कर उस प्रदेश को दमन करने और कर उगाहने में लग गए। अहमदाबाद नगर पहुँचने के पूर्व तक उनकी प्रगति में कोई अड़चन न पड़ी। दमाजी के कारावास की अवधि में मृत मोमिन खाँ के भाई ने जवाँ मर्द खाँ बाबी को मुगल क्षेत्र का प्रभार सौंपा था। उसने नगर की संपूर्ण शक्ति को हड़प लिया किन्तु दमाजी के संग्राहक को अपने स्वामी की बकाया रकमों को उगाहने दिया। जिस समय मराठे अहमदाबाद पहुँचे, उस समय जवाँ मर्दखाँ पल्हनपुर में था। वहाँ से शीघ्रतापूर्वक आकर सीढ़ियों द्वारा दीवार पर चढ़ कर आक्रमण किए जाने से उसने नगर की रक्षा की। उसकी उपस्थिति से रक्षक सैन्यदल में एक नई भावना जाग्रत हुई। घेरा और प्रतिरक्षा, ये दोनों ही बड़ी दृढ़ता से किए गए। विन्चूर नासिक जनपद के विख्यात जागीरदारों के पूर्वज विठ्ठल शिवदेव ने इस अवसर पर बड़ी ख्याति प्राप्त की। खानदेश के माले गाँव (नासिक जनपद) के दृढ़ किले का निर्माता नारु शङ्कर एक अत्यन्त सक्रिय आक्रामक था। उसके कमान में अरब पदातियों का एक बड़ा दल था। जवाँ मर्दखाँ बाबी के आचरण से उसको एक सम्मान्य आत्मसमर्पण प्राप्त हुआ और नगर पर से घेरा उठाने की शर्त पर पत्तन, बरनगर, रदनपुर, बीजापुर एवं साबरमती और बनस के बीच में स्थित, अहमदाबाद के उत्तर के अन्य अनेक जनपद उसे जागीर में प्रदान किए गए। किन्तु लगभग दस वर्ष पश्चात् इनमें से अधिकांश जनपदों को दमाजी ने उससे ले लिया।

मराठों ने अप्रैल १७५५ में अन्तिम रूप से गुजरात की राजधानी अहमदाबाद पर अधिकार किया। इसका राजस्व पेशवा और गायकवाड़ दोनों में बराबर २ बँटना था। किन्तु दमाजी के सैनिक केवल एक फाटक पर थे, शेष पूरा रक्षक दल पेशवा का था। व्यय अंश के रूप में दमाजी ने छः हजार रुपये वार्षिक दिया। पेशवा के अभिकर्ता के रूप में एक अधिकारी श्रीपत राव नायक अहमदाबाद में रखा गया।

जब रघुनाथ राव बड़ौदा में दमाजी से विदा होकर दत्ताजी सिंधिया के साथ हिन्दुस्तान का प्रस्थान किया तब मल्हार राव होल्कर का एकलौता पुत्र खण्डेराव वहाँ जाकर उससे सम्मिलित हुआ। उन्होंने अजमेर पर आक्रमण किया। शाही प्रदेश से चौथ और सरदेशमुखी उगाही और मित्र और शत्रु से कर लेने की जिद्द की। राजपूत राज्य अंशदान देने को विवश किए गए और जाटों को भी स्वीकारोक्ति करनी पड़ी, यद्यपि उन्होंने माँग का विरोध किया और कुम्हेर[1] किले पर के आक्रामकों को पीछे खदेड़ दिया। इस आक्रमण में खण्डेराव होल्कर मारा गया। रघुनाथ राव १७५६ तक दक्खिन नहीं लौटा।

उत्तर की ओर पेशवा के सैनिकों को नवम्बर १७५४ में सफलता प्राप्त हुई। दूसरी ओर पूना से एक अभियान ने कार्णाटक की ओर प्रयाण कर बेदनूर तक अंशदान उगाहा। पेशवा सेना के साथ कृष्णा पर स्थित इरूर तक गया और वहाँ पर माहादजी पन्त पुरन्दरे को कमान देकर गोदावरी के उद्गम की यात्रा की। ऐसा अनुमान है कि हर तेरहवें वर्ष वहाँ पर गङ्गाजी का जल प्रवाहित होता है और इस पवित्र धारा में स्नानार्थ हजारों हिन्दू एकत्र होते हैं।[2]

बालाजी बाजीराव में जन्मतः स्फूर्ति नहीं थी। वह अपने अभिकर्ताओं पर निर्भर करता था। इससे भी उसका स्वभाव प्रमादी हुआ। मुख्य सैनिक प्रबन्धों का भार उसके भाई रघुनाथ राव पर था अतः सैनिक प्रशासन का सम्पूर्ण भार उसके चचेरे भाई सदाशिव चिमनाजी पर आ पड़ा। ग्राम-प्रशासन प्रणाली से देश की पूर्ण अराजकता से सदा रक्षा होती आई थी और अब लूट और हिंसा की उस व्यापक प्रणाली से देश की रक्षा हुई जो एक व्यक्ति के जीवन से अधिक समय तक वहाँ समग्र रूप से प्रचलित थी। व्यवस्था की एक प्रणाली के आरम्भ का श्रेय रामचन्द्र बाबा शेणवी को दिया जाता है और उसकी मृत्यु के पश्चात् सदाशिवराव भाउ[3] ने उसके सुझावों का विकास किया।

दक्खिन के मराठा अधिराज्यों के पूर्वी भाग की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना

---

[1] भरतपुर के समीप राजस्थान में है।

[2] हर बारहवें वर्ष बृहस्पति के सिंहस्थ होने पर नासिक में कुम्भपर्व होता है और वर्ष भर यहाँ गोदावरीस्नान महापुण्यप्रद माना जाता है—कल्याण (तीर्थाङ्क) १९५७, पृ० २४४।

[3] सदाशिव राव दीवान था। उसमें काम करने की बहुत शक्ति थी किन्तु वह जल्दबाज और लोभी था—फारेस्ट सेलेक्शन्स (मराठा सिरीज), जिल्द १, भाग १, पृष्ठ १२१।

रघुजी भोसले की मृत्यु थी जो सलाबत जङ्ग के विरुद्ध युद्ध में उसकी महान् सफलता के पश्चात् १७५३ के मार्च महीने में हुई। उसने अपने प्रदेश का अपने चार पुत्रों जानोजी, साबाजी, मूदाजी और बिम्बाजी में बाँटा। उसके दो ज्येष्ठ पुत्र जानोजी और साबाजी उसकी छोटी पत्नी से हुए थे। और उसके दो कनिष्ठ पुत्र मूदाजी और बिम्बाजी उसकी ज्येष्ठ पत्नी से हुए थे। वे सातारा की भूतपूर्व रानी सक्वरबाई शिर्के के भतीजे थे। पेशवा द्वारा सेना साहब सूबा के पद पर पुष्टि किए जाने की निश्चित प्रत्याशा में रघुजी ने जानोजी के हाथ में सर्वोपरिता छोड़ दी। अपनी अन्तिम श्वास से रघुजी ने मराठा साम्राज्य में तथा आपस में एकता बनाए रखने के लाभ की अपने पुत्रों से अनुशंसा की; किन्तु अत्यन्त साधारण अनुभव की तुलना में उपदेश का, वह कितना भी सत्यनिष्ठ हो, कोई मूल्य नहीं होता। एक महीने की अवधि में जानोजी अपने भ्राता मूदाजी को शस्त्र बल से आज्ञा पालन कराने को विवश हुआ। इन कार्यवाहियों में समय नष्ट होने के कारण उसको उपाधि और मानाभिषेक तब तक नहीं मिला जब तक पेशवा कार्णाटक से लौट नहीं आया।

पूना में जानोजी की पहुँच से उत्साहित होकर और पेशवा से सुरक्षा और निरपदता का आश्वासन पा कर ताराबाई ने राजा के शरीर की परिरक्षा तथा सातारा के सैन्यरक्षकों को बाबूराव जाधव को सौंप कर जानोजी के सबसे कनिष्ठ भ्राता बिम्बा जी भोसले के साथ जो उसके दल में सम्मिलित हो गया था और मोहिते परिवार के उसके एक सम्बन्धी से विवाह कर लिया था पेशवा की राजधानी पूना को आई। वहाँ उसका इतना आदर सत्कार किया गया कि उसने इस शर्त पर पेशवा के प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया कि वह उसके साथ जेजुरी के मन्दिर[1] को जायगा और वहाँ इस समझौते का पालन करने की शपथ लेगा। पेशवा ऐसा करने को इस शर्त पर तैयार हुआ कि बाबूराव जाधव पदच्युत किया जाय। ताराबाई कठिनता से इस बात पर राजी हुई। उसके हठी स्वभाव का लाभ उठा कर पेशवा ने जो राजा को बन्धन में रखना चाहता था यह छद्म किया कि वह उसका छुटकारा चाहता है।

रामराजा में साधारण योग्यता की कमी थी और दुःखमय बन्धन से उसका स्वास्थ्य चौपट और उत्साह पूर्णतया भङ्ग हो गया था।

जानोजी भोसले ने अपने पिता द्वारा मानी हुई शर्तों को कि आज्ञा पाने पर वह दस हजार अश्वारोही प्रस्तुत करेगा और राजा की सिबन्दी के व्यय को निबटाने

---

[1] जेजुरी में जो पूना जनपद में है शिव के अवतार खण्डोबा (तलवार धारण करने वाला पिता) का मन्दिर है।

के लिए नौ लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार किया, सेना साहब सूबा का औपचारिक
मानाभिषेक प्राप्त किया और १७५१ में उड़ीसा के सम्बन्ध में अलवर्दी खाँ से जो
शर्तें निश्चय की गई थीं पेशवा से उनकी सहमति प्राप्त की। उसके पश्चात् वह
बिम्बाजी को लेकर बरार चला गया क्योंकि बिम्बाजी का शिर्के और मोहिते परिवारों
से सम्बन्ध होने के कारण पूना के दरबार में ईर्ष्यायुक्त आशंका उत्तेजित हुई थी।
पूरब ओर की अपनी यात्रा में जानोजी ने मराठा और मुगल दोनों प्रदेशों से घास-
दाना कर उगाहा। सलाबत जंग के आक्रोश के कारण जानोजी उसके जनपदों को
लूटने लगा। एक मुगल अधिकारी के अधीन एक अत्यन्त साधारण टुकड़ी ने उस पर
आक्रमण कर उसके दीवान को बन्दी कर लिया और उसको नागपुर वापस जाने
तथा अपनी लूट का अधिकांश लौटाने को विवश किया।

सम्भवतः इसी समय जब वह इस अपमान और निराशा की दशा में था
चिकाकोल और राजमन्द्री के अपदस्थ सूबेदार जाफर अली खाँ ने उसको उन जनपदों
पर आक्रमण करने का निमन्त्रण भेजा। उसने इन जनपदों को निर्भय होकर उस
समय तक लूटा और विनाश किया जब तक कि एक सेना उसको खदेड़ने के लिए खड़ी
न की गई। उसके पश्चात उसने अपनी लूट का माल एक रक्षक दल के साथ भेजा
और इस उद्देश्य से कि वह माल सुरक्षापूर्वक ले जाया जाय वह विजयराम राजे के
सैनिकों से छिटपुट युद्ध करता रहा। इस जमींदार ने चिकाकोल और राजमन्द्री को
बस्सि से किराए पर ले रखा था। फ्रांसीसी सैनिकों की एक टुकड़ी ने जमींदार की
सहायता की। किन्तु जानोजी लूट के माल को सुरक्षापूर्वक अपने प्रदेश में भेजने में
सफल हुआ।

अभूतपूर्व दलबन्दी के कारण दिल्ली दरबार मराठा हस्तक्षेप से अछूता न
रहा। इस काल के उपद्रव और अपराध में गाजीउद्दीन के पुत्र मीर शिहाबुद्दीन का
बड़ा हाथ था। अपने पिता की मृत्यु की सूचना पाकर इस नवयुवक ने शोकाकुल
होने की ऐसी वेशभूषा धारण की कि वजीर ने उसके पिता की समस्त प्रतिष्ठाएँ,
गाजीउद्दीन की उपाधि और अमीर-उल-उमरा का पद उसके लिए प्राप्त किया।

किन्तु उसके ध्येय की पूर्ति होते ही उसने अपने हितैषी के विनाश का
विश्वासघातपूर्वक षड्यन्त्र रचा, मन्त्री का पद प्राप्त करने में अपने फूफा इन्तिजामु-
द्दौला की सहायता की और अन्ततोगत्वा भूतपूर्व मन्त्री और सम्राट् के बीच में एक
गृहयुद्ध छिड़वा दिया जो राजधानी में और उसके आसपास छः महीने तक चलता
रहा। तत्पश्चात् सफदरजंग इस प्रतिरोध को छोड़कर अपने ही प्रदेश लखनऊ को
चला गया।

जब ये उत्पात हो रहे थे मीर शिहाबुद्दीन ने अपनी सहायता के लिए मल्हार

राव होल्कर और जयप्पा सिंधिया को बुला भेजा और धृष्टतापूर्वक नेतृत्व ग्रहण किया किन्तु सफदरजङ्ग के प्रस्थान करने के बाद वे पहुँचे। मीर शिहाबुद्दीन सूरजमल को जिसने पिछले मंत्री का साथ दिया था दण्ड देना चाहता था। अतः उसने उनको सूरजमल के विरुद्ध लगा दिया। जाट राजकुमार ने अपने किलों में शरण ली। शिहाबुद्दीन अपनी योजना में लगा रहा। उसने सम्राट् से तोपखाना भेजने के लिए निवेदन किया। उसने चंचलतावश इन्तिजामुद्दौला की सहायता की थी किन्तु इन्तिजामुद्दौला उसके सिद्धान्तहीन स्वभाव को तथा उसकी प्रतिभा और महत्त्वाकांक्षा को जानता था। उसने तोपों को भेजने से सम्राट् का मन फेर दिया। सूरजमल ने भी प्रबल राजनीतिक प्रतिवादों से इसकी पुष्टि की। इन प्रतिवेदनों को निष्फल करने के लिए मीर शिहाबुद्दीन ने एक अभिकर्ता दिल्ली भेजा। किन्तु जब उसने देखा कि सम्राट् का झुकाव मंत्री की सम्मति की ओर है तो उसने तोपखाने के बहुत से सैनिकों को फुसला लिया और राजधानी के उपनगरों को लूटा। सूरजमल के रक्षार्थ सम्राट् ने शिहाबुद्दीन और मराठों के विरुद्ध नगर से प्रस्थान किया। यह समझ कर कि जयप्पा और शिहाबुद्दीन नवयुवक हैं और ऐसे अवसरों पर उनकी सम्मति लेना अनावश्यक है, अपनी युक्ति को उनसे बिना बताए मल्हार राव होल्कर अकेले ही प्रस्थान कर शाही शिविर पर आ धमका जो युद्ध के लिए बिल्कुल ही तैयार नहीं था। उस पर कुछ राकेट फेंका जिससे ऐसी गड़बड़ी हुई कि पूरी सेना भयभीत होकर भागी। उनके सामान को लूट कर होल्कर ने विजय का पूरा २ लाभ उठाया। इस सफलता पर मीर शिहाबुद्दीन दिल्ली आकर होल्कर से आ मिला और सम्राट् से अपने लिए मन्त्री पद प्राप्त किया, इन्तिजामुद्दौला को अलग किया, तत्पश्चात् सम्राट् को पदच्युत कर १७५४ के मई के अन्त में जहन्दर शाह के एक पौत्र को आलमगीर द्वितीय की उपाधि देकर शाही प्रतिष्ठा प्रदान की। अभागा अहमद शाह बन्दी बनाया जाकर अन्धा किया गया। इस क्रान्ति के शीघ्र ही बाद भूतपूर्व मन्त्री सफ़दरजंग[1] की मृत्यु हुई और उसके पुत्र सुजाउद्दौला ने अवध प्रशासन का उत्तराधिकार ग्रहण किया। हिन्दुस्तान में हिंसा, लूटमार और अराजकता बढ़ती गई किन्तु महाराष्ट्र के इतिहास से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध राजकाज के विवरण अधिक रोचक होने के कारण कुछ वर्षों तक हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

---

[1] सफदर जङ्ग मन्सूरअली खाँ की मानोपाधि थी जो सम्राट् अहमद शाह का १७४८ से १७५२ तक मन्त्री, और वस्तुतः अवध का राजा था।

अनुक्रमणिका

मणि प्रिंटिंग प्रेस, मणि नगर, ६७ पूरा बलदी, कीटगञ्ज, इलाहाबाद।